पृथ्वीराज रासो की शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन

(डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित पृथ्वीराज रासउ के आधार पर)

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी०फिल० उपाधि के लिए
हिन्दी विभाग के अन्तर्गत
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
Prof. माताबदल जायसवाल
हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय
प्रयाग

शोधकर्ता
सूर्यनारायण पाण्डेय

: इलाहाबाद :
सन् १९९५ ईसवी

प्राक्कथन

प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रारूप के सम्यक अनुशीलन करने की दृष्टि से समकालीन कतिपय साहित्यिक कृतियों का अभूतपूर्व महत्व है। प्राचीन उत्तर भारत की सांस्कृतिक चेतना को समष्टि रूप में स्पष्ट करने की दृष्टि से चन्द्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो का अन्यतम महत्व है। तत्कालीन इतिहास की सामग्री से सामाजिक संदर्भ का स्पष्ट बोध नहीं हो पाता। इसके कारण रूप में कुछ अंशों तक इस बात को स्वीकार किया जा सकता है कि विदेशी लेखकों ने अपने पूर्वाग्रह के कारण भारतीय इतिहास के प्रति न्याय का निर्वाह नहीं किया और स्वदेशी लेखकों ने परम्परा के पिष्टपेषण पर ही अधिक बल दिया। इसका यह तात्पर्य नहीं कि भारतीय इतिहास के सम्यक अनुशीलन में विकसित दृष्टि का नितान्त अभाव है। इस प्रकार के प्रयास आगे चलकर हुए हैं। सम्प्रति रासोकालीन ऐतिहासिक सामग्री पर साहित्यिक स्रोतों से आलोक प्रदान कर उसकी विवेचना को ही अभीष्ट समझा गया है। किसी भी कृति की शब्दावली भाषा के माध्यम से सांस्कृतिक धरोहर को प्रस्तुत करती है और शब्दों के माध्यम से संस्कृति का जीवन्त इतिहास प्रस्तुत होता है। हिन्दी में इस दृष्टिकोण को डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपनी नवीन अनुसन्धित्सा से अद्भुत प्रेरणा दी है। वे इस क्षेत्र के उल्लेखनीय व्यक्तित्व हैं। उन्हीं की प्रेरणा पर हिन्दी में इस प्रकार का कुछ कार्य भी हुआ है। सूर सागर की शब्दावली का एक सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत कर डा० निर्मला सक्सेना ने इस कार्य को और गतिशीलता प्रदान की है। कई अन्य शोध कार्य भी इस दिशा में हुए हैं जो हिन्दी की समृद्धि और क्षेत्र व्यापकता के सूचक हैं तथा उनकी उपादेयता निःसंदिग्ध है। प्राचीनकाल और मध्य काल के संगम का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करने की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो काव्य का अधिक महत्व है। इस काव्य का नायक

पृथ्वीराज अन्तिम हिन्दू अधिपति है और उसके बाद ही देश को एक विदेशी सत्ता से आक्रान्त होना पड़ा है। अतः इस ऐतिहासिक सचाई की साहित्यिक विवेचना की कसौटी-रूप में इस ग्रन्थ का अपरिहार्य महत्व है। निःसंदिग्ध रूप से तत्कालीन सामाजिक स्थिति और युगबोध को स्पष्ट करने में रासो की शब्दावली का अप्रतिम महत्व है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मात्र कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दावली को अध्ययन का आधार बनाया गया है। अतः यह अध्ययन तत्कालीन सामाजिक चेतना का अन्तसाक्ष्य उपस्थित करता है और अपनी दृष्टि में यह मौलिक प्रयास है। अध्ययन की उपयोगिता तत्कालीन समाज को साहित्य के संदर्भ में प्रस्तुत करने में है। अन्य ऐतिहासिक स्रोतों का आधार न ग्रहण कर उनको कसौटी रूप में मानकर काव्यगत सम्भार को अधिक प्रामाणिकता दी गई है। अतः इसके निष्कर्षों में अधिक सम्यकता का रूप स्वीकार किया जा सकता है और इसी में इस अध्ययन की उपयोगिता समाविष्ट है।

पृथ्वीराज रासो के प्रामाणिक पाठ को लेकर विद्वानों में मतवैभिन्न्य है। सम्प्रति इस ग्रन्थ की सहस्रों प्रतियां उपलब्ध हैं और उनमें पाठान्तर होना भी सहज स्वाभाविक है। प्रसिद्ध विद्वान डा० माताप्रसाद गुप्त ने अधिकांश प्रतियों का उपयोग कर पाठालोचन के सिद्धान्तों के अनुकूल इसका वैज्ञानिक पाठ प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत अध्ययन में डा० गुप्त द्वारा प्रस्तुत पाठ को ही आधार स्वरूप ग्रहण किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध ६ अध्यायों में विभाजित है। यथा :—
(१) पृथ्वीराज रासो की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, (२) पृथ्वीराज रासो में भूगोल, (३) सामाजिक दशा, (४) राजनीतिक स्थिति, (५) धर्म एवं दर्शन और (६) कला। आर्थिक स्थिति से सम्बन्धित तथ्यों के कम होने के कारण इसका उल्लेख सामाजिक दशा के अन्तर्गत हुआ है।

शोधकार्य की प्रक्रिया में जिन महानुभावों का पथ प्रदर्शन एवं

स्नेह सौहार्द मिला है उसे विस्मृत करना अकृतज्ञता होगी । सर्व प्रथम में अपने निर्देशक आदरणीय श्री माताबदल जायसवाल का अत्यधिक उपकृत हूं जिन्होंने विषय के निर्वाचन तथा इस क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की । अत्यन्त आवश्यक कार्यों को छोड़ कर उन्होंने मेरे कार्य को प्राथमिकता प्रदान की, समस्याओं का समाधान किया तथा सम्पूर्ण पाण्डुलिपि को पढ़ कर उसका परिमार्जन किया— तदर्थ में उनका बहुत बहुत आभारी हूं । सच बात तो यह है, कि उनके सुयोग्य निर्देशन के अभाव में सम्प्रति यह कार्य समयानुसार सम्भवन हो पाता । यह उन्हीं की कृपा का परिणाम है, कि मैं अपने प्रबन्ध को प्रस्तुत कर सकने में सक्षम हो सका । सर्व श्री डा० पारसनाथ तिवारी (हिन्दी विभाग प्रयाग विश्व विद्यालय) के शुभाशीषों एवं सम्यक सुझावों से मुझे अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई है तदर्थ मैं इनके प्रति सधन्यवाद कृतज्ञता ज्ञापन अपेक्षित समझता हूं । अपने परम सुहृद डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल (प्राध्यापक,संस्कृत विभाग प्रयाग विश्वविद्यालय) के प्रति कृतज्ञता प्रकाश कर अपने भार को कम नहीं करना चाहता हूं । यह लघु प्रयास तो उनके इच्छा-बीज का पल्लवित रूप ही है ।

मेरे सहयोगी श्री श्रीमन्नारायण द्विवेदी, प्राध्यापक, इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट ने सहायक ग्रन्थों को प्रदान कर अध्ययन के क्षेत्र में मेरी अधिक सहायता की है और संदर्भ की दृष्टि से कतिपय महत्वपूर्ण सामग्री की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट कराया है । पारिवारिक और कार्यालय से सम्बन्ध कार्यों में मेरी जिम्मेदारी में हाथ बटाकर उन्होंने मुझे अपेक्षित सहयोग प्रदान किया है । अपने इस समानधर्मा के उज्ज्वल भविष्य की मैं कामना करता हूं । शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में समय समय पर मुझे प्रयाग विश्व विद्यालय पुस्तकालय, एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संग्रहालय, हिन्दी विद्यापीठ पुस्तकालय तथा किसान पुस्तकालय शुक्लपुर से सहायक ग्रन्थों के रूप में अपेक्षित सामग्री

प्राप्त हुई है । इन्हें सहज सुलभ कराने में सहायक इन संस्थाओं के कर्मचारियों के प्रति मैं अपनी विनम्र कृतज्ञता व्यक्त करता हूं । पारिवारिक समुन्नति के अभिलषित श्रद्धेय अग्रज पं० निधिनारायण पाण्डेय तथा अनुज पं० रामनारायण पाण्डेय एडवोकेट को मेरे कार्य से अधिक स सन्तोष मिलेगा । अग्रज के आशीर्वाद एवं अनुज के प्रेम ने मुझे अपने कार्य में सफलीभूत होने में प्रेरणा दी है जिसके लिए मैं अधिकृत हूं फिर भी मैं इस समय उनका सादर एवं सस्नेह स्मरण आवश्यक समझता हूं इससे मुझे ही बल मिलेगा । आयुष्मान श्री कृष्णावतार (एम०एस-सी०) रिसर्च स्कालर, उमाशंकर और विजयशंकर स्नातकोत्तर छात्र (प्रयाग विश्वविद्यालय) ने सामयिक सहायता विविध रूप में प्रदान की है । तदर्थ मैं उन्हें आशीर्वाद के अतिरिक्त और क्या प्रदान कर सकता हूं । वे अपने उद्देश्य में सफल हों, इस शुभ कामना के साथ मैं उनका भी आभार प्रकट करता हूं । आयुष्मती भतीजी श्री शकुन्तला मिश्र, पुत्री उर्मिला तथा पुत्र रवि और बसंत का भी सस्नेह स्मरण करना मेरे लिए आवश्यकता हो जाता है; क्योंकि इन्होंने अपने सुख एवं प्यार का अभाव पाकर भी मुझे लेखन कार्य के लिए अवकाश दिया । हिन्दी विद्यापीठ के वरिष्ठ-कर्मी पं० रामखेलावन मिश्र की पुस्तकीय सहायता एवं प्रोत्साहन के लिए आभारी हूं । पं० मेवालाल मिश्र ने जिस शीघ्रता के साथ प्रबन्ध के सुन्दर टंकण में तथा शब्दानुक्रमणी निर्माण में योगदान दिया उसके लिए मैं उनका सधन्यवाद आभारी हूं । अपने विद्यालय के प्राचार्य डा० जे० बी० चितम्बर और बोर्ड आफ डायरेक्टर्स के सदस्यों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन में मुझे परम सुख की अनुभूति हो रही है जिन्होंने जुलाई, अगस्त, सितम्बर, १९६५ का सवैतनिक अवकाश प्रदान कर अधिक प्रेरणा प्रदान की । मैं अपने उन सभी मित्रों एवं सहयोगियों का उपकृत हूं जिन्होंने शोधकार्य के संदर्भ में प्रत्यक्ष—अप्रत्यक्ष रूप में अपनी अमूल्य सहायता दी है । ⑥ सहायक सामग्री और संदर्भ सूत्र के रूप में कतिपय विद्वानों

की सामग्री का स्थान स्थान पर उपयोग किया गया है तदर्थ उन विद्वानों के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धा अर्पित करना मैं अपना परम पुनीत कर्तव्य समझता हूं।

—— सूर्यनारायण पाण्डेय

विषय-सूची

संदर्भ पृष्ठ

संदर्भ पृष्ठ

संदर्भ | पृष्ठ

संदर्भ	पृष्ठ

शब्दानुक्रमणिका

अध्याय १

पृथ्वीराज रासो की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

(इतर स्रोतों के आधार पर)

अनुच्छेद —	संदर्भ
१ —	रासोकालीन संस्कृति
२ — १० —	राजनीतिक स्थिति :— तत्कालीन छोटे छोटे राज्य, परस्पर युद्ध-रत, राजतन्त्रात्मक, राज्याधिकारी राजकर्मचारी, सामंत प्रथा, न्याय, सेना, युद्ध
११ — १७ —	सामाजिक स्थिति :— वर्ण व्यवस्था, महल, मनोरंजन, सवारी, पहिनावा, बाल आभूषण, चरित्र, अन्ध विश्वास, स्त्रियाँ, दास
१८ — २१ —	धार्मिक स्थिति :— बौद्ध, जैन, ब्राह्मण और इस्लाम
२२ — २६ —	आर्थिक स्थिति :— कृषि, सामंत प्रथा, व्यापार, व्यापारिक केन्द्र, मार्ग, व्यापारिक वस्तुएं, व्यवसाय, सिक्का
२७ —	कला :— स्तूप, गुफाएं, मन्दिर, मूर्तियाँ, नृत्य और गान

रासोकालीन संस्कृति

पृथ्वीराज रासो की शब्दावली का सांस्कृतिक अध्ययन करने के पूर्व यह विवेचन करना महत्वपूर्ण है कि किन सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों में आलोच्य ग्रन्थ का निर्माण हुआ, क्योंकि कवि की रचना में युग-चेतना स्पंदित रहती है, वह युग का व्यापक प्रभाव ग्रहण कर अपनी प्रतिभा से ब जीवन दृष्टि के नवोन्मेष का सृजन करता है। उसकी कृति में समष्टिगत रूप से तत्कालीन सांस्कृतिकप्रारूप आत्मसात रहता है। युग जीवन के बहु चर्चित क्रियात्मक एवं प्रतिक्रियात्मक रूप उसे अपोद्बलित करते हैं। वह कहीं उसका समर्थन करता है, तो कहीं विरोध और कहीं अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से वह संस्कृति की नई कड़ियाँ जोड़ कर अपनी रचना-प्रक्रिया के द्वारा सांस्कृतिक विकास को गतिशील बनाता है, सांस्कृतिक योगदान करता है। अत: पृथ्वीराज रासो के प्रणयन काल की संस्कृति का स्वरूप कैसा था, इसका ज्ञान हमें रासो से इतर स्रोतों के आधार पर प्रथम ही कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। इतिहास कारों ने रासो के स्रोत का उपयोग न करते हुए उस युग की संस्कृति की जो सूचना हमें दी है उसका विश्लेषण यहां इस दृष्टि से भी अपेक्षित हो जाता है कि आलोच्य ग्रन्थ में जो सांस्कृतिक चित्रण हुआ है, वह कितने अंश में वही है जिसकी सूचनाएं प्रस्तुत काव्य के इतर स्रोत के आधार पर मिलती हैं तथा कितना अंश ऐसा है जो इतिहासकारों के लिए अब भी अंधकारपूर्ण है और जिस पर प्रकाश इस ग्रन्थ की शब्दावली के सांस्कृतिक अध्ययन से पड़ सकता है। तभी इस काव्यमय वाणी में गुंफित रासो की शब्दावली के सांस्कृतिक अध्ययन की उपयोगिता सिद्ध होगी। अतएव प्रस्तुत अध्याय में रासो के प्रणयन काल की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थिति का विवेचन रासो के इतर स्रोतों के आधार पर कर लेना प्रस्तुत विषय की उपयोगिता को देखते हुए युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

राजनैतिक स्थिति
अमौलिकताहीन

इतिहासकारों की दृष्टि में इस युग की राजनीति में मौलिकता नहीं है। नई चेतना तथा नये विकास का अभाव है। राजागण विलासिता, शिकार, बाह्य-आक्रमण से रक्षार्थ युद्धरत अथवा कन्या-अपहरण एवं शौर्य प्रदर्शन में जुटे हुए हैं। नवीन सूझ-बूझ के लिए उन्हें अवसर नहीं है।

छोटे छोटे राज्य

हर्ष के पश्चात् किसी बड़े सम्राज्य की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी विभिन्न अंचलों में छोटे छोटे राज्य स्थापित हुए। राजनैतिक विच्छिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उत्तर भारत में, आसाम, बंगाल, बिहार, नेपाल, मगध, कन्नौज, दिल्ली, पंजाब, काश्मीर, मालवा, गुजरात तथा दक्षिण भारत में यादव, चालुक्य, चोल एवं पाड्य आदि सशक्त राज्य पाए जाते हैं किन्तु कोई ऐसी सार्वभौम सत्ता नहीं थी जो सबको एक सूत्र में इन्हें बांध सके तथा इनका नियंत्रण कर सके। मुसलमानों के आक्रमण उत्तर-पश्चिम की ओर से बहुधा होते रहते हैं। उस समय ऐसा कोई व्यक्तित्व नहीं था जो आक्रमण कारियों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बना कर विदेशी संकट का सामना कर सके। आक्रान्ताओं से सर्वप्रथम संघर्षशील

परस्पर युद्ध-रत

गहरवार, चौहान, चंदेल और परिहार आदि राजागण अनावश्यक लड़ाई झगड़े में लगे रहते थे। पारस्परिक सम्बन्ध, ईर्ष्या, द्वेष से पूर्ण हैं। ये एक दूसरे को नीचा दिखाने के अवसर ढूंढा करते हैं। राजनैतिक एकता की भावना अन्तर्हित है।

राजतन्त्रात्मक

राज्य संस्था राजतन्त्रात्मक है। राजा, सर्वोच्च शासक, देवांश अथवा ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता है। उत्तराधिकार वंशानुगत है। राजा का ज्येष्ठ पुत्र राजगद्दी का अधिकारी है। इससे प्राय: अयोग्य और निर्बल भी शासक होते हैं। उनमें स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता की मात्रा अधिक होती है। जन सामान्य के हित का ध्यान सर्वोपरि नहीं है। प्रजा एवं राज्य सम्बन्ध उदासीनतापूर्ण दिखलाई देता है। महारानियों का महत्वपूर्ण स्थान है, पर सामान्य रूप से प्रशासन में उनका कोई

योगदान नहीं दिखाई पड़ता है । वह पुत्रों की संरक्षिका रूप में शासन की अधिकारिणी है । ऐसा अनुशासन किया जा सकता है कि महारानियाँ प्रशासन में नाम हैं । वे महादेवी अथवा परम-भट्टारिका भी कही जाती हैं ।

राज्याधिकारी

राजा प्रशासन के उच्च पदाधिकारियों तथा मंत्रिमंडल की नियुक्ति करता है । मन्त्रि परिषद का परामर्श लेने के लिए आवश्यकतानुसार वह अधिवेशन बुलाता है । युद्ध का सर्वोपरि अधिकारी है । बहुधा वही रणक्षेत्र में उपस्थित रह कर युद्ध का संचालन करता है । स्वायत्त शासन पर दृष्टि रखता है । यही सर्वोच्च न्यायधीश है । उसका निर्णय सर्वमान्य होता है ।

राजतन्त्र के अन्य पदाधिकारियों में अमात्य, पुरोहित, महाधर्माध्यक्ष, महासेनापति, महामुद्राधिकृत (राजमुद्रा का रक्षक) महासंधि विग्रहिक, महादंड नायक, रणभाण्डागाराधिकरण, दण्डपाशाधिकरण, गौल्मिक (किलों का अध्यक्ष) ध्रुवाधिकरण (भूमि कर लेने वाला), शौल्किक (करलेने वाला कर्मचारी) और ग्रामिक (ग्राम का मुख्य शासक) आस्पद वाले कर्मचारी गणों का उल्लेख है । छोटे राज्य कर्मचारियों में १ दिविर (क्लर्क) करणिक (रजिस्ट्रार-सा), और महत्तर (ग्राम सभा के सभ्य) आदि हैं । दंड पाशिक तथा चौरोद्धरणिक पुलिस कर्मचारियों के नाम हैं ।

राज कर्मचारी

सामंत प्रथा

सामंत प्रणाली इस युग की एक अभिनव और महत्वपूर्ण संस्था है। स्मृति अथवा गुप्त काल तक इसका चिह्न नहीं मिलता । सर्व प्रथम शक और कुशन काल से इसका आविर्भाव मिलता है । इसमें शक्ति-शाली राज्यान्तर्गत अनेक छोटे-मोटे स्थानीय अधिकारी होते हैं । जो आवश्यकतानुसार आर्थिक एवं सैनिक सहायता राजा को पहुंचाते हैं और बदले में स्वयं उस क्षेत्रीय सत्ता का उपयोग करते हैं । ये लघु सामंत से महामंडलेश्वर तक अनेक श्रेणियों में विभक्त हैं । राज्य-अन्तर्गत सामन्तों की संख्या, इस काल में, राजाओं की प्रतिष्ठा का

मापदंड हैं । ये राज सभा तथा राजकीय समारोहों में सम्मिलित होते हैं और युद्धों में राजा के साथ रहते हैं । केन्द्रीय सत्ता के निर्बल होने पर ये अपने को स्वतंत्र घोषित कर लेते हैं । स्वतंत्रता के प्रयास में रहने के कारण इनकी स्वामिभक्ति संदिग्धावस्था में रहती है ।

न्याय

न्याय व्यवस्था अच्छी है । राजा के अतिरिक्त प्राड्विवाक न्यायाधीश का काम करता है । प्रमातार संभवत: दिवानी का न्यायाधीश है। दंडिक और दंडवासिक भी न्यायाधिकारी प्रतीत होते हैं । अभियोग को पुष्ट करने के लिए पक्षी को प्रमाण देना होता है । लिखित प्रमाण के अभाव में चार साक्षी की आवश्यकता पड़ती है । उन्हें जिरह करने की आज्ञा नहीं है । ब्राह्मणों और क्षत्रियों को हत्या के अपराध में प्राणदण्ड नहीं दिया जाता है । उनकी सम्पत्ति छीन कर देश निर्वासन का दंड दिया जाता है । चोरी के अपराध में ब्राह्मण को अन्धा करके उसका बायां हाथ और दाहिना पैर काट दिया जाता है । क्षत्रिय को अन्धा नहीं किया जाता है । इससे प्रतीत होता है कि दण्ड कठोर और असमान है । राजद्रोह के लिए दण्ड आजीवन कारावास है,-मृत्यु नहीं है । सामाजिक अनाचार, विश्वासघात, तथा अभिभावक के विरुद्ध दुर्व्यवहार के अभियोग में अंगच्छेद अथवा निर्वासन का दण्ड मिलता है । जल-परीक्षा, अग्नि परीक्षा, तुला-परीक्षा और विष परीक्षा से अपराध की सच्चाई जानी जाती है । अपराध जांचने के लिए भारत में 'दिव्य प्रथा' की व्यवस्था अधिक प्रचलित रही है ।

सेना

सैनिक व्यवस्था शासन प्रबन्ध से पृथक और सुदृढ़ है । सेना बहुत बड़ी होती है । सैनिकों की भरती समाज की वीर जातियों से की जाती है । सेना के चार अंग हैं — पैदल, घुड़सवार, हाथी और रथ हैं । जल सेना भी सुसंगठित है । नदी तट पर बसे राज्य नवसेना रखते हैं । चोल राजा के पास बहुत

शक्तिशाली जल सेना है। भिन्न भिन्न सेनाओं के लिए विभिन्न सेनाधिकारी हैं। सम्पूर्ण सेना का अधिकारी `महासेनापति` `महाबलाध्यक्ष`, अथवा `महाबलाधिकृत` होता है। पैदल और घोड़ों की सेना का अध्यक्ष `भटाश्वसेनापति` तथा घोड़ों की सेना के अध्यक्ष को `बृहदुश्ववार` कहते हैं। युद्ध विभाग के कोषाध्यक्ष को `रणभांडाराधिकरण` कहते हैं। सैनिकों को पहले नकद पारिश्रमिक मिलता था; किन्तु अब सामन्त प्रणाली में भूमि का स्वामित्व उच्च पदाधिकारियों को मिलता है। सैनिक व्यवस्था में यह नवीन परिवर्तन है। राजा के पास स्थायी सेना की कमी होने लगी है। सामन्तों के पास सेनाएं रखने और आवश्यकतानुसार उसे लेने की प्रथा चल निकली है।

युद्ध मनोवृत्ति का सूचक यह युग है। बाहर से मुसलमानों और अन्दर पारस्परिक लड़ाई झगड़े होते रहते हैं। भारत में धर्मयुद्ध होता है। स्त्रियों, बच्चों, भागे अथवा घायल सैनिकों तथा नागरिकों पर शस्त्र का प्रहार वर्ज्य है शरणार्थी की रक्षा करना परमधर्म है। रण में प्राणोत्सर्ग करना मोक्ष प्राप्ति का सुलभ साधन है। विदेशी आक्रमणों का सदैव वीरता से सामना कर योद्धा यश के भागी रहे; किंतु इस युग में पराजित हो विनष्ट हो जाने पर अनेक दोषों का भाजन बनना पड़ा — यथा युद्ध का ढंग पुराना था, नई रण पद्धति से अनभिज्ञ थे, सेना इतनी विशाल थी कि उनका संचालन उचित रूप से नहीं कर पाए, सेना की विशालता के कारण उसकी गति मंद रहती थी और शीघ्रता से आक्रमण अथवा भाग कर रक्षा न कर सके। सारी सेना युद्ध में लगा देते थे, रक्षा के लिए सुरक्षित सैन्य की व्यवस्था न थी। पैदल, अश्वारोही तथा हाथियों का मिश्रण रहता था। पैदल सेना सबसे अधिक और पीछे रहती थी जिससे किसी भी हाथी के·

बिगड़ जाने से भारी क्षति उठानी पड़ती थी। घोड़ों के नस्ल और प्रशिक्षण उत्तम नहीं थे, शस्त्रास्त्र भी पुराने ही रहे। हिन्दुओं में कुशल तीरन्दाज और नेतृत्व का अभाव रहा। हिन्दुओं में एक ही रणनेता होता था जिससे उसके मृत्यु अथवा घायल होने पर सैन्य संचालन अस्त-व्यस्त हो जाता था। राजपूत सेनापति इतने अलंकृत रहते थे कि आसानी से पहिचान लिए जाते थे और शत्रुओं द्वारा लक्ष्य भेद में आ जाने से सेना में अराजकता उत्पन्न हो जाती थी। सैनिकों का चुनाव क्षेत्र सीमित था, विदेशों की राजनीति के प्रति उदासीनता थी। दूसरी ओर मुसलमानों में एकता और धार्मिक भावना की प्रबलता थी, नई-नई रण पद्धतियों से परिचित थे। उनकी सेना कम थी जिससे उसका शीघ्र संचालन संभव था। सुरक्षित सेना रखते थे, उनकी सेना में घोड़े अच्छी नस्ल के उत्तम प्रशिक्षित तथा अधिक संख्या में होते थे, हिन्दुओं के वल्लम, बर्छे और तलवार उनके (मुसलमानों के) उत्तम तीर बाण के सम्मुख अनुपयोगी सिद्ध हुए, वे हिन्दुओं से अधिक कुशल तीरन्दाज थे, महमूद गजनवी, शहबुद्दीन गोरी, कुतुबुद्दीन ऐबक, मुहम्मद बीरख्तयार ऐसे कुशल सेनापति हिन्दुओं में न थे। ~~आदि~~।

सामाजिक स्थिति

भारतीय समाज का प्रमुख अंग वर्ण-व्यवस्था है। विवेच्य काल में इसका विकास हो चुका है। देश में चार मुख्य वर्ण और अनेक उपजातियाँ संगठित हो गयी हैं। ब्राह्मण सबसे अधिक सम्मानित हैं। प्रसिद्ध विदेशी पर्यटक ह्वेन सांग के अनुसार भारतवर्ष ब्राह्मणों का देश कहा जाता था। ये अपने सदाचार और धर्म के लिए प्रसिद्ध हैं। शिक्षा और विद्या में सबसे आगे हैं। ये शासन कार्य में प्राय: अमात्य के रूप में, भाग लेते हैं।[१] इनमे

---

(१) हिस्ट्री आव मिडिएवल इंडिया : चि० वि० वैद्य, जिल्द २, पृ० १८१.

बहुत से कवि, ज्योतिषी, दार्शनिक और दैवज्ञ राज दरबार में रहते हैं।[२] ब्राह्मण ६०० ई० से १००० ई० तक भिन्न भिन्न जातियों में बटे नहीं प्रतीत होते हैं। ११ वीं सदी के प्रसिद्ध अलबेरूनी ने चार ही वर्णों का उल्लेख किया है।[३] बारहवीं शताब्दी में दीक्षित, राउत, ठाकुर, पाठक, उपाध्याय और पटवर्द्धन आदि उपनामों का प्रयोग मिलता है।[४] बाद में क्रमश: इनकी वृद्धि होती गयी। दूसरी जाति क्षत्रियों की है। ये शताब्दियों से शासक, सेनापति और योद्धा होते आए हैं। ये पालनकर्ता, दानी और यज्ञ करने वाले के रूप में प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणों के साथ रहते रहते राजकीय क्षत्रिय वर्ग में शिक्षा का अच्छा प्रचार है। बहुत से राजागण अच्छे विद्वान् हुए हैं। भोज का विद्याप्रेम लोक प्रसिद्ध है प्रारम्भ में रामायण और महाभारत काल में, ये सूर्य और चन्द्र दो वंशों में विभक्त थे। यह वंश-भेद समय की गति के साथ बढ़ता गया। कल्हण कृत राजतरंगिणी में ३६ वंशों का उल्लेख है। १२ वीं सदी तक इसमें जाति भेद नहीं पाया जाता है।[५] इसी काल में पाए जाने वाले राजपूतों पर विद्वानों में बड़ा मतमतांतर है। टाड, क्रुक, भंडारकर और स्मिथ के अनुसार ये विदेशी अथवा अनार्य की सन्तान किन्तु वैद्य तथा ओझा के मतानुसार ये भारतीय आर्यों की सन्तान माने गए हैं। इनको विदेशी प्रमाणित करने का आधार पृथ्वीराज रासो की अग्निकुल कथा है। इसके अनुसार म्लेच्छों के रक्षार्थ वशिष्ठ द्वारा आबू पर किए गए यज्ञ से उत्पन्न प्रतिहार, चालुक्य, चाहमान और परमार योद्धाओं की सन्तान राजपूत हैं। ये अग्नि-वंशीय कहे जाते हैं। इसका अर्थ विदेशी विद्वानों ने, यह लगाया है कि इन चारों विदेशी वंशों को अग्नि द्वारा शुद्धीकरण करके

---

(२) इलियट हिस्ट्री आव इंडिया, जिल्द १, पृ० ६

(३) अल बेरुनीज इंडिया: साचू कृत अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द१, पृ० १००-१०१

भारतीय समाज में अपना दिया है। जो आगे चल कर इन जातियों में जातिगत दृष्टिकोणों से कतिपय शाखा, उपशाखा निर्मित हुई हैं। सामयिक भेदों में प्रादेशिक महत्व उनके रूप विकास का कारण रहा है इसकी भी सम्भावना की जा सकती है। तीसरा वर्ण वैश्यों का है। यह व्यापार करने में प्रसिद्ध हैं। पहिले ये खेती भी करते थे किन्तु बौद्ध और जैन मतानुसार कृषि कार्य पाप समझे जाने पर इन लोगों ने सातवीं सदी के प्रारम्भ में ही कृषि को नीच काम जानकर छोड़ दिया।[६]

चौथा वर्ण शूद्र है। सवर्णों से त्याज्य हाथों के सब काम- कृषि, दस्तकारी, कारीगरी—शूद्रों ने अपना लिया। ये किसान, लोहार, राज, रंगरेज, धोबी, तक्षक, जुलाहे और कुम्हार आदि हैं।[७] हुएनसांग और अलबेरूनी के अनुसार इन चार वर्णों के अतिरिक्त एक जाति है जो सेवा कार्य करती है। जैसे धोबी, चमार, मदारी, टोकरी और ढाल बनाने वाले, मल्लाह, धीवर जंगली पशुओं और पक्षियों का शिकार कर जीविकोपार्जन करने वाले, ये अंत्यज कहे जाते हैं। ये चारों वर्णवालों के साथ नहीं रहते। शहरों और गांवों के बाहर अलग रहते हैं। चांडाल और भृत्य अस्पृश्य हैं। चांडाल शहर में आते समय बांस की लकड़ी को जमीन पर पीटते रहते हैं।[८] व्यास,[९] स्मृति से पता चलता है कि भिन्न भिन्न

---

(४) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०हीरा०ओझा, पृ०४३

(५) वही, पृष्ठ ४६

(६) वही

(७) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०हीरा०ओझा, पृ० ४७

(८) वही, पृ० ४८

(९) नापिताऽन्वय मित्रार्द्धसीरिणो दास गोपकाः। शूद्राणामप्यमीषां तु भुक्त्वाऽन्नं नैव दुष्यन्ति। व्यास स्मृति, अध्याय ३, श्लोक ५५.

वर्णों में छुआ छूत का ध्यान नहीं है।[६] अलबेरुनी[१०] ने लिखा है कि चारों वर्ण वाले इकट्ठे रहते और एक दूसरे के हाथ का खाते पीते हैं।[१०] भेद-भाव की भावना १२ वीं सदी तक प्रचलित नहीं हुई है।[११] दिनकर[१२] के मतानुसार मुसलमानों से पराजय का कारण हिन्दुओं का जातिपांति में बंटा रहना है। शास्त्रकारों का केवल इतना ही अत्याचार नहीं है, बल्कि उन्होंने खाने-पीने चलने फिरने, मिलने जुलने और आने-जाने पर इतने अधिक प्रतिबंध लगा दिए हैं कि उनके अनुसार आदमी की जाति बात की बात में चली जाती है।[१२] इस समय, सामान्यत:, हिन्दू यही मानते हैं कि जिसके शरीर पर मुसलमान के छुए हुए पानी का छींटा पड़ जाय वह किसी प्रकार हिन्दू नहीं रह सकता।[१२] जाति पांति की रक्षा में हिन्दुओं ने अपना देश बर्बाद कर दिया। जात अगर ठीक तो सब कुछ ठीक, इस भावना के फेरे में इस तरह पड़े कि देश तो उनका गया ही, जात की केवल ठठरी ही उनके पास रह गई।[१२]

भौतिक-जीवन

भारत ने आध्यात्मिक विकास, तथा जीवन के ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं सन्यास आदि आश्रमों में तपस्या को प्रमुख माना गया है फिर भी गृहस्थाश्रम में सांसारिक सुखोपभोग को सर्वोच्च प्रमुखता दी है। सम्पन्न व्यक्ति भव्य भवनों में निवास करते हैं।

---

(१०) अलबेरुनीज इंडिया, जिल्द१, पृ० १०१

(११) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौ०ही०रा०ओझा, पृ०५०

(१२) संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० २६४, २६५तथा २६६

खाने-पीने, सोने, बैठने, अतिथियों के रहने, संगीत, वाद्य और सेवकों के लिए भिन्न भिन्न कमरे होते हैं। इनमें वायु-संचार के लिए वातायनों की अच्छी व्यवस्था है।[१३] राज महल नौ-नौ मंजिले तक के उल्लिखित मिलते हैं।[१३क] ऋतु-अनुकूल राजाओं के निवास स्थान होते हैं। सुख, भोग-विलास और ऐश्वर्य की सामग्री बड़े घरानों में अपरम्पार होती हैं।[१४] नगरों के चारों ओर ऊंची और मोटी दीवाले हैं।[१५] गांवों में आज कल की ही तरह, मिट्टी के झोपड़े होते हैं। उनके दीवाल और द्वार चित्रकारी से सुसज्जित रहते हैं।[१६]

मनोरंजन

हिन्दू समाज में त्योंहारों की बहुलता है वे समारोह के साथ इन्हें सम्पन्न करते हैं। मनोरंजन के लिए नाटक-गृह या प्रेक्षागृह, गान-भवन और चित्रशाला मिलते हैं।[१७] तोता मैना आदि पक्षियों को पालने और उनकी लड़ाई में अभिरूचि रखते हैं।[१७] बड़े बड़े मल्ल कुश्ती लड़ते हैं। शतरंज, चौपड़ और जुए का भी बहुत प्रचार है।[१७]

सवारी

क्षत्रिय लोग आखेट के प्रेमी हैं।[१७] सवारी के लिए घोड़ों, हाथियों, रथों और पालकियों का प्रयोग होता है।[१७] तन की स्वच्छता, विशेषत: स्नान, पर अधिक बल दिया गया है।[१८]

---

(१३) मध्यकालीन भारती संस्कृति, गौरी०हीरा०ओझा, पृ०५१

(१३क) द स्ट्रगल फार इम्पायर, संपा०आर०सी०मजूमदार, पृ०५८८

(१४) हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, पृ० ४६७

(१५) वही

(१६) उक्ति व्यक्ति प्रकरण , दामोदर , ३६:११, ४०:२२, ४१ : ३३

(१७) क- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०हीरा०ओझा, पृ० ५१, ५२

ख- द स्ट्रगल फार इम्पायर, संपा०आर०सी मजूमदार, पृ०४६०-४६२

पहिनावा

पहिनावे पर उतना ध्यान नहीं है।[१८] धोती और दुपट्टा बहु-प्रचलित पहिनावे हैं।[१८] रंगीन और चित्रित वस्त्र का भी प्रयोग होता है।[१८,१९] नाचने के समय लहंगे जैसा जरी के काम का वस्त्र (पेशस) पहिना जाता है। अजन्ता की गुफा के चित्रों में अंगिया भी चित्रित है। राज श्री के विवाह समारोह में रेशम, रूई, ऊन, सांप की केंचुली के समान महीन, श्वास से उड़ जाने वाला, स्पर्श से ही अनुमेय और इन्द्रधनुष के सदृश कपड़े बहुलता से प्रयुक्त मिलते हैं।[२०] लोग पगड़ी (उष्णीय) भी बांधते हैं।

बाल

बालों का श्रृंगार होता है। पुरुष भी बड़े बड़े बाल रखते हैं। स्त्रियां विभिन्न ढंग के केश-विन्यास करती हैं।

आभूषण

आभूषण बहुत जन-प्रिय है। पुरुष और स्त्री दोनों इसके प्रेमी हैं। राजा और सम्पन्न व्यक्ति अमूल्य मणियों और रत्नों के आभूषण पहनते हैं। कुंडल, हार, अंगूठी बहु प्रचलित आभूषण हैं। राजा मुकुट पहनता है। भुजबंद, कड़ा और काम वाली चूड़ियों का भी प्रचार है। नथ और बुलाक नहीं मिलते हैं। संभवत: ये मुस्लिम सभ्यता की देन हैं।[२१]

चरित्र

प्राचीन काल से ही भारतीयों का चरित्र उज्ज्वल और प्रशंसनीय रहा है। मेगस्थनीज ने भारतीयों के संबंध में लिखा है कि वे सत्य बोलते हैं, चोरी नहीं करते, वीरता में वीरता में अग्रगण्य हैं, गंभीर और अध्यवसायी हैं। ह्वेनसांग ने

---

(१८) वही, पृ० ५८६

(१९) ऋग्वेद, २:३:६, स्मिथ, मथुरा-ऐंटिक्विटीज, प्लेट १४

(२०) हर्ष चरित, पृ० २०२-२०३

(२१) चि०वी० वैद्य, हिस्ट्री आव मीडिएवल इंडिया, जिल्द २, पृष्ठ १८७-१८८

बताया है कि भारतीय सरलता और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध हैं। अल इदरिसी की दृष्टि में भारतीय न्याय परायण हैं, उससे विमुख कभी नहीं होते। उनके व्यवहार में भलाई, प्रामाणिकता और निष्कपटता विद्यमान हैं।[२२] तेरहवीं सदी का शमसुद्दीन अबु अब्दुल्ला लिखता है कि भारत के लोग धोखे और जबर्दस्ती से अलग रहते हैं। वे जीने मरने की कुछ परवाह नहीं करते।[२३] मार्कोपोलो (तेरहवीं सदी) के विचार से ब्राह्मण सत्यवादी हैं और संयमी जीवन व्यतीत करते हैं।[२४]

अंध विश्वास

लोग जादू-टोने, भूत और प्रेत आदि में विश्वास करते हैं।[२५] ताबीज और गंडा बांधना तथा शकुन का आदर करते हैं।[२६] देवीं को पशु और नर बलि से तुष्ट करते हैं।[२७] राजाओं द्वारा अपने शत्रु पर कृत्या (मारण) और मंत्रों द्वारा घावों का उपचार कराने का प्रयोग मिलता है।[२८] मार्को पोलो के अनुसार ऐसे निपुण लोग हैं जो व्यक्ति को देखकर उसके चरित्र के भेदों को बता देते हैं।[२९] जन्मकुण्डली में लोगों का विश्वास है।[२९]

---

(२२) इलियट हिस्ट्री आव इंडिया, जिल्द १, पृ० ८८

(२३) मैक्समूलर, इंडिया, पृ० २७५

(२४) मार्को पोलो (मिस बूल द्वारा सम्पादित) जिल्द २, पृ० ३५०, ३६०.

(२५) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०हीरा०ओझा, पृ०६१
ख- हर्ष चरित, पृ० १५४, निर्णय सागर संस्क०,
ग- द स्ट्रगल फार इम्पायर संपा०आर०सी० मजूमदार, पृ० ४६२-४६३

(२६) कादम्बरी, पृ० १२८

(२७) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०हीरा०ओझा, पृ० ६२

(२८) सोमेश्वर कवि के सुरथोत्सव काव्य से

(२९) द स्ट्रगल फार इम्पायर, सं० आर०सी० मजूमदार, पृ० ४६२- ४६३

कुत्ते, चीता, गीदड़ और कौवे के द्वारा यात्रारंभ का फल बताते हैं।[२६] गौ की पूजा होती है। और बैलों को मारना पाप समझा जाता है।[२६] समुद्र यात्रा वर्जित है।[२६]

स्त्रियां

समाज में स्त्रियों के पद की ऊंचाई सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का मापदंड है। भारत में स्त्रियां अर्द्धांगिनी हैं। बिना उनको कोई धार्मिक कृत्य पूर्ण नहीं होता। गृहस्थी में उनका स्थान सर्वोत्कृष्ट है। बहुत-सी स्त्रियाँ बौद्ध भिक्षुणी हैं। वे बौद्ध सिद्धान्तों से परिचित होंगी। मंडन मिश्र की प्रकांड विदुषी पत्नी ने शंकराचार्य तक को निरुत्तर कर दिया है। राजशेखर का विचार है कि, "पुरुषों की तरह स्त्रियां भी कवि हैं। संस्कार तो आत्मा में होता है, वह स्त्री और पुरुष के भेद की अपेक्षा नहीं करता।" राजाओं और मंत्रियों की पुत्रियां वेश्याएं, कौतुकियों की स्त्रियां, शास्त्रों में निष्णात बुद्धि वाली और कवियित्री देखी जाती हैं।[30] इन्दुलेखा, मारुला, मोरिका, विज्जका, शीला, सुभद्रा, पद्मश्री, मदालसा और लक्ष्मी मध्यकालीन संस्कृत कवियित्रियां हैं।[३१] भास्कराचार्य (बारहवीं सदी के अंत में) ने अपनी पुत्री लीलावती को गणित का अध्ययन करने के लिए लीलावती ग्रन्थ का निर्माण किया है। राज्यश्री को नृत्य और संगीत आदि सिखाए गए हैं। हर्ष की रत्नावली में रानी का वर्तिका (ब्रुश) से रंगीन चित्र बनाने का उल्लेख है।[३२] पर्दा प्रथा नहीं है। हूण मिहिरकुल के पकड़े जाने पर

---

(२६) देखिए पिछले पृष्ठ पर

(३०) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण)भाग २, पृष्ठ ८०-८५

(३१) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौ०ही०ओझा, पृ० ६५

(३२) रत्नावली, अंक २

बालादित्य की राजमाता उससे मिलने गई है ।[33] हर्ष की माता राज दरबारियों से, कादम्बरी में विलासवती ज्योतिषियों और पुजारियों से और राज्यश्री ह्वेनसांग से मिली हैं । तात्कालीन नाटकों में पर्दों का कोई उल्लेख नहीं है । किन्तु अन्त:पुर में सर्व साधारण का प्रवेश नहीं है । युवतियां राजा के यहां सेवाकार्य करती हैं ।[34] उनसे अतिथि-सत्कार करवाये जाने की प्रथा है ।[35] मनुस्मृति का निर्माण इस युग के पहले ही हो चुका है । उसमें आठ प्रकार के विवाह का उल्लेख है । राज घराने में बहु विवाह और स्वयंबर प्रथा पाई जाती है ।[36] बाल विवाह की प्रथा का आरंभ बारहवीं सदी के लगभग प्रारंभ हो जाता है ।[36] और मुसलमानों के आने के बाद उसका प्रचार बढ़ जाता है ।[36] स्त्रियों का पातिव्रत धर्म प्रशंसनीय है । अपने पति के शव के साथ चिता में सहर्ष जल कर सती हो जाने की प्रथा प्रचलित है ।[36] शत्रुओं से घिर जाने पर सैनिक गेरुआ वस्त्र पहिन कर रणक्षेत्र में मृत्यु का वरण करते और उनकी स्त्रियां प्रसन्नतापूर्वक अग्नि में बैठकर सतीत्व के रक्षार्थ जौहर कर लेती हैं । मनुस्मृति में इसका निर्देश हो चुका है कि " जिस घर में स्त्रियों का सम्मान किया जाता है वहीं देवता निवास करते हैं ।" (यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्रदेवता)

दास

दास प्रथा पहिले से ही चली आ रही है । याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विज्ञानेश्वर (बारहवीं शताब्दी) ने पन्द्रह प्रकार के दासों का उल्लेख किया है ।[38] यहां की दास प्रथा अन्य देशों

---

(३३) वाटर्स आन युवनच्वांग, जिल्द १, पृ० २८८-२८६

(३४) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०हीरा०ओझा, पृ० ६६

(३५) हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, बैनीप्रसाद, पृ० ५६१

(३६) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति , गौरी०हीरा०ओझा, पृ०६७

(३७) क- वही, पृ० ६८

ख- अलबेरूनीज इंडिया, जिल्द १, पृ० १५५

(३८) गृह जातस्तथा क्रीतो लब्धो दायादुपागत: ।

की भांति कलुषित, घृणित और निन्दनीय नहीं है।[३६] ये दास घरों में परिवार के एक सदस्य की तरह रहते हैं।[३६] त्योहार आदि शुभ अवसरों पर इन पर विशेष कृपा होती है।[३६] विपत्ति में स्वामी का प्राणरक्षक दास मुक्त कर दिया जाता है।[४०] नारद स्मृति में तो यहां तक लिखा है कि स्वामी के प्राण रक्षक दास को पुत्र की तरह सम्पत्ति का कुछ अंश भी दिया जाय। अनाकाल भृत दो गौवें देकर युद्ध प्राप्त, स्वयंसंप्रतिपन्न और पणोर्जित कोई उत्तम सेवा कर या अपने स्थान पर किसी को देकर मुक्त हो सकता है।[४१] दास के साथ एक विश्वासपात्र सेवक की तरह व्यवहार किया जाता है। यही कारण है कि चीनी और अरब पर्यटकों को हमारे यहां के सेवक और दासों में अन्तर नहीं समझ पड़ा और उन्होंने दास प्रथा का उल्लेख नहीं किया है किन्तु कुछ इतिहासकारों की राय में मुसलमानों की विजय में तुर्कों द्वारा अपने दासों के प्रति हिन्दुओं से अधिक सद्व्यवहार का भी श्रेय मिलता है। उनके यहां योग्य और प्रतिभावान दासों की बड़ी सहायता की जाती है उनके लिए उन्नति का मार्ग खुला हुआ है।

(३८ का शेष) अनाकाल भृतस्तद्वत् दाहित: स्वामिना च य: ।।
मोक्षितो महतश्चणायुद्ध प्राप्त: पणोर्जित: ।
तवाहिमत्युप गत: प्रवज्यावसित: कृत: ।
भक्त दासश्च विज्ञेयस्तथैव बडवाहृत: ।
विक्रेता चात्मन: शास्त्रे दासा: पंच दशस्मृता: ।
मिताक्षरा संहिता, पृ० २४६

(३६) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०हीरा०,ओझा, पृ० ६०

(४०) बलाद्दासी कृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते । .... । मिता०,पृ०२४६

(४१) मिताक्षरा संहिता, पृ० २४६-२५०

(४२) भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास: श्रीनेत्र पाण्डेय, मुसलमानों के विजय और राजपूतों के पराजय के कारण, संदर्भ में (६)

वे सर्वोच्च शासक तक बन सकते हैं। वास्तव में उत्तरी भारत के विजय का बहुत बड़ा श्रेय कुतुबुद्दीन ऐबक और मुहम्मद बख्तियार आदि तुर्की गुलामों को ही है।[४२]

धार्मिक स्थिति

ब्राह्मण धर्म का पुनर्निर्माण हो चुका है। बौद्ध और जैन धर्म अवनति पर हैं। ब्राह्मण धर्म सम्यक विचारों का केन्द्र दक्षिण भारत है और जैन धर्म का गुजरात। बौद्ध धर्म भारत से एक तरह उठ-सा गया। उसके बहुत से सिद्धान्त और परम्पराएं मूर्तिपूजा, अहिंसा, मठ, तन्त्र—ब्राह्मण धर्म ने अंगीकार कर लिया है। अवशेष को मुसलमानों के आक्रमण ने उनके केन्द्र तथा मठों को तोड़ कर समाप्त कर दिया है। इस्लाम धर्म का भारत में आगमन हो चुका है, किंतु इसका पूर्ण प्रभाव तेरहवीं सदी के अंतिम काल में परिलक्षित है।[४३]

बौद्ध धर्म

देश, इस समय, मुख्यत: चार धर्मों— बौद्ध, जैन, ब्राह्मण और इस्लाम— का क्रिया-स्थल है। बौद्ध धर्म विकृत होकर वज्रयान सम्प्रदाय के रूप में देश के पूर्वी भागों में फैल चुका था।[४४] इस पर तांत्रिक प्रभाव है।[४४] इनमें वामाचार अत्यधिक है।[४४] इसी में 'महासुखवाद' का प्रवर्तन हुआ है।[४४] रहस्य या गुह्य की प्रवृत्ति बढ़ी है।[४४] धर्म पाखण्डपूर्ण हो गया।[४४] इसकी एक शाखा गोरख नाथ का नाथ पंथ है।[४४] इसका प्रचार राजपूताने और पंजाब में हुआ है।[४४] इसने वज्रयानियों के अश्लील और वीभत्स विधानों से अपने को अलग रखा है।[४४] सिद्ध और योगियों

---

(४३) द स्ट्रगल फार इम्पायर, संपा० आर०सी० मजूमदार, पृ० ३६८

(४४) हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७, ११, १२, १३, १८

में तांत्रिक विधान, योग साधना, आत्मनिग्रह, श्वास निरोध, भीतरी चक्रों और नाड़ियों की स्थिति और अन्तर्मुख साधना का स्थान महत्वपूर्ण है।[४४] चौरासी सिद्ध, इसी में हुए हैं।[४४]

जैन धर्म

जैन धर्म में भी बहुसंख्यक सम्प्रदाय है।[४५] जैसे श्वेत पट, पाण्डुभिक्षु, क्षपणक और निर्ग्रन्थ आदि। ह्वेनसांग ने जिन बाल उखाड़ने वाले सन्यासियों का उल्लेख किया है वे संभवत: जैन भिक्षु ही थे।[४५] इसमे बड़े शिष्य भिक्षु और छोटे शिष्य श्रमण कहलाते हैं।[४५] वे नंगे रहते हैं।[४५]

ब्राह्मण धर्म

इस समय ब्राह्मण धर्म अनेकानेक सम्प्रदायों में विभक्त है,[४६] जैसे मस्करी, भागवत, वर्णी, कापिल, लोकायतिक, काणाद, औपनिषदिक, ऐश्वर कारणिक, धर्म शास्त्री, पौराणिक, शाब्दिक, पांचरात्रिक, पाशुपत, पाराशरी और शैव आदि।[४६] इनमें शैव सम्प्रदाय बहुत लोकप्रिय है। इसी के साथ साथ शाक्त पूजा प्रचलित है। इसमें शिव की पत्नी, शक्ति जो दुर्गा और चण्डिका आदि नामों से भी प्रख्यात हैं, की पूजा होती है। इसमें पशु, बलि और कभी कभी नर बलि तथा मदिरा का प्रयोग होता है। वैष्णवधर्म जिसमें विष्णु की पूजा का विधान है, की भी बहुत प्रतिष्ठा है इसमें भागवत, पंच रात्रिक और स्मार्त आदि सम्प्रदाय हैं। इनके चौबीस अवतार हैं, उसमें कृष्ण की पूजा बहु प्रचलित है। इस समय सूर्य पूजा का भी प्रचार है। इसे सौर पूजा और आदित्य पूजा भी कहते हैं ब्राह्मण धर्म में, वेद प्रमाणभूत ग्रन्थ अनेक देवी-देवताओं की पूजा, मंदिर, मूर्ति, व्रत, धार्मिक त्योहार, तीर्थ, गंगा स्नान और दान आदि प्रमुख विशेषताएं हैं।

---

(४५) प्राचीन भारत का इतिहास, विमल चन्द्र पाण्डेय, पृ० ६२

(४६) हर्ष चरित और कादम्बरी।

(४७) प्राचीन भारत का इतिहास, ले० विमलचन्द्र पाण्डेय, पृ० ८,६

(४८) वही, हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५६

बौद्ध, जैन, और ब्राह्मण धर्म सभी में अनेकानेक सम्प्रदाय हो गए हैं।[४७] प्रत्येक सम्प्रदाय का अपना दर्शन, अपना कर्मकाण्ड, अपनी पूजा विधि, अपने मठ-विहार-मंदिर, अपना साहित्य और अपनी जीवन प्रणाली है। बाह्य कर्मकाण्डों के कारण धर्म के वास्तविक अर्थ को भूल जा रही है। विशुद्धता और नैतिकता किसी भी धर्म में नहीं है। लोग अनेक अंधविश्वासों, निरर्थक कर्मकाण्डों और गर्हित साधनाओं में निमग्न हैं। धार्मिक असहिष्णुता है। धार्मिक जीवन दूषित है।[४७] सच्चे धर्म भाव का ह्रास है।[४८] धार्मिक-क्रान्ति एवं सुधार आंदोलन की आवश्यकता है।[४८] "संस्कृति के चार अध्याय"[४९] में रामधारी सिंह दिनकर का विचार है इस समय धार्मिकता की अति ने देश का विनाश किया, इस अनुमान से भागा नहीं जा सकता। और धार्मिकता भी गलत ढंग की है जिसका उद्देश्य परम सत्ता की खोज नहीं, प्रत्युत, यह विचार है कि किसका छुआ पानी पीना चाहिए और किसका नहीं, किसका छुआ हुआ खाना खाना चाहिए और किसका नहीं, किसके स्पर्श से अशुद्ध होने पर आदमी स्नान से पवित्र हो जाता है और किसके स्पर्श से हड्डी तक अपवित्र हो जाती है।[४९] ब्राह्मण और बौद्धों का सम्बन्ध सांप-नेवले का-सा है।[४९] उस समय लोगों का विचार है कि मरते हुए बौद्ध के मुंह में पानी डाल देने से नर्क की प्राप्ति होती है। बौद्ध प्रदेश अंग-बंग, कलिंग, सौराष्ट्र और मगध जाना वर्जित था।[४९] श्रवण और ब्राह्मण एक दूसरे को कटवाने के फेरे में हैं।[४९]

---

(४८) देखिए पिछले पृष्ठपर

(४९) पृष्ठ २६०, २६६

इस्लाम

आठवीं सदी के पहिले भी यद्यपि मुसलमानों की चढ़ाइयाँ हुई हैं, किन्तु उसका स्थायित्व नहीं था। सिंध पर मुसलमानों के अधिकार होने के साथ वहाँ इस्लाम का प्रवेश हुआ। ग्यारहवीं बारहवीं सदी में मुसलमान विजेताओं की तलवार ने इस्लाम धर्म फैलाने का काम किया। ये अपने साथ नवीन भाषा, नवीन धर्म और नवीन सभ्यता भारत में लाए।[५०] इतिहास से इस बात का पता लगता है कि महमूद गजनवी के भी कुछ पहले सिंध और मुलतान में कुछ मुसलमान बस गए हैं जिनमें कुछ सूफी हैं।[५१] सूफी फकीरों और पीरों के द्वारा इस्लाम को जनप्रिय बनाने का उद्योग भारत में बहुत पहले से चलता रहा।[५१]

इस्लाम
आर्थिक दशा
कृषि
सामंत-प्रथा
व्यापारिक केन्द्र

भारत मुख्यत: कृषि प्रधान देश है। किसान, शासन को भूमिकर देता है और भूमि के पूर्ण स्वामित्व का उपयोग करता है। किन्तु इस समय सामन्त प्रथा के आविर्भाव से राजा और किसान के मध्य में सामंत प्रविष्ट हो गए हैं।[५२] किंतु इसके देश की आर्थिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। कृषि के पश्चात् व्यापार की मुख्यता है। भारत के बड़े बड़े नगर व्यापार के केन्द्र हैं, यथा मदुरा, वंजि (वंचि), पकर (कावेरीप्पुम्पट्टिनम्) वातापी (बीजापुर जिले में), ताम्रलिप्ति (बंगाल का बंदरगाह तमलक), कन्नौज, उज्जयिनी, भृगुकच्छ (भड़ौंच), पाटिलपुत्र।[५२] व्यापार जल और स्थल मार्ग से होता है। बड़े बड़े जहाजी बेड़े हैं। अरब, फिनीशिया फारस, मिश्र, ग्रीस, रोम, चम्पा, जावा और सुमात्रा आदि देशों के साथ भारत का व्यापार होता है।[५३] विदेश यात्रा निषेध पीछे

---

(५०) चि०वि०वैद्य, हिस्ट्री आव मीडिएवल इंडिया, जिल्द ३, पृ० ४२६, ४३०

(५१) हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १४, १५,(सं१२)

(५२) विनयकुमार सरकार : दी पोलिटिकल इन्स्टीट्यूशन एण्ड थ्यूरीज आव दी हिन्दूज , पृ० ६, ६५

से हुआ ।[५३] भारतीय पोतकला में बहुत प्रवीण हैं । देश में, व्यापार के लिए अनेक और बड़ी बड़ी सड़कें हैं, यथा कोरोमंडल तट (पूर्वी) से कुमारी अन्तरीप तक (१२०० मील लम्बी, निर्माण काल १०७०-१११८ ई०), पाटलिपुत्र से अफगानिस्तान तक (११०० मील लम्बी) साधारण सड़कें तो अत्यधिक स्थलों पर बनी हुई हैं ।[५४] राइज डेविड्ज का कहना है कि, " स्वदेश और विदेश में भारतीय व्यापार दोनों मार्गों से होता है । ५०० बैलगाड़ियों के कारवान का वर्णन मिलता है ।"[५५]

व्यापारिक वस्तुएं

यहां से मुख्यत: रेशम, छींट, मलमल आदि विभिन्न प्रकार के वस्त्र, मणि मोती, हीरे, मसाले, मोरपंख और हाथी दांत आदि विदेशों के लिए निर्यात विस्तुएं हैं । प्लिनी का कहना है कि प्रति वर्ष रोमन साम्राज्य से एककरोड़ रुपए[५६] और मात्र रोम से चालीस लाख[५७] रुपए भारत में आते हैं ।

व्यवसाय

भारत का व्यवसाय और उद्योग धंधा भी विकसित है । विभिन्न प्रकार के वस्त्रों के व्यवसाय के अतिरिक्त वनस्पतियों से रंग निकालकर रंगने की कला उन्नत है । यहां के लोह-व्यवसाय का उत्कर्ष नमूना कुतुबमीनार के समीप लोहस्तंभ का है । कृषि संबंधी लोहे के औजार और युद्ध के शस्त्रास्त्र यहां प्राचीन काल से बनते आ रहे हैं । तांबा के विभिन्न गृहस्थोपयोगीपात्र बनते हैं । रत्न

---

(५३) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०ही०रा०ओझा, पृ०१६६
(५४) दी पॉलिटिकल इन्स्टीट्यूशन एंड थ्यूरीज आव दी हिन्दूज, विनयकुमार सरका, पृ० १०२-१०३
(५५) दी जरनल आव दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, १६०१ ई०
(५६) प्लिनी, नेचुरल हिस्ट्री ।
(५७) एंसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, जिल्द ११, पृ० ४६०
(५८) स्टैबरिनस की यात्रा, पृ० ४१२

काट कर सोने में मढ़े जाते हैं। रत्नों और मूल्यवान स्फटिकों की मूर्तियां बनती हैं। सुवर्ण, पीतल, अथवा सर्व धातु की बनी मूर्तियां मंदिरों में बहुत स्थापित हैं। खिड़कियों और दरवाजों में कांच लगते हैं। कांच का दर्पण बनता है। हाथी दांत और शंख की चूड़ियां और अनेक उत्तम पदार्थ बनते हैं। स्टेवनिरस ने लिखा है कि भारतीय शिल्पों के छोटे और सूक्ष्म औजारों को देखकर यूरोपियन उनकी सफाई और कुशलता पर आश्चर्यान्वित हो जाते हैं।[५८]

सिक्का

वस्तुओं का क्रय-विक्रय सिक्कों द्वारा होता है। प्रत्येक राजा अपने नाम के सिक्के बनवाता है। ये सिक्के बहुधा सोने, चांदी और तांबे के बनते हैं। सबसे प्राचीन लेख वाले सिक्के ईसवी सन् पूर्व की तीसरी शताब्दी के मिलते हैं, जो मालव-जाति के हैं।[५६] गुप्तकाल में राजाओं ने सिक्कों पर विशेष ध्यान दिया है। सातवीं सदी के आसपास से हमारे राजाओं का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ, जिससे राजा हर्ष; गुहिल वंशी, प्रतिहार वंशी, तंवरवंशी, गाहड़वालों, नागवंशी (नरवरके), राष्ट्रकूटों, सोलंकियों यादवों, यौधेय और चौहान आदि के हिन्दू राजाओं के नाम वाले सोने, चांदी या तांबे के अनेक सिक्के मिले हैं।[५६] अजमेर के चौहान राजा अजयदेव की रानी सोमलदेवी (सोमलेखा) के नाम का सिक्का मिलता है।[५६] प्रारंभ में मुसलमानों ने अजमेर का राज्य छीन कर यहां के प्रचलित हिन्दू सिक्कों की नकल की, परन्तु पीछे से उन्होंने अपने स्वतंत्र सिक्के बनाना आरंभ किया है।[५६]

भारत कृषि व्यापार, व्यवसाय और अमूल्य खानों के कारण बहुत समृद्ध है। हीरे, नीलम, मोती और पन्ने पर्याप्त हैं। प्लिनी ने भारतवर्ष को हीरे, मोती आदि अमूल्य पत्थरों

---

(५६) मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरी०ही०रा०ओझा, पृ० १७१

की जननी और मणियों का उत्पादक कहा है।[६०] सोमनाथ के मंदिर में रत्नजटित मूर्तियों के पास २०० मन सोने का सांकल है, जिसके साथ घंटे बंधे हुए हैं। मंदिरों के कलश और स्तंभ सोने, चांदी अथवा रत्नों से जटित हैं।[६०]

कला

प्रधान कला-कृति गुफा, स्तंभ, मंदिर और प्रतिमा हैं। इनका विकास धार्मिक भावों से हुआ है। सांची और भरहुत के स्तूप (ई०पू० दूसरी या तीसरी सदी), दक्षिण की अजन्ता

स्तूप

इलोरा, कार्ली, भाजा, बेडसा, राजपूताने का कोलवी, मध्यभारत की धमनार, बाघ आदि गुफाएं, आर्य शैली के भुवनेश्वर (उड़ीसा) नागद और आहोली (उदयपुर राज्य) चित्तौड़गढ़, ग्वालियर, चन्द्रावती (झालावाड़ राज्य में) ओसियां (जोधपुर राज्य में), चन्द्रावती और वर्माण (दोनों सिरोही राज्य में), खजुराहो (मध्यभारत में), कनारक, लिंगराज (उड़ीसा में) जैन शैली के आबू, खजुराहो, नागदा, मुक्तगिरि, पालीताना, द्रविड़ शैली के मामल्लपुर, कांजीवरम्, इलोरा, तंजोर, वेलुर, बादामी, श्रीरंगम, और श्रवण बेल गोला के मंदिर, दिल्ली, प्रयाग, सारनाथ बेस नगर, महरौली के स्तंभ आदि भारतीय कला के प्रमुख उदाहरण हैं। इस काल के सहस्रों हिन्दू और जैन देव मूर्तियां कलकत्ता, लखनऊ पेशावर, अजमेर, मद्रास, बम्बई और प्रयाग के संग्रहालयों में संगृहीत हैं। परन्तु यह निश्चित है कि बारहवीं सदी से इन कलाओं का ह्रास होता गया है। इस काल में संगीत की पर्याप्त उन्नति हुई है। नृत्य का सामाजिक जीवन में यह महत्वपूर्ण भाग है। स्त्रियों को नृत्य की विशेष शिक्षा दी जाती है। राज सभा में नृत्य और गान अत्यावश्यक है। सर विलियम हंटर का विचार है कि संगीत - लिपि भारत से ग्यारहवीं सदी में यूरोप पहुंचा।[६१] हेनी विल्सन लिखती है कि हिन्दुओं को विश्व के प्राचीनतम अपने संगीत-लिपि पर गर्व होना चाहिए।[६२]

गुफाएं

मूर्तियां

नृत्य-गान

---

(६०) वही, पृ० १७३, (६१) इंडियन गैजेटियर, इंडिया, विलि०, पृ० २२१
(६२) शार्ट अकाउंट आव दि हिन्दू सिस्टम आव म्यूजिक, पृ० ५

अध्याय २

पृथ्वीराज रासो में भूगोल

(२०३ शब्द ५६२ पर्याय सहित भूगोल के संदर्भ में प्रयुक्त हैं)

क— प्राकृतिक दशा और प्रसिद्ध स्थान

ख— जलवायु और उपज

ग— जीव-जन्तु

घ— पक्षी

ह०— खगोल

उपसंहार

(क) प्राकृतिक दशा और प्रसिद्ध स्थान

(७० शब्द विभिन्न १६५ पर्याय सहित प्राकृतिक दशा और प्रसिद्ध स्थान के संदर्भ में प्रयुक्त हैं।)

अनुच्छेद	— संदर्भ
१ —	भूगोल और संस्कृति का सम्बन्ध
२ —	`पृथ्वीराज रासो` में उल्लिखित `भुवगोल` का अर्थ
३ —	पृथ्वी के धरनि खंड (भरत खंड) की उत्तरी पश्चिमी सीमा—खुरासान, पारस, अरब, कंधार, गजनी, बल्ख
४ —	सुमेर पर्वत, काश्मीर, मुरधर (मरुधर= राजस्थान)
५ —	पश्चिमी सीमा— गुर्जर, कच्छ, गुंड
६ —	दिल्ली, खांडव वन, कन्नौज, प्रयाग, गंगा-यमुना
७ —	पूर्वी सीमा— बिहार का तिरहुति, करनाट
८ —	पूर्वी-दक्षिणी सीमा— उड़ीसा, तिलिंग, गोलकुंडा
९ —	दक्षिणी सीमा— सेतुबंध, लंका
१० —	अन्य सभी स्थान, वन, दावाग्नि, गिरिकंन, नदी-तट, पृथ्वी को धारण करने वाले दिग्पाल, वाराह, शेषनाग, भूकंप, स्थल, गर्त, पंक, धूल, समुद्र, महोदधि का उल्लेख मात्र
११ —	उपसंहार

भूगोल और संस्कृति

भवन में प्रच्छन्न नींव की तरह देश का भौगोलिक-पर्यावरण उसकी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। संस्कृति के स्वरूप निर्माण में इसका अप्रतिम योगदान है।

पृथ्वीराज रासो में उल्लिखित भुवगोल का अर्थ

`पृथ्वीराज रासो` में प्रयुक्त `भुवगोल`[१] शब्द आज के भूगोल से भिन्न अर्थ का सूचक है। भूगोल में नभ, जल और स्थल तीनों की जानकारी सम्मिलित है, किन्तु `भुवगोल` में भू-वृत्त की ही प्रधानता है।-जयचन्द ने अश्व-मेध यज्ञ करने के विचार से लिखित `भुवगोल` को हेला पूर्वक देखा।[१]

आज के `कुमारि हिम गिरि अटक-कटक लौं` की भाँति अपने देश के चतुर्दिक दिशाओं का मानचित्र प्रत्येक युग के कवियों की रचनाओं में मिलता है। बाण की दृष्टि का भू खण्ड, हर्ष की दिग्विजय-प्रतिज्ञा के संदर्भ में, पूर्व में उदयाचल, दक्षिण में त्रिकूट पर्वत, पश्चिम में अस्तगिरि और उत्तर में यक्षों के निवास स्थान गन्ध मादन (बदरीनाथ के समीप हिमालय की एक चोटी), इन चार बिन्दुओं के रूप में समकालीन पृथ्वी की दिक् सीमा के रूप में उल्लिखित हुआ है। दसवीं सदी के राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द राज के देवला ताम्रपत्र में भी (८१६ ई० में) दक्षिण के सेतु, उत्तर के तुषारादि, एवं पूर्व पश्चिम के समुद्रों की सीमाओं की अवधि के बीच में `एकातपत्रीकृता जगती` की कल्पना की गई है। इस सम्बन्ध के सूचक कतिपय अन्य सूत्र भी मिलते हैं " यथा आत्रिकूटं हिमाद्रचनां योजने: शत पंचभि:। पूर्वापरौ तोयनिधि विन्ध्यदंडश्च भारते।। (अपराजित पृच्छा ३८:१६), जायसी ने उत्तर में

---

(१) भुवगोल लिखित दिग्विजय सधीर। २:१:६

हिमालय, दक्षिण में सेतुबन्ध, पूरब में गौड़ बंगाल और पश्चिम में गाज़ना या गजनी के रूप में भारत खंड की कल्पना की है (हेम सेत औ गौर गाजना)[१क]

धरनि खण्ड की उत्तरी-पश्चिमी सीमा

प्रस्तुत काव्य में पृथ्वी[१ख] के धरनि-खंड[२] (भरत खंड[३]) की उत्तरी पश्चिमी सीमा खुरासान[४] (ईरान) पारस[५] (ईराक) और अरब[६] देश[७] है। खुरासान के अमीर बंदा को जयचंद ने बंदी किया था[४]। पारस के लोग उसी के द्वारा परिस्थापित[५] थे। उसकी सेना में अरब देश के लाखों घोड़े मौजूद थे।

(१क) पद्मावत : मू०सं०, टीका०,पृ० ५२५

(१ख) इलि १२:४७:१, कु ७:१२:१२, धर २:२:१, २:२८:२, ८:३:२, धरि २:१:२, धरनि ३:११:४, धरीण ५:३७:२, प्रथमी ४:१०:१४, पृथिमी २:३:३६, पुहवि २:३:२६, पुहुमी २:३:३०, भूतल १०:११:४४ भूमि २:३:८, मही २:२:१, ६:२:२, रजोद ७:१२:५, रसा १:२:३, वसुंधरा ६:११:३, क्षिति २:१७, खिति ४:११:८, खिति ६:५:२३, क्षितया ३:२:३ , क्षिति २:१७, खिति ४:११:८, क्षिति ६:५:२३, क्षितया ३:२:३

२. धम्म दिगपाल धर धरनि खंड। ५:१३:२

३. डा० माताप्रसाद गुप्त की पृथ्वीराज रासउ की टीका पृ०११४ (भारत खंड)। 'भारत खंड' हमारे देश की स्वदेशी संज्ञा है। विदेशी नाम 'हिन्दुस्तान' तथा 'इंडिया' है। यह नाम भरत-जन निवास-स्थान के कारण, अथवा भरत संज्ञक सांस्कृतिक अग्नि जहां जहां फैली वह, 'भरत खण्ड' हुआ।

४. बंधि खुरासान किय मीर बंदा। ५:१३:३

५. पारसी पालष्षी। पंग पारठ्ठ थी। ७:१५:१३+१४, १२:१३:५

६. आरबी देसावरी लोह लक्खी। ६:५:२१

७. देस ५:१३:११, ७:१०:२२, देसि २:७:५, देसावरि (और दूसरे देश) ६:५:२१, परदेस २:५:४४,पायस (प्रदेश) ७:१२:२५

अफगानिस्तान के प्रसिद्ध नगर कंधार[८] के बहुत से सैनिक जयचन्द के सेना में थे जिनको कन्नौज के युद्ध में पृथ्वीराज ने जावला तथा जालूह नामक सामंतों ने मार गिराया था। वहीं के दूसरे प्रसिद्ध नगर गजनी के शूर शाह शहाबुद्दीन की सेवा में रहने वाले निसुरत खां को जयचंद ने बंदी किया था।[९] पृथ्वीराज ने गजनी देश में विक्षोभ जुटा दिया था।[१०] अंत में गजनी का शाह (शहाबुद्दीन) चहुआन नरेन्द्र (पृथ्वीराज) को पकड़ कर घर ले गया।[११] वंक्षु (ऑक्सस) नदी के दक्षिण-पश्चिम स्थित वाल्हीक नामक स्थान जिसे प्राचीन काल में बैक्ट्रिया और अब बल्ख[१२] कहते हैं,[१३] के निवासी — म्लेच्छ[१४]

---

(८) परउ जावलउ जालु सामंत भारे। जिने पारिया पंग कंधार सारे।।
७:३१:५१६

(९) गज्जिनी सूर साहाब साही। सेवते बंधि निसिरुत्ति पाही।
५:१३:१६। २०। अफगानिस्तान का प्राचीन प्रसिद्ध नगर, अक्षां० ३३ ' ३४ उत्तर तथा देशा० ६८ ' १८ पूर्व में स्थित काबुल से ४२।। मील दूर समुद्र तट से ५१५० हाथ ऊंचे है। शहर चौकोर है। इसमें एक दुर्ग १।। कोस तक चहारदिवारी, मिट्टी के १।। हजार घर, दोनों तरफ सुलतान महमूद के ईंटे की दो मीनारें हैं। आदिवासियों में अफगान हजारे और कुछ हिन्दू दुकानदार हैं। बहुतों के मत हिन्दू राजाओं ने यह नगर बसाया था। नं०न०वसु का हि०वि०कोष।

(१०) दूत कथन पृथ्वीराज से :— गज्जने देसि विच्छोहि जोरी।
२:७:५

(११) गहि चहुआनं नरिंद गयउ — गज्जने साहि घर। १२:१:१, गजनी में कोई आकर्षण और सज्जा नहीं है। शाह महमूद का कब्र गजनी से ६ कि०मी० दूर है। इस पर बनी इमारत को देखने से वह डेढ़ सौ वर्ष से अधिक पुरानी नहीं लगती। पुरानी और नई गजनी के बीच शाह महमूद के विजय स्मृति में बनी दो विजय मीनारे हैं जिनका निर्माण पुरातत्व विशेषज्ञों के अनुसार ११ वीं सदी की नहीं है। अब उसे एक गांव या अधिक से अधिक एक कस्बा कहा जा सकता है।

जयचंद द्वारा परिस्थापित[१५] हो उसकी सेना में पारसियों सहित साठ हजार की संख्या में विद्यमान थे।[१६]

सुमेरु पर्वत
काश्मीर-मुरुधर

वंक्षु (ओक्सस) नदी के पेटे में उत्तर की ओर कम्बोज महा जनपद के बीचों बीच सुमेरु[१७] पर्वत[१८] है[१९] जिसके लिए कवि कल्पना है कि सरस्वती के गले के मुक्तमाल को मानो सुमेरु पर्वत ने गंगा के रूप में प्राप्त कर लिया है[२०] अथवा कन्नोज युद्ध में जयचंद की स सेनाएं काली रात्रि में ऐसे गमन कर रही हैं जैसे भानु सुमेरु की भांवरे

है। साप्ता० हिन्दुस्तान, लेखक कर्नल नरेन्द्र पाल सिंह, अनु० त्रिलोकी दीप।

(१२) पालथी ७:१५:१३। टीका में पृ० १८६- वे बल्ख के होते हैं। बल्ख का शासनकर्ता वंशे बरमके। नवविहार का श्रेष्ठ महाधीश श्री पी०एन० ओक सा०भारत ११, ४, ६५

(१३) प्राचीन भारतीय भूगोल ले०वा०श०अग्रवाल (कल्पना` जून १९५५

(१४) मेछ ७:१५:२

(१५) पंग पारठ्ठ थी। ७:१५:१४

(१६) सठ्ठि हजार थी। ७:१५:१७

(१७) सुमेर गंग पत्यो। ३:१७:२०, जानु भांवरि भानु सुमेर करइ ८:६:१४

(१८) गिर ७:५:३, गिरि ४:११:४, पब्बइ ६:४:२, पब्बय ६:१४:२ पव्वत ७:६:१

(१९) मेरु पर्वत की स्थिति के सम्बन्ध में देखिए वा०श०अग्र० का लेख प्राचीन भारतीय भूगोल ` कल्पना` जून १९५५
मेरु और सुमेरु एक ही है। मत्स्य पुराण, अध्याय ११३

(२०) ऊपर ३:१७:२० (१७वां)

(२१) ऊपर ८:६:१४ (१८ वां)

भर रहा हो ।[२१] इसके पूर्व काश्मीर है जहां का केशर बहुत प्रसिद्ध है ।[२२] तदुपरान्त सिन्धु[२४] प्रदेश[२५] पड़ता है जहां सिंधु[२६] नदी[२७] और लाहौर[२८] नगर हैं । मुरधर[२९] (मरुधरा-राजस्थान) के अन्तर्गत उत्तर - पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर क्रमशः जांगल[३०] (उत्तर पूर्वी राजस्थान)[३१] सांभर[३२] (मध्य राजस्थान)[३३], नागवर (नागौर),[३४] रणथंभ,[३५]

---

(२१) देखिए पिछले पृष्ठ पर

(२२) कसि कासमीर सुरंगं । विपरीत रंभ ति जंघनं । १०:११:६१ १०
(काश्मीर (की केशर) के सुंदर रंग को खींचकर (उनसे रंगे हुए) उलटे (रक्खे हुए) कदली के सदृश्य संयोगिता के जंघे हैं ।

(२३) सलिता जन सत समुद्द लियं । दुहु राय महा भर यं मिलियै ।
७:४:११२

× सप्त-सिंधु पंजाब ही है, इसके लिए देखिए रामचरण विद्यार्थी का हमारा इतिहास पाठ १—यह ऋग्वेदीय नाम है । महाभारत में पंजाब का प्राचीन नाम बाह्लीक है (देखिए कल्पना जून, ५५) सातों नदियों का नाम ऋग्वेद में सिंधु, वितस्ता, असिक्नी, परुष्णी, वियाश, शुतुन्द्रि और सरस्वती (अब सूख गई है) हैं ।

(२४) सिंधु सा बंधु बधे धुरंगा । (सिंधु देश के धुरंग हाथी बंधे थे)
७:१०:६६ , गुर्जर (दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान) के पश्चिम रा० च० विद्यार्थी का हमारा इतिहास, पृ० १०६, ११५, किंतु वा०श० अग्रवाल के अनुसार सिंधु और वितस्ता (झेलम) के बीच का भाग (देखिए कल्पना १९५५ पृ०२४

सिंधु नद के पूर्व में सिंध सागर दुआब का पुराना नाम सिंधु था सिंधु में उत्पन्न सिंधुक कहलाता था । (सिन्धवक- राम्यां कन् , ४:३:३२) सिंधु में जिसके पूर्वज रहते थे अर्थात् जिसका विकास सिंधु जनपद से था, उसकी संज्ञा सैंधव होती थी । (सिंधु तक्षशिला दिभ्यो राजौ, ४:३:९२)।

(रणा थंभोर), अजमेरि[३६] (अजमेर) जालौर[३७] और अब्बु (आबुल) समाविष्ट थे ।

(२४ का शेष) इसके दो भाग थे सक्तु सिंधु और पान सिंधु । ये दोनों नाम भोजन की स्थानीय आदतों को लेकर लोक में चालू हुए थे । जहां के लोग सत्तू खाने के अभ्यासी थे वह पान सिंधु कहलाने लगा (सक्तुप्रधाना: सिंधव: सक्तु सिंधव, पान प्रधाना: सिंधव पान सिंधव :) मालुम होता है ये नाम उत्तरी और दक्षिणी सिंधु जनपद के लिए प्रयुक्त होते । उत्तरी सिंध दुआब में जिला डेरा इस्माइल खां की तरफ आज भी सत्तू वहां का जातीय भोजन है । स्त्रियां सत्तू का सौगात भेजती हैं और यात्रा में यात्री सत्तू साथ बांध कर चलते हैं । दूसरी ओर महाभारत में राजा जयद्रथ को क्षीरान्नभोजी कहा गया है (द्रोण पर्व ७६:१८) । जयद्रथ सौ वीर (आधुनिक सिंध का उत्तरी भाग) और उसके ऊपर दक्षिण सिंधु जनपद का राजा था । क्षीर योजन दक्षिण सिंधु का विशेषता समझा जाता था । पान देशे सूत्र अष्टाध्यायी (८:४:६) और चन्द्र व्याकरण (६:४:१०६) दोनों में है । इसका उदाहरण देते हुए चान्द्रवृत्ति में कहा है कि उशीनर के लोगों में दूध पीने का आम रिवाज था । चनाब के पश्चिम में सिंधु जनपद और पूरब में उशीनर जनपद (झंग मघियाना) था । वर्तमान मिंटगुमरी से लेया देराजक का कुल प्रदेश गायों के लिए प्रसिद्ध था । मिंट गुमरी की साहिवाल गाएं आज भी प्रसिद्ध हैं । क्षीरपान वहां के योजन की विशेषता है और पहले भी थी । चरक से भी इसका समर्थन होता है, जहां सधंव लोगों को दूध पीने का शौकीन कहा गया है । (चिकित्सा स्थान, ३०:१७)

पाणिनकालीन भारत :वा०श०अग्र०,पृ०६३

(२५) पायस (प्रादेश) ७:१२:२५

(२६) २:३:३, ३:१३:५, ६:५:१५, ११:७:१

पश्चिमी सीमा— राजस्थान के पश्चिम स्थित गुर्जर प्रदेश के अधिपति भीमसेन (चालुक्य) को पृथ्वीराज ने गिरा कर (उसकी शक्ति को) नष्ट किया था।[३९] वहां के माल चंदेलु ने कन्नौज -युद्ध में पृथ्वीराज के लिए प्राणोत्सर्ग किया था।[४०] गुर्जर के दक्षिण कच्छ[४१]

गुर्जर
कच्छ
गुंड

---

(२७) सरित १:४:१४, सलिता ७:४:१, ६:११:३

(२८) लोह लाहउर बाजह तुरक्की (लाहौर के लोहित वर्ण के (जयचंद के यहां) जो घोड़े थे, वे तुर्की बाजते (कहे जाते हैं) तुरंग (सं० घोड़ा) मिलने का स्थान= तुर्कीस्थान । तुर्क

(२६) (पृथ्वीराज ने) दिखि मुर धर उपदेस । २:६:१

(३०) जंगलि - गुरु गोविंद राज कथन- हम जंगलि वास कालिंदी कूल । २:३:२ च्यारि जांम जंगली राय (पृथ्वीराज) निसि निंदुद न षट्टुउ । ७:२१:३

इह मरण किंति राय पंग की जियन किंति रा जंगली ।

८ : ४: ५

(३१) वा०श०अ्र० का प्रा०भा० भूगोल` कल्पना` `५५ पृष्ठ २६

(३२) (पृथ्वीराज का) बृता रता संभरि (अनुराग पर्व विचार सांभर में हुए । १:६:१

संभरि सकोप सोमेस पुत्र । २:३:३३, ४:१०:१, ४:६:२

(३३) वा०श०अ्र० का प्रा०भा० भूगोल ` कल्पना``५५, पृष्ठ २६

(३४) बीकानेर राज्य के निकटवर्ती एक छोटा स्थान । यहां पर एक गाय को सिंह से अपने बछड़े को वीरता से बचाते देख पृथ्वीराज बहुत प्रसन्न हुए और गाय-संवर्द्धन हेतु` नव नगर` बसवाया जिसका परिवर्तित रूप नागोर है । नागोरी गाय प्रसिद्ध है । न०न०वसु,का हि०वि०कोश ।

(३५) तै राषउ रणथंभ राय जादव सह हथ्थउ । ८:४८:४

जयपुर सामंत राज्य के अन्तर्गत एक गिरि-दुर्ग , अक्षा०२६ ' २ उ०, देशान्तर ७६ ' ३० पूर्व

और गुंढ[४२] हैं। जो क्रमश: घोड़े और वीर सैनिक[४२] के लिए प्रसिद्ध भूमि भाग है।

---

(३६) राजं जा अजमेरि केलि कविरं। १:६:१

(३७) तै राषउं जालोर चंपि चालुक चाहंतउ। ८:४:२ जोधपुर राज्य का एक प्रधान नगर अक्षांस २५ ' २१ उ० और देशा० ७२ ' ३७ पूर्व जोधपुर से ७५ मील दक्षिण तथा मारवाड़ मरूभूमि के दक्षिण है। परमार वंश के किसी राजा ने १२ वीं शदी में इसकी स्थापना की है। इस शहर का प्राचीन नाम जालंधर है। न०न०वसु का हि०वि० कोश।

(३८) पहुड जउत पंमार अव्वु जु राया। ११:१२:२३ राजस्थान के सिरोही राज्य में अरावली पहाड़ की चोटी पर। अक्षांस २४ ' ३५ ३६ उ० और देशा० ७२ ' ४५ १६ पूर्व अरावली पहाड़ी की चोटी होते हुए भी उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। यहां असभ्य, सायद भीलों की एक शाखा रहती है। वशिष्ट-यज्ञ से राजपूतों के अग्निकुल की उत्पत्ति यहीं से हुई बतायी जाती है। इसी वंश ने दैत्यों का विनाश किया था। जिससे पर (शत्रु, यज्ञ विरोधी दैत्य) + मार (विध्वंसक) परमार नाम पड़ा। यहां की गुफा में एक पद चिह्न को लोग भृगु-पद समझते हैं। न०न०वसु का हि०वि० कोष।

(३६)(पृथ्वीराज ने) भंजिया भूप भड़ि भीमसेन। २:३:३२

टीका में इसके लिए गुर्जराधिपति लिखा है। पृ०रासउ, पृ० १५

(४०) पारउ माल चंदेलु चैन धवली धर गुरजर। ७:२७:१

(४१) गनइ को कंठ कंठीन कच्छी। ६:५:२२ (जयचन्द के यहां कच्छी घोड़े इतने हैं कि उनके कोई कंठ नहीं गिन सकता।

सिंध के ठीक दक्षिण में कच्छ जनपद है। पाणिनी ने कच्छी मनुष्यों को काच्छक कहा है और वहां के लोगों की कुछ विशेषताओं का भी सूत्र में संकेत किया है। मनुष्य तत्स्थयोर्वुञ् ४:२:१३४) काशिका में इसके तीन उदाहरण हैं —(१) काच्छकं जल्पितं (कच्छ

दिल्ली

भारतीय इतिहास में दिल्ली[४३] की सार्वकालिक महत्ता रही है । काव्य नायक पृथ्वीराज को दिल्लीपुर में पोतित होने के लिए ही मानो विधाता ने निर्मित किया था । योगिनीपुर पति (पृथ्वीराज)स्वतः शूर हैं, पंग (जयचन्द) (अपनी) पारस (पारसीक सेना) के मिस राजेश्वर हैं ।[४५] जयचन्द के मन में अन्य

(४१ का शेष) वालों के बोलने का ढंग। (३) काच्छिका चूड़ा (कच्छ वालों के सिरकी फुटैया का ढंग) कच्छी बोली में वाक्य के अंतिम भाग को कुछ तरल या प्रवाहित करके बोलते हैं । कच्छ देश में लोहाने क्षत्रिया प्रसिद्ध हैं । वे लोग अभी तक अपने सिर के बालों का अगला आधा भाग मुंडा हुआ रखते हैं, यही काच्छिका चूड़ा की विशेषता हो सकती है । काशिका ने कच्छी बैलों (काच्छगो:) का भी उल्लेख किया है । इस नस्ल के पतले सींगों वाले नाटे चंचल बैल अभी तक प्रसिद्ध हैं । काशिका ने पुराने भौगोलिक नामों का एक जोड़ा दारु कच्छ और पिप्पली कच्छ दिया है । दारु कच्छ काठियावाड़ (दारु-काष्ठ) के समुद्र तट का प्रदेश और पिप्ली कच्छ रेवा कांठे का सूरत से बड़ौदा तक का किनारा था जिसमें पीपला रियासत है और ठीक समुद्र तट पर भृगुकच्छ (वर्तमान भड़ौंच) है । खंभात की खाड़ी के मस्तक पर साबरमती (श्वभ्रमती) की धारा समुद्र में मिली है, उसकी दाहिनी ओर का समुद्र तट दारु कच्छ और बाईं ओर का पिप्पली कच्छ कहलाता था ।

(४२) (जयचंद ने) झंडिअउ बंधि इक मुंह जीरा । ५:१३:१६

(कन्नौज युद्ध में जयचन्द के) वीर गुंडीर सा सोम भुंगा ।

७:६:४५

: बंबई प्रान्त के काठियावाड़ एजेन्सी में नवानगर राज्य के मानवाड़ महाल का एक गांव अपने प्राचीन सिंह शिलालेख के लिए प्रसिद्ध है । न०न० वसु, का हि०वि० कोश ।

(४३) जोगिनी पुर २:३:५, योगिनीपुर ६:१७:१, ८:८:२, ढिल्लीय ७:१:१, ढिल्लीपुर १:६:४, दिल्ली ५:१:४

राजाओं को जीत लेने के उपरान्त दिल्लीपति (पृथ्वीराज) को न जीत सकने के कारण बड़ा खेद उत्पन्न हुआ।[४६] मौजूदा दिल्ली के समीप ही पूर्व में खांडव[४७] वन[४८] था जिसको अर्जुन ने अपने क्रोध से दग्ध किया था। ठीक उसी प्रकार पृथ्वीराज ने भी कन्नौज युद्ध में उसके प्रति अपना दाहक रोष[४९] प्रकट किया। दिल्ली से पूर्व की ओर[५०] ६५ कोस की दूरी पर[५१] गंगा के वाएं तट पर कन्नौज[५२]

खांडव वन

कन्नौज

---

(४४) निमनिं विधिना त जान कविना ढिल्लीपुर भासिनं। १:६:४

(४५) जोगिनी पुर पति सूरो पारस मिसि पंगु रायेस। ८:८:२

(४६) जोगिनी पुरेस सुनि भयउ खेद। २:३:५

(४७) खुल्लियं खग्ग खंडु वन लग्ग। ७:१७:४

(४८) वन १:६:३, ७:१७:४, ८:३:१, ६:१४:१, वनि २:५:२५
 ३:१४:१, १२:१६:३,(४६)७= १७: १से ४

(४९) ७:१७:१ से ४

(५०) ८:७:२

(५१) पंच षट्ठ सौ कोस कह्व ढिल्लिय अस कथ्थह। ८:६:३

(५२)कनवज्जिय जयचंद चलउ ढिल्लियसुर पेष्षन। ४:१:१

कन्नौज उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में ग्रैण्ड ट्रंक सड़क से ३ कि०मी० दूर २७´ ३` अक्षा० उत्तर और ७९´ ५६ देशा० पूर्व स्थित है। रामायण में उल्लिखित गुप्त साम्राज्य का मुख्य नगर छठवीं सदी में हूणों के आक्रमण से विनष्ट हो गया था। चीनी यात्री युवानच्वांग ने इसका वर्णन किया है। ११९४ ई० में मुहम्मद गोरी ने इस पर कब्जा कर लिया था। `आइने अकबरी` से ज्ञात होता है कि अकबर-काल में यहां सरकार का मुख्य कार्यालय था।

प्रयाग
गंगा-यमुना

स्थित है। काव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं वर्णन इस स्थान का हुआ है। जयचन्द्र राठ[५३] प्रदेश का पति राष्ट्र(कूट)[५३] विजय पाल का पुत्र था[५३] और यहीं रहा करता था। तीर्थराज[५४] में त्रिवेणी[५४] तुल्य आरुढ़ कन्नौज की सुन्दरियों के कच उनके कोकनद सदृश करों द्वारा सुलझाये जाते हैं।[५४] इस त्रिवेणी में गंगा,[५५] यमुना और सरस्वती का संगम है। गंगा की तरल तरंग[५७] की तरह कवियों की बुद्धि तरंगित[५८] होती है। नदियों की तरह पहाड़[५९] भी पूज्य और तीर्थस्थल हैं।[६०] और कैलास[६१] भारत के चतुर्धामों में हैं। इन दोनों पहाड़ों की चोटियां[६२]

---

(५३) सुतउ राठ वयराठ विजपाल नंदा। ५:१३:१४। उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले की एक तहसील जो अक्षा० २५ २६ से २५ ' ५६ उ० तथा देशा० ७६ २१ से ७६ ' ५५ पूर्व के मध्य स्थित है। इसमें राठ नामक नगर और १७६ ग्राम लगते हैं। राठ नगर (अक्षा०२५ ' ३६ ` उ० और ७६ ' ३४ पू० देशा० के बीच ) हमीरपुर शहर से ५० मील दक्षिण-पश्चिम है। राठौर राजपूतों के रहने के कारण इसका नाम राठ पड़ा है। १२१० ई० में सरफउद्दीन ने उस नगर को बसा कर अपने नाम पर ` सरफाबाद` रक्खा। नगर के दक्षिण भाग में प्राचीन चंदेल राजवंश के महलों का खंडहर और जैतपुर तथा चरखारी राज्यों द्वारा प्रतिष्ठित दो दुर्गों का भग्नावशेष विद्यमान है। न०न० वसु का, हि०वि०कोश।

(५४) कर कोकनद ति कंबु समुझ्झं। मनहु तित्थ राज त्रिवली अलुझ्झं।
   ४:२०:२१।२२

(५५) गंग १:३:८, २:११:२, ८:६:६, गंगे ४:११:१, जांह्नवी ४:१७:१,

(५६) २:३:२७, ४:२०:१७

(५७) ४:११:२, १:४:१४

(५८) जिने बुद्धि तारंग सु गंगा सरित्तं। १:४:१४

(५९) गिरि २:७:१२, ४:११:४, ५:१६:४ , सैयल ८:१०:२८

(६०) भुअं तक्यउ तप्प बदरीय थान। १२:१५:७

(६१) मनु सज्जिया वंभ कैलास बीय। २:३:६४

(६२) गिरि सिष्षिर २:७:१२, गिरि तुंग ४:११:४

उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले में है । पृथ्वीराज के गजनी में कैद और उसकी आंख फोड़वाने की बात सुनकर कवि चंद ने संसार छोड़ कर बदरिकाश्रम में तप करने का निश्चय किया । अश्वमेध यज्ञ के समय कन्नौज को मानो ब्रह्मा ने दूसरे कैलाश के रूप में सुसज्जित किया हो[६३] । इसी कैलाश के पास एक हेमकूट पर्वत है जिसमें स्थित राज्यों को जयचन्द ने सम्पूर्ण रूप से ढहाया था ।

पूर्वी सीमा—
बिहार का तिरहुति
करनाट

आज कल जिसे बिहार कहते हैं उसका प्राचीन नाम मगध था । जयचंद ने वहां जाकर तिरहुति में सेना स्थापित की थी[६४] । वहीं के करनाट की एक सुंदरी दासी थी जो रात्रि में पृथ्वीराज के आस्थान-आवास में थी जिसकी ओर कयमास की दृष्टि लग गयी थी[६५] ।

पूर्वी-दक्षिणी
सीमा—
उड़ीसा
त्रिलिंग
गोलकुण्डा

उड़ीसा,[६६] जिसका प्राचीन नाम कलिंग है, की सांस्कृतिक देन बहुत है । इसी के अधिवासियों ने दीपान्तर में जाकर सुमात्रा, जावा आदि उपनिवेश बनाए । वहां के निवासी आज तक अपने को `किलंग` कहते हैं । यहां का नृत्य भी प्रसिद्ध है जो जयचंद के दरबार में हुआ करताथा ।[६७] उड़ीसा के दक्षिण त्रिलिंग[६८] और गोलकुंडा[६९] हैं जिसको जयचन्द्र ने तीन दिन तक रुंड मुंड युद्ध करके वश में किया था ।

---

(६३) जिनि हेम परवत ते सब्ब धाहे । ५:१३:७, डा० माताप्रसाद गुप्त के टीका के अनुसार यह पर्वत मेरु के समीपस्थ है । मत्स्य पुराण, के अनुसार यह कैलाश के पास है और वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार कैलाश का ही दूसरा नाम है । (कल्पना` ५५) हेमकूट संभवत: कैलाश और सुमेरु के बीच में है ।

(६४) थप्पियं जाय तिरहुति पिंड । ५:१३:१०

(६५) करनाटी दासी सुवन रजनी अग्गि्य अवास ।
काम मुक्क कयमास तनु दिट्ठि विलग्गी तास । ३:३:११ २

(६६) ओह० विजय,। ओहिष ? आहिक्षा न ओहिषा

(६७) कुसुंम सार आवधं कुसंम सार उड्ड नट्टरी । ५:३८:१०

दक्षिणी सीमा—
सेतुबन्ध, लंका

पाण्ड्य देश में सेतुबन्ध[७०] रामेश्वर तीर्थ हैं, जहां से समुद्र यात्री लंका[७१]

---

(६८) (जयचंद ने) तोरी तिल्लिंग गोवल्लकुंडा । ५:१३:१६

त्रिलिंग दक्षिण भारत का एक प्राचीन देश है। कहते हैं कि कालेश्वर, श्री शैल और भीमेश्वर नामक तीन पहाड़ों पर शिवलिंग रूप में आविर्भूत हुए थे, इसी से इसका नाम त्रिलिंग पड़ा। पहली सदी में प्लिनी ने `मो दोगलिगम` (तैलंग में मृदु का अर्थ तीन होता है), दूसरी सदी में टलेमी ने `त्रिगुलिप्टन या त्रिगुलिफन् देश`, छठी सदी में शिलालिपि या ताम्रशासन में `त्रिकलिंग` देश और बाद में उत्कल और कलिंग के राजाओं ने अपना परिचय `त्रिकलिंग नाथ` कहा है। ग्यारहवीं सदी के प्रथम भाग में उत्कल राज उद्योत केशरी के समय में उत्कीर्ण ब्रह्मेश्वर-लिपि में सर्व प्रथम `तिलिंग` देश का उल्लेख हुआ है। इससे कहा जा सकता है कि कलिंग राज्य का दक्षिणांश एक समय `तिलंग` नाम से विख्यात था। कृष्णा नदी से पेन्नर या पिनाकिनी नदी तक दाक्षिणात्य के पूर्वांश में प्राय: समस्त भू भाग पहले `तैलंग` था। कुछ लोग पुराण के आंध्र राज्य को तैलंग कहते हैं। कनिंघम ने भी आंध्र या तैलंग देश गोदावरी और कृष्णा नदी का मध्यवर्ती भूभाग को बताया है। आइन-ए-अकबरी में यह बरार के दक्षिणांश में और तिब्बत के पंडित तारानाथ ने १६०८ ई० में कलिंग त्रिलिंग का ही कुछ अंश बताया है। तैलंग देश गोदावरी और कृष्णा नदी का मध्यवर्ती भू भाग को बताया है। तैलंग पंडितों का कहना है कि कण्व मुनि ने तेलगू की सर्वप्रथम व्याकरण रचना की थी जो मिलता नहीं है। नं०न० वसु,का० हि०वि० कोश।

(६९) मद्रास में विशाखपट्टन जिले के अन्तर्गत सरकार का एक खास तालुक अंक्षा० १७ ' २२ तथा १८ ' ४° उ० और देशा० ८२° एवं ८२ ' ५° पूर्व स्थित है। इसमें ५१७ गांव हैं। सरकार का यह वन विभाग है। दूसरा गोलकुंडा निजाम के अन्तर्गत एकध्वंसावशिष्ट नगर और दुर्ग है जो अंक्षा० १७ ' २३ उ० और देशा० ७८ ' २४ पूर्व हैदराबाद से ७ मील पश्चिम

(सिंहल)[७२] जाते हैं। जयचन्द ने सेतुबन्ध के पहाड़ों पर सेना जा उतारी[७०] और भूल कर(लंका जा कर) विभीषण पर आक्रमण कर बैठा[७३] जो सुंदरियों मोतियों के लिए प्रसिद्ध था।[७२]

अन्य सभी

इनके अतिरिक्त हाहल,[७४] थट्टा,[७५] धार,[७६] पंगुर,[७७] बइरागरे,[७८] मग्गुल,[७९] विस्वासर,[८०] कुरुंद,[८१] सरवर,[८२] स्थान वत्हिला वन,[८३अ] दावाग्नि,[८३ब] पहाड़ों में गिरिकन[८४] (कन्दरा) और नदियों में उसके तट[८५] का भी उल्लेख किया है।

(६९ का शेष) स्थित है। न०न०वसु का हि०वि०कोश,तीर्रतिलिंग गोलकुण्डा

(७०) उत्तरयउ सेत बंधइ पहारे। ५:१३:१२

(७१) मनउ वानरा लग्गि लंकाहि गाजं। ७:८:१८

(७२) लहंति मुल्ल सिंहले। ४:१४:२०

(७३) भुल्लि विभीषन पारिह रौरे। ५:१३:२१

(७४) (जयचन्द ने) करण हाहल्ल दु बार बांध्यउ। ५:१३:१३

(७५) परउ भान भट्टी भुआल थट्टा धर अग्गर। ७:२७:२ (सिंधु प्रदेश में)

(७६) निवानि वीर धार तनउ सक्कल हक्क नरिंद दल। ७:२७:५ (मालवा में)

(७७) ते राषउ पंगुरउ भीम पट्टी देइ मथ्थउ। ८:४:३

(७८) (जयचंद ने) लिये बइरागरे सव्व हीरा। ५:१३:१८

(७९) मग्गल पति विंभ चालुक्य। ८:२८:६

(८०) सिद्ध चालुक चाइ मंत्र गहने ऊरे स वि सासरे। ३:६:३

मत्स्य पुराण के अध्याय १३ में देवी के १०८ नामों के वर्णन हैं जिसमें में विश्वेश्र में विश्वादेवी अथवा विश्वेश्वर तीर्थ में पुष्टि देवी का वर्णन हुआ है।

(८१) (पृथ्वीराज ने) प्रथम अरि राज षहे कुरुंद। २:७:२, गोरखपुर में नोनबार स्टेशन से डेढ़ मील दूर कुरकुंदो एक स्थान है। पा० भारत, पृ०४३

(८२) (पृथ्वीराज का स्वत: कथन) मइ गोरी साहब्बदीन सरवर साहता। ८:२:४

पृथ्वी को दिग्पाल,[८६] वाराह रूप भगवान[८७] और शेष-नाग[८८] धारण किए हुए हैं। इसमें कभी कभी भूकंप आ जाता है।[८९] इसके स्थान पर[९०] गर्त,[९१] पंक[९२] और धूल[९३] हैं।

उपमा में समुद्र[९४] की विशालता[९५] और गर्जन[९६] का उल्लेख हुआ है। महोदधि[९७] में सूर्य के छिपने की बात है।

दसवीं सदी के पहले ही 'बृहत्तर भारत' बन चुका था, किन्तु इस काव्य की भूमिगत सीमा खुरासान, कैलाश, तिरहुति, तिलिंग, सिंहल और कच्छ है। इन स्थानों का काव्यगत प्रयोग राजनैतिक-लक्ष्य अथवा उसके विशिष्ट प्राप्त वस्तु[९८] के कारण ही हुआ है। प्राकृतिक

---

(८३)(पृथ्वीराज ने) प्रथम और राज षट्ठे षट्षंद।
बहिला वन बासिन। १:६:३,

(८३ब) २:७:१२, ७:८:१४

(८४) (पृथ्वीराज के डर से दुष्ट) एक गहि गहि गिरिकंन।५:१६:१४

(८५) (संयोगिता के वचनों से कुपित होकर जयचंद ने) तब भुक्ति राय गंगह तट च रनि पचि उच्च अवास। २:२७:१

(८६) ५:१३:३

(८७) ३:२४:१, ६:२२:१, ७:६:५

(८८) ७:६:२६

(८९) ३:६:१

(९०) ३:२७:५

(९१) दाहिर ३:२५:२

(९२) कीच ४:२५:४, वंक ६:७:४

(९३) ००६०१ अंबर ७:४:१३, रेण ६:२२:१, रैन ४:१:५, ७:१२:१७
 व षेह ७:२८:२

(९४) दरियाह ५:१३:२२, ७:४:८, समुद्द १:४:११, ७:१२:४, समुद्र ८:९:६

(९५) १:४:११, (९६) ७:४:८, ७:१२:४,(९७)

(९७) मिच महोदधि मध्य दसंत ग्रसंत तम (७:२२:१)

(९८) कच्छ (घोड़ा) ६:५:२३, अरब (घोड़ा) ६:५:२१, बैरागढ़

उपादान यथा नदी एवं पहाड़ आदि अपने स्वाभाविक गुण, युद्ध की भयंकरता-वृद्धि,[९९] आदर्श अंग के उपमान[१००] अथवा धार्मिक दृष्टिकोण[१०१] के रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं।

(९८ का शेष) (सोना) ५:३८:१८, काश्मीर (केशर) २:७:३, सिंधु (धुरंग हाथी) ७:१०:१६, लाहौर (तुर्की घोड़े) ६:५:१३, गुंड (वीर सैनिक) ५:१३:१८, पारस (वीर सैनिक) ८:८:२, प्रयाग (तीर्थराज) ४:२०:२२, बद्रीनारायण (तपस्थान) १२:१५:७, कैलाश (शिव) २:३:६४, करनाट (दासी) ३:३:१, उड़िसा (नृत्य) ५:३८:१०, सिंहल (मोती) ४:१०:१०

(९९) २:२८:२, ७:१२:५, ७:१२:१२

(१००) ९:१४:२, ४:१०:१६

(१०१) ४:११: समस्त पद

क— जलवायु और उपज

(७० शब्दों का १८० पर्याय सहित जलवायु-उपज के संदर्भ में प्रयोग हुआ है)

अनुच्छेद	संदर्भ
१—	समस्त भरत खंड का नहीं, केवल दिल्ली के आसपास की जलवायु का प्रतिनिधित्व
२—	वसंत
३—	ग्रीष्म
४—	वर्षा
५—	शरद्
६—	हेमन्त
७—	शिशिर
८—	उपज — अनाज में जौ
९—	पेड़—आम, केला, चन्दन
१०—	फल—अनार, बिम्बाफल, इमली, नारंगी, कर्क फल, कन्दला कन्द
११—	फूल—केतकी, चंपक, सरीफा, चंपा, जुही, बेला, मालती, सेवन्ती, कुन्द, कुमुदनी,
१२—	जल के फूल—कमल, कुमुदिनी
१३—	नरकुल, शैवाल, सरकंडा, वल्ली, फंखाड़, दूर्वादल, कास, तृन
१४—	पत्ता, पल्लव, मंजरी, कली, मधु, नाल, शिखर
१५—	खनिज पदार्थ—नग, मणि, मोती, रत्न, हीरा, सोना, कांच, चीनी मिट्टी, पत्थर सप्त धातु, लौह
१६—	उपसंहार

केवल दिल्ली के आसपास के जलवायु का द्योतक

इस काव्य में वर्णित जलवायु से समस्त भारत-खण्ड की ऋतुगत विशेषताओं का रूप स्पष्ट नहीं प्रकट होता है। यहां दिल्ली के आस पास की जलवायुगत स्थिति का वर्णन है। कवि समय की परम्परा में ऋतु वर्णन है।

वसंत

ऋतुओं[1] में वसंत[2] ऋतुराज[3] है। इसमें वायु[4] शीतल मंद, सुगंधित, सरस और चपल होकर बहती है।[5] फूल फूलने लगते हैं।[6] यह कामोद्दीपक[7] है जिससे संयोगिनी सुखी[8] और वियोगिनी दु:खी[9] होती हैं।

ग्रीष्म

ग्रीष्म में रवि तेज[11] होता है। गर्मी बढ़ जाती है[12]। दिन दिव्य[13] (तप्त लोहादि) के समान हो जाता है। वायु शब्द करती हुई कुपित हो जाती है[14]। सूर्य किरणों से उत्पन्न बवंडर[15]

---

(१) रित ४:११:१०, रितु ४:२०:२८

(२) २:५:२०, २:५:४६

(३) मनहु रितुराज द्रुम पत्त छुट्ट। २:७:१० (टीका में) २:५:४१

(४) अनिल ३:१३:२, ८:१०:२२, वात २:५:२७, ६:६:२
समीर २:७:६

(५) वाते सीत सुगंध मंद सरसा आलोल सा वेष्टिता। ६:६:२

(६) फुल्लिंग पलास २:५:४५

(७) कामस्य उद्दीपनी। ६:६:३ नहु करय पीय परदेस गम्म। २:५:४४

(८) परसप्पर पीवत पीयनि कंत। २:५:२
नहु करह पीय परदेस गम्म। २:५:४४

(९) बिहरंति रुण बितरंति क्षचि। २:५:४०

(१०) गिम्ह ३:२६:४, ग्रीष्म ६:१०:४, गिमह १०:२८:२

(११) तेज रवि गिमह। १०:२८:२

(१२) तपया तरुणया तनं। ६:१०:३

(१३) दीहा दिव्या। ६:१०:१

(१४) सदंग कोप अनिला। ६:१०:१

उठने लगते हैं। धूल से दिशाएं, स्थान और गोमार्ग मिलन हो जाते हैं।[१६] गर्मी से जल सूखने लगता है।[१७] रात्रि छोटी[१८] हो जाती है। मलय समीर और चन्द्र किरणें सुखद लगती हैं।[१९] वर्षान्त[२०] में पूर्वा हवा[२०क] से आषाढ़ में[२१] आर्द्र बादल मस्ती से उमड़ने[२२] और गुजने लगते हैं।[२३] जोर से जल वृष्टि होने से क्षिति क्लिन्न होकर[२४] धरा को अगम्य बना देती[२५] है। भादों में वायु (और उससे प्रेरित) बादल सूर्य को दबा लेता है।[२६] यामिनी के समान दिन हो जाता है।[२७] बिजली चमकती है।[२८] शरद[३०] के कार्तिक मास में कुसुम और चन्द्रमा की कान्ति निर्मल हो जाती है।[३१] दीपक से लोग वांछित फल प्राप्त करते हैं।[३२] साधन-सम्पन्न के लिए ये दिन दिव्यवत् होते हैं।[३३]

---

(१५) आवर्त मिलाकर। ६:१०:१

(१६) रेन सेन दिसान थान मलिना गोमग्ग आडम्बर। ६:१०:२

(१७) नीरे नीर अपीन। ६:१०:३

(१८) छीन छपया। ६:१०:३

(१९) मलया चंद मंद किरणा सु ग्रीष्म आसेवनं। ६:१०:४

(२०) पावस ६:२६:४, ७:४:६, ७:११:२, ११:६:१, प्रावृट्
६:११:४

(२०क) जिम पावस पुव्वह अनिल हल्लित बद्दल सव्व। ७:११:२

(२१) आगमे मेह आषाढ़ गज्जे। ७:१७:८

(२२) पावस अम्भ बुठे। ७:४:६

(२३) ७:१७:८ (२१ वां)

(२४) जलेन क्लिन्न क्षितया। ३:२:३

(२५) पावस आगम धर अगम। ११:६:१

(२६) आनु भद्दव रवि अस्तमन चंपइ बद्दल वाउ। ७:३:२

(२७) यामिन्या सम वासरे। ६:११:४

(२८) दामिन्न दामायते। ६:११:१

हेमंत में सर्वत्र शीत व्याप्त हो जाती है।[३५] शीतल हवाएं कंपाने लगती हैं।[३६] दिन छोटे और रात बड़ी होने लगती है।[३७] युवक के लिए शैय्या संज्वर-कारिणी हो जाती है। उस पर अनंग ही अनंग का अधिकार हो जाता है।[३८] इस ऋतु में गंगा बढ़ती है पहाड़ के बर्फ पिघलने से।[३९]

शिशिर[४०] में शीत सबसे अधिक पड़ती है जिसमें लोग सीत्कारते हैं।[४१] सर्दी, ऋतु-दोष की गणना में भी आती है जिसका निवारण इन्द्र के स्पर्श-स्तंभ जैसे कामिनी-जंघे को धारा ही सुलभ है।[४२] इस ऋतु में कुहरे पड़ते हैं।[४३] इसके बाद वसंत आ जाता है। जल[क] में प्रवाह[४३ख] और द्रह[४३ग] है। इसका एक रूप वर्फ[४३घ] है।

---

(३०) सरद ४:१४:३४, ६:१२:४, सरद ४:२५:२४ -

(३१) कुसुमे कातिक चंद निम्मल कला । ६:१२:३

सरद चंदु उज्जर ४:१४:३४, मनउ दुज छीन तरहद सोम ।४:२५:२४

(३२) दीपांनि वर दायते । ६:१२:३

(३३) पिते पुत सनेह गेह भुगता युक्तानि दिव्या दिने । ६:१२:१

(३४) हिम ४:११:१०, ४:२५:६, हिमवंत ६:१३:४

(३५) ति सीत समीर मनउ हिम कंपु । ४:२५:६

(३६) ति शीतं जनेतं वने । ६:१३:१

(३७) क्षीनं वासर श्वास दीघ निसया । ६:१३:१

करकादि निसा .... वध्यति । ७:४:३१४

(३८) सज्ज संजर वान यौवन तया आनंग आनगने । ६:१३:२

(३९) हिम रित प्रतिपालं । ४:११:१०

(४०) शिशिर ६:१४:३, सिसिर २:५:४६, सीत ४:२०:२८

(४१) सयला फुंकार फुकारये । ६:१४:२

(४२) सीत सनेह रितु दोष भंग । सकिक सोवन्न मोहन्न थंभं ।

४:२०:२८१२७

(४३) मनहु कमल करि वर किरण कुहर पगु दल सेव । ८:२०:२

उपज—
जौ

सभी प्रकार के फसलों का पैदा होना यहां की उर्वरा भूमि की विशेषता है। किंतु अनेक अन्नों में केवल जौ[४५] का उल्लेख इस महाकाव्य भर में हुआ है, जैसे कि देवों के आह्वान स्थल पवित्र यज्ञों में भी केवल जौ ही दिखाई पड़ता है। आबू पति (सलख) ने अपने रण जय के पिंडदान तर्पण में जौवों का जव बनाया था।[४६] संयोगिता मृग वत्सों को यवांकुर[४७] चरा रही है।[४७]

आम
केला
चंदन

पेड़ों में आम,[४६], केला[५०] और चंदन[५१] वनराजि[५२] हैं। आम भारत का बहु-प्रचलित वृक्ष है। उसका वसंत ऋतु में वन बागों और मार्गों पर खिलना इतना अच्छा लगता है मानों ऋतु राज के ऊपर वह चामर ढल रहा हो।[५३] कदली का पता वायु से परिरंभन करता हुआ ऐसा लगता है मानो कोई सरस तान सुन कर सिर धुन रहा हो।[५४]

---

(४४) रण रंग सिसिर जितउ वसंत। २:५:४६

(क) देखो (टि० सं०७८)

(ख) ५:५:३

(ग) ८:२६:२

(घ) हेम ८:३:४

(४५) २:४:१, ८:३०:३

(४६) (अब्बू पति ने जप में) जब जीव करि। ८:३०:३

(४७) जब अंकुर करि पानि चरावति वच्छ मृगु। २:४:१

(४८) तरु ४:७:१०, द्रुम २:७:१०, ७:१७:२६

(४६) अंब २:५:२५

(५०) कदली २:५:४१, केलि ७:६:२, रंभ ३:१७:३३, १०:११:१०, रंभया ४:१४:८

(५१) चंदन ६:१०:४, चंदनु ६:२७:१, श्रीखंड १०:११:४

(५२) वनराइ ७:१०:१६

(५३) वनि बग्ग मग्ग रुलि अंब भउर। सिर ढरहि मनहु मनमथ्थ चंउर। २:५:४१+४२

इसका हिलना भी इतना सहज स्वाभाविक और आकर्षक होता है कि भय में कांपने की उपमा इसका ध्यान शीघ्र आ जाता है। संयोगिता-हरण के बाद कन्नौज-युद्ध में सुभटों के सजते ही तीनों पुर कदली-पत्र के समान कंपित हो गए[५५]। इसका नाल तो सुंदरियों के आदर्श जंघे की तरह सुडौल और मनोहर होता है।[५६] चंदन अरुणिमा[५७] और शीतलता[५८] के लिए प्रसिद्ध है।

फल—
अनार, बिंबाफल
इमली, नारंगी
अर्क फल, कंदलाकंद

फलों में अनार[५९] पौष्टिक और हलका आहार तो है ही, इसका दाना देखने में इतना सुंदर होता है मानो सरस्वती जी अथवा सुंदरियों की दंतावली हो[६०]। बिंबाफल (कुंदरू) मानो उनके ओष्ठ हैं।[६१] नारंगी का रंग इतना मनोहर होता है मानो सुंदरियों के आदर्श पिंडुली है।[६२] इमली[६३] दक्षिण भारत का आहार-प्राण है। उत्तर भारत वासी नायिका संयोगिता का आहार-प्राण है।

---

(५४) परिरंभ अनिल कदली क पान। सिर धुनहि सरस सुनि जानु तान।
२:५:४१+४२

(५५) सज्जत धुम धुमे सुनंत धुम धुमे सुनंत। कंपिय तीनपुर केलि पत्तं।
७:६:१+२

(५६) अपुट्ठ रंभ नाल है। ३:१७:३३, रंभ ति जंघनं। १०:११:१०
ति लीन कच्छ रंभया। ४:१४:८

(५७) तर बरण अरुणाति अध्धनं। जनु श्रीय श्री अंड लध्धनं।
१०:११:३+४

(५८) चंदन ग्रीष्म आसेचन। ६:१०:४

(५९) अनार ३:१७:१८, डाडिम्म ५:७:१, दालमी ४:१४:२४

(६०) (सरस्वती जी की दंतावली) बिवी अनार फुट्टयो।
३:१७:१८

डाडिम्म लौ बीयलो। ५:७:१

(कन्नौज सुंदरियों की दंतावली) कहंत बीअ दालमी। ४:१४:२४

(६१)(सरस्वती जी की नासिका) लहंत रत बिंबयो। ३:१७:१६

(गजनी के गौरांगनाओं के ओष्ठ) बिंबफल जानि घन कीर

संयोगिता के मुख और जिह्वा की चतुराई मदनावृत होने से वैसी ही है जैसी अपने बाँके टेढ़े करों के कारण रमणी की शोभा होती है।[६४] अर्क फल जैसे ही फूटते ही अनंत भुवों में उड़ने लगते हैं, उसी प्रकार कन्नौज-युद्ध में भटों के अंग कटकर उड़ने लगे थे।[६५] और कंदला-कंद की तरह हाथियों के शुंड और दंत उखड़ रहे थे।[६६]

फूल —
केतकी
चंपक
सरीफा, जुही, बेला
मालती सेवंती, कुंद

फूलों[६७] की पूजा से रुचिकर भक्ति-निवेदन है।[६८] कुसुमेषु राग-रंग वर्द्धक है।[६९] केतकी तो कामदेव की चलाने वाली छुरी या कैंची है।[७०] चंपक और सरीफे की कलियाँ ऐसी हैं मानो कंदर्प का दीपक प्रकट होकर प्रज्वलित हुआ हो।[७१] चंपा, जुही, बेला, मालती और सेवंती शृंगार-प्रसाधक हैं।[७२] कुंद सुंदरियों के आदर्श नख हैं।[७३]

(६१ का शेष) धावइ। २:७:१५
कन्नौज-सुंदरियों के) अधर आरत्तता रत्त साई। जनउ चंद बिंबीय अरुने बनाई। ४:२०:११२

(६२) नारंग रंग पीठी सु छोटी। ४:२०:२६

(६३) चिबीन। २:२०:२

(६४) चतुरे सु चतुराय आनन रसे सा जीव मदनावरे। (जैसे कि) चिबीन बंका करे। २:२०:४१२

(६५)जिसे अर्क फल फूटते ही अनंता। बहे विग्रा वाणो सु भाणो उदंता। ८:१०:२०:१६

(६६) गये सुंड दंतीन दंता उभारे। मनउ कंदला कंद भिल्ली उखारे। ८:१७:१६१ २०

(६७) कुसुम २:५:३३, ६:१२:३, पुहुप ४:१२:२

(६८) पुनरपि पुहुप पूजा वदति रति निष्पराज। ४:१२:२

(६९) हलि चलहि मनहु मनमथ्थ पील। कुसुमेषु कुसुम तेन धनुष साजि। २:५:३२:३३

(७०) करवत्त केत केतकी सुरुचि। २:५:३६

(७१) उज्वलिय कलिय चंपक सरीप। प्रज्जलित्त प्रगट कंदर्प दीप। २:५:३७-३८

कुन्द और कुमुदिनी चन्द्र के आकर्षण-शक्ति से प्रभावित होकर

चंपा

रात को फूलती हैं।[७४] चंपा शीतलता वाहक है।[७५]

जल के फूल—

कमल-कुमुदिनी

कमल[७६] और कुमुदिनी[७७] जल[७८] के फूल हैं। सूर्य के आकर्षण-शक्ति का इन पर प्रभाव पड़ता है।[७९] वह आदर्श मुख,[८०] कुच[८१] हाथ और पद[८२][८३] के मान है। विधाता का जनक और आधार भी है।[८४] शीतल है।[८५] हाथी उसको अवलित करता है।[८६] युद्ध भूमि के रक्त-सर में जब सिर-सरोज उतराता हुआ दिखाई पड़ता है तो सुंदरता का यह प्रतीक, कलाकार की कुशलता से,

---

(७२) सु मालव पुहुप दुवे दल चंपु। बेनु स सेवंतीय गुठहि जाय। ४:२५:३७। ७

(७३) नव कुंद मिलिय सुभेषनं। १०:११:५ नलिनाभ पानि वियकुहअउ। जनु कंद कुंदन संचअउ। १०:११:२१:२२

(७४) मिलि चंद कुंद फुल्लिय अवास। २:५:२४, विधु संयोग वियोगे कुमुदिनी कली कातरा रारा। ७:१८:२

(७५) पुहुप चंपु ति सीत समीर मनउ हिम कंपु। ४:२५:५१६

(७६) अंबुजा ३:१७:४०, अंभोरुह ५:७:१, अरविंद ४:२०:४०, १२:२:२, इंदीवर ४:२५:२, कंज १०:११:१५, कमल २:३:४२ ३:३३:६, ६:१४:३, ६:२८:२, ७:६:७, ८:२६:४, कोकनद ४:२०:२१, सरोज ७:१२:१६, ७:१७:३३

(७७) केवलय (नीली कुमुदिनी) ४:१६:१, कमलिनी ६:११:२, निलणी ६:१३:३,

(७८) अंभ १०:११:१३, आपु १२:३८:२, जल ८:३:४, नार ६:१४:१ नीर १:६:२, ४:७:१४, ७:२४:१, वारि ३:१७:१३

(७९) रवि साय अरविंद मानं ४:२०:४०, कब हउं नयन निरक्खिहउं मनहु रविक्ख अरविंद। १२:२:३ मधु मक्खि मुक्ख जानु कमल संक २:३:४२, मनुकमलिनि कल संभरी अम्रित किरन तन रंग। ६:११:२ (सूर्य के छिपते ही) सरोज मौज हल्लरे। ७:१२:१६

युद्ध की भयंकरता और वीभत्सता प्रकट कर सकने में समर्थ हो जाता है।[८७] कुवलय (नीली कुमुदिनी) गुणियों की तरह दिन में लज्जित होती है।[८८]

नरकुल
शैवाल
सरकंडा
वल्ली
झंखाड़
दूर्वादल
कास

गंगा तट के नरकुल[८९] शैवाल, सरकंडे,[८९] वल्ली[९०] और वसंत ऋतु के झंखाड़[९१] भी मनोरम लगते हैं, किंतु यहाँ शैवाल[९२] युद्ध भूमि के रक्त-सर में कच-शैवाल के रूप में वीभत्स दिखाई पड़ता है। सुंदरियों के कटि में शैवाल[९३] सदृश्य श्रृंखला कवि चंद को मोहक प्रतीत हुआ था। कन्नौज के घोड़े द्वारा अगम्य घाटों में आजकल की तरह शीतलता के लिए दूर्वादल[९४] के मैदान थे।[९४] जल और चन्द्रमा के समान अगस्त के आकर्षक शक्ति का प्रभाव का कास[९५] पौधा पर

---

(८०) (सरस्वती जी के) अंभोरुह मार्णि जोय। ५:७:१

(८१) कुल कंज। १०:११:१५

(८२) कमल ति कोमल पानि। ६:१४:३, करं कोकनंद। ४:२०:२१

(८३) (सरस्वती के) सुभाय पाय रंगु जा। सु अन्ध रत्त अंबुजा।
    ३:१७:३९+४०

(८४) कमल सुत कमल नहि अंबु लग्गियं। ७:८:७

(८५) सोम अमृत कमल तुम्ह हु हुवं। ६:२८:२

(८६) २:३३:६ की टीका पृष्ठ ६६

(८७) (रण में) धर मरुत रुधिर दह (८:२६:२)(जिसमें) मुख्य
    काल विराजहि। ८:२६:४
    (युद्धभूमि के रक्त-सर में) सिरं सा सरोज। ७१७:३३

(८८) कुवलय रवि लज्जा हरणि। ४:१६:१

(८९) सुर रण टट सालं। ४:११:६

(९०) सुगति सुकल वल्ली नंग रंग त्रिवल्ली। ४:१३:४

(९१) झंखुलिय झाम अभिराम रम्म। २:५:४३

(९२) सरं श्रोणि...... । ..... कचे सा शिवाली। ७:१७:
    २७+ ३३

तृण — भी पड़ता है और नेत्रों को वह उज्ज्वल दिखाई पड़ने लगता है।[९५] जो पृथ्वीराज धन, स्त्री और मृत्यु को तृण के समान समझता था,[९६] मरणोपरान्त उसको भी तन तृण[९७] सम्प्राप्त हो गया।[९७]

पत्ता, पल्लव, मंजरी, कली, मधु, नाल, शिखर — पत्ते[९८] वसंत में गिरते हैं।[९९] पल्लव[१००] की सुवास[१०१] और कोमलता[१०२] युवतियों के आदर्श अधर[१०१] और पद हैं[१०२] भय से कांपने के ये पत्ते प्रतीक हैं।[१०३] रात में इनके खिलने से प्रातःकाल को रंग है, ऐसा समझते थे।[१०४] गंगा की पवित्रता की मंजरी[१०५] (उत्पादिका) है। इसका तिलक भी होता था।[१०६] कली आदर्श[१०७] उंगली है।[१०८] मधु[१०९] सदृश्य नायिका संयोगिता के बोल थे।[११०] अपने प्राकृतिक रूप में नाल[१११] और शिखर का भी[११२] उल्लेख हुआ है।

---

(९३) कटित सोम सेहरी। ४:१४:६

(९४) सु मालई पुहुप दुवे दल चंपु। ति सीत समीर मनउ ह्मि कंपु।
४:२५:५+६

(९५) उदय अगस्त नयन दिठि उज्जल जलसि कास। ३:२१:१

(९६) जिहि धन त्रिअ मरणु त्रिनिवर जानइ। १०:५:३

(९७) तिनहि तिनहि संजोति। ११:४६:४

(९८) पत्त २:७:६, २:७:१०, ८:१०:२२, पत्तु ४:७:१०,

(९९) रितु राज द्रुम पत्त छुट्टइ। २:७:१०

(१००) २:५:१७, २:२०:३

(१०१) अधरतु पत्त पल्लव सुवास। २:५:१७

(१०२) तत्स्थाने कर पाद पल्लव। २:२०:३

(१०३) कंपि ते कायर लोह रत्तं, जिसे अनिल आरंभ पारंभ पत्तं।
८:१०:२१+२२

(१०४) फलमलिग तार तरु फलिग पत्तु। ४:७:१०

(१०५) अमल तन मंजरी। ४:११:१३

(१०६) मंजरीय तिलक। २:५:१६

(१०७) २:५:३७, ६:१४:३, ८:२०:२

खनिज पदार्थ और मूल्यवान द्रव्य

द्रव्य और धातुओं में[११३] मूल्यवान[११४] नग[११५] मणि,[११६] मोती,[११७] रत्न[११८], हीरा,[११९] और सोना[१२०] थे जो बहुतता[१२१] से उपलब्ध थे। रत्न,[१२२] हीरा[१२३] और सोना[१२४] ज्योतिपूर्ण थे। ये श्रृंगार-प्रसा-

---

(१०८) कलिअकुल अंगुलिय। ६:१४:३

(१०९) १०:११:२६

(११०) मधु मधुरमा मधु सद्दवा। १०:११:२६, ६६:१

(१११) मा मुक्ख मित साल नाल समया सरदाय दरदायते। ६:१२:४

(११२) सामग्गं कलधुत नुत जिवरा मधुलेहि मधु वेष्ठिता। ६:६:१

(११३) ४:२४:२, १२:४३:१

(११४) तुलना के लिए आज के बहुमुल्य और विरल धातुएं प्लेटिनम, यूरेनियम, रेडियम, थोरियम, सीरियम, सेलेनियम, टेल्यूरियम, जरमेनियम, टेराटाजम, कोलम्बियन और बेरीलियम हैं।

(११५)(गजनी की स्त्रियों के) ग्रीव नग ज्योति रवि फुट पग्गव।
२:७:११

(११६) (गजनी के गौरांगनाओं के) भारवि मनि मुक्ति गच्छंति लच्छव।
२:७:८

(११७) ऊपर का ४:२४:११२ और (कन्नौज की सुंदरियां) नच्छन्ध बाल ति मुत्तिय अंस। ४:२५:३३

(११८) देखिए (११६का) ४:२४:१ और (जयचंद का कलश) कंचन पुल्लिंग अर्क बन रतन जि किरन प्रकार। ४:६:१

(११९) हीर ४:२०:२३, ४:२५:३१, ६:१५:१३, हीरा ५:१३:१८

(१२०) कंचन ४:६:१, कनक ४:७:१४, ६:३:१, कनक्क ३:१७:२५, ६:१५:१७, कलधुत ६:६:१, सोवन्न २:३:५१, हाटक ४:२४:२ हेम २:३:५८, ४:१०:१४, ५:८:४

(१२१) देखिए (११५), का २:७:१, (११६), (११७) ४:२५:३१ ४:२४:२

धक थे ।[१२५] नायक पृथ्वीराज की सोने की प्रतिमा बनी थी ।[१२६] कांची[१२७] की गुड़िया की माला दासी पहने थी । (धातु के) पत्र[१२८] सदृश्य सुंदरियों के आदर्श ओष्ठ और कांच की चीनी शैली[१२९] के समान उनकी आदर्श रंड़ियां थीं । हीरे ने बैरागर को प्रसिद्ध किया और उसे लुटवाया भी ।[१३०] पत्थर भूमि के अर्थ में प्रयुक्त है ।[१३१] सप्त-धातु[१३२] का पृथ्वीराज के बंधने के लिए, घड़ियार था ।[१३३] लौह की पाखरे थी ।[१३४]

----

(१२२) देखो (११८) का ४:६:१

(१२३) (पृथ्वीराज का तन) प्रतष्ष हीर (प्रत्यक्ष हीरे के समान कांतियुक्त) है । (टीका) ६:१५:१३, ४:२०:१३

(१२४) देखिए (११८) का ४:६:१

(१२५) देखिए (११५) का तथा (११६)

(१२६) सोवन्न प्रतिमा प्रथीराज वानं २:३:५१

(१२७) पुने पी हथ्थ कंठ तोरि पोति पुंज अप्पये । ६:१५:४

(१२८) (सुंदरियों के) अधरत-पत्त २:५:१७

(१२९) रंड़िया हंबरं ओप-वाणि । फिरै कच्च चिनीन मध रत पानी । ४:२०:३३+ ३४

(१३०) (जयचंद ने) लिए बइरागरे सव्व हीरा । ५:१३:१८

(१३१) (कयमास शव) थर छंडि न जाय अभागरउ गारड़ गहउ जु गुन षारउ । ३:२७:५

(१३२) सप्त धातु में ताम्र, मेगनीसियम सीस, वंग, जस्त, निकेल और टाइटेनियम आते हैं ।

(१३३) सपत धात घरियार..... । १२:४३:१

(१३४) परि पष्षर सार तुरंग धनं । ८:६:५ लौह सर्व प्रथम पाया जाने वाला और सबसे अधिक काम में आने वाला धातु है । यह शक्ति का प्रतीक है । लौह पुरुष से लोहा लेना लोहे को चना चबाना है ।

उपसंहार

जलवायु में परम्परागत षड ऋतुओं के गुण-दोष और तज्जनित परिणामों को दिखलाया गया है। उपज को आदर्श-अंग के उपमान[१३५] शृंगार-प्रसाधन,[१३६] काम केलि की पृष्ठभूमि,[१३७] धार्मिक भावना,[१३८] क्रीड़ा विनोद,[१३९] युद्ध की भयंकरता,[१४०] और भय के प्रतीक[१४१] रूप में वर्णन किया गया है।

---

(१३५) देखिए इसी अध्याय की टिप्पणी संख्या :— (५६),(६०), (६१),(६२),(७३),(८०), (८१),(८२), (८३), (१०१), (१०२), (१०७), (१२८)और (१२९)

(१३६) ,, ,, ,, (७२), (१०६), (१२५) और (१२७)

(१३७) ,, ,, ,, (५४), (६९), (७०) और (७१)

(१३८) ,, ,, ,, (४६) और (६८)

(१३९) ,, ,, ,, (४७),

(१४०) ,, ,, ,, (६५), (६६),(८७) और (९२)

(१४१) ,, ,, ,, (५५) और (१०३)

ग— जीव-जन्तु

(१७ शब्दों का ६७ विभिन्न संदर्भों में प्रयोग हुआ है।)

अनुच्छेद	—	संदर्भ
१—		देवताओं से संबंधित जीव:— हाथी, गुंजा, मुक्ता, भुजंगी, कालिय नाग, बंदर, भंवरा
२—		आदर्श अंगों के उपमान :— मोती (दांत), चींटी (रोमावली), अलि और सांप (अलक), मीन- मृग (चक्षु), हाथी (नितंब), सिंह (कटि) (बंदर (मुख), कच्छ-मच्छ (रण के रक्त सरोवर में वीर सैनिकों के अंग)
३—		क्रीड़ा-विनोद के साधन-रूप में :— मृग, मृगियां, मत्स्य और नागिन,
४—		सुंदरियों और वीरों पर मड़राने वाला जीव— भंवरा
५—		गज और सिंह के स्वाभाविक गुण- आदर्श रूप में
६—		प्रियध्वनि वाले जीव— संख, दादुर-शार्दूल
७—		हिरण
८—		मत्स्य
९—		नाग
१०—		टिड्ड, वाराह, और घड़ियाल
११—		प्रवाल
१२—		युद्ध को अधिक भयंकर बनाने वाले जीव :— मछली और कच्छप
१३—		उपसंहार

देवताओं से संबंधित जीव—

देवताओं से संबंधित जीवों में सर्व प्रथम हाथी[1] जैसे सूंड़[2] वाले गणेश जी, जो गुंजाहार[3] पहने हुए हैं, इस महाकाव्य में स्तुत्य हैं[4]। फिर मुक्ताहार[5] धारिणी सरस्वती जी का आह्वान है[6]। तब गले में भुजंगी[7] लपेटे गज[8] चर्म से आच्छादित आदि के विराजमें वंदित शंकर जी हैं[9]। कालीनाग[10] के सिर पर कृष्ण जी हैं। बंदर[11]

---

(१) करि १:१:३, ५:४१:२, करी १:३:१०, करेनु २:१५:१२, गज ६:२०:२, १०:११:२, गयंद ४:२०:२५, गय २:८:१, गयण ३:४:६, पील २:५:३२, मृग ६:१४:४, वस ? २:२०:३, वारुणी ६:१४:३, सिंधुर ११:१८:३,

(२) कर २:२०:३, तुंडीर १:१:३, सूंड ११:१८:४,

(३) १:१:२

(४) प्रस्तुत काव्य के पहले अध्याय का पूरा पद

(५) १:२:१

मोती गरम समुद्रों में पायी जाने वाली सीपों में मिलती है। जब किसी प्रकार का परजीवी प्राणी अथवा बालू कण मुक्ता सीप के कवच में घुस जाता है तो मुक्ता स्तर से एक प्रकार का रस द्रवित होकर उस वस्तु के चारों ओर लिपट जाता है, जिससे वह सीप के कोमल शरीर में न गड़े। यही चपका गाढ़ा रस सूखने पर मोती बनता है और आभूषणों में शोभा पाता है। जापान में मुक्ता सीप पाले जाते हैं और छोटे छोटे कंकण कवच के ढक्कन में डाल कर द्रव प्राप्त कर मोती बनाते हैं। इसे 'कल्चर' मोती कहते हैं, ये सुडौल पर कीमती कम होते हैं।

(६) विवेच्य काव्य के अध्याय १ का पद संख्या २

(७) भुजंगी गलेहम ......, १:३:४

(८) करी चम्म छाम, १:३:१०

(९) विराजादि छंदम्, १:३:३

(१०) कन्ह कालीय सीसये। १०:११:४६

(११) बनंर ७:८:१, बनेचर ७:१५:६

राम के दल थे।[१२] हाथी[१३] की सवारी पर चढ़े[१३] भौंरों[१४] सा प्रत्यंचा का धनुष लिए कामदेव जी हैं।[१४] भृंगों[१५] की कंठध्वनि गंगा जी की कंठध्वनि है।[१५] ऊपर के जीवों को देवताओं के साहचर्य का सौभाग्य प्राप्त है। देवों से जीव प्रेम करने की प्रेरणा मिलती है।

आदर्श अंगों के उपमान-स्वरूप

सुक्ति सुनन्दन[१६] मोती आदर्श दांत हैं।[१६] चींटी-सी[१७] रोमावली है,[१८] अलि[१९] और सांप[२०] सुन्दर अलकों के उपमान हैं।[२१] मीन[२२] और मृग[२३] वत् हमारी आदर्श आंखें हैं।[२४] हाथीवत् उन्नत नितंब चित्ताकर्षक हैं।[२५] सिंह[२६] कटि वीर पाते हैं। मोहिनी सुंदरियों की भी कटि सिंहवत होती है।[२७] बंदर मुख विरोधियों का है।[२८]

---

(१२) रामद्दल बंनर सयल। ७:८:१

(१३) हलि चलहिं मनहु मन्मथ्य पील। २:५:३१

(१४) भृंगी सुपन्ति गुन गरुय गाजि। २:५:३४

(१५) भ्रिंग कंठीव (गंगा जी की कंठ ध्वनि है।) ४:१२:१
और उसी की टीका

(१६) दसन सुत्ति सु नंदनं। १०:११:२७

सुतुई का शरीर अंडाकार डिबिया की तरह बीच से खुला हुआ होता है। शरीर का कोमल भाग दो कड़े ढक्कनों से सुरक्षित रहता है। यह बड़ा काहिल जीव है। किसी वस्तु में चिपके, बालू या कीचड़ों में अपना शरीर गाड़े रहता है।

(१७) पपील ३:१७:२८,

(१८) (सरस्वती की रोमावली) मनु पपील रिंगये। ३:१७:२८

(१९) अलि। १:१:१ , २:५:१६, अलिय ३:१७:२, भंग ४:१६:१
भंवर ६:१५:१८, भंमर २:५:२३, ८:१३:२, भमरे २:२०:२
भ्रिंग ४:१२:१, भृंगी २:५:३४, मधुप ७:२२:४, मधुलेहि २:५:२१
माधुर ६:६:२

(२०) उरग्ग ३:१७:६, कालीय १०:११:४६, नाग ६:३३:४, नागवी ५:७:३, पंहुरे ७:१७:२१, फुणिंद ६:२२:१, भुअंग ८:३:२,

कच्छ-मच्छ वीरों के अंग बने, कन्नौज-युद्ध के रक्त-सरोवर के तट पर तैरते थे।[२६]

क्रीड़ा विनोद के जीव —

मृग[३०] और मत्स्य[३१] क्रीड़ा-विनोद के साधक थे। संगीत-प्रेमी मृग[३३] वंशी तान पर मुग्ध होकर साथ लगे हुए थे। मृगियां[३४] और नागिने[३४] सरस्वती के उत्तम वैणिक-रस से

(२० का शेष) भुजंग ४:१५:२, भुजंगी १:३:४

(२१) (सुंदरियों के) अलि अलक। २:५:१६

(... की अलकें) अलकह .... । जानु भुजंग .... ।।
४:१५:१+२

(२२) मच्छ ७:१७:३२, मत्स्य ८:२६:३, मीन २:२८:३, ४:२३:१०,
६:६:२, ६:७:२, ६:१५:१२

(२३) कुरंग ५:१३:६, कुरंग ४:२०:४, ७:६:४३, कुरंगि २:५:६,
कुरंगी ५:३६:१, छिकारा ६:५:४, मृग ४:२:२, १०:११:४१
मिगी ५:७:३, मृगी ४:२३:२१, मृगु २:४:१

(२४) मीनों के समान संयोगिता के नेत्र हो रहे हैं। देखिए टीका
पृष्ठ १५४, पद ६:१५:१२, नेत्र बंगी कुरंगी ५:३६:१

(२५) नितंब उतंग जुरे वे गयंद। ४:२०:२५

(२६) केसरी ४:१४:१०, ६:१५:१२, मयंद ४:२०:२६, ५:२०:२,
सादुर ६:६:१, सिंघ ८:१०:२८, २:३:१२, २:३:३७, सिंह
८:३:१, ६:१४:४

(२७) मकरध्वज रिपु हीन राषउ मयंद। ४:२०:२६

(२८) मेछ (म्लेच्छ) .... । बनेचर तं भुषी। ७:१५:१+६

(२९) परे पानि जंघ धरंग निनारे। मनउ मच्छ-कच्छ करे तीर भारे।
७:१७:३१+३२

(३०) परे पंडुरे केस ते मीन सीसं। ७:१७:२१

(३१) (संयोगिता) जब अंकुर करि पानि चरावति बच्छ मृगु। २:४:३

(३२) (पृथ्वीराज) जल हंडह बहुक्कह करह मीन बरिहनु भुल्ल। ६:६:२

(३३) अवहि बंस विसतार बहु रंग रंगा। जिने मोहि करि
सथ्थिय लग्गे कुरंगा। ७:६:४३+४४

मंडराने वाले

चकित हो जाती थीं[३४]। कन्नौज के भीड़ भरी अगम्य हाटों में सुंदरियों के गाने-बजाने पर अभिमानिनी मृगियां ठिठक जाती थीं।[३५]

जीव

भौंरा घ्राण-लुब्ध[३६] है। सुवास-प्रेमी[३७] होने का कारण देवी[३८] और पद्मिनी सुंदरियों को घेरे रहता है। ३६ ये शस्त्र-रूप में पुरुष पर भी मंडराते हैं।[४०] पृथ्वीराज के ऊपर मंडराने वाले शस्त्र-भ्रमर के सदृश वेश के हो रहे थे।[४०]

गज, सिंह के स्वाभाविक गुण-आदर्श रूप में

`गज गामिनी`[४१] बाल प्रसिद्ध है। हथिनी के समान संयोगिता की सुंदर गति थी।[४२] वह अपनी मंद गति से गजों के मार्गों को उत्थापित करने वाली थी।[४३] इसने पृथ्वीराज में गज की मदोन्मत्तता भर दी थी।[४४] कन्नौज की सभी वनिताएं सिंहनियां थीं।[४५] दो सिंह (पृथ्वीराज और जयचन्द) भी वहां मिलते देखे गए।[४६] सिंह वीर पुरुष का संबोधन[४७] तथा वीरता का प्रतीक[४८] है।

---

(३४) वैनिय रसो चक्की मिगी नागवी। ५:७::३

(३ वीन का स्वर सुन कर सर्प के मुग्ध होने की बात सत्य नहीं है। सर्प के कान नहीं होते। वह चक्षुश्रवा है। आंख से सुन नहीं सकता, लेकिन त्वचा से सुनने या आहट पहचानने की उसमें अद्भुत शक्ति होती है। कवि द्वारा `सुन कर` न लिख कर `वैणीय-रस` से नागिन को चकित कराना प्रशंसनीय है।

(३५) वीन बाजं ति हथ्थे धरंती। दिष्षि अभिमान मृगी ठठुक्की ।।
४:२३:२०-२१

(३६) इत्तं या मद गंध घ्राण लुब्धा आलि भूरि आच्छादिता। १:१:१

(३७) लुट्टहि त भ्रमर सुग्गन्ध वास। २:५:२३

(३८) (सरस्वती को) अलित्त काय शासनं। ३:१७:२

(३९) (सुंदरियों के) भजि भंग सगुण्णि। ४:१६:१
(पद्मिनी संयोगिता के आसपास) रहन्तभंउर भौंर भौंर साह छत्र कामची। ६:१५:१८

(४०) सिर सरोज चहुआंन कढ भमर सस्त्र सम भेस वेस। ८:१३:२

प्रिय ध्वनि वाले जीव—

शंख [५७] भारत का शुभ वाद्य है । जयचंद के यहां प्रत्येक प्रहर सहस्र शंखों की ध्वनि होती थी । [५८] यह देखने में बड़ा सुंदर लगता है । सुष्ठु पांचजन्य शंख की तरह संयोगिता की सुन्दर ग्रीवा और उसकी त्रिबली रेखाएं थीं । [५९] बरसात में दादुर [६०] दल का सोर श्रवण गोचर होता है [६१] देवांगनाओं और अप्सराओं के समान जयचन्द के राजमहल की षोडस वर्षीय सुंदरियों के चलते समय उनके नूपुर की मधुर ध्वनि [६२] तथा पृथ्वीराज के हर्म्य में सुंदर नारियों के नव नूपुर का रव दादुर और शार्दूल के शोर के सदृश्य है, [६३] उल्लेखनीय है । तुलसीदास को भी "दादुर धुनि चहुं ओर सुहाई" थी, इससे जान पड़ता है कि उस काल विशेष में उल्लू की तरह [६४] मेंढकों को भी अधिक सम्मान दिया था ।

हिरन

हिरन [६५] की कस्तुरी की बिन्दी लगती है [६५] । हिरण तेज भागने [६६], कोमलता, [६७] और डरने [६८] का उदाहरण स्वरूप है । यात्रा के

---

(५७) संष ५:११:२

यह कोषस्थ जीव है । इसका शरीर बहुत कोमल और अखंडित एक कड़ी खोल या ढकने भीतर सुरक्षित रहता है । इसके ऊपर का खोल ऐंठी या घुमावदार होता है । यह मांसाहारी भी है । घोंघे और कछुओं को बड़े स्वाद से खाता है । इसका शत्रु तारा मछली अपने पेट की दीवार से एक तेज रस द्वारा इसके कोमल शरीर को घुला घुला कर, इनकी कड़ी खोल से इसे अलग करके, इन्हें भी मार कर खाता है । शंखनी एक बार में हजारों अंडे देती है जो चर्म के झवों जैसी कड़ी खोल में बंद रहते हैं ।

(५८) सत सहस्र संष ध्धुनि मुष्षिल जाम जयचन्द । ५:९८२

(५९) कलग्रीव रेह त्रिवल्लया । बानु पंचजन्न सु ठिल्लया । १०:११:२३१२४

(पांचजन्य शंख अर्जुन का प्रिय वाद्य था ।

(६०) दादुर ५:२४:४, ६:६:१ दादुल्ल ६:११:२

(६१) दादुल्ल दल सोर ..... । प्रावृट्ट पश्यामि ते । ४:११:२१४

(६२) (जयचन्द के राजमहल की) षोडस बरष स..... ।

मनहु सभा सुरलोक यहि चली अच्छरी समान । ५:२३:११२ (और इससे) चलंति सोभ नूपुरं । अनेक भांति सादुरं । अषाढ़ मोर दादुरं । ५:२४३ २ - ४

इस जंगली जीव का गज यूथ पर टूटना प्रसिद्ध है।[४९] हाथी भी निर्बलता का घोतक नहीं है।[५०] हाथी सुंदर सूंड का जीव है।[५१] वह इस सुन्दर हाथ (सूंड) में श्रेष्ठ राजा का छत्र धारण करता है।[५२] अपनी विशिष्टताओं के लिए यह घंटे से आभूषित होता है।[५३] इसका गंड-स्थल[५४] बहुमूल्य है।[५५] समूह में रहने के कारण इनका निवास स्थल " हाथियों का वन " नाम से जाना जाता है।[५६]

---

(४१) गयमंदा । २:८:१

(४२) ६:१५:१२ की टीका , पृष्ठ १५४

(४३) संजोगि...... । गय मग्ग उप्पन्नं । १०:११:११८

(४४) नृपति मनहुं मद्दग्गज सोभ । ६:२०:२

(४५) वनित आनि केसरी । ४:१४:१०

(४६) (पृथ्वीराज और जयचन्द कन्नौज में) मनु इकथल दुइ मयंद । ५:२०:२

(४७) संकुरिय सिंह (पृथ्वीराज के लिए संबोधित) गुरु जनन्नि वाहि । २::३ : १२

(४८) देष्षइ सम्भ तेहि (पृथ्वीराज को)(सिंघ रूप । २:३:३७

(४९) वन रष्षइ जउ सिंधु विंफ वन रष्षइ सिंधहि । ८:३:१

(५०) चंपइ वाहि बहुआन हरसिंघ नायउ । जिमे सेयल ते सिंघ गज जूथ पायइ । ८:१०:२७१२८

(५१) जिहि (पृथ्वीराज) बानावलि बानं प्राण कंम्पयु मद सिंधुर । ११:१८:३

(५२) तत्स्थाने कर पाद पल्लव यथा । २:२०:३

(५३) तिहि पद सिंधुर दंडिइ चंड सिर छत्र नृपति पर । ११:१८:४

(५४) घननंक ति घंट ति घंट घुरं । ७:४:११

(५५) मद मजं गंडस्थल । ५:४१:१

(५६) (पृथ्वीराज के पास जाते समय दूती शीघ्र ही) चल गयण प्रयण वनि । ३:४:६

प्रारंभ में दक्षिण (दाहिनी) ओर मृग भूमि को क्षण क्षण खुरेदै और सामने ध्रुव (उत्तर) की दिशा में सिंह दहाड़े तो वह शुभ का प्रतीक माना जाता है। मृग का चरना भी आवश्यक है।[६९]

मत्स्य

पृथ्वीराज, क्रीड़ा में मछलियों को मोती चुगाता था। जब वह मोती छोड़ता था तो दस लाख की संख्या में मछलियां उसको लेने के लिए आ जाती थीं। मोती मीन के लघु और लाल कंठ में, इसके ताम्बूल के रस के समान लाल हो जाता था। यदि मोती गंगा में झड़ जाता था तो मछलियां पंक में प्रविष्ट होकर ढूंढने लगती थीं।[७०] जल के विना मछली की तरह वियोगिनी की स्थिति होती है।[७१] अपने प्रिय भोज्य मछली के शिकार के लिए बगुलों को बड़ी एकाग्रता से तपस्या करनी पड़ती है।[७२]

---

(६३) दादुर सासुर सोर नव नूपुर नारि घन। ६:६:१

(६४) देखिए चिड़ियों के अध्याय में।

(६५) तस मध्य मृग मद विंदुजा। १०:११:४१

(६६) कहों फेरवे भूप आछे तुरंगा। मुंनुदिक्खियत वाय लग्गे कुरंगा।
४:१०:४ (ताजी घोड़े) मनउ रव्वि के रथ्थ आने पहारे।
उप्पमा केम दीजइ किकारा। ६:५:२+४

(६७) कोमल कुरंग किंचित किसोर। २:५:६

(६८) तिमिर तजि तेज भिय ज्यउँ कुरंग। ५:१३:६

(६९) राज सगुन सम्मुंह हुअ त्ति धुर तन सिंघ दहार।
मृग दक्खिन षिन षिन खुरहि सु चरइ न संभरिवार। ४:२:१+२

(७०) मुग ति मीननु मुत्ति लहंति जु लष्ष दह।।
होइ तुछ्छ तु तंमोर सरंत तु कंठ लह।
वंक प्रवेस इसंत तु झरंत गंग मह। ६:७:२-४
यह घटना कन्नौज में गंगा जी के तट पर हुई थी।

(७१) जिउं सुर तेव तुच्छत जल मीनह। २:२८:३

(७२) जिसे दासि के आस लग्गे सरुष्ष। मनउ मीन चाहंति बग
मध्य कूपा। ४:२३:६+ १०

नाग

उस काल में नाग को विशेष सम्मान प्राप्त था। इसके लिए नाग पंचमी का एक पर्व दिवस मनाया गया है। संभवत: उन लोगों का विश्वास था कि श्रेष्ठ नाग अपने सत् पर पृथ्वी को धारण कर हमारी महान् सहायता कर रहा है।[७३]

टिड्डी
वाराह

जयचन्द की आज्ञा होते ही सेनाएं टिड्डी[७४] दल की भांति पृथ्वीराज पर टूट पड़ीं[७५]। वाराह को जिस प्रकार शिकारी रुद्ध करता है, उसी प्रकार उसने (जयचन्दने) साँभर धनी को रुद्ध किया[७५] लेकिन पृथ्वीराज इतना धुनर्विद था कि विना तीक्ष्ण अग्र भाग के

घड़ियाल

वाण से सात घड़ियालों[७६] को भेज सकता था[७६]।

शाह शहबुद्दीन गोरी के जाते समय किनारे किनारे फारस

प्रवाल

के सहस्रों लाल लकरी इस प्रकार शोभित थे जैसे प्रवालों[७७] की पंक्ति हो।

---

(७३) धर सिर फुणिंदु। ६:२२:१ धर रष्षइ ति भुअंग।८:३:२
(७४) मनु अकाल टिड्डिअ सघन सु पव्वइ छुट्टि प्रवाह। ६:४:२
इसकी सवा चहा लाख जातियां हैं। ये झुंड में रहते हैं। "टिड्डी दल" प्रसिद्ध है। ये फसल के शत्रु हैं।
(७५) वाराह रोह जिमि पारधी इह रोकउ संभरि धनी। ७:२१:६
भगवान भले ही वाराह बनें, किन्तु किसी को "सुअर" कहने से ही पंचशील के भंग होने की संभावना बढ़ जाती है।
(७६) सिगिनि सरवर अग्रविनु सप्त हनन घरियार। १२:२७:२, १२:४३:१ घरियाल सरीसृपों में सब से बड़े कद का है। यह सिर्फ भारत में, वह भी सिर्फ गंगा, सिंध, ब्रह्मपुत्र, महानदी और उनकी सहायक नदियों में ही पाया जाता है। इसका चमड़ा बड़ा मजबूत होता है।
(७७) पार सहस्स लकरीय लाल। वरण सोभि तिपंति मनउ प्रवाल। १२:१३:५।६ प्रवाल समुद्र का निवासी है। यह मीठे पानी में कभी नहीं दिखायी पड़ता। इसकी संतान वृद्धि का ढंग बड़ा सरल है। उभय लिंगी जीव होने के कारण इसके बीज कोष इन्ही की

युद्ध की भयंकरता बढ़ाने वाले जीव

युद्ध को अधिक भयंकर बनाने के लिए रण भूमि के रक्त - सरोवर में कुछ बड़ी मछलियों की तरह श्रेष्ठ घोड़े फंसे हैं।[७८] कच्छप-से गज कुंभ उसमें उतराए हुए हैं।[७९]

उपसंहार

गुंजा, प्रवाल, शंख, सुतुई, मुक्ता, टिड्डी, चींटी, भौंरा, मछली, मेढक, घड़ियाल, कछुआ, सांप, हिरन, सुअर, हाथी, सिंह और बंदर आदि जीव-जन्तु देवी देवताओं के सानिध्य में, सुंदर अंगों के उपमान रूप में,[८०] युद्ध की भयंकरता वृद्धि[८१] में अथवा अपने विशिष्ट गुणों के प्रतीक रूप में[८२] आवश्यकतानुसार प्रयुक्त हुए हैं।

(७७ का शेष) झिल्लियों पर उग आते हैं, जो प्रौढ़ होने पर समुद्र में गिर कर फैल जाते हैं। इसी प्रकार शुक्रकीट भी, मूंगों के शरीर से गिर कर तैरते रहते हैं। दोनों मिल कर नए मूंगों को जन्म देते हैं। चट्टान बनाने वाले मूंगों की उत्पत्ति और वृद्धि शरीर में ही होती है। जिस समुद्र में मूंगों की चट्टान है, वहां का दृश्य परी लोक सा होता है। वहां की मछलियां, तितलियों सी रंगीन होती हैं। हमारे लाल मूंगे केवल आडियाट्रिक और भूमध्य सागर में मिलते हैं।

(७८) मछ्छ ति सैवर फुरहिं..... । ८:२५:३

(७९) कछुअ गजकुंभ । ८:२५:३

(८०) देखिए (न-जीव) की टिप्पणी संख्या १६ से २६ तक

(८१) ,, ,, (३०)(७८), और (७९)

(८२) ,, ,, (४१) से (५१) तक

घ-- पक्षी

(२० शब्दों का ३४ विभिन्न संदर्भों में प्रयोग हुआ है ।)

अनुच्छेद	संदर्भ
१ –	पक्षी का मानव से संबंध
२ –	उल्लू
३ –	काग
४ –	कोकिल
५ –	खंजन
६ –	गिद्ध
७ –	चक्रवाक
८ –	चातक
९ –	ताम्रचूड़
१०–	तीतर
११ –	तोता
१२ –	पपीहा
१३–	बगुला
१४ –	~~मयना~~ मैना
१५ –	मोर
१६ –	सारस
१७ –	हंस
१८ –	पक्षियों के प्रयोग का रूप
१९-२० –	विशेषताएं
२१–	उपसंहार

हमारे जीवन में पक्षियों[1] का महत्वपूर्ण स्थान है और उनसे हमारा अविच्छेद सम्बन्ध स्थापित है। दीवाल, पहिनावे, और खिलौनों में उनकी आकृति-मात्र से हम प्रसन्न होते हैं। सुकुमार रमणियां अपने अंगों में उनके चिह्न सदैव के लिए गुदवा लेती हैं। पक्षियों के एक जोड़े "क्रौंच-वध" ने आदि कवि वाल्मीकि को काव्य प्रेरणा दी। शकुन (पक्षी, तले रक्षित, ब्रह्मपुत्र, भारत से हमारे देश का नाम भारतवर्ष संबद्ध है। पृथ्वीराज रासो में भी अन्य कतिपय पक्षियों का विशेष संदर्भों में प्रयोग हुआ है जिसकी रूप रेखा निम्न रूप में प्रस्तुत की जा सकती है :-

(१) उल्लू --शांत और स्थिर व्यक्तित्व वाला पक्षी है। यह स्थिति प्रज्ञ पक्षी अपनी मूर्खता का प्रतीक बन गया है। गालियों में इसका नाम बहुत शीघ्र अपने आप आ जाता है। प्राचीन यूनान में सरस्वती और भारत में लक्ष्मी के वाहन रूप से सम्बद्ध होने के कारण लगता है कि पहले इनका समादर था। लेकिन आज इनका किसी घर पर बोलना अथवा आगमन किसी की मृत्यु के पूर्वाभास का कारण समझा जाता है। कवि समय है कि यह दिन में नहीं देखता। लेकिन यह बात भारत में पाए जाने वाले ४०:४५ किस्मों में केवल अन्न-संग्राहक उल्लू तथा मत्स्य उलूक में ही पायी जाती है। इस काव्य में भी इसी संदर्भ में इसका प्रयोग हुआ है। गजनी में नेत्र विहीन पृथ्वीराज ने, गोरी के मारने और स्वतः के मुक्ति पाने के लिए कवि चन्द के प्रेरणा प्रद एवं युक्ति संगत बातों को सुन कर अद्भुत रस का अनुभव किया और कहा कि कैसे संभव हो सकता है, मैं तो बंदी उल्लू हूं।[2]

---

(१) पाँच ६:५:३

(२) मह बंधउ मलूक। १२ : ३७ :२

(२) काग

काक भुसुंडि के ये वंशज बहुत ही चालाक और जातीयता प्रेमी हैं। ये सामान्य जीवन में धूर्तता के प्रतीक बन गए हैं। दूसरी चिड़ियों के मुंह में अपने को नहीं मिला पाते। अपना झगड़ा अपनी जातीय पंचायत में बैठ कर निपटा लेते हैं। धुन के इतने पक्के होते है कि काग चेष्टा बहुत ही प्रसिद्ध है। कहते हैं चित्र कूट से माता सीता के अंग में चोंच प्रहार के कारण, इनको निर्वासित होना पड़ा है। प्रातः मुहूर्त में बिना किसी भेद-भाव को सबको जगाने वाला, श्राद्ध पक्ष में सम्मान पूर्वक आहूत होकर मानव-प्रेतात्मा को शांति दिलाने वाला, प्रिय जन के संदेश वाहक, काग को " मधु तिष्ठति जिह्वा अग्रे हृदयेतु हलाहलम्" और तथा काली कलूटी कोयल की समता में लोग इसे हेय और त्याज्य समझते हैं। कवि ने भी इसे अपने काव्य में अच्छे संदर्भ में न प्रयोग करके विभत्सता की वृद्धि में लगाया है। पृथ्वीराज और जयचन्द के कन्नौज युद्ध में इतने अधिक योद्धा कट कर गिरे कि वह समस्त भूमि रक्त वर्ण की हो गयी। वहां रोष करते हुए " करास" पक्ष (काग) विचरण कर रहे थे।[२क] शायद इन्हीं अपमानों के प्रतिशोध में कौवा जाति मनुष्यों के अंगों और उनके वस्त्रों पर जहां कहीं भी अवसर पाया है अपने बीट से खराब करने का आन्दोलन-सा कर लिया है।

(३) कोकिल

यजुर्वेद की " अन्यवाय " (दूसरे के घोंसले में अपना अंडा रखने वाली) कालिदास की " परभृता " (दूसरों से पालित) और " विहगेषु पण्डितैषा जाति ", धूर्तराज कौवों को भी पाठ पढ़ा कर उनसे अपने बच्चों का दायी का काम करवा लेने वाली कोकिल पक्षियों में गान विद्या की गणिका है। कवि चन्द ने अपनी सर्व-गुण सम्पन्न नायिका संयोगिता और अन्य षोडसियों के बोल के लिए

(२क) रुलि चैत रवं बरंत करारं। ७:१७:२५

सर्वोच्च उपमान कोयल-कूक को ही अपनाया है[3]। कोयल की 'कुहू कुहू' में प्रेम व्यथा जगाने की अद्भुत शक्ति है। पृथ्वीराज के सुखदायक हर्म्य में कंठी (कोकिल) के कंठ के कोलाहल से मुकुरों में काम का उद्दीपन हो रहा है और ऐसे बसन्त ऋतु में पृथ्वीराज द्वारा भोगायित हो रही है।[4] कवि समय है कि वसन्त के बाद कोकिल नहीं बोलती, " अब तो दादुर बोलिहैं भए कोकिला मौन" पर यह सत्य नहीं है। वर्षा में भी यह गाती है। हां शीत ऋतु में इसकी बोल नहीं सुनायी पड़ती, क्योंकि शीत ऋतु के स्वभाव के प्रतिकूल है।

(४) खंजन

" जानि शरद ऋतु खंजन आए " (तुलसीदास) और अगणित की संख्या में जहां देखिए पूंछ को तेजी से हिलाते हुए प्रेम-गर्विता रमणी की चपल आंखों के सदृश्य किसी एक प्रात:काल को एकाएक दिखायी पड़ जाती है, जबकि इसके पहले दिन एक भी नहीं थे। कवि चंद ने संयोगिता के सौन्दर्य वर्णन में राजगुरु को बताया कि उसके चक्षु ऐसे लगते हैं मानो खंजन वत्स उड़ने का अभ्यास कर रहे हैं।[5] इस छोटी-सी चिड़या ने साहित्य में बहुत उच्च स्थान प्राप्त किया है। सूरदास मरते समय भी इसको नहीं भूले — खंजन नयन रूप रस माते। जन श्रुति है कि यदि पहले पहल भंडार के कोने में, हाथी अथवा सांप के मस्तक पर या गोबर के टीले पर दिखायी पड़े तो शुभ और ईशान कोण में दिखायी पड़े तो मृत्यु प्राप्त होती है।

---

(३) कल कंठ कोकिल बहया। १०:१:३०,
सबद सोभ ये चढ़े रवंति कण्ण कोकिले। ५:२५:१३०८४
मनहु कोकिला भाष संगीत लग्गे। ४:२३:१४

(४) कंठी कंठ कुलाहले मुकरया कामस्य उद्दीपनी। रते रत बसंत पत्त बरसा संजोगि भोगाइते।। ६:६:३१४

(५) अम्भिसहि खंजन बछ्रयो। १०:११:३८

(५) गिद्ध-गिद्धनी

लूलुआ, काग, चील्ह और गिद्ध विभत्स वर्णन में कवि की सहायता करते हैं। युद्ध भूमि अथवा स्मशान का विभत्स दृश्य निरूपण बिना इनके अधूरा होगा। गीध तो स्मशान के पण्डे हैं। रातो दिन वहीं रहते हैं। पृथ्वीराज और जयचन्द का कन्नौज में भयंकर युद्ध चल रहा था। बाणों के प्रवाह से योद्धा कट कट कर गिर रहे थे गिद्धनी-गिद्ध वहाँ चक्कर काट रहे थे।[६] बिना दूरबीन के बहुत दूर तक देख लेते हैं' गिद्ध दृष्टि' प्रसिद्ध है। बौद्ध कथाओं में वर्णित' गृद्ध-कूट' जान पड़ता है कि, राजगिरि की कोई ऊंची चोटी थी जहाँ बहुत से गृद्ध बैठते थे सीता जी को बचाने के लिए इनके पूर्वज' जटायु' ने रावण से लड़ कर अपना प्राणोत्सर्ग किया था तथा जटायू के भाई संपाती ने अपनी गिद्ध दृष्टि से सीता अन्वेषण में तत्पर बंदरों को उनका पता बतलाया था। ये सड़े गले मुर्दों की गन्दगी से हमें भी बचाते हैं। ऐसी स्थिति में राम की तरह इन्हें छाती से चाहे न लगायें पर इनसे घृणा भी न करना चाहिए। ये जल में न नहाते हैं और न धूल में लोटते ही हैं। धूप में डैना फैला कर सूर्य-स्नान इन्हें बहुत प्रिय है।

(६) चक्रवाक

इसे' सुर्खाब' भी कहते हैं। सुर्खाब का पर लगाना बड़प्पन का द्योतक है। साहित्य में इसका दाम्पत्य-प्रेम बहु वर्णित है। महाकवि बाल्मीकि ने इसे ' स्वर-प्रिय कहा है।[७] (रात्रिका आगमन समझ कर) तड़ाग-तट की रंगिनी -क्रीड़ा करने वाली बाला चक्वी, चक्वे से वियोगिनी हो गयी है।[८] रात्रि में जोड़े के अलग हो जाने की सत्यता ने कवियों के उपमानों के रूप में इसको ऊंचा उठा दिया है। जिस प्रकार से वियोगिनी चकी है

---

(६) भमक गिद्धनी-गिद्ध। ७:१७:२४

(७) अभ्यागतैश्चारु विशाल पक्षैः स्वर प्रियः पद्मरजोवकीर्णैः
महार्णदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः।

(८) तटाक बाल रंगिवी। चकी चक वियोगिनी ।। ७:१२:७१८

और चक्रवाक निशा के गत होने पर भानु के आगमन की वांछा करते हैं, उसी प्रकार पृथ्वीराज और जयचन्द के कन्नौज युद्ध में शूरों का चित था।[१०] चक्रवाक के वेष, वृत्ति[११] और सुन्दर नेत्रों[१२] को कवि चन्द ने निर्तकिनी नर्तकियों के वेश, वृत्ति और सुन्दर नेत्रों का उपमान बनाया है। इन्हीं अनेक अच्छाइयों को देखकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है — " चक्रवाक बक खग समुदाई, देखत बनइ बरनि नहिं जाई।"

(७) चातक

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में चातक और पपीहा को एक ही माना गया है। पर पक्षी-शास्त्र के पंडितों के अनुसार चातक, सामान्य से भिन्न काली जाति का पपीहा है। चातक वर्षारम्भ और पपीहा वसन्त से बोलता है। चातक, पपीहे की तरह पत्तों की आड़ में नहीं जाता, बल्कि आकाश में उड़ता हुआ बहुत दूर चला जाता है और वहां से बोलता है। कवि इस अन्तर से विज्ञ जान पड़ता है। पृथ्वीराज के सुखदायक हर्म्य के गवाक्षों के मुखों से उन्नमित मेघ-सा अगरु-धूम देख कर सारंग (चातक) क्रीड़ा करते थे।[१३] स्वाती बूंद की प्रतीक्षा में चातकी का पावस बहुत कष्टमय बीतता है, उसी प्रकार संयोगिता पृथ्वीराज के लिए अपना समय बिता रही है और उसकी आंखें बार बार गवाक्षों में जा लगतीं हैं।[१४] स्वाती जल के लिए "चातक -व्रत " संस्कृत और हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध है। पक्षी विशेषज्ञों की राय से इसमें कुछ ऐसी विशेष

---

(१०) निसि गत वंछीय भानं चक्की चक्काय सूर सा चित्त। ७:१८:१

(११) चक्रभेष चक्रवृत्ति वालि ता बिसाक्षियो। ५:३८:१८

(१२) कोकाच्छी ५:३६:२

(१३) अगर धूम मुष गऊष उन्नमत्त मेघ जनु। सारंग रंग। ६:५:११३

(१४) जिमि चातृकि पाव रति नच्चो। फिरि फिरि बाल गवच्छिन अच्छी। ६:२६:४१ १

ग्रन्थियां हैं जो प्रजनन काल की समाप्ति के बाद भी जारी रहती हैं। जब ये ग्रन्थियां अपनी क्रिया बन्द कर देती हैं तो ये मूक हो जाते हैं। स्वाती नक्षत्र के बाद इनके गले में वह ओज नहीं रहता जो वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद ऋतु में रहता है, अपितु इनका गान बन्द-सा हो जाता है, जिससे साहित्यकार समझते हैं कि स्वाति जल पाने के बाद इनकी सन्तुष्टि हो जाती है और प्राय याचना नहीं करते।

(८) ताम्रचूड़

इसका अंडा, मानसी भोजन में, दूध से भी बाजी मार रहा है। किसानों को उठाने के लिए यह एलार्म घड़ी का काम करता है। मुगल कालीन दिल्ली और लखनऊ में इसके लड़ाई की बड़ी धूम थी। यह गजनी देश के संदर्भ में आया है। सुल्तान के द्वार पर प्रभात होते ही अनेक धौंसे बजने लगे। ताम्रचूर्णों को कष्ट देने वाली सूर्य की किरणें दिशाओं- दिशाओं में प्रकट हुई।[१५] ताम्रचूर्णों को सूर्य की किरणों का कष्टमय होना विचारणीय है। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार इनका मूल स्थान दक्षिण पश्चिम एशिया है। सर्व प्रथम चीन ने इस जंगली पक्षी को चौदह सौ ईसा पूर्व में पालना प्रारम्भ किया था। अब तो मुर्गी पालन एक स्वतंत्र व्यापार बन गया है। अकेले अमेरिका में विश्व के एक तिहाई मुर्गियों का पालन होता है।

(९) तीतर

यह लड़ाकू पक्षी है। इसकी लड़ाई बहुत प्रचलित और मनोरंजक है। इसीलिए पाले भी जाते हैं। बिहार का देवघर इनको पालने के लिए विशेष प्रसिद्ध है। अन्य पक्षियों से भिन्न इसकी एक विशेषता और भी उल्लेखनीय है कि यह अपने संतति से जोड़ा नहीं बांधता। जोड़े में से एक की मृत्यु हो जाने पर, दूसरा चाहे अविवाहित रह जाय पर अपने सम गोत्री से जोड़ा नहीं बांधेगा।

---

(१५) भयु बिहान सुरितान दर बज्जि निसानं निसानं।
तमचूरन चूरण किरणि त प्रगति दिशानं दिशानं।।
१२:१८:११२

इनके झुंड होते हैं। एक झुंड वाले दूसरे झुंड वाले के साथ जोड़ा बांधते हैं। कन्नौज गमन के समय सिर पर उड़ते हुए तीतर को देख कर चन्द ने पृथ्वीराज से बताया कि यह शुभ है।[१६] डाक कवि ने नगर प्रवेश करते समय समय के संदर्भ में कहा है कि यदि तीतर बाएं से दाएं उड़ता हुआ दिखायी दे तो अभीप्सित वस्तु की प्राप्ति होती है।[१७]

(१०) तोता

यह पक्षियों में ज्ञानी अथवा पंडित है। राम-नाम का याद दिला कर इसने गणिका को मोक्ष दिलाया था। आज भी पालतू तोता अजनबी नवागन्तुक के आने पर शोर करके अपने स्वामी को सावधान कर देता है। तोते के माध्यम से ही जगद्गुरु शंकराचार्य ने ख्याति प्राप्त विद्वान पं० श्री मंडन मिश्र का पता लगाया था।[१८] मुगल बादशाह तथा विश्व सुन्दरी नूरजहां हाथों में लेकर वैसे ही घूमती थी जैसे धन रूप संपन्न महिलाएं कुत्ता लिए आज घूमती हैं। यह सामाजिक प्राणी की तरह समूह में रहना पसन्द करता है। इनका दाम्पत्य प्रेम बड़ा गंभीर है। चोंच में चोंच मिलाकर प्यार प्रदर्शित करते हैं। घड़ी का समय बताना, बन्दूक चलाना और भविष्य सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देना आदि अनोखे कार्यों को संपादित कर यह गरीबों को अर्थोपार्जन कराता है। पहले प्रत्येक घर में इसका पिंजड़ा मिलता था। गाजी फ़ज़ल हुसेन खां ने गदर से उत्पीड़ित भागते हुए दिल्ली नागरिकों के संबंध में लिखा है कि ` न सर पर टोपी है उनके, न पावों में जूती, बगल में तोते का पिंजड़ा' सभी लिए हुए थे। यह है तोता-प्रेम। शायद तट पर कोटर प्रेमी तोता

---

(१६) परम भांति प्रतिहार जिह करिहि त कब्ब प्रमानं। ४:३:२

(१७) पुर पैठत जो वाम तें, तीतर दक्षिण जाय,
कथि ` डाक' शुभ शकुन यह, मिलतो सब मन भाय।।

(१८) जगद्ध्रुवंस्यात् जगद्ध्रुवंस्यात् शुकांगना यत्र गिरो गिरन्ति,
द्वारस्थनीडान्तर सन्निरुद्धा जानीहि तं मंडन पंडितौकः।

ही होने की अपने इच्छा महर्षि बाल्मीकि ने गंगा जी से व्यक्त की थी कि "।तवार तरु कोटरान्तगते गंग विहगो वरं।" इनका रंग बहुत सुन्दर होता है। कन्नौज की नायिकाओं के कुसुम्भी चीर कीर की शोभा के थे।[19] ये इतने बिम्बाफल-प्रेमी होते हैं कि संयोगिता के पक्के बिम्बवत अधर को शुक हठ पूर्वक अंकित न करदे, इसका बड़ा भय लगा हुआ था।[20] सुन्दरियों के मंजीर नूपुर आरोह अवरोह युक्त ऐसा शब्द करते थे मानो मन्द, मृदु तथा तीव्र स्वरों में प्रकीर (तोते (बोल रहे हैं।[21]

(११) पपीहा

भारत के लोक गीतों में इसकी चर्चा सबसे अधिक हुई है। यह समय असमय का ध्या न देकर "पिउ पिउ" रटता है। इससे परदेशी प्रियतम की स्मृति जागृति होकर सुप्त विरह-वेदना को उभाड़ मिलता है। विरहिणियां इसे "पापी" शब्द से सम्बोधित करती हैं। कहते हैं यह विरहिणियों को जलाता है। लेकिन वास्तव में यह स्वत: स्वाति बूंद के लिए तड़पता रहता है। कवि समय है कि यह स्वाति बूद को छोड़ कर और कोई पानी नहीं पीता। वर्षा ऋतु इसके लिए विशेष रूप से दुःकर है। षड ऋतु वर्णन में पावस में पपीहा चीत्कार रहे हैं।[22] जैसे आधुनिक महिलाएं गृहस्थी के रस-हीन कामों में नहीं फंसना चाहतीं, गाने-बजाने, नृत्य और पार्टियों में समय देना अधिक पसन्द करती है, वैसे ही पपीहा भी अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण भोली-भाली चढ़ीं पक्षी को सौंप कर स्वत: मस्ती के साथ सदा गीत गाती रहती है। इसके गानों को महाराष्ट्र वाले "पाउस आला" (पावस आता है) कह कर वर्षारंभ की सूचना देना, ऐसा समझते हैं। अंग्रेज इसे "ज्वर-ग्रस्त-मस्तिष्क पक्षी कहते हैं। इससे उनकी नींद हराम होती है।

---

(१९) कुसंभ सा चीर-सा कीर सोभा। ४:२३:१७

(२०) सुक सालि आलिन चढंनं। १०:११:२६

(२१) रोहि आरोहि मंजीर सद्दं। मंदु मृदु तेज परकीर वद्दं। ४:२०:३१+३२

(२२) पप्पीहान चीहायते। ६:११:२

(१२) बगुला

" मुंह में राम बगल में छुरी " ऐसे धार्मिक व्यक्तियों को " बगुला भगत " कहते हैं जलाशयों में योगियों कीसी योगमुद्रा में उसे देख कर जब भगवान राम को भ्रम हुआ और कहा :- पश्य लक्ष्मण: पम्पायां बक: परम धार्मिक: ।" तो अबोध मछलियां धोखे में इसके पास आ जायं कोई आश्चर्य नहीं । मछली को देखते ही इसकी सारी सीधाई गायब हो जाती है । उसको एक ही झपट में पकड़ कर निगल जाता है । " बग ध्यानी " प्रसिद्ध है । स्वरूपा दासियों की आशा में लोग टकटकी लगाए हुए हैं, मानों बगुले कूप में मछलियों को ताक रहे हैं,[२३] की समता इसकाव्य में बहुत सार्थक प्रतीत होती है, पर बगुले का कूप में जाना विचारणीय है । बगुले दिन को शिकार अलग अलग करते हैं, किन्तु निशा निवास एक ही वृक्ष पर अनेक की संख्या में साथही साथ करते हैं और रात्र भर बैठने के स्थान के लिए कुछ झगड़ते हैं । दिन में साधु रात्रि में झगड़ालु, यह उनकी स्वाभाविक विशेषता का सूचक है ।

(१३) मैना

यह बोली का टेप रेकार्डस है । कई एक मैना इकट्ठी होकर शोर द्वारा इस बात का सिगनल देती हैं कि सांप, चोर, अथवा कोई जीव-जन्तु घुस आया है । सुन्दरी हैलेन के लिए ट्राय-युद्ध के सदृश्य इनमें भी मादा के लिए युद्ध हुआ करता है । पृथ्वीराज के हर्म्य में गवाक्षों के मुखों से उन्मनित मेघ-सा अगरधूम देख कर सारिका (मैना) क्रीड़ा करते थे ।[२४] इनके बिम्बफल प्रेम को देख कर संयोगिता के पक्के बिम्बवत अधरों के प्रति भय था कि यह हठ पूर्वक उसे खंडित न कर दे ।[२५] मनुष्य के घरों से इसका इतना प्यार

---

(२३) चिते दासि के आस लग्गे सरूपा ।
मनउ मीन बाछंति बग मध्य कूपा । ४:१०:१६ + १०

(२४) अगर धूम मुष गउष उन्मयउ मेघ अनु । सारंग रंग ।
६:५:११३

(२५) अधर पक्क सु बिंबं । सालि आछिन षंडन । १०:११:२५+२६

है कि दिन भर आँगन अथवा छतों पर घूमती रहती है। कभी कभी तो 'शयन कक्ष' में अपना घर बना कर यह असुविधा पैदा कर देती है।

(१४) मोर

इस रंगीन पोशाक वाले कला-पूर्ण पक्षी से संबंधित 'मोर मुकुट' और 'मयूर तख्त' प्रसिद्ध हैं। कामनियों के जूड़ा-पाश और पाठकों की पुस्तकों में भी इसके पंखे देखे जा सकते हैं। वर्षा काल में अपने मित्र काले काले घने मेघों को देखते ही इसका अजीब सा हाल हो जाता है। नाच और कूद कर समा बांध देता है। मोरनियां जिन्हें हिन्दी साहित्यकारों ने कल्पना से कहीं कहीं नचा दिया है किन्तु वास्तव में नाचती नहीं, पास में खड़ी मोर नृत्य को समुग्ध देखती हैं पृथ्वीराज के सुखदायक हर्म्य के गवाक्षों के मुखों से उन्नयित मेघ-सा अगरु धूमि देखकर मोर नृत्य करते और मत्त ध्वनि में शब्द करते थे।[२६] यह ब्रह्मपुत्री सरस्वती का वाहन है।[२७] इस पक्षी को महान् सिकन्दर अपने साथ योरोप लेता गया था। बाद में वहां भी इसका प्रचार हुआ। ग्यारहवीं सदी में ईराक देश में यहां से मोर ले जाकर पालने का प्रयत्न किया गया पर वहां की नस्ल में भारत जैसा सुन्दर मोर नहीं हो सका। हमारे देश को अच्छी पक्षियों के होने का गर्व है। मनुष्य के शत्रु जहरीले सांप से इसकी नहीं पटती। उसे पूरा का पूरा निगल जाता है और डकार तक नहीं लेता। भारत सरकार ने भी इसे राष्ट्रीय पक्षी घोषित कर इसके गौरव की अभि-वृद्धि की है।

(१५) सारस

ऊंची टांग, लम्बी गरदन और ऊंट जैसे बदन के कारण सारस लोगों में पक्षियों के विषय में जानने की रुचि उत्पन्न करता है। इसके पास जाइए तो क्रोध में कुछ कर्कश स्वर बोल कर विमान की तरह थोड़ी दूर दौड़ता हुआ उड़ जाता है। पालतू होने पर रात्रि में चौकीदारी भी करता है और नवागन्तुक को चंचु प्रहार करके अन्दर आने से रोकता है। सुसंस्कृत समाज की तरह इसमें एक पत्नीव्रती का संस्कार पाया जाता है। जोड़े में एक की मृत्यु पर

---

(२६) देखिए इसी अध्याय की टिप्पणी संख्या २५

दूसरा पास में बैठ कर बहुत रोता है और फिर जोड़ा नहीं बांधता इसका दाम्पत्य प्रेम बहुत गंभीर होता है। अक्सर नर और मादा मुंह में मुंह डाले पड़े पाए जाते हैं। इसीलिए इसको ` रस लुब्धा ` कहा गया है।[२८] युवक और युवतियों की सुमति अनंग भय से उसी प्रकार नष्ट हो चुकी थी जिस प्रकार रस लुप्त सार स की हो जाती है।[२८] भविष्य में पानी कितना बरषेगा, पहले से ही यह जान जाता है और उसी के अनुसार अपना अंडा ऊंची अथवा नीची जगह पर देता है। लोग इसके प्रजनन-स्थान के ऊंचाई नीचाई से भावी वर्षा की मात्रा का अन्दाज लगाते हैं। चीन के लोग इसका आदर करते हैं। इसे सुख-समृद्धि का कारण मानते हैं। इसकी एक जाति का संसार से लोप होता जा रहा है। सर्वत्र बहुत खोजने पर केवल ३० मिले हैं उनमें से एक जोड़े को अमेरिकी सरकार ने पाल रक्खा है। ९६ ह

(१९) हंस

शीत काल के हमारे इस अतिथि के सम्बन्ध में ` नीर क्षीर-विवेकी, ` मुक्ता-दूध-आहारी, ` मानसरोवर वासी`, ` जल का निर्लेप विहारी ` आदि अनेक जनश्रुतियां सुनी जाती हैं। अमर कोष ` राज हंसास्ति ते चञ्चु, चरणैर्लोहितैः (शरीर सित तथा चरण और नेत्र लोहित वर्ण) से परिचित है। सरस्वती का वाहन। पवित्रता का प्रतीक यह सबसे सुन्दर पक्षी है। कई जातियों में केवल मूक हंस भारत में पाया जाता है जो काश्मीर के आस-पास आकर फिर वापस चला जाता है। यह पानी के अन्दर नहीं तैरता, छिछले पानी में सदैव रहने के कारण जालपाद होता है। दूध पानी को अलग करने की क्षमता इसमें नहीं होती। मोती चुनना

---

(२७) निरखने निरखित बानु कंभ पुचि बाहने। ५:३८:११६ (टीका)में मयूर का उल्लेख है।

(२८) जुव जन जुवती गॉव सुमति अनंग भय। जिम सारस रस लुब्ध। ७:२२:३१४

भी, कुछ लोगों का कहना है कि सही नहीं है । इस काव्य में इसके नृत्य मत्त ध्वनि, मुक्त-ग्रहण और जोड़े में साथ साथ रहने की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है । पृथ्वीराज के हर्म्य के अगर धूम को देख कर मराल नृत्य करते और मत्त ध्वनि में शब्द करते हैं ।[२९] वह मुग्धा मंडली ऊर्ध्व आरोह में चल कर जब अवरोह में चलती थी तो वह ऐसी लगती थी मानों मराल-माला धुति पूर्ण मुक्ता-मला ग्रहण कर चुग रही हो ।[३०] संयोगिता ने पृथ्वीराज को जाने से रोकने के लिए तर्क देती हुई बताया कि जिस प्रकार हंस हंस होता है, यसी प्रकार हंसिनी भी हंसिनी होती है अर्थात् आजीवन दोनों साथ रहते हैं ।[३१]

पक्षियों के प्रयोग- संदर्भ

इस काव्य में पक्षियों का प्रयोग (१) आभूषण तथा नर-नारी के बोल से समता[३२] (२) केलि विलास की पृष्ठभूमि[३३] (३) युद्ध की भयंकरता[३४] (४) शुभ-अशुभ-विचार[३५] और (५) पक्षियों की विशेषताओं से भाव-संवर्द्धन[३६] के रूपों में हुआ है ।

---

(२९) वे अगर धूम पुञ्ज गउष उन्नयउ मेघ अनु
स मराल निरषीह रन्नहि मत्त धुनि । ६:५:१:२

(३०) उरध्ध मुघ्ध मंडली अरोह रोह चालिनं ।
ग्रहति मुत्ति दुत्तिमा मनुं मराल मालिनं । ५:३८:१९। २०

(३१) जस हंस हंस तस हंसनी । १०:२५:६

(३२) ५:२४:१, ५:२४:३। ४ , ४:२०:३१। ३२, ५:२४:१३।१४
१०:११:३०, ४:२३:१४

(३३) ६:५:२, ६:५:३ , ६:६:३। ४

(३४) ७:१७:२४ से २६, ३०, ७:१२:८

(३५) ४:२:२ , ४:३:१। २

(३६) १२:३७:१।२ , १०:११:३८, ५:३६:२ , ५:३८:१८, ७:१८:१
६:२६:४, १२:१८:२, ४:२३:६। १० , ७:२२:४, ५:३८:१९।२०
१०:२५:६, ४:२३:१७

विशेषताएं

सुंदर रव वाली रागवती,[३६] मत्त ध्वनि,[४०] नृत्य, क्रीड़ा करना,[४१] कामुद्दीपक बोल[४२] मांसभक्षक,[४३] अंधापन,[४४] चपलता,[४५] सुंदर आंख,[४६] वृत्ति विशेष[४७] रात्रि में जोड़ों का वियोग,[४८] दिन की वांछा करना,[४६] सहिष्णुता,[५०] साथ साथ रहना,[५१] सूर्य की किरणों से दुखी,[५२] वर्षा सुखकर,[५३] वर्षा दुखकर,[५३] एकाग्रता से देखना,[५४] रस-लुब्ध,[५५] बिम्ब-फल-प्रेमी,[५६] और मुक्ता-ग्रहण[५७] आदि विशेषताओं से युक्त पक्षी-गण दिखलाए गए हैं।

उल्लू को अंधेपन,[५८] कोकिल को मधुर, संगीत प्रेमी, तथा कामोद्दीपक बोल,[५६] खंजन की चपलता,[६०] गिद्ध-गिद्धिनी को मांस-भक्षक[६१] चक्रवाक को नृत्य, सुन्दर वेश, क्रीड़ा करना,[६२] आंख सुन्दर, वृत्ति विशेष (नृत्य में) रात्रि में वियोग-दुख, दिन की वांछा करना, चातक को क्रीड़ा करना पावस में स्वाति बूंद के प्रतिक्षा में कष्ट से बिताना[६२] ताम्रचूर्ण को सूर्य की करिणों कष्टकरी,[६३] तोता को सुन्दर रंग, रव, बिम्बाफल-प्रेमी[६४] पपीहा को वर्षा दुःखद,[६५] बगुला को चित्त एकाग्र कर ताकना,[६६] मोर को मधुर रव और नृत्य,[६७] सारिका को

---

(३६) ५:२४:१, ५:२४:४, ५:२४:१३। १४, १०:११:३०, ४:२३:१४
५:३८:२

(४०) ६:५:२,

(४१) ६:५:३, ७:१२:७

(४२) ६:६:३

(४३) ७:१७:२४

(४४) १२:३७:२

(४५) १०:११:३८

(४६) ५:३६:२

(४७) ५:३८:१८ (४८) ७:१२:८ (४६) ७:१८:१ (५०) ६:२६:४

(५१) १०:२५:६ (५२) १२:१८:२ (५३) ६:११:२ (५४) ४:२३:१०

(५५) ७:२२:४

(५६) १०:११:२६

क्रीड़ा करना, बिम्बा फल प्रेमी,[६८] सारस को रस लुब्ध,[७०] मराल को नृत्य, मत्त ध्वनि, मुक्ता ग्रहण करना, तथा जोड़ों में साथ-साथ रहनी[७१] आदि विशेषताओं को दिखलाया गया है।

उपसंहार

उल्लू, काग, कोकिल, खंजन, गिद्ध-गिद्धनी, चकवा-चकवी, ताम्रचूर्ण, तीतर, तोता, पपीहा, बगुला, मोर, शुक-सारिका, सारंग, सारस और हंस आदि पक्षी-गण शृंगार और विभत्स, रसानुभूति कराने तथा भावी कार्य होगा कि नहीं और कैसे होगा आदि उत्कंठा की भावनाओं को तुष्ट करने में सहायक हुए हैं।

---

(५७) ५:३८:२०, ४:२५:३४,

(५८) १२:३७:२

(५९) ५:२४:१३+१४, १०:११:३०, ४:२३:१४, ५:३८:२, ६:६:३

(६०) १०:११:३८,

(६१) ७:१७:२४

(६२) ६:५:३ , ६:२६:४

(६३) १२:१८:२

(६४) ४:२३:१७ , ४:२०:३२, १०:११:२६

(६५) ६:११:२,

(६६) ४:२३:१०

(६७) ५:२४:४, ६:५:२

(६८) ६:५:३, १०:११:२६

(६९) ६:५:३

(७०) ७:२२:४

(७१) ६:५:२, ५:३८:२०, ४:२५:३४, १०:२५:६

ह० — खगोल

(२६ शब्दों का विभिन्न ११६ संदर्भों में प्रयोग हुआ है ।)

अनुच्छेद	संदर्भ
१—	ब्रह्माण्ड, प्रलय, तीनों पुर (आकाश, पाताल, मृत्यलोक)
	बैकुण्ठ और नाग लोक
२—	विश्व — आकाश गंगा
३—	सूर्य
४—	चन्द्रमा
५—	नक्षत्र-ग्रह
६—	हवा, मेघ और बिजली
७—	उपसंहार

ब्रह्माण्ड — कन्नौज में पृथ्वीराज और जयचंद के बीच इतना भयंकर युद्ध हुआ कि कमल सुत (ब्रह्मा) ने अंबु (जल-क्षीर सागर) में कमल को नहीं पाया और (इसलिए) शंकित होकर ब्रह्माण्ड को पकड़ लिया[२]। प्रलय के[३] बाद सृष्टि-रचना की इच्छा होने पर भगवान ब्रह्म के निःक्षेप किए हुए वीर्य के देदीप्यमान महान् अंडे से निर्मित होने के कारण इसका नाम ब्रह्माण्ड पड़ा[४]। अन्यत्र, उसी युद्ध में, रण की भयंकरता दिखाने के लिए तीनों पुर

प्रलय

त्रैलोक्य (आकाश, पाताल और मृत्युलोक) के कांपने का वर्णन किया है[४]। कवि चंद के मति-संचरण की सीमा में भी ये ही तीनों पुर पृथ्वीराज ने बताया[५]। कीर्ति के लिए(राजा बलि ने भगवान वामन को सर्वस्व दान में) तीनों लोक दे दिया था[६]। इन तीनों पुर की स्थिति शेष के सिर पर और सूर्य के नीचे है।[७] मत्स्य पुराण भी यही कहता है कि ब्रह्माण्ड से सर्व प्रथम आदि में सूर्य की उत्पत्ति हुई जिससे कि वह आदित्य कहलाया और तदनन्तर स्वर्ग-

वैकुंठ लोक एवं मर्त्यलोक आदि बने।[८] रवि मंडल के ऊपर वैकुंठ है।[९]

---

(२) संकिय ब्रह्म ब्रह्माण्ड गहियं। ७:६:८

(३) इम जंपइ चंद विरद्दिया सु कहा निपट्टिहि इह प्रलय। ३:२७:६
किंतु यहां 'प्रलय' संकुचित अर्थ 'अचानक घटना' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

(४) कंपियं तीनपुर कैलि पयं। ७:६:२

(५) तिहु पुर तुम मति संचरइ। ३:२५:२

(६) तिनि किंत्ति काज त्रैलोक्य दीन दीनं। २:३:१६

(७) सेस सिरप्परि सूरतर। ३:२६:१

(८) मत्स्यपुराण अध्याय २, २८ से ३७ तक

(९) ८:१५:१, ४:४:२, ८:१४:३

(१०) ३:२२:१, ४:२३:१२, ५:२३:२, ६:३३:४, ७:१०:२२
देवपुर ७:४:१२, १२:४६:४

इस काव्य में सुरलोक[१०] के साथ नागलोक [११] का भी वर्णन है।

विश्व

विश्व,[१२] जिसे जग,[१३] जग्गु,[१४] जुग,[१५] जगत[१६] और आलम [१७] भी कहा है, में नक्षत्र,[१८] ग्रह,[१९] समुद्र,[२०] पहाड़,[२१] भूमि[२२] और जीव-जन्तुओं का उल्लेख है। आकाश में सूर्य मंद पड़ने पर (कन्नौज युद्ध में सैन्य संचालन के कारण) (आकाश) गंगा[२४] के कूल पर भाग कर आए हुए समुद्र-सुमन (चन्द्रमा) प्रसन्न होने लगा।[२४] यह आकाश गंगा फुला हुआ प्रकाश-सा बहुत दूर नक्षत्रों की भीड़ है, जबकि चन्द्रमा, पृथ्वी, ग्रह का भी एक उपग्रह है जो केवल पृथ्वी के चारों ओर ही तक चक्कर लगा सकता है। यह कवि की काव्यात्मक सूझ है।

आकाश गंगा

सूर्य

सूर्य [२५] नक्षत्रों से घिरा हुआ[२६] तेज [२७] और ताप [२८] से युक्त किरणें बिखेरता हुआ[२९] चलता है।[३०] यह चलना सुमेर की भांवरें भरना है।[३१] उसका वर्णन कंचन-सा है।[३२] उसके जाने पर

---

(१०) देखिए पिछले पृष्ठ पर।

(११) ७:५:४, नागपुर ३:२२:१

(१२) १:४:४

(१३) ४:२०:५   (१४) २:३:३८   (१५) २:६:१

(१६) ४:११:११   (१७) ११:७:३,   (१८) ११:१३:२

(१९) ३:३१:४   (२०) दरिआव ५:१३:२२, दरिआउन ७:४:८
    महोदधि ७:२२:१, समुद्द १:४:११, ७:४:१, ७:१२:३, ८:६:६
    सिंधु २:३:३

(२१) गिर ७:५:३, गिरि ४:११:४, पब्बअ ६:१४:२, पब्बय-६:१४:२
    पब्बत ७:६:१, (२२) २:३:८ (२३) इंबर ७:४:१३, अंबर
    ८:३२:३, अम्बर ७:४:१३, अयास २:५:२४, ३:११:६, गगन
    ६:२२:१, थिवलोक ६:४:१, नुभ ४:१:५, नभ ७:२८:२

(२४) भंमर गंग कुल्लये। समुद्द सुन फुल्लये। ७:१२:१३/१४

(२५) अर्क ४:६:१, ४:२२:२, ५ : १० : २, अरुण १२:१२:२ तरणि
    ३:२०:३, ६:५:८, दिणगिअर ४:१८:१, दिनेस ४:२५:२२,

अंधेरा हो जाता है।[33] तीन तीन पहर के दिन और रात होते हैं।[34] रवि और पुष्य (नक्षत्र) का योग अश्वमेध यज्ञ के लिए शुभ है।[35] इसकी बहुत दीर्घायु[36] है। राहु इसको ग्रसता है।[37] रथ इसकी सवारी है।[38] जिसके एक घोड़े का नाम उच्चैःश्रवा है।[39] कन्नौज में ही सूर्य को महोदधि मध्य[33] और सुमेरु पर्वत की आड़[31] में दोनों ढंग से जाते देखना विचारणीय है। चन्द्रमा[40] सुन्दर[41] और शीतल[42] चांद रात में ज्योतित[43] होता है। रात्रि के बाद उसकी आभा विनष्ट हो जाती है।[44] समुद्र में ज्वार भाटा अथवा बात रोगी

(२५ का शेष) भान ३:३०:१,४:३:१, ११:१३:२, १२:५१२,
 मित्त ७:४:१८, ७:२२:१, रवि २:६:१, ३:२४:२, ४:४:२,
 ८:१४:३, ६:५:२, ७:६:६, १२:२:२, सूर २:१८:३, ५:१७:१.
 ५:१६:२, ६:११:२, ८:६:६, ८:६:१४, १२:१८:२, रूंस ४:६:१

(२६) ११:१३:२,

(२७) २:१८:३, ३:२४:२, ४:२२:२, ६:५:१८, १२:१५:२,

(२८) ३:२४:२

(२९) ३:३०:१, ४:६:१, ४:२५:२२, ६:११:२, १२:१८:२

(३०) ७:२२:१ (३१) जानु भांवरि भानु सुमेर करइ। ८:६:१४
 अपने धुरी पर और किसी केन्द्र के चारों ओर सूर्य का घूमना आज भी मान्य है।

(३२) ४:६:१

(३३) मित्त महोदधि मध्य भा दिसंत ग्रसंत तम। ७:२२:१

(३४) अयत याम बासर विसर घटिग रूंस तनु रात। ४:६:१

(३५) रवि जोग पुष्य । ४:६:१

(३६) जब लग्गि रवि तब लगि चलइ कविततइ। ८:६:६

(३७) राह ग्रिंगि सूर मइ। ५:१६:२

(३८) मनउ रव्वि के रथ्थ आने पधारे। ६:५:२

(३९) किमे उच्चासु रवि नथ्थ नहियं। ७:६:६

(४०) इंदु २:४:२, २:१२:१८, ३:१७:८, १०:११:४२, इन्दो २:१०:१

को अमावस्या और पूर्णमासी के दिन की भांति कुंद[४५] फूल में भी चंद्र के आकर्षण शक्ति का प्रभाव पड़ता है। इसमें धव्वे हैं। [४६] आकाश गंगा को छोड़ कर भागना[४७] और दिन में सूर्य के मन्द पड़ने पर(युद्ध में उत्पन्न धूल के कारण) चन्द्रमा का प्रकाशित होना[४८] काव्यात्मक उक्ति है। वैज्ञानिक सत्य नहीं है। चन्द्रमा तारों का पति[४९] कहा गया है। यह सदैव रहने का प्रतीक है। [५०] रवि और पुष्य योग के साथ ससि का तीसरे स्थान में होना अश्वमेध यज्ञ के लिए शुभ है। [५१] इसमें अमृत है।[५२]

(४० का शेष) ५:७:४, चन्द १:३:२, १:३:३, २:५:२४, ४:१४:३४ ६:२६:२, ६:१०:४, ६:१२:३, चन्दु १२:४२:१, दुज ४:२५:२४, ६:१४:४, नक्षत्रपति ३:११:६, विधु ५:३२: १, रतिरीकंत ३:२६:५, रतिअपति ३:४:३, समुदसुन ७:१२:१४, ससि २:६:१ ७:२८:४, सोम ६:२८:२,

(४१) २:४:२, ३:१७:८, ६:१४:४

(४२) ६:१०:४, ६:२८:२

(४३) १२:४२:१, ३:४:३, ३:२६:५, ५:३२:१

(४४) हम परउ अयास अवास तह जिमि निसि नसित नक्षतपति ३:११:६

(४५) मिलि चंद कुंद फुल्लिय अयास २:५:२४

(४६) जस इंदु नंद ति सिंधुजा। १०:११:४२, ललाट आह, सरद चंद लज्जए। ४:१४:३४

(४७) हरप्पि इंदु छडने। ७:१२:१८, भंगत गंग कुल्लये, समुद सून फुल्लए। ७:१२:१३+१४

(४८) ७:१२:५+६ + ७ + ८ +१३ + १४

(४९) ३:११:६ (५०) गुरु कोजि मनो नास्ति तात आसात अयास वर्जिता, तस्य कार्य विनस्यंति यावत् चंद दिवाकर। ६:२६:१+२

(५१) रवि जोग पुष्य ससि तीय थान। २:६:१

(५२) इंदो कि अंदोलिया अमीए। २:१०:१, महष अमृत भरहि। ६:४:२

नक्षत्र-ग्रह

तारे[५३] चमकते[५४] हैं। सूर्य के आगमन में ये झिलमिलाने लगते हैं।[५५] नक्षत्रों में अगस्त,[५६] ध्रुव[५७] पुष्य[५८] मृगशिरा,[५९] रोहिणी[६०] और ग्रहों में मंगल,[६१] बुद्ध,[६१] गुरु[६१] शुक्र,[६२] शनि[६१] और नवग्रह[६३] का उल्लेख हुआ है। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि और ध्रुव चमकते हैं।[६४] अगस्त और पुष्य नक्षत्र के आकर्षण शक्ति के प्रभाव में किया हुआ काम सफल होता है।[६५] ध्रुव उत्तर में स्थिर तारा है।[६६] मृगशिरा और शुक्र कुछ समय के लिए प्रातःकाल में हमारे सम्मुख पड़कर चमकते हुए दिखाई देते हैं।[६७] नवग्रह के आकर्षण शक्ति से कभी कभी कुछ लोगों का मानसिक असंतुलन हो जाता है।[६८]

---

(५३) उडु ५:३२:१, तार ४:७:१०, ४:२५:२६, ताराजन ७:४:१६, तारानि ३:२:३, खेचर ७:२३:१,

(५४) ५:३२:१, ७:४:१६ .

(५५) ४:७:१०

(५६) ३:२१:१

(५७) ४:२:१

(५८) २:६:१ (५९) ४:७:६

(६०) ४:२०:६ (६१) ५:१२:१ (६२) ५:१२:१, ४:७:६, १२:१३:१४ (६३) ३:३१:४

(६४) वही (६५) ३:२९:१, २:६:१, अगस्त और पुष्य नक्षत्र में विजय यात्रा तथा अश्वमेध यज्ञ का प्रारंभ करना सफलता लाता है।

(६६) ४:२:१

(६७) ४:७:६

(६८) ३:३१:४, सूर, चंद, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु नवग्रह कहलाते हैं।

हवा
मेघ
विजली

आकाश में हवा,[६६] मेघ,[७०] और विजली[७१] भी हैं। हवा अपने तरंग में हमारे संदेशों को दूसरों तक पहुंचा कर हमें गूंगे की दुनिया होने से बचाता है। चन्द्र लोक में यह नहीं है। यह सूर्य की किरणों को छितरा कर प्रकाश को सर्वत्र बिखेरता है, अन्यथा घर की छत पर कड़ी धूप और भीतर अमावस्या की घोर अर्द्धरात्रि होती, बिना हवा के अनेक उल्कापातों से हम न बचते और न बिना आक्सीजन के दिया क्या कोई चीज ही जला पाते।

ब्रह्माण्ड,त्रैलोक्य, सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र-ग्रह, हवा बादल, विजली आदि का वर्णन युद्ध की विशालता एवं भयंकरता की वृद्धि[७२] ज्योति प्रतीक,[७३] शुभाशुभ विचार,[७४] दीर्घायु,[७५] दिशासूचक,[७६] प्रात:बोध,[७७] ग्रहशान्ति,[७८] घोष-रव,[७९] अपने प्राकृतिक गुणों मुक्ति स्थान (वैकुंठ)[८०] तथा सत्कर्मों द्वारा उसकी प्राप्ति की प्रेरणा[८१] आदि के संदर्भों में हुआ है। इस अध्याय में उल्लिखित दोनों प्रमुख नाम पृथ्वीराज और जयचन्द- ग्रह नक्षत्र पर आधारित हैं।

---

(६६) २:५:४१, ६:५:१८ (७०) अंबु ११:६:२, अभ्र ५:३४:२
घटा १:३:१५, घन २:१७:४, ४:२५:२८, जलध्धर ७:१२:२
बद्दल ४:३:२, ६:११:१ मेघ ६:५:१, मेह ७:१७:१८

(७१) तड़ित ३:१०:२, ४:२५:२८, दामिनी ६:११:१, विज्जुलिका ६:५:४

(७२) ६:३३:४, ७:४:१२, ७:४:१३, ७:६:२, ७:१०:२२, ७:१२:१, ७:१२:१३, ७:१२:१४, ७:१२:१८, ७:२८:२,

(७३) २:१०:१, २:२८:३, ४:७:१०, ४:६:१, ४:१४:३४, ४:२२:२ ४:२५:२२, ४:२५:२४, ५:१०:२, ५:१७:१, ५:३२:१, ६:५:८ ७:४:१६, ७:२३:१, ७:२८:४, १२:५:२, १२:१२:२, १२:१३:१४ १२:१८:२, १२:४१:१

(७४) २:६:१, ३:२१:१, ४:३:१ (७५) ६:२६:२, ८:६:६

(७६) ४:२:१ (७७) २:४:२, ४:७:६ (७८) ३:३१:४

(७९) १:३:१४, २:१७:४, ७:१७:८ (८०) ८:१५:१

(८१) ४:४:२, ७:५:४, ८:१४:३, १२:४६:४

उपसंहार

भू-वृत में

भरत खण्ड (टीका)

तिल्लिंग

सप्तसिंधु

इस काव्य में वर्णित भू-वृत धरनि खंड[१] (भरत खण्ड)[२] इसकी पूर्वी सीमा तिरहुति,[३] पश्चिमी खुरासान[४] (ईरान) उत्तरी कैलाश पर्वत,[५] और दक्षिणी सीमा सिंहल है। यह धरनि खण्ड गुप्त काल के आस-पास कुमारिका खण्ड हो गया था। भरत खण्ड में नवद्वीपों की गणना होनें लग गयी थी। स्कन्द पुराण के महेश्वर खण्ड के कुमारिका खण्ड में इस देश को कुमारिका खण्ड कहा गया है। हमारे दैनिक मंत्र` जम्बु द्वीपे भरत खंडे भारतवर्षे कुमारिका खण्डे आर्यावर्तैक देशे...... ` इत्यादि में कुमारिका खण्डे जुड़ चुका था।[७] और इस काव्य में[८] "भूल कर (लंका जाकर) विभीषण पर आक्रमण कर बैठा" के अतिरिक्त वृहत्तर भारत के अन्य किसी भी द्वीप या समुद्र का नाम नहीं आया है।[९] इस काव्य का एक अन्य स्थान तिल्लिंग[१०], त्रिकलिंग[१०] (छठीं सदी) और तिलंग[१०] (११ वीं सदी में प्रथम बार प्रयुक्त) के मध्य काल का ज्ञान पड़ता है। ` पंचनद` के स्थान पर ` सप्तसिंधु` [११] का प्रयोग भी उल्लेखनीय है क्योंकि ग्रन्थ के रचनाकाल तक, शायद, सरस्वती नहीं थी।

---

(१) इसी अध्याय के (क) की टिप्पणी संख्या (२)

(२) ,, ,, (३) टीका में

(३) ,, ,, (६४)

(४) ,, ,, (४)

(५) ,, ,, (६२)

(६) ,, ,, (७१) (७२)

(७) देखो, डा०अ०अग्रवाल का प्राचीन भारतीय भूगोल` कल्पना` १९५५ पृष्ठ ३४.

(८) इसी अध्याय के (क) की टिप्पणी संख्या (७२)

(९) केवल टीका में` जम्बु` के अर्थ में ब्रह्मा के संदर्भ में क्षीर सागर का जिक्र है। देखिए (ड०) टिप्पणी संख्या (२)

(१०) इसी अध्याय की (क) टिप्पणी संख्या(६८)

(११) ,, ,, (२३)

नदी

पहाड़

नदियों में गंगा,[१२] युमुना,[१३] सिंधु,[१४] और पहाड़ों में सुमेरु[१५] कैलाश,[१६] और हेम[१७] पर्वत का उल्लेख हुआ है। श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने सुमेरु को कम्बोज जनपद के मध्य स्थित किया है[१८]। किन्तु इस काव्य के 'मानो सुमेरु ने गंगा को प्राप्त किया' है[१९] से यह पर्वत गंगा के निकास स्थल से सम्बंधित लगता है।

जलवायु

उपज

जलवायु पुराने ढंग से षट् ऋतु वर्णन शैली में और उपज में अनाजों में जौ,[२०] पेड़ों में आम[२१] केला,[२२] चंदन,[२३] फलों में अनार,[२४] अर्कफल,[२५] इमली,[२६] कंदलाकंद,[२७] नारंगी[२८] और बिम्बाफल[२९] (कुंदरु), तथा फूलों में कमल,[३०] कुंद,[३१] कुमुदिनी,[३२] केतकी,[३३] चम्पक,[३४] चम्पा,[३५] जूही,[३६] बेला,[३७] मालती,[३८] सेवंती[३९] और सरीफा[४०] का वर्णन है। कन्नौज के भीड़ द्वारा अगम्य हाटों में शीतलता के लिए दुर्वादल[४१] का मैदान उल्लेखनीय है।

---

(१२) इसी अध्याय के (क) की टिप्पणी संख्या (५५)

(१३) ,, ,, (५६)

(१४) ,, ,, (२७)

(१५) ,, ,, (१७)

(१६) ,, ,, (६२)

(१७) ,, ,, (६३)

(१७) ,, ,, (६३)

(१८) देखो 'प्राचीन भारतीय भूगोल' 'कल्पना' १९५५ पृष्ठ २२

(१९) इसी अध्याय के (क) की टिप्पणी संख्या (१७)

(२०) इसी अध्याय के (ख) की टिप्पणी संख्या (४५)

(२१) ,, ,, (४९)

(२२) ,, ,, (५०)

(२३) ,, ,, (५१)

(२४) ,, ,, (५९)

(२५) ,, ,, (६५)

(२६) ,, ,, (६३)

(२७) ,, ,, (६६)

जीव-- जीवों में कच्छप,[३६] गुंजा,[४०] घड़ियाल,[४१] चींटी,[४२] टिड्डी,[४३] दादुर,[४४] प्रवाल,[४५] बंदर,[४६] बाराह,[४७] भौंरा,[४८] मृग,[४९] मुक्ता,[५१] शंख,[५२] सांप,[५३] सिंह[५४] और हाथी[५५] का उल्लेख है। इनमे दादुर-ध्वनि की विशेष प्रियता[५६] उस काल के लोगों में दिखाई पड़ती है।

पक्षी पक्षियों में चक्रभेद और चक्रवृत्ति,[५७] ताम्रचूड़ का सूर्य-किरणों से कम्पित होना,[५८] [५०] और कूप के मध्य में बगुले[५६] का दिखलाना उल्लेखनीय है।

---

(२८) इसी अध्याय के (ख) की टिप्पणी संख्या (६२)

(२९) ,, ,, (६१)

(३०) ,, ,, (७६)

(३१) ,, ,, (७१)

(३२) ,, ,, (७४)(७७)

(३३) ,, ,, (७०)

(३४) ,, ,, (७१)

(३५) ,, ,, (७२) (७५)

(३६) ,, ,, (७२)

(३७) ,, ,, (७१)

(३८) ,, ,, (६४)

(३९) ग (७९), (४०) ग (३), (४१) ग (७६) (४२) ग (१७)

(४३) ग (७४), (४४) ग (६०) (६१) (६२), (४५) ग (७७)

(४६) ग (११), (२८), (४७) ग (७५), (४८) ग (१४), (१५), (१९), (३६), (३७), (३८), (३९), (४०)

(४९) ग (२२), (३२), (७०), (७१), (७२), (७८),

(५०) ग (२३), (३१), (३३), (३४), (३५), (६५), (६६), (६७), (६८), (६९),

(५१) ग (५), (१६), (५२) ग (५७), (५८), (५९)

(५३)ग(७), (१०), (२०), (२४), (७३) (५४) ग (२६),(४५), (४६), (४७), (४८), (४९), (५०)

खगोल
और उसमें
सूर्य
आकर्षण शक्ति
वैकुंठ
आकाश गंगा

खगोल में मुख्यत: ब्रह्माण्ड,[६०] आकाश गंगा,[६१] त्रैलोक्य,[६२] सूर्य,[६३] चन्द्र[६४] और ग्रह[६६]नक्षत्रों[६५] का वर्णन किया है। इसमें सूर्य को, एक ही स्थान कन्नौज से, सुमेरु के चारों ओर[६७] महोदधि मध्य[६८] दोनों ढंग से जाते देखना, तथा नक्षत्र और ग्रहों के आकर्षण-शक्ति का धरातल के जीव-जंतुओं पर प्रभाव पड़ना[६९] उल्लेखनीय है। उस काल तक लोगों का विश्वास था कि आकाश-गंगा चन्द्र-स्तर[७०] पर और वैकुंठ रवि मंडल के ऊपर[७१] है।

---

(५५) देखो उसी अध्याय के (ग) की टिप्पणी संख्या (१), (८), (१३), (२५), (४१), (४२), (४४), (५०), (५१), (५२), (५३), (५४), (५५), (५६)

(५६) देखिए इसी अध्याय के (ग) की टिप्पणी संख्या (६३)

(५७) ,, (घ) ,, (११)

(५८) ,, ,, ,, (१५)

(५९) ,, ,, ,, (२३)

(६०) ,, (ङ) ,, (२)

(६१) ,, ,, ,,(२४), (६१)

(६२) ,, ,, ,, (४-७)

(६३) ,, ,, ,,(२५)-(३१)

(६४) ,, ,, ,,(४०)-(५२)

(६५) ,, ,, ,,(६१)-(६३),(६७) (६८)

(६६) ,, ,, ,(५६) - (६०),(६५)

(६७) ,, ,, ,,(३१)

(६८) ,, ,, ,,(३३)

(६९) ,, ,, ,,(६५), (६८)

(७०) ,, ,, ,,(२४)

(७१) ,, ,, ,,(९)

इन सब भौगोलिक उपकरणों का प्रयोग, उनके स्वाभाविक गुण, राजनैतिक दृष्टिकोण, धार्मिकता,[७२] किसी युग के प्रतीक,[७३] आदर्श अंगों के उपमान,[७४] श्रृंगार प्रसाधन[७५], शुभाशुभ-विचार,[७६] नामकरण, क्रीड़ा-विनोद,[७७] और युद्ध की विशालता अथवा भयंकरता वृद्धि[७८] के रूप में हुआ है।

---

(७२) देखिए इसी अध्याय के (क) का (१०१), (ख) का (१३८). और (ङ०) का (८१)

(७३) देखिए इसी अध्याय के (ख) का (१४१), (ग) का (८२) और (घ)का (३२)

(७४) ,, (ख) का (१३६)(ग)का (८०) और (घ) का (३६)

(७५) ,, (ख) का (१३६)

(७६) ,, (घ) का(३५) और (ङ०) का (७४)

(७७) ,, (ख) का (१३७), (१३६) तथा (ग) का (३१) और (३२)

(७८) ,, (क) का (६६) (ख) का(१४०) का (८१) (घ) का (३४) और (ङ०) का (७२)

(३) सामाजिक—दशा

(७३४ शब्द १५३६ पर्याय सहित सामाजिक दशा के संदर्भ में प्रयुक्त हैं ।)

(क) समाज-रचना
(क१) आर्थिक स्थिति
(ख) रहन—सहन

(१) तन, वस्त्राभूषण, खान-पान और सुगन्धित वस्तु

(२) मनोरंजन— क्रीड़ा, उत्सव और वाद्य

(३) नगर, प्रासाद एवं गार्हस्थ्योपयोगी उपकरण

(४) वाहन

(५) नाम-व्यक्ति और परिमाण बोधक

(ग) सामाजिक-आचरण और शिष्टाचार

(घ) लोक-विचार

(ङ०) समाज में परिवर्तन लाने वाले सामाजिक तत्व

अध्याय ३ — सामाजिक दशा

क- समाज- रचना

(१५४ शब्दों का २८३ पर्याय सहित समाज रचना के संदर्भ में प्रयोग हुआ है)

अनुच्छेद संदर्भ :— १-जाति कुल

(१) कुछ मानव जातियां जो इस काल तक मानवेतर बन गईं
(२) मुसलमान
(३) हमीर, तुरक अथवा म्लेच्छ
(४) हिन्दू मुसलमान एक दूसरे को अच्छा नहीं समझते थे
(५) अन्य मुस्लिम जातियां-
(६) म्लेच्छों की विशेषताएं
(७) यवन
(८) हिन्दू-जातियां— क्षत्रिय, सामंत
(९) ब्राह्मण
(१०) जन-जातियां—बजाज, सोनार, भट-बंदी, दासी, नट-नर्तक, वैश्य,कोल,चांडाल और भिल्ल
(११) मंगोल
(१२-१३) अन्तर्जातीय सम्बन्ध
(१४) उपसंहार

२— परिवार
३— विवाह
४— जन सामान्य
५— सामाजिक-नियंत्रण
६— समाज-रचना-उपसंहार

कुछ मानव-जातियां उस काल तक मानवेतर बन गईं

देव, असुर, राक्षस, यक्ष, किन्नर और अप्सरा आदि अनेक जातियों का वर्णन इस काव्य में मानवेतर रूप में हुआ है। हमारे ही समूह की ये जातियां, कालान्तर में, मानव-सीमा का अतिक्रमण कर ऊपर उठ गईं तथा अलौकिक महत्व प्राप्त कर ली हैं। इनके रहने का स्थान देवालय,[क] आकाश[ख] और स्वर्ग[ग] हो गया। धार्मिक महत्व के कारण इन जातियों का उल्लेख धर्म अध्याय में समीचीन प्रतीत होता है।

मुसलमान

ग्रन्थ-रचना के करीब पांच सौ वर्ष पूर्व इस्लाम धर्म का प्रादुर्भाव हुआ था। इसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि मुसलमान नाम की एक नई जाति पैदा हो गयी। प्रस्तुत काल तक यह कोई प्रजाति नहीं है, धर्म है और कई प्रजातियों का मिश्रण है।

मीर, तुरक अथवा म्लेच्छ

इन मुसलमानों को इस काव्य में मीर, तुरक अथवा म्लेच्छ नामों से सम्बोधित किया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के लोगों के लिए कोई स्पष्ट और निश्चित जाति-नाम ग्रन्थकार के सम्मुख नहीं था, इसीलिए कभी मीर, कभी तुरक और उन्हीं को कभी म्लेच्छ नामों से पुकारा है। पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के युद्ध में दो पहर तक हिन्दू और मीर[१] (मीर)(पृथ्वीराज

(क) (अमात्य-कथन जयचन्द से) करि धम्म देव देपर अनेय। २:१:१३

(ख) अयज्जय देव अयास करी । ८:६:९८

* अमिय कलस आयास लिग्ग अच्छरी उछंग। २:२४:३

(ग) चढ अच्छरि अच्छरि विमान सुरलोक नाग तह। ७:५:४

(१) भिरे जाम दोइ सुध्ध हींदू मीर। ११:१२:१७

और गोरी के सैनिक) भिड़े[१]। उसी पद में फिर आगे उल्लिखित है कि उन लोगों का युद्ध ऐसा लगा मानो हिन्दुओं और तुर्कों[२] ने होली खेली हो।[२] पृथ्वीराज-कथन 'मुहि सरणाहि हींदु तुरक' में 'तुरक' का अर्थ सामान्य मुसलमान के लिए ही जान पड़ता है। पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के पूर्व गोरी ने सभी म्लेच्छों (मुसलमानों) से सच्ची मशवरत (सलाह मशविरा) की[४]। उसी युद्ध में म्लेच्छ (मुसलमान) घरों को भागने लगे[५]।

कवि चंद गजनी पहुंचने पर क्या देखता है कि वह म्लेच्छ (गोरी सल्तान शहाबुद्दीन) मध्याह्न-भानु की तरह तप रहा है।[६] पहरेदार के रोकने पर वह रुका और उसने सोचा कि शहाबुद्दीन के द्वार पर सब देखना चाहिए जो कुछ म्लेच्छ की भूमि पर है[७]। किन्तु म्लेच्छों के वर्णन में बताया है, कि वे सर्वभक्षी हैं[८]। रोम-प्रिय और बड़े नख वाले हैं।[९] वे वनोचरो (बंदरों) के मुख वाले होते हैं।[१०]

---

(२) रहे जानि हिन्दू तुरक खेलि होरी। ११:१२:२८

तुरंग (सं०शब्द) का अर्थ घोड़ा, का स्थान तुर्किस्थान, का निवासी तुर्क। तुर्किस्थान के घोड़े प्रसिद्ध हैं। तुर्क का प्रयोग प्राकृत पैंगलम मात्रावृत्तम् १५७, कीर्तिलता:सं०बाल्स्या०,वा०श०अग्र०, पृ० ६२

(३) ८:२:५

(४) मेछ्छ मसुरति सचि। ११:६:१ (टीका में म्लेच्छ= मुसलमान)

(५) ग्रहे मेछ भग्गे। ११:१२:१६। (टीका में म्लेच्छ= मुसलमान)

(६) इह विधि पउड गज्जने जहां गोरिय सुरतान।
तपह मेछु इह बच्चनी मनउ भान मध्यान। १२:५:१+२

( ) म्लेच्छ का उल्लेख कुलपाणि : संपा० मोतीचन्द्र, पृ०२१८ में भी हुआ है। देखिए प्राकृत पैंगलम मात्रावृत्तम् ७१,६२,१५७ वर्णवृत्तम् १२८

(७) सह खाब दर दिष्षियइ जु कछु भुम्मि पर मिछ्छ। १२:१०:२

(८) मेछ सर्व्व भष्षी। ७:१५:२

मुख पर दुम (दाढ़ी) का साधन करते हैं ।[११] वे शरीर के संधों (जोड़ के स्थानों) को बांध रखते हैं।[१२] फारस और अरब के हैं ।[१३] घोड़ों के पारखी हैं ।[१४] दिल्ली को ढीला करने को भ़ख रहे हैं ।[१५] किन्तु गोरी के युद्ध-आह्वान पर इन लोगों ने सगर्व कहा कि हे अमीर, हम हिन्दू नहीं हैं, हमारा दीन (धर्म) रोजा और रमजान का है ।[१६] वे हिन्दुओं को अच्छा नहीं समझते थे । हिन्दू शब्द भी `सिंधु` का बिगड़ा हुआ रूप माना जाता है और परसियन भाषा के डाकू,लुटेरा और आतंक फैलाने वाले के अर्थ में गृहीत होता है।[१६क] `हिन्दू` देशी नहीं, विदेशी नामकरण है, और इन्हीं लोगों द्वारा दिया हुआ है । `पृथ्वीराज रासो` में हिन्दुओं के व्यवहार भी तदनुकूल हैं । पृथ्वीराज से,उसके चरों की सूचना है कि आप ने गजनी देश में इस प्रकार विच्छोह छुटा दिया है कि वहां की गौरांगनाएं अपने प्रिय पतियों के कंठ वैसे ही छोड़ रही हैं जैसे पत्ते वृक्ष से छूटते हैं ।[१७] गोरी अपने सेना से कह रहा है कि पृथ्वीराज ने मुझे सात बार पकड़ कर छोड़ा है, जिसे मैंने कर अर्पित किया है।[१८] जयचंद ने एक दिन में आठ सुल्तानों को साधा,[१९]

---

(६) राम राहं रषी । ७:१५:३

(१०) अनेचरं तं मुषी । ७:१५:६

(११) दुम्मि साह मुषी । ७:१५:११
  आढी डीठि निहारि पवसि दाढी थुक आरू । कीर्तिलता, विद्यापति २:२८:१७७

(१२) संध सा बध्धषी । ७:१५:८

(१३) पारसी पालषी । ७:१५:१३

(१४) पवंग सा पारषी । ७:१५:१८

(१५)ढिल्लि ढिल्लन भष्षी । ७:१५:१६

(१६) कहं अमीर हिंदू न दीन रोजा रमजानहि । ११:८:३

(१६क) फारसी में`हिंदू` शब्द का अर्थ डाकू या लुटेरा है ।
  (डा० चन्द्रचन्द्र शास्त्री, शब्दों का सांस्कृ०अध्य०, सम्मेलन पत्रिका भाग ४६, संख्या ३,४, आषाढ़-मार्गशीर्ष, शक १८८५ ।

(१७) गज्जने देसि विच्छोहि जोरी । तजहि पिय कंठ जिम पत गोरी । २:७:५आ६

खुरासान के अमीर बंदा को बंदी किया,[२०] हेमकूट में स्थित राज्यों को सम्पूर्ण रूप से ढहाया,[२१] बैरागर के सब हीरे ले लिए,[२२] भूल कर विभीषण पर आक्रमण कर बैठा,[२३] अपने रोष के शोषण द्वारा समुद्र को चंचल कर डाला[२४]।

शहबुद्दीन गोरी के दरबार में रोहंमी, रोहंगी, लहेले, सुरंमी, सुहन्नी, सुवनी, सुहवक्के, करंमी, घरेले, सुधारे, सुमेले, तुरक्की ममक्की, मनन्न, जलेजे, हबस्सी, हकम्मे, रहन्ने, सुहन्नं, पषगे। पवंगी, पन्ने, सुपन्ने, मिवाजी, विराजी, सकज्बे, हसल्ले, समन्नी, सुसुन्नी, मुगल्ले, मसल्ले, आदि उल्लिखित विभिन्न जातियों के शुभ शेखजादे और अभय पठान उपस्थित थे।[२५] पृथ्वीराज-गोरीयुद्ध में खीची[२७] (शूर) गिरे जो सुख से खड्ग खेलते थे।[२७]

म्लेच्छ वीर और बाहु पक्षी - बाहु का आश्रय लेने वाले होते हैं।[२८] वे स्मृति से लक्ष्य करने वाले होते हैं।[२९] उनका व्याण का (सा) हीन होता है।[३०] अट्ठारह (?) रंक (का धनुष) खींचते (?) हैं।[३१] दिव्य बाहु-लक्षी (?) होते हैं।[३२] कम बोलते हैं।[३३]

---

(१८) जिहि खंड गहि छंडियउ बार सत खंड अच्छह कर। ११:७:४

(१९) एक दिन अट्ठ सुरतान साहे। ५:१३:८

(२०) बंधि खुरासान किय मीर बंदा। ५:१३:२३

(२१) जिनि हेम परबत ले सब्ब धाहे। ५:१३:७

(२२) लिये बइरागरे सब्ब हीरा। ५:१३:१८

(२३) भुल्लि बिम्भीषन पाहिं रीरे। ५:१३:२१

(२४) रोष कब सोष दरिआह लोरे। ५:१३:२२
हिन्दू-मुस्लिम अन्तः सम्बन्ध के लिए दे० कीर्तिलता- संव्याख्या० वा०श०अग्रवाल, पृ०१९८, १४६

(२५) १२:११

(२७) परे खीचिया चग्ग खेलै सुखाला। ११:१२:२२

(२८) वीर बाहुं पषी। ७:१५:४

(२९) संभरैन लषी। ७:१५:७

(३०) बान बाहु षषी। ७:१५:७

स्वामिभक्त है।[३४] प्लवंगों (घोड़ों) के पारखी हैं।[३५]

शहाबुद्दीन गोरी का पहरेदार यवन[३५अ] है और गोरी यवनेस[३५आ] कहा गया है। आलोच्य ग्रन्थ की टीका (१२:८:१) में यवन को मुसलमान कहा गया है। पुराणों के अनुसार यूनानियों का यवन नाम है (हमारा इतिहास, पृ०७९, ले०श्री रामचरण विद्यार्थी)। किंतु ये यवन सिकन्दर आक्रमण से बहुत पूर्व यूनान देश से आकर वाह्लीक स्थान में बसे हुए लोग ज्ञात होते हैं।[३५आ]

यवन

भारतीय संस्कृति का मूलाधार वर्ण-व्यवस्था है। काव्य रचना-काल के पूर्व समाज के नियमन में स्मृतियों के निर्देश क्रियाशील हो चुके थे। मनु आदर्श थे। चतुर्वर्ण्यानुसार समाज को व्यवस्थित रखना। तत्कालीन राजाओं का धर्म समझा जाता था।[३५क] किन्तु

हिन्दू-वर्ण-व्यवस्था

---

(३१) टंक कुठार धनी। ७:१५:९

(३२) विध्य वाह लषी। ७:१५:१०

(३३) बोलते न लषी। ७:१५:१२

(३४) स्वामिता चितषी। ७:१५:१५

(३५) प्लवंग सा पारषी। ७:१५:१८

म्लेच्छों के संदर्भ में देखिए-- प्राकृत पैंगलम मात्रावृत्तम् ७१, ९१,१४७, वर्णवृत्तम् १२८

(३५अ) १२:८:१ (३५आ) यमनेस भेस अनुपचि ग्रोन। १२:१३:१६= पा० भारत०,पृ०३०७

= सार्वभौम नगर (उज्जयिनी) में शक, यवन, तुषार,पारसीक, मगध, किरात, कलिंग, बंग, मद्रिक, चोल, पांड्य और केरल वासियों को एक साथ दिखाया गया है। चतुर्भाणी : गुप्तकालीन शृंगार हाट: संपा०मोतीचन्द्र, पृ० १९३, इसी पुस्तक के पृष्ठ २३--२३६ में शार्दूल वर्मा के पुत्र बराहदास की रखैली यवनी कर्पूरतुरिष्ठा का वर्णन है। = दे० प्राकृत पैंगलम्, पृ० १५१, कीर्तिलता, पृ० १०२, (संपा०वा०श०अग्र०)

(३५क) डा० बृजनाथ सिंह यादव का " १२ वीं सदी में उत्तर भारत में समाज के कुछ रूप" पृ० २८-३०

हिन्दू जातियां

इस काल में वर्ण के स्थान पर जाति शब्द चल पड़ा है । गोत्र भी जातियां बनने लगी हैं ।[३५ख] वस्तुत: गोत्र के भेदों के अनुसार अनेक जातियां विकसित हो गयीं हैं । हिन्दुओं की जाति सम्बन्धी जानकारी की सर्वोत्कृष्ट रचना पुराण हैं । जयचन्द ने पुराणों के बलशाली और वीर वंशों का शोध किया है ।[३६] उसके बुलाने पर छत्तीस कुल के क्षत्रीय[३७] आते हैं ।[३८] ये क्षत्रिय स्वभाव और जाति से युद्ध

क्षत्रिय

वीर हैं ।[३९] मरण को हंसते हुए वरण करते हैं ।[४०] पृथ्वी पर क्षत्रियों का न होना वीर विहीनता का द्योतक है ।[४१] ये अपने को सगर्व राजपूत भी कहते हैं ।[४२] भूमि पर स्वामित्व रखने वाले उच्च - वर्ग को भी राजपूत कहते हैं ।[४२क] संभवत: इस कारण से भी ये

(३५ख) पा०भारत०,पृ०६० । भाष्यकार ने जाति की परिभाषा के अन्तर्गत गोत्रों को भी गिना है । (पा०भारत०पृ०६०)

(३६) सुकिग पुराण बलि वंस वीर । २:१:५

(३७) छत्र, ८:६:१, षित्री २:३:३५, षित्रीन ११:६:२

(३८) बस छत्तीस आवह हकारे । ५:१३:२५

३६ वंशो की नामावली के लिए देखिए बृ०ना०सिंह यादव का १२ वीं० भारत०तत्व०, पृ०४६-५१ या टाड का `न्यू इम्प्रेशन', पृ०६९ या वैष का तृ०खं०,पृ०३८६ या वर्ण रत्नाकर,पृ०६१

(३९) अंबर छाडउ अम्भु तिन षिति छाडी षित्रीन । ११:६:२ मुक्कि जाइ ग्रहि अंक तेग । ६:२३:१०

(४०) मरण दीजह पृथिराज स्वहि छत्र करि षट्ठह । मीच लग्ग निय पायि कहह आइ धरि आट्ठह । ८:६:१+२

(४१) तुम जानउ षित्री जह न कोइ । निव्वीर पुहवि कबहू न होइ। २:३:२५+२६

(४२) (कन्ह क्षत्री का कथन पृथीराज से) हम छह रजपूत (जो कन्नौज में आए हैं) ६:२३:६

कुछ कहते हैं कि राजपूत कोई जाति या कुल नहीं हैं ।

अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। इन क्षत्रियों के कुल,[४३] कूरंभ,[४४] गहलौत,[४५] बदेल,[४६] चामंड,[४७] चालुक्य,[४८] चौहान,[४९] परिहार[५०]

प्राचीन क्षत्रिय और आदिम निवासियों के वंशों का मिश्रण है। हर्ष के बाद ६५० ई० से १२००ई० तक भारतीय इतिहास में राजपूत काल माना जाता है। डा० विमलचन्द पाण्डेय का प्राचीन भारत का इतिहास (१९६२) पृ १०४

(४३) जिनै उद्धरे सब्ब कुल बंस रायं। १:४:८

(४४) (पृथ्वीराज--जयचन्द युद्ध में) कूरंभ राय पालन्न देउ बंधव तीन निघट्टिया। ७:२०:५

(पृथ्वीराज-गोरी युद्ध में) परे सब्ब ब सूर कूरंभ बाला। ११:१२:२१

(४५) (पृथ्वीराज--जयचन्द युद्ध में) परउ गंजि गहिलुत नाम गोविन्द राज वर। ७:२०:१

(४६) (,,) परउ माल बंदेलु केन धवलीधर गुरजर। ७:२७:२

विन्सेंट स्मिथ के मत से बंदेल गोंड और भरों की जाति से उत्पन्न है। इनका मूल छतरपुर रियासत में केन नदी के तट पर मनियागढ़ था। मध्यकालीन राजपूत वास्तु-कला के अनेक नमूने बुंदेल खण्ड में आज भी मौजूद हैं। इन्हें मंदिर और सरोवर विशेष प्रिय थे। महोबा का मदन सागर और खजुराहो में अनेक मंदिर तात्कालीन कला के प्रतीक हैं।

(४७)(पृथ्वीराज--गोरी युद्ध में) परे पंच पंचास चामंड वीर। ११:१२:९

(४८) (सामंत कथन पृथ्वीराज से) तै राषउ चालौर चंपि चालुक चावमंत। ८:४:२

(कन्नौज युद्ध में पृथ्वीराज-पक्ष के) परत देषि चालुक्क धर करिय षंग बल कुच। ८:२६:१

(पृथ्वीराज गोरी युद्ध में) परे चाव चालुक्य ते साठि हुने।

११:१२:१६

(४९) २:३:३६, ११:१२:२५ .... आदि

(५०) परउ पाथरीय राय परिहार राना। ७:३१:१३ प्रतिहार

पवार,[५१] पांडव,[५२] बघेल,[५३] यादव,[५४] राठौर[५५] और सोलंकी[५६] वंशों का उल्लेख हुआ है । इनमें राठौर सूर्यवंशी, यादव चन्द्र वंशी और पवार, चालुक्य या सोलंकी, प्रतिहार या पढ़ियार तथा चौहान अग्नि वंशी हैं ।[५६क] चंद वंशी बनाए हुए क्षत्रिय माने जाते हैं । सामाजिक दृष्टि से उन्हें लघु समझा जाता रहा है सम्भवत: यही कारण है कि संयोगिता की शादी पृथ्वीराज के साथ जयचंद द्वारा न करने के कारण में दूती ने बताया कि वह (चौहन पृथ्वीराज) लघु पिता का पुत्र है।[५६ख]

सम्राटों का मूल निवास जोधपुर रियासत में मंदौर था । वहीं पहले पहल हरिचंद के कुल ने डेरा डाला और एक छोटे इलाके पर राज करना शुरू किया । इन्ही की शाखा उज्जैन और कन्नौज में भी थी । कहते हैं कि इन्ही के सम्बन्ध से गुजरात का नाम पड़ा । बाणा के हर्ष चरित से पूर्व सम्भवत: भारतीय साहित्य में गुजरात का नाम नहीं मिलता । डा० भगवत शरण उपाध्याय- प्राचीन भारत का इतिहास सं० १६५७, पृ० ३११.

(५१) ८:३०:२, ८:३१:१, ११;१२:२३ । साहित्य प्रेमी राजा भोज इसी वंश का है ।

(५२) ८:३४:२, ८:३५ के समस्त पद में इसके युद्ध का वर्णन है ।

(५३) ८:३१:१+२, ८:३२:१

(५४) ७:३१:६, ८:४:४

(५५) रठ्ठवर ८:१७:१,८ , ८:३४:१, रट्ठिवर ८:१३:१,८:१६:२, राठउर ८:३३:१ आदि

(५६) (पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध में) सोलंकी सारंग परउ अवि बर भारतजु, ७:२०:४

(५६क)

(५६ख) लहुआ कुमार पुत्ता हूं पुवीय राजसं भीय । २:१६:२

कुरुवंश के समस्त राजाओं का शुकदेव और परिक्षित ने उद्धार किया है[५६] शेष अन्य वंश किसी न किसी युद्ध से सम्बंधित हैं ।

ब्राह्मण

इन क्षत्रियों के पूज्य विप्र हैं जिन्हें देखते ही शरीर के पाप नष्ट हो जाते थे ।[५७क] इनका काम प्रातःकाल गंगा स्नान करना[५८] और वेद पढ़ना[५६]था । इनकी एक कमजोरी बहुत सामान्य हो गई थी कि दक्षिणा लेने में इन्हें संतोष नहीं होता था वैसे ही जैसे नारियां दुकानों में वस्त्रों को देखकर संतुष्ट नहीं होती थीं ।[६०]

जन-जातियां
बजाज
सोनार
भट-बंदी

कहीं चतुर बजाज साड़ियां बेच रहे थे[६१] घर पर सोनार[६२] हेम काटने (और आभूषणादि बनाने में) लगे थे ।[६२] राजाओं के यज्ञ के मंडन समस्त भट जन[६३] होते । बंदी[६४] (भाट) उसी प्रकार बकते थे जैसे रणक्षेत्र में भैरव ।[६४] पृथ्वीराज के हर्म्य के प्रत्येक कमरे में दस दस दासियों की शय्याएं थीं । वे वीणा बजातीं , राजा को प्रमादित करतीं, हिलते हुए अंचल के वायु से शब्द-रति निरूपण करतीं, श्रेष्ठ प्राकृत या देववाणी में संभाषण करतीं और राजा का मनोरंजन करती थीं ।[६५] कहीं लोग माला गूथने वाली दासियों को

---

(५७) प्रवरतरो लोके ऽस्मिन् ब्राह्मण इव सर्व वर्णानाम् । कला विलास, क्षेमेन्द्र काव्य माला भाग १, पृ० ७६

(५७क) सोयं देषत पाप नठ्ठे सरीरे । ४:१०:१६

(५८) (गंगा तट पर) कहीं विप्र ते उठ्ठि ते प्रात चल्ले । ४:१०:६

(५६) वेद विप्प । २:१०:५

(६०) दिक्खहि नारि स कुंब पटोरं । मनउ दुज दक्खिन लग्गह चोर ४:२५:११-१२

(६१) बुच्चिय बजाज सु बिक्कहि सार । ४:२५:६

(६२) काटूहि स हेम ग्रहि ग्रहि सोनार । २:३:५८, दे० उक्ति व्यक्ति प्रकरण—दामोदर, पृ० ८४

(६३) जग्य मंडन नर भर सबल । ६:२:२ , भट्ट ३:३४:१
राज सभा में सात अंगों का होना आवश्यक माना जाता था—
विद्वांसं कवयो भट्ट नायका: परिहासका: ।
इतिहास पुराणज्ञा: सभा सप्तांग संयुक्ता ।। डा० रामसिंह

द्रव्य देकर अपने गले में माला डलवा रहे हैं।[६६]

नट- नर्तक

रंग शालाओं में बहुत नट और नर्तक हैं।[६७] सुनट पूर्ववर्ती वेष छोड़ कर नवीन वेष धारण करने में बहुत कुशल थे।[६८] नट के वेष में शंकर जी मस्तमौला भले ही हों,[६९] किन्तु इनका विश्वास नहीं किया जाता है।[७०] कहीं पर छैलों का समूह वेश्याओं में[७१] अनुरक्त है।[७१]

वेश्या

कोल

चाण्डाल

भिल्लनी

कोल[७२] मांस भक्षी होते थे। कन्नौज के भीड़ द्वारा अगम्य हाटों में चांडाल[७३] पान खाते दिखाई पड़ते थे।[७३] भिल्लनी[७४] वैसे ही कंवल-कंद उखाड़ती थी जैसे रणभूमि में योद्धा-गण हाथियों के शुंड और दंत उखारते हैं।[७४]

मंगोल

भारत के मुख्य पांच प्रजातियों — (१) नीग्रिटो (२) प्रोटो-आस्ट्रेलायड (निषाद), (३) मंगोलायड (किरात), (४) मेडिटेरेनियन (द्राविड़) और (५) आर्य— में मंगोल[७५] का भी जिक्र आया है। ये जयचन्द की सेना में बांके महावत थे।[७५]

तोमर का प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, पृ०२१२

(६४) भहल भक्क जान बंदी। ११:१२:१४

(६५) तहं तहं बणिय सुबीन प्रबीन दासि दस। ६:६:४

(६६) के जुम जुम जि बाद प्रमादहि मंद गति। १
के बल कंवल वायु निरुपहि सह रति। २
के बर भाष पराकृति संक्रित देव सुर। ३
के मनु ग्यान सुजान बिराजहि राजवर। ४अ६:७:१-२-३-४,
६:१५:६, ५:२३:१

(६६) जु देव दब दासीस लेहि उछाय। ४:२५:८, ३:४:६, ५:२५:१

(६७) नट नाटक बहु सार। १२:६:१

(६८) जिमि वेष छंडि सु नट्ट। १०:२४:२

(६९) नटे वेष रिंद (शिव के लिए) १:३:२०

(७०) नट नाटक कभी इमल नहि हुभि किय सुरतांन। १२:२०:२

(७१) जिते छवल संघट्ट वैसनि रत्ते। ४:२३:७, देखिए प्राकृत पैंगलम भा० ६३, ६४, ८३, १०५, १३२.

अन्तर्जातीय सम्बन्ध

हिन्दू-जातियों के आपसी सम्बन्ध की कोई समस्या इस काल में नहीं भाषित होती है। प्रस्तुत संदर्भ हें ग्रन्थकार ने सोद्देश्य कुछ लिखा भी नहीं है। केवल क्षत्रियों में आपस में अविश्वास, तनातनी और एक दूसरे को नीचा दिखाने की भावना प्रचुरता से विद्यमान

हिन्दू जातियों में

है ब्राह्मण के प्रति लोगों की उच्च भावना, है[१], किन्तु वे स्वतः लालची हैं।[२] वैश्यों और शूद्रों में कहीं भी शोषण नहीं है। और उनमें विक्षोभ अथवा असंतोष की भावना ही स्पष्ट होती है।

जयचंद की सेना में मिंठ, मंगूल[३] और मीर बंदन [४] के

हिन्दू-मुसलमान

होने से यह प्रकट है कि दोनों जातियों में आपसी सम्पर्क है।[५] किन्तु मुसलमानों के शाह-ए-आलम गोरी में भारतभूमि लेने की अनुरक्ति है,[५क] क्योंकि पृथ्वीराज ने उसे पराजित कर कर (टैक्स) वसूल किया है,[६]

---

(७२) बे कोस पलम भषी। ७:१५:१

(७३) जु नच्चइ मोर (चांडाल) तंबोर सुठार। ४:२५:३

(७४) गये सुंड दंतीनुं दंता उभारे। मनउ कंदला-कंद भिल्ली उभारे। ७:१७:१६-२०

(७५) मिठं मंगूल बहु कोद बके। ७:१०:६
मत्त मगोल बोल णाहि बुभइ।
चन्दकार कारणा रणा कुकभाइ॥ ४:१६:७२-७३
कीर्तिलता : विद्यापति

(१) बहुल बम्हणा बहुल काअथ ॥१२१॥
राजपुत्त कुल बहुल, बहुल जाति मिलि बइस चप्परि ॥१२२॥
कीर्तिलता : विद्यापति

(२) ४:२५:११-१२

(३) ७:१०:६

(४) ७:१३:२

(५) अरब और फारस से भारत के सम्बन्ध पर्याप्त प्राचीन हैं।
देखिए वि०वि०त्रि०: पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा)
पृ० ६४, ७८

उसके देश गजनी में विलाप छुटा दिया है,[७] और वहां की गौरांगनाएं उससे भयभीत होकर, आंसू गिराती तीव्र गति से इधर-उधर घूम रही हैं।[८] दोनों जातियों में संघर्ष और एक दूसरे को हेय समझने की प्रवृत्ति है।[९क] आपसी सद्भावना और सहानुभूति का अभाव है।[१०] एक दूसरे की आन मिटाने की दृढ़ता है।[११]

---

(५) शक यवन तुषार पारसी कैर्मगर्धकिरात कलिंग वंग काशै: ।
नगर मति मुदायुतं समन्तान्महिषक चोल कपाराहृयकेरलैश्च ।।
चतुर्भाणी २४ :सम्पा०मोतीचन्द्र:पृ०१६३

(५क) (कवि चन्द और राजगुरु का पृथ्वीराज को संदेश कि गोरी)
रुक्ख तुव धरा । १०:२०:२

(६) जिहि खंड गहि छंडियउ वार सत खंड मप्पह कर । ११:७:४

(७) गज्जने देखि विच्छोहि गोरी । २:७:५

(८) नीर निच्चालि उच्चालि झंपह । १:७:७

(९) ११:६:१

(९क) एकक धम्मे अओका उपहास । कीर्तिलता,२:३१:१९३, दे०
कीर्तिलता, सं०व्या०व्या०वा०श०अग्रवाल, पृ०११८,१४६

(१०) (पृथ्वीराज के पकड़े जाने के समय म्लेच्छों का कहना)
रे कुफार फार्जंद । ११:१४:१
कर अप्पन दीधी असीस । १२:१३:२४
सुनि उच्चाव गह गह हसौ बे बे भट्ट मति नट्ठि । १२:३०:१

(११) आन सु विहान विहोरहि । ११:८:२

सामान्य रूप से विवेच्य ग्रन्थ में मंगोल[७७], हिन्दू [७८] और मुसलमान[७९] जातियों का उल्लेख हुआ है। मंगोलों का सांस्कृतिक स्तर ऊंचा नहीं है, ये जयचन्द की सेना में महावत के रूप में हैं।[७७] हिन्दू मुसलमान आपस में लड़ते हुए, एक दूसरे को हेय समझते हैं।[८०] ब्राह्मण कुछ धार्मिक कृत्य में लगे हैं,[८१] किन्तु घोर लालची हो गए हैं।[८२] अन-जातियों में बजाज, सोनार, भट-बंदी, दासी, नट-नर्तक, वेश्या, कोल, चांडाल और भिल्लनी है। इनका मुख्य काम अपर जातियों की सेवा करना है।[८३] राजपूतों को विदेशी अथवा अनार्यों की संतान बनाने के लिए कुछ विद्वान जैसे टाड, क्रुक, भंडारकर और स्मिथ ने 'पृथ्वीराज-रासो' की अग्निकुल-कथा को आधार बनाया है। जो इस काव्य में उल्लिखित नहीं है। साथ ही उपरोक्त धारणा के यह विरोध में पड़ता है जो पृथ्वीराज के चुने हुए सर्वोत्कृष्ट क्षत्रिय सामंत कन्नौज में सगर्व कहते हैं कि हम सौ राजपूत हैं।[८४]

---

(७७) इसी अध्याय की टिप्पणी संख्या ७५

(७८) ,, ,, (१), १६

(७९) ,, ,, (१) से १६ तक

(८०) ,, ,, ६ से २४

(८१) ,, ,, ५७ से ५९

(८२) ,, ,, ६०

(८३) सभी अन जातियों के लिए देखिए इसी अध्याय का अनुच्छेद संख्या ६.

(८४) राय०बहा०गौरीशंकर हीरा० ओझा की "मध्यकालीन भारतीय संस्कृति (१९२८), पृष्ठ ४५

समाज—रचना

(२) परिवार (२१ शब्द ६१ पर्याय सहित परिवार के संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं।)

अनुच्छेद — संदर्भ:— परिवार

१ — प्रकार—

~~(१) मूलपरिवार-प्रथा~~

~~(२) विस्तृत परिवार~~

२ (३) पुरुष सत्ताक

३ (४) पितृ-वंशी

(५) पितृ-नामी

(६) पति-स्थानी

(७) बहु-भार्यता

(८) एक-भर्तृता

४ — कार्य—

(१) यौन-सम्बन्ध

(२) पारस्परिक सहयोग

(३) कुल और बधू एक दूसरे के रक्षक

(४) परम्पराओं को जीवित रखना

(५) गृहिणी का लघु गृह-कार्य-सम्पादन

५ — विशेषताएं—

(१) परिवार का भावात्मक-आधार

(२) पत्नी अर्धांग और वामांग

(३) पुत्र उत्तराधिकारी

६ — रक्त-सम्बंधियों के अतिरिक्त परिवार के अन्य प्राणी

मित्र, सखी, दूती, भृत्य, धवायत

७ — उपसंहार

परिवार

प्रकार
(१)
संयुक्त-परिवार प्रथा

आधुनिक युग की यांत्रिक सभ्यता ने भारत के संयुक्त परिवार-प्रथा को ढीला कर मूल परिवार-प्रथा (मात्र पति-पत्नी और सन्तान) को प्रतिष्ठापित किया है। किन्तु प्रस्तुत काव्य में संयुक्त-परिवार प्रथा है। ~~सर्वत्र मूल-परिवार-प्रथा ही विद्यमान है~~। पत्नी[१] परिवार का आभूषण है और पति[२] उसका प्राण[२]। जयचन्द के दूत जयचंद के बंधुओं[३] सहित

---

(१) महिलउ मंडन नृपति ग्रिह कनक कंति ललनानि । ६:३:१
अंगन २:१३:६, अंगना ६:२७:१, अरधंगे ४:११:३, कलत्र ३:३०:३
ग्रहनी ७:२४:२, गोरी २:७:६, घराणि ४:१७:२, घरनि ८:६:५
जुवती २:५:३, तरुणि ३:३३:६, नायिका ४:२३:११, पतिनि ३:७:४, बाला ३:३४:१, पनिहारि ४:१६:२, परमारि ३:११:३, प्यिनि २:५:२२, बामंग ६:३३:१, बधू ७:२२:२, ८:३:३, भामिनि २:५:४, मानिनि २:४:२, मुग्धा ६:२३:३, बनि २:७:२०, रामा ३:२:१, ललनानि ६:३:१, बनित ४:१४:१०, विरहिनि २:५:२७, विरही ७:२३:२, सहनबनि ३:३३:१, सुकीयं ४:२०:३६, सुभग्ग १०:२६:१, त्रिय १०:५:३, ४:२५:१८

(२) अन्य प्राणो थवा प्राणो प्राणेश दिल्लीश्वर : । २:२५:२
कंत २:५:२२, कंतह ३:४:४, प्राणेश २:२५:२, पीय २:५:४४
वर ३:३०:४, भरतार ४:१८:१, वल्लभ २:२२:१, स्वामि ३:१८:२
सुकीय १०:२८:२

(३) (जयचन्द के)(बंधु समेत .... । उतर आदि दरबार तपुच ।
२:३:६११०

पृथ्वीराज के यहां गए । पृथ्वीराज का संयोगिता के साथ रति विलास-मुग्धता पर उसके गुरु[४] बांधव[४], भृत्य[४] और लोक[४] की गति विपरीत हो चली[४]। पृथ्वीराज गुरुजनों[५] को देखकर संकोच में पड़ गया[५]। सहचरी ने संयोगिता को समझाया कि शीघ्रता में कोई ऐसा कार्य न करें कि गुरुजनों[६] और गुरुओं[६] की निंदा हो ।[६]

(३) पुरुष-सत्ताक

सूर्य के लिए भी दुर्लभ दर्शन वाली स्त्रियां अपने पति का मंडन करने वाली (पतिव्रता) हैं[७] वे सुख के लिए निर्मित[७] हैं और पति के दुख की कतरनी हैं ।[७] पृथ्वीराज संयोगिता को छोड़ कर युद्ध-क्षेत्र में आ गए ।[८] क्योंकि वह धन, स्त्री और मरण को तृन से भी तुच्छ समझते हैं ।[९]

(४) वंश परम्परा पिता सूचक

पृथ्वीराज साकंभरी के कोपयुक्त सोमेश्वर का पुत्र[१०] है[10]। दूती ने संयोगिता को समझाया कि तू राजेश्वर(जयचंद)[११] की पुत्री और पृथ्वीराज लघु लघु पिता[११] का पुत्र है ।[११] पृथ्वीराज[१२][12] ने जयचंद

---

(४) गुरु बांधव भृत लोइ भई विपरीत गति । ६:८:४

(५) संकुरिय सिंघ गुरु जन्न चाहि । २:३:१२

(६) गुरु जन गुरु न निंदरिय । ६:१२:१

(७) दंसन छिणीश्वर दुल्लही निय मंडन भरतार ।
सुह कारणि विहि निम्मीय दुह कवरि करतार ।। ८:
४:१८:१+२

(८) तजि मुग्धहि अब मुग्ध सहाई । ६:२३:३

(९) जिहि धन त्रिअ मरणु जिनि जानउ । १०:५:३
अन्य देशों के पुरुष-सत्ताक-परम्परा के लिए विस्तृत वर्णन देखिए हरिदत्त वेदालंकार का `हिन्दू परिवार मिमांसा` पृ०६४

(१०) सोमेसुर नर नंद । ६:६:३, तनय १२:१:२, नंद १:६:३, पुत्र २:३:१६, २:३:२३, पुत्ता २:१६:२, वेषजादे १२:११:६, पुत्तउ ५:१३:२४
संभरि सकोप सोमेस पुत्र । २:३:३३

की पुत्री का वरण किया[१२]। जयचंद विजयपाल[१३] का पुत्र है। शाह गोरी ने हय, गज, भांडार, धरा सब कुछ उसके पुत्र को अर्पित किया[१४] मुसलमानों में भी यही था। शाहबुद्दीन गोरी के दरबार में सभी जातियों के शहजादे थे[१५]। पुरुषों का जाति नाम संतानों पर पड़ता था। साथ ही कभी कभी पिता के नाम पर संतानों का नाम भी होता था।[१६] अपवाद स्वरूप ही पिता के नाम पर संतानों का नामथा।

(५) पितृ नामी

सामंतों ने पृथ्वीराज को राय दी कि पंगराज की कन्या संयोगिता को घर-घरनी (पत्नी) के रूप में वरण करके दिल्ली पहुंचा जाय, यही बड़प्पन है।[१७]

(६) बहु वर-स्थानी –

यहां महलों के भी मंडन राजा पृथ्वीराज के रनिवास की कनक कांति वाली ललनाएं[१८] थीं और उनके ऊपर नग के समान वर वर्णी संयोगिता थी[१८]।

(७) बहु-भार्यता-प्रथा थी

बहु भार्यता थी, किंतु बहु-भर्तृता-प्रथा नहीं है।

(८) एक भर्तृता

महामात्य कयमास लघु कर्मा हो गया क्योंकि उसकी मति दूसरे की स्त्री में रमण करने लगी।[१९]कयमास का करनाटी दासी के घर में रात्रि में जाना सुनकर महारानी को बहुत क्रोध आया और उसने पत्र लिखकर पृथ्वीराज के पास भेजा।[२०]

---

(११) लहु आ लुहार पत्ता तुं पुत्रीय राइसं धीय। २:१६:२

(१२) चरित्र बाल सुत पंगु राइ। ६:२३:१, कुमारी ५:२१:१, धीय २:१६:२, पुत्त्यि २:११:१, २:१६:२, बाल ६:२३:१

(१३) सुतउ राठ चयराठ विजपाल नंदा। ५:१३:२४

(१४) सा ढिल्ली हय हय भंडार तेहि तनय अप्पि धर। ११:१:२

(१५) १२:११:१ से ६ तक

(१६) पंगानि (पंग-जयचंद-की लड़की) १०:१५:२

(१७) घर घरणि वरणि राठ पंगु की पहुंचइ यह बहुत्तणउ। ८:६:५ इसी अध्याय की टिप्पणी संख्या ७

(१८) महिलउ मंडन नृपति ग्रिह कनक कंति ललनानि। तिहि उप्परि संजोगि नर धीर रच्चउ वर वानि।६:३:१+२

(१९) रावं जा प्रतिमा स चीन धर्मा रामा रमे सा भतीन। ३:२:१

(२०) अति सरोस भरि भुज लिहि दीय दासी कंतहि। ३:४:४

राजा ने उसको मृत्युदंड दिया । इस पर उसकी स्त्री ने सती होने के लिए शव मांगा ।[२१] शाम होते ही पथिक-बधू की दृष्टि (प्रियतम) के पथ में उसी प्रकार अधिष्ठित है जैसे खिंची हुई पतंग होती है ।[२२]

परिवार के कार्य—

(१) यौन-संबंध

(२) दोनों एक दूसरे की सहायता करते हैं—

(३) कुल और बधू एक दूसरे के रक्षक हैं

(४) परम्पराओं को जीवित रखना

दूती संयोगिता को बहकाती है, कि इस क्षणभंगुर संसार में केवल पत्नी की वल्लभ से मिलना[२३] और दोनों का मधुपान[२४] ही स्थायी है । स्त्रियां पूर्ण काम हैं ।[२५] अवसर पड़ने पर दोनों एक दूसरे की सहायता करते हैं । कयमास-बध में पृथ्वीराज का निशाना चूकने पर महारानी ने उसके हाथों में दो बाण और दिए और पीछे से ललकार कर उत्तेजित किया ।[२६] पत्नियां विधाता द्वारा रची हुई दुख की कतरनी हैं ।[२७] आपत्ति में दोनों ने मिल कर मुद मंगल किया, और मन में सभी प्रकार के मनोरथ किए ।[२८] सामंतों ने कहा कि कुल, कुल-बधू की रक्षा करता है, और बधू भी अपने कुल की रक्षा करती है । परवार अपनी परम्पराओं को जीवित रखता और बढ़ाता है । दूती ने संयोगिता को समझाया कि हे बुद्धिहीना, अलीक (लीक त्याग कर चलने वाली) बाला, तू क्यों भिन्न रस के वन(वचनों) को बोल रही है ।[२९] स्त्रियाँ घर का छोटा-मोटा कार्य भी करती हैं ।

---

(२१) देब वरदाइ वर मंगि बाला । ३:३०:४
इसी अध्याय की टिप्पणी संख्या ७

(२२) भिच महोदधि मझ्झ विलंत ग्रसंत तम ।
पथिक बधू पथि दिठ्ठ बद्धद्दिय बंग जिमि । ७:२२:१+२

(२३) थिर बाले वल्लभ मिलन । २:२२:१

(२४) परसप्पर पीवत पियनि अंत । २:५:२२

(२५) कनी त्रिय दिव्विय पुरण काम । ४:२५:१८

(२६) चुट्ठि दिट्ठि रिपि ढुलि चुकि निक्करिग एक सर ।
उभय बान दिय हथ्थ चुट्ठि परमारि पचारिय । ३:११:२+३

(२७) दुख कतरि करतार । ४:१८:२

(२८) मिलि मुद मंगल कीन मनोरथ सब्ब मन । ७:२३:४

(२९) अबुधा अलीक बाला कथं उच्चरिय भिन्न रस बनम् । २:१६:१

(५)
स्त्रियां घर का छोटा-मोटा काम भी करती हैं

पृथ्वीराज ने कवि चंद से बताया कि तूने जिन स्त्रियों को नगरी की सुन्दरियां कहा है, वे स्त्रियां पनिहारिने हैं[30]।

(१)
पत्नी, अरधंग और वामंग

(२)
पुत्र उत्तराधिकारी

पत्नी अरधंग [३४] और वामांग[३४] है। इस सम्बन्ध के प्रति नारी सजग है और आवश्यकता पड़ने पर इसकी पूर्ति के लिए मांग भी की है। पृथ्वीराज को पकड़कर गजनी का शाह शहाबुद्दीन घर जाते समय उसने दिल्ली के हय,गज,भांडार तथा धरा (राज्य) को उसके पुत्र को अर्पित किया।[३५] 'बंधु' आजकल के सामान्य (सगा नहीं) 'भाई' की तरह सम्बोधित हुआ है।[३५क]

रक्त-सम्बन्धियों के अतिरिक्त परिवार के अन्य प्राणी मित्र

परिवार, विशेषत: राजघराने के परिवारों, में कुछ ऐसे अत्यावश्यक प्राणी भी सम्मिलित किए जा सकते हैं, जो यद्यपि उसके रक्त-सम्बन्धी नहीं हैं। उनमें मित्र का एक प्रमुख स्थान है। पृथ्वीराज के गोरी शहाबुद्दीन द्वारा कैद और अन्धा कर दिए जाने पर उनके एक मात्र मित्र [३७] कवि चंद ही अपना सब कुछ छोड़ कर उनके पास

---

(३०) जितिम नयरि सुंदरि कही सु तिय दिक्खिय पनिहारि ।४:१६:२
देo डाo वृजनाथ सिंह यादव : १२ वीं सदी में उत्तरी भारत में समाज के कुछ रूप, पृo ३, उक्ति व्यक्ति प्रकरण:दामोदर, पृo ८०

(३४) हे प्रथिराज वामंग । ६:२३८१, अरधंग १०:२५:५
(संयोगिता कथन पृथ्वीराज से)
अरधंग धरा अरधंग हम अरधंगी अरधंग करि ।
क्य हंस हंस तह हंसनी ढर सुक्कव पंक जल परि । १०:२५:५+६

(३५) गहि चहुआंन नरिंद गयउ गज्जने सहि धरि ।
सा दिल्ली क्य हय भंडार तेहि तनय अप्पि बर । १२:१:१+२

(३५क) (चंद कथन पृथ्वीराज से) बरे नरिंद वा बंध पिंड कज्जउ सुर सज्जउ ।१२:३८:१

(३६) मित १२:२६:२, मित्र १२:१:६

(३७) बालप्पणह प्रथिराज सह अति मित्तपन कीन्ह । १२:२६:२

गए ।[३८] और सहायता की । संयोगिता की सखियां[३९] और सह-चरियां[३९] उसके हित की चर्चा कर रही थीं । राज घरानों में

सखी दूती

दूतियां[४०] भी रहती थीं । ये बहुत चतुर,[४१] व्यवहार-कुशल,[४२] सुंदर[४३] और दृढ़ चरित्रवाली[४४] होती थीं । कवि चंद के निवास की व्यवस्था

भृत्य

के लिए जयचंद ने भृत्यों[४२] को बुलाया । शहाबुद्दीन गोरी ने तुरा-सान खां से कहा कि मार्ग में भी अगम्य भृत्यों[४३] का संग्रह करो ।

थवायत

राजाओं को पान देने वाला थवायत[४४] भी होता था । कवि चंद के बने थवायत[४४] पृथ्वीराज को जयचंद ने स्थिर नयनों से देखा । परिवार में दासी एक सदस्य की तरह है, यद्यपि उसको नौकरों से भी निम्नतर काम सम्पादित करना पड़ता है ।[४५] इनसे उस परिवार के सामाजिक स्तर का पता लगता है ।[४६]

---

(३८) तजि पुत्र मित्र माया सकल गहिग चंद गजनेव रह । १२:१:६

(३९) सहि सहचरिति चरत परसपर बहु किअ । २:४:३

(४०) दूति ६:१२:३, दूती ६:१४, ६:१५

(४१) दूती कथन पृथ्वीराज से संयोगिता के लिए :-

करेन केहरी न पीन इंदु मीन पानये ।

प्रेतक्खि हीर कुध धीर यो सु बीर संचही ।

वरंतु प्रान मानिनी चलंति देत गंठही ।

सुनंत सूर बस्स फेरि तेजि ताम हंक्यं । ६:१५:१२ से १५ तक

(४२) अनु पुच्छल लउ दुति पठावह । गुन बहुत पहुत करि आवह। ६:१२:३-४

सुंदरि आइसं धाइ विचार न बोलइय । कउ बल मंगह लोल प्रीत प्रसंगु लिय । ६:१४:१:२

(४३) सुंदरि ६:१४:१

-कमल कि कोमल पांनि कलिकूल अंगुलिय । ६:१४:३

-पृथ्वीराज कथन दासी के लिए- अनेक अंग रंग रूप कुप आनि सुंदरी। उर्ध्न मंग मधिकुफ धुकिव सर्मपवि मझरी । ६:१५:७-८

(४४) निरक्खि नयन टेरि वयन ता स्मिपवि पाक्यं । तरपिय दक्षि पादि पंक संक्यं न वाक्यं । ६:१५:५-६

उपसंहार —

परिवार बना कर वंश-परंपरा द्वारा मरणधर्मा मनुष्य ने मानव-जाति को अमर बनाया है । इसके द्वारा समाज को एक विशिष्ट प्रणाली में निर्मित कर उसका संचालन भी किया है । इस काव्य में वर्णित परिवार मूल[५५क] किंतु विस्तृत[५६क]-परिवार-प्रथा का, पुरुष सत्ताक[५७], पितृ-वंशी,[५८] पितृ-नामी,[५८] पति-स्थानीय,[६०] बहु-भार्यता,[६१] तथा एक भर्तृता[६२] प्रकार का है । यह पुरुष-प्रभुता के विकास-क्रम में तृतीय सोपान देवता युग[६३] का है । पति इस युग में पिछले काल के गुरु पद[६४] से ऊंचा उठकर देवता बना है ।

---

(५२) (जयचंद ने) हक्कारउ रक्खत नृपति । ५:२६:१

(५३) मग्गहू अगम्म भूत संग रुउ..... । ११:७:६

(५४) दिक्खि धवायत थिरु नयन करि कनवज्ज नरिंद । ५:२०:१

(५५) दे० श० के जातियों में टि०सं० ६५-६६

दे० बृजनाथ सिंह यादव: १२ वीं सदी में उत्तरी भारत में समाज के कुछ रूप, पृ० १५-१८

(५६) ऊपर का, पृ० १८, दे० उक्तिव्यक्ति प्रकरण, दामोदर: पृ० ८१, ८२

(५५क) देखिए इस अध्याय की टिप्पणी संख्या १,२

(५६क) ,, ,, ५से ६ तक

(५७) ,, ,, ७से ६तक

(५८) ,, ,, १०से१५तक

(५६) ,, ,, १७

(६०) ,, ,, १७

(६१) ,, ,, १८

(६२) ,, ,, १६ से २२ तक

(६३)– पतिर्हि देवता स्त्रीणाम् । शंख (स्मृति २५१)

– देववत्पतिमानुकूल्येन वर्तेत । कामसूत्र ४:१:१

– पतिर्हि देवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम् ।मत्स्यपुराण-२१०:१७

– स्त्रिया भर्ता हि देवतम् । रामायण–२:३६:२५ से ३१ तक

– देवतं परमं पति: । महाभारत १४:६०:५०, १२:२६६:३६

---

(६४) गौतम (प्रदानं प्रागृतो: । १८:२२ अथवा कुछ अन्य आचार्यों के—
प्रागवासस: प्रतिपत्तिरित्येके— शरीर को कपड़ों से ढांप कर रखने
की बुद्धि-उत्पन्न होने से पूर्व) और मनु के द्वारा बाल-विवाह—
व्यवस्था में पति-पत्नी का आलंकारिक गुरु बना जिसे परिस्थितियों
ने बाद में वास्तविक शिक्षक बना दिया ।

(६५) सखा ह जाया । ऐत०ब्राह्मण ३३:१
— भार्या श्रेष्ठतम: सखा । महाभारत १:७४:४०

समाज—रचना

३— विवाह

(१५ शब्द ३३ पर्याय सहित विवाह के संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं।   )

परिवार अपने रक्त सम्बन्ध को प्रश्रय देने वाली संस्था है जबकि पाणिबंध[1] समाज की वह सब से छोटी संस्था है जो दो विभिन्न कुलों (कुलों[2]) के दो प्राणियों—पति-पत्नी— को एक सूत्र में बांधता है। इस बंधन की अरधंग[3] पत्नी के वामांग[4] रूप में और जन्म जन्मान्तरों तक बंधे रहने की अभिलाषा[5] में सहर्ष सती[6] हो जाने की विशेषताएं अपना विशेष महत्व रखती हैं और तभी यह तथाकथित ठेका न होकर संस्कार[7] कहलाता है। इसके सम्पादन में अनेक धार्मिक विधि-विधान और क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं।

विवाह दो कुलों को बांधता है

विशेषताएं

धार्मिक विधियां

---

(१) पराणी ७:१:१, पानि गह्यं २:११:२, पानिबंध ६:१५:२१ संजोग २:४:४, मंगली ८:४:६

(२) पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता राठौर कुल की थी।

(३)(संयोगिता कथन पृथ्वीराज से) अरधंग हम। १०:२५:५

(४) (सामंत कथन संयोगिता से) हे प्रथिराज वामंग। ६:३३:१

(५) जन्य प्राणो यथा प्राणो प्राणेश दिल्लीश्वर:। २:२५:२

(६) सतीय रूप ले संचरिउ। ३:४३:१ यह प्रथा अच्छी मानी जाती थी। इसके लिए कोई जोर-जबरदस्ती नहीं थी।

(७) विधि पूर्वक मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित कृत्य को ही संस्कार कहते हैं। भारतीय संस्कृति के मूल तत्व (ले०डा०बैजनाथ पुरी) पृष्ठ ३५.

यद्यपि इस काव्य में, विधिपूर्वक कोई विवाह नहीं[८] हुआ है, फिर भी सर्वप्रथम दोनों पक्षों का प्रेम से गले मिलना,[९] वर-वधू के ऊपर छत्र रहना,[१०] कंकण का बांधना,[११] तूर्य बाजा बजना,[१२] भांवरे भरना,[१३] मंत्र पढ़ा जाना,[१४] गांठ का बंधना[१५] और अन्य अनेक लौकिक आचार[१६]

---

(८) मात्र संयोगिता-पृथ्वीराज का गान्धर्व विवाह अपहरण रूप में हुआ है। यद्यपि ६:३:१ में अनेक ललनानि का संकेत है। वृहत् रासो के अनेक विवाह और धार्मिक कृत्यों का विस्तृत वर्णन देखिए डा० वि०वि० त्रिपाठी का 'चन्द वरदायी और उनका काव्य (१६५२) पृ० ६५, पृथ्वीराज रासो, एक समीक्षा(१६६४) पृ० १४६। उनकी ऐतिहासिकता देखिए डा०मा०प्र० गुप्त के 'पृथ्वीराज रासउ' (१६६४) की भूमिका पृष्ठ १०६

(६) मनउ दलिद्द रिध्धि पाय जाय कंठ लग्गियं। ६:१५:१६

(१०) रहंत भउंर और औंर साह छत्र काम की। ६:१५:१८

(११) करिस्य कांम कंकनं सु पानिबंध बंध्ये। ६:१५:२१

(१२) जु भावरी सखी सलज्ज। ६:१५: २२

(१३) संभ तुरंयं बज्जये। ६:१५:२२

(१४) आचारु चारु देव सब्ब दोइ पक्ख जंपही। ६:१५:२३

(१५) गंठि दिष्ठ छक्कबित। ६:१५:२४

(१६) लोक लोक जंपही। ६: १५: २४

(१७) वत्तिस लच्छन-सहित बरस छत्तीस मास छह। ५:१६:१
(कन्नौज जाने के समय पृथ्वीराज की आयु)

आयु

सन्तोष-हेतु ग्रहण किये गए हैं जिससे इन वैवाहिक आचारों की प्रभाव पूर्ण लोक मान्यता स्वत: सिद्ध है। ऐसे विवाह देवताओं से मान्यता प्राप्त हैं।[१४] शादी के समय पृथ्वीराज साढ़े छत्तीस वर्ष[१७] के और संयोगिता बाल्यकाल को पार कर युवावस्था में पदार्पण कर रही थी।[१८] विवाह के पूर्व कौमार्यावस्था होता है जिसमें स्त्रियाँ पुरुष के रस और स्पर्श विहीन[१९] सोलह वर्ष[२०] तक की आयु वाली होती हैं। उच्च परिवारों में मुसलमानों के भय से बाल विवाह का संकेत नहीं उपलब्ध होता[२०क]। विवाह में पति को वर कहा है।

सती

१० वीं से १२ वीं सदी के बीच में सती की प्रथा जोरों पर है[२२] सम्बन्धी, नौकर और परिचारिकायें आदि के भी साथ में जल मरने के उदाहरण हैं।[२२] किन्तु इस काव्य में कयमास के मृत्यु के बाद उसकी पत्नी के स्वेच्छापूर्वक सती होने के समय कुछ भी असामान्य बातें देखने को नहीं मिली हैं।[२३]

---

(१८) जुव्वन तनु तनु मंडनउ सिसु मंडन तन डोल।
बालप्पण सहि बिछुरनि तिहि चित चंचल भोल।। १०६:१

(१९) जे त्रिय पुरुष रस परस विनु। ५:२१:१

(२०) षोडस बरस। ५:२३:१

(२०क) दे० डा० बृजनाथ सिंह यादव : १२ वीं सदी में उत्तरी भारत में समाज के कुछ रूप, पृ०५-७

(२१) संजोगि जोग वर तुम्ह जाव। २:१०:११

(२२) दे० डा० बृजनाथ सिंह यादव, १२वीं सदी में उत्तरी भारत में समाज के कुछ रूप, पृ० १०-१४

(२३) ३:३० से ४३ तक

उपसंहार

श्री रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ` हिन्दी साहित्य के इतिहास` में लिखा है कि` जैसे, योरप में वीर गाथाओं का प्रसंग` युद्ध और प्रेम` रहा, वैसे ही यहां भी था । किसी राजा के कन्या के रूप का सम्वाद पाकर दल बल के साथ चढ़ाई करना और प्रति पक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हर कर लाना वीरों के गौरव और अभिमान का काम माना जाता था ।` इसके बाद यह परम्परा चल पड़ी कि हिंदी वीरगाथा काल के विशेषताओं में मुख्य विषय राज दरबार में राजकन्याओं का सौंदर्य-वर्णन, उसको पाने के लिए आक्रमण और कन्या अपहरण आदि हैं । इन सब का आधार पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास[२४] में संदिग्ध वीसलदेव रासो और पृथ्वीराज रासो` माना है । किन्तु डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित इन दोनों ग्रन्थों में ऐसी कोई घटना नहीं है । इस पृथ्वीराज रासो में कहीं भी न तो राज दरबार में राजकुमारी का सौंदर्य वर्णन है, न उसके लिए आक्रमण और कहीं भी कोई कन्या अपहरण अथवा विवाह-सम्पादन ही है । बेचारे राजपूत राजाओं को व्यर्थ ही में हिन्दी साहित्य में ऐसे कार्यों के लिए बदनाम होना पड़ा है । इन आक्षेपों के लिए कोई अन्य साक्ष्य भी उपलब्ध नहीं है । इस संदर्भ में इतिहास भी मौन है । [२५] कयमास-पत्नी के स्वेच्छापूर्वक सती होते समय कोई असामान्य घटना नहीं हुई है ।

---

(२४) पृष्ठ ३८

(२५) डा० माताप्रसाद गुप्त की पृथ्वीराज रासउ` (१९६४) भूमिका का पृ० १०९—११०

४. जन-सामान्य (१५ शब्द १८ पर्याय सहित जन सामान्य के संदर्भ में प्रयुक्त हैं)

दरिद्री
लोभी, कृपणा
मंगन
भूखा
छैला
जुआड़ी
दानव-भूप
दुर्जन
ठग
लंगरी
नंगा
सज्जन
काव्यानुरागी-नर

इस श्रेणी के लोगों में दरिद्री[१] और लोभी[१] तो राजा से मिल सकते हैं, योगियों[१] से यह आशा नहीं की जाती थी। कृपणा[२] गांठ न खोलने में प्रसिद्ध थे। कहते हैं, कि मंगन[३] के घर में यदि दारिद्र्य का दल हो, तो विधाता के उस लेख को कोई नहीं मिटा सकता।[३] भूखा जैसे शक्कर और दूध ग्रहणा करता है, वैसे ही कवियों द्वारा सरस्वती का गुणा-गान था।[४] कन्नौज नगर में वेश्याओं में अनुरक्त छैलों का संघट्ठ है[५]। कहीं चुप्पे (चुपचाप खेलने वाले) जुआड़ी[६] हैं। कहीं विपक्ष में दानव-भूप[७] (दानवों के सरदार) भी दिखाई पड़ता है। दुर्जनों को पृथ्वीराज इस प्रकार बन्दी करता था जैसे राहु सूर्य-चन्द्र को ग्रसता है।[८] किन्तु वह स्वतः कन्नौज में, दिल्ली का ठग[९] बन गया। कहीं लंगरी,[१०] (वस्त्रधारी साधुओं के) यूथ और कोटि कोटि नग्न[१०] (नंगे) साधु थे। कहीं पर साधु[११] (सज्जन) संभल कर (जुआ) खेलते और कहीं पर नर के श्रवणा काव्य वार्ता रस के ग्रहणा में निमग्न दिखलाई पड़ते हैं।

---

(१) हमहि मिलइ जि चंद सुनि बरह दलिद्दी लोभ। [लोभी कृपण]
अरु जि दुनी महि संचरइ हम सउं मिलत न सोभ। १२:२४:१+२

(२) (कवि चंद कथन पृथ्वीराज के लिए)— कृपन गंठि जिम साहि राज कब गंठि न छोरइ। १२:४०:२

(३) मंगन ५:१४:६, याचक १२:३६:३
दल दलिद मंगन घरह सु को मेटइ विधि पत्र। ५:१४:२

(४) गुन उच्चारं चारु जिनि किन्नउ। चानु भुक्खउ साकर पय लिन्नउ
५:१:३+४

(५) जिते छइल संघट्ट वेसनि रचे। ४:२३:७
नगर का प्राचीन व्यक्ति या छैल नागरक (४:२:१२८) कहलाता था। पा०भार०स०पृ० १३७ = छइल्ल— विदग्ध, चतुर, नागर, काव्य, रसिक। हेमचन्द्र ने छइल और छइल्ल को देशी कहा है। किंतु संस्कृत छविमत् से प्राकृत छविल्ल, छइल्ल व्युत्पत्ति अधिक संभव है। जैसे नागर शब्द के दोनों अर्थ होते हैं — शौकीन और विदग्ध, ऐसे ही छविल्ल शब्द दोनों अर्थ होते हैं। कीर्तिलता: सं० वासुदेव शरण अग्रवाल,

---

(५ का शेष) पृ० १३

(६) जिते रूप के जूप जुप्पै जुआरी । ४:२३:७३

(७) तिते देषिए भूप दानवं विपष्षे । ४:२३:३६

(८) हम दुज्जन संगहह राह जिम चंद सूर गह । ५:१६:२

(९) मनु ढिल्ली ठगु ठगि गयु । ६:१८:२

(१०) लंगरी जूथ तिनके प्रसंगा । दिष्षये कोटि कोटिन्न नंगा ।

५:२३:१+२

चतुर्भाणी : सम्पा० मोतीचन्द्र, पृ० ६६ भूमिका में लिंगिनी, परिव्राजिका के अर्थ में प्रयुक्त है ।

(११) जिते साध संभारि षेलंत लष्षे । ४:२३:५

(१२) सुर नर भवन मांहि रहि पची । ५:५:४

सामाजिक नियंत्रण

(सामाजिक नियंत्रण २३ शब्द ३१ पर्याय सहित संदर्भों में प्रयुक्त हुए हैं)

अनुच्छेद ——

१ — अर्थ

सामाजिक अपराध के लिए राजा या पिता द्वारा दण्ड

२ — अनायोजित विधियां —

लौकिक आचार, अंगुली-फिरना, गुरु-बांधव-भृत्य – लोक की विपरीत-गति, गुरुजन और गुरुओं की निंदा न होना, पिता और बान्धव से वर्जित, लज्जा, शपथ, हाथ में हाथ देना, वचन देना, प्रतिज्ञा करना, सीख, साक्षी, अंगीकृत होना, शाप ।

३ — उपसंहार

सामाजिक-नियंत्रण

सामाजिक- नियंत्रण का अर्थ

सामाजिक नियंत्रण में आयोजित अथवा अनायोजित प्रक्रिया के द्वारा मनुष्य को सीख प्रदान की जाती है, कि वह उस समूह की रीतियों और जीवन के मूल्यों का आदर करे, जिसका वह एक अविच्छेद्य अंग है। किसी आयोजित विधि अथवा संहिता का उल्लेख इस काव्य में नहीं है। हां, व्यवहार में यह आया है, कि अमात्य के समाज-विरोधी एक अपराध पर उसको राजा द्वारा मृत्यु दंड[1] दिया गया है। एक दूसरे स्थल पर कन्या (संयोगिता) के पिता (जयचंद) द्वारा प्रस्तावित विवाह के अस्वीकार करने पर उसे राजमहल से अलग कर नदी-तट पर आवासित किया गया है और साम-दाम-दण्ड-भेद[2] से अनुकूल बनाने का कार्य किया गया है जो मात्र सामाजिक नियंत्रण परक आचार का सूचक है।

राजा या पिता द्वारा दण्ड

अनायोजित विधियों में हमारे यहां (१) संस्कार (२) आश्रम और (३) शिक्षा प्रमुख हैं, जिनके सम्बन्ध में यह काव्य मौन है। (४) धर्म (५) सामाजिक शिष्टाचार और (६) सामाजिक मापदण्ड भी समाज नियंत्रण के प्रभाव सम्पन्न साधन हैं। जिनका वर्णन यथास्थान आगे किया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य और सामाजिक तत्व भी हैं जो हमारे समाज को नियंत्रित करते हैं। यथा वह

---

(१) (पृथ्वीराज के) बानावीर लटकंति (कयमास के) छुटिल धर धरनि आधारिय। ३:११:४

(२) परट्ठि पंगराइ दुचि सुतीय वालि मुक्कने।
साम दान दंड भेद सारंग विच्छने। ३:१२:१+२

लौकिक आचार

लौकिक आचार[३] जो पृथ्वीराज और संयोगिता के गान्धर्व विवाह में लोक मर्यादा का अतिक्रमण कर प्रस्तुत है । जिसकी ओर

उंगली-फिरना

(लोगों की) उंगलियां फिरें, वह प्रिय जन भी प्रयोजन के योग्य नहीं ।[४]

ग्रहों का विपरीत होना

गुरु, बांधव, भृत्य और लोक (प्रजा) की गति विपरीत हो जाना अच्छा नहीं ।[५] ऐसी स्थिति पृथ्वीराज के अति विलास-प्रियता पर भी उत्पन्न हो गई है । उसने गुरु और देव-गण की सेवा भी विस्मृत कर दी है ।[६] परिणाम-स्वरूप उसका विनाश हुआ । संयोगिता का विचार था कि यदि किसी के मन में गुरुजन[७] के प्रति आदर नहीं होता है, और वह तात (पिता) तथा आप्त[७] (ज्ञानी पुरुष) से वर्जित रहता है तो उसका काम सदैव नष्ट हो जाता है ।[७] इसलिए गुरुजनों और गुरुओं की निंदा न होने दीजिए[८]। सुलतान शहाबुद्दीन ने अपने सेनापतियों से निवेदन किया कि मैंने दुनिया भर के लोगों को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए इकट्ठा किया है । उसको बंदी करने की मैं इच्छा

लज्जा

कर रहा हूं।मेरा मनोरथ पूरा करो । तुम लज्जा धारण करो, मुझे[९] लज्जित न करो ।

---

(३) लोक लोक संपही । (टीका में- लौकिक आचार उनका लोक-मर्यादा का अतिक्रमण था । ६:१५:२४

(४) जिहिं प्रिय तन अंगुलि फिरइ तिहि प्रियजन कहा कज्ज । ६:३०:२

(५) गुरु बंधव भृत लोइ भई विपरीत गति । ६:८:४

(६) गुरुदेव सेव सुनि सारई । १०:७:२

जिहि अहनिसि सेव देव गुरु बानी । १०:३:३

(७) गुरु जनो चि मनो नास्ति तात आप्त वर्जिता ।

तस्य कार्य विनस्यंति यावद् चन्द्र दिवाकर । ६:२६:१+२

(८) गुरुजन गुरु न निंदरिय । ६:१२:१

(९) धरहुं लज्ज लज्जहुं न भर । ११:७:६

परामर्श

शपथ

हाथ में हाथ देना

सीख

वचन

साक्षी

अंगीकृत होना

– श्राप

इस पर म्लेच्छों (मुसलमानों (ने सच्ची मशवरत[१०] (परामर्श) की और सबों ने कुरान बांची[१०] (बांच कर शपथ ली) और कहा, " शाह (शहाबुद्दीन) की आन[११] (शपथ) है, कल सुबह हम (शत्रु पक्ष के) मर्दों की आन छुड़ा देंगे ।[११] सुलतान की आन है [१२] यदि हम (कल) बहुमान से चाल बांध कर न लड़े ।[१२] (तुम्हारे) हाथ में आज हम हाथ दे रहे हैं [१३] –तुमसे प्रतिज्ञा करते हैं, हम न दरोग (झूठ) (कहेंगे) और न दोजख में पड़ेंगे ।[१३]" संयोगिता को उसकी सखियों ने श्रेष्ठ वचनों में सीख[१४] दिया । उसके परिणय के बाद सामंतों ने पृथ्वीराज से वचन[१५] मांगा कि आप संयोगिता सहित दिल्ली चले जायं । वचन देने के प्रति लोगों की धारणा थी कि मर्द वही है जो मुख से जो कुछ उच्चारण करे आगे उस सब को साधे ।[१६] महाभारत के कवि व्यास ने पार्थ-सारथी द्वारा उक्त गीता से साक्षी [१७] दी है । बिना अंगीकृत [१८] कलाकार नग रहित सोने के सदृश्य है । इन्द्र को गौतम ऋषि ने उसके सामाजिक-अपराध के लिए श्राप[१९] दिया था ।

---

(१०) मेछ्छ मसुरति सचि किय बंचि कुलांत कुरानं । ११:६:१

(११) आन साहि मरदान आन सु बिहान बिछोरहि । ११:८:२

(१२) सुलतान आन बहुमान सउं जउ न चाल बंधिवि भिरिहिं ।११:८:५

(१३) दे हथ्थ हथ्थ दे अज्जु हम नहि दुरोग दोजक परहि ।

११:८:६

(१४) ता सिष देहि बयन वर सष्षी । ६:२६:२

(१५) मिले सब्ब सामंत बोलु मग्गहि त नरेसर । ८:१:१

(१६) मरद सु मुष उच्चरइ नि कछु अग्गइ सब सध्धइ । १२:४१:४
जो अपने बात करती, यह अपने बाप का भी नहीं ।

(१७) जिनें उच पारथ्थ सारथ्थ साष्यी । १:४:६

(१८) कवि अग्गहि अंगीक्रित हीनउ । हेम बिना जिम भयउ नग हीनउ

५:८:३+४

(१९) गौतम रिष वर सराप दिन्नौ किनी । ३:३६:५

क—समाज रचना का उप संहार

हिन्दू

इस काव्य में मुख्यत: दो समाज हैं। लगता है 'हिन्दू'[१] समाज धर्म, जाति और पेशे का सीमोल्लंघन कर रूढ़ हो गया है। दूसरा समाज अभिनव है जिसका अस्थिरतावश तीन नामों—हमीर,[१] तुरक[१] एवं म्लेच्छ[१]— से उल्लेख हुआ है। 'मुसलमान' शब्द संभवत: तब तक रूढ़ नहीं हो पाया था अथवा उसका व्यापक प्रचार नहीं हुआ था। यवन का[२क] भी उल्लेख है।

मुसलमान

क्षत्रिय

'हिन्दू' में वर्ण-व्यवस्था थी। उनमें क्षत्रिय[२] जो अपने को सगर्व राजपूत भी कहते हैं, बहु-चर्चित हैं।[२] ये युद्ध-रत हैं। उसके आधार पर यह तथ्य कि भारत शक्तिशाली था, किंतु अपने शक्ति का प्रयोग अत्याचार अथवा दूसरे के शोषण में कभी नहीं किया है, वास्तविकता नहीं रखता। पृथ्वीराज ने गजनी में विच्छोह कूटा दिया है[३] जयचंद ने एक दिन में आठ सुल्तानों को साधा;[३] बैरागर के सब हीरे ले लिए[३], हेमकूट में स्थित राज्यों को सम्पूर्ण रूप से ढहाया,[३] भूल कर विभीषण पर आक्रमण कर बैठा[३] और अपने रोष के शोषण द्वारा समुद्र को वंस कर डाला[३] आदि। सम्भव है इसी कारण —ये हिन्दू(डाकू,आतंककारी) (परसियन अर्थ) की संज्ञा धारण कर लिए हैं। म्लेच्छ अपने को हिन्दुओं से अच्छा और धार्मिक समझते हैं।[४] हिन्दू भी मुसलमानों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते हैं।[५]

---

(१) देखिए इसी अध्याय के क (१) की टि०सं०१से ७ तक
(२) ,, ,, ,, ३७ से ५६ तक
(२क) ,, ,, ,, ३५ख
(३) ,, ,, ,, १७ से २४ तक
(४) ,, ,, ,, १६
(५) ,, ,, ,, ८ से १२ तक

विप्र,[६] भाट--बंदी[६], नट-नर्तक[६], दासी,[६] वेश्या[६], कोल, चाण्डाल,[६] भिल्लनी[६] जातियां और दरिद्री,[७] लोभी,[७] योगी,[७] कृपण[७], मंगन,[७] भूखा,[७] चेला,[७] जुआड़ी,[७] दानव-भूप[७] दुर्जन,[७] ठग,[७] लंगरी,[७] नंगा[७] और सज्जन[७] आदि अन्य सामान्य हिन्दुओं में पाए जाते हैं। मुसलमानों में अनेक जातियां, शाह शहाबुद्दीन के दरबारी-प्रसंग में उल्लिखित हैं।[८] हिन्दुओं में आपस में छुआ-छूत अथवा ऊंच-नीच की कोई कठोर भावना नहीं परिलक्षित होती है। राजगुरु सम्मानित है।[९] मनुष्य जाति के अमर होने के लिए विवाह और परिवार से बढ़ कर कोई दूसरा सरल, सुन्दर और उत्तम उपाय अब तक नहीं खोजा जा सका है। इस काव्य में हिन्दू राज्य- परिवार सब प्रकार से पुरुष-सत्ता-परक है।[१०] स्त्रियों की महत्ता कम हो गयी है। उनका पर्दे में रहना अच्छा माना जाता है[११]। किन्तु कोई कोई-कोई स्त्री अपनेको अधिकारी (अनुगामिनी) होने का अधिकारी मानती है और उसकी पूर्ति-हेतु मांग करने का साहस भी करती है।[१२] स्वयंबर में वरण-स्वातन्त्र के अधिकार की सीमा में पिता का हस्तक्षेप राजकन्याओं

---

(६) देखिए इसी अध्याय के क(१) की टि०सं० ५७ से ७४ तक

(७) ,, ,, क (४) ,, १ से ११ तक

(८) ,, ,, क (१) ,, २५

(९) अध्याय १० का उत्तरार्द्ध

(१०) दे० इसी अध्याय के क (२) की टि०सं० ७ से २२ तक

(११) जांह्नवी तट पिक्खियऊ लघ रासि बै दासि।
  नगर ति नागर नर धरणि रहहिं अवासि अवासि।४:१७:१+२
  = दंसन दिणि बर दुल्लहि ...... । ४:१८:१

(१२) बरअंग धरा बरअंग हम बरअंगी बरअंग करि।
  १०:२५:५

को अमान्य है । राजाओं में मूल-परिवार-प्रथा[१३] भाषित होती है । इसमें रक्त-सम्बन्धियों के अतिरिक्त मित्र, सखी-सहचरी, दूती, दासी, भृत्य और पवायत आवश्यक हैं[१४] मुस्लिम परिवार और विवाह-प्रथा पर इस काव्य में कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है ।

समाज-नियंत्रण की विधियों में धर्म, लोक-रीति-नीति, शिष्टाचार और आदर्शों का वर्णन आगे यथा स्थान होगा । संस्कार और शिक्षा पर यह काव्य मौन है ।

वर्ण व्यवस्था और परिवार-प्रथा पर प्रकाश डाला जा चुका है ।

इनके अतिरिक्त, इस अध्याय में, उन व्यावहारिक लघु क्रियाओं का उल्लेख है जिनका प्रभाव हमारे समाज को व्यवस्थित करने में सहायता पहुंचाता है । वे बड़ों को विपरीत होना, हाथ में हाथ देना, सीख, साक्षी, अंगीकृत होना, और श्राप है ।

---

(१३) देखिए इसी अध्याय के क (२) की टि०सं० १ और ३६ से ५४ तक ।

(१४ देखिए इसी अध्याय ,, ,, ,,

(क[१]) आर्थिक स्थिति

(४३ शब्द ५२ पर्याय सहित आर्थिक स्थिति के संदर्भ में प्रयुक्त हैं।)

भारत वर्ष कृषि, व्यापार, व्यवसाय और अमूल्य खनिज पदार्थों का एक समृद्धशाली देश था। इसे खाने पीने की तब अधिक चिन्ता नहीं थी। इसलिए आर्थिक स्थिति के वर्णन की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। अत्यधिक अल्प मात्रा में, व्यावहारिक जीवन के माध्यम से कुछ आर्थिक तथ्य यहां दृष्टव्य हैं :—

जन-संख्या सघन

जयचन्द की ८० लाख[१] और पृथ्वीराज की ७०[२] हजार सेना, कोटि कोटि नंगे[३] तथा यूथ के यूथ लंगरी[४] साधुओं का जमाव, मात्र एक नगर में एवं कन्नौज नगरी के जनाकीर्ण से अगम्य[५] होने से ज्ञात होता है, कि जनसंख्या सघन और

नगरों में केन्द्रित

नगरों में केन्द्रित है। उनका रहन-सहन कैसा है, परवर्ती रहन-सहन ~~कैसा है~~ के अध्याय में उल्लिखित है। जन सामान्य के आय-साधनों में जुआरी,[६] सोनारी,[७] वेश्यागिरी[८] और माला गूथने[९] का व्यवसाय है। व्यावसायिक केन्द्र की इकाई हाट और नगर है।[१०]

आय के साधन

राजा के यहां नौकरी से कुमारियां,[११] दासी,[१२] भृत्य,[१३] और ज्यायत[१४] जीवकोपार्जन करते हैं। तत्कालीन बहु प्रचलित

---

(१) (पृथ्वीराज ने जयचंद की सेना)
    लख असिय लच्छ दल गहि गहि भक्खइ। १०:६:२

(२) सत्त सेन सहरि सहस। ११:१:१

(३) मिलिच्छये कोटि कोटिन्न नंगा। ४:२३:२

(४) लंगरी जूथ। ४:२३:१

(५) अगम ति हट पट्टन। ४:२४:१

(६) जुज्झिय जुआर जु जिच्छहि सार। ४:२५:६

(७) काढ्हि त हेम ग्रहि ग्रहि सोनार। २:३:५८

अनेक प्रकार के व्यापारों एवं कृषि धंधे पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। भां, अकाल[१५] का कारण भूत टिड्डी दल का वर्णन है। भेंट,[१६] कर,[१७] (टैक्स), दान[१८] और लूट मार[१९] में प्राप्त धन राजाओं की आय के साधन हैं।

व्यय के ढंग उत्सव मनाना,[२०] आभूषण बनवाना,[२१] भेंट,[१६] दान,[१८] मंदिर[२२]-आवास[२३] और हर्म्य[२४] बनवाना, कर्मचारियों के पारिश्रमिक,[२५] जुआ,[२६] वेश्यागमन,[२७] पान,[२८] और

---

(८) जिते कुशल संघट्ट वेसानि रवे। तिते दव्व षीक्व हीनेति गवे।। ४:२३:७१८

(९) बेलु ल सेवंतीय गुठिहि जाय। जु देव दव दासीय लेहि ढहाय। ४:२५:७, ८

(१०) अगम गति छुट्ट ति पट्टन मंक। ४:२५:१

(११) ५:२१

(१२) ६:१५:६, देखिए इसी अध्याय की टिप्पणी संख्या ६,५:२१:१

(१३) ५:२६:१

(१४) ३:४:२, ५:२०:१

(१५) ६:४:२, ८:२२:२

(१६) ५:४४

(१७) ११:७:४

(१८) ४:१०:१३, १४, २:१:१४

(१९) लिये अरागरे दव्व हीरा । ५:१३:१८

(२०) २:३:५६-६३

(२१) २:३:५८

(२२) २:१:१३

(२३) २:२०:१

(२४) ६:४:१

(२५) ६:६:४

माला के क्रय[२६] आदि हैं । राजाओं का सबसे अधिक व्यय सेना पर होता रहा होगा ।

यातायात

यातायात के साधनों का उल्लेख परवर्ती वाहन अध्याय में होग । गमनागमन के लिए मार्ग [३०] और सेतु[३१] का उल्लेख हुआ है ।

द्रव्य

द्रव्य[३२] में रूपया[३३] धातु[३४] मोती,[३५] मणि,[३६] रत्न[३७] और सोना[३८] का नाम लिया जा सकता है ।

अर्थ सम्बन्धी लोक-दृष्टि

अर्थ के उत्पत्ति और वितरण पर स्पष्ट प्रभाव आलोच्य काव्य में नहीं दृष्टिगत होता है । रिध्धि[३६] अच्छे और दलिद्र,[४०]

---

(२६) ४:२३:३

(२७) ४:२३:७,८

(२८) ४:२५:३

(२६) ४:२५:८,६

(३०) गम ४:७:१४, गोमग्ग ६:१०:२, पंथ २:५:४७, पथि ७:२२:२ मग्ग २:५:२५, ८:१:२, ११:७: ६, १२:१३:१, रह १२:२:१, बट्ट ८:१०:१०

(३१) १:४:१२

(३२) दब ४:२५:८, दब्ब २:३:२३, ४:२३:८

(३३) जिते रूप के जूप जुप्पै जुआरी । ४:२३:३

(३४) ४:२४:२

(३५) ४:२४:१, ६:७:२

(३६) मनि ४:२४:१

(३७) रतन ४:२४:१

(३८) हाटक ४:२४:२

(३६) ६:१५:१६

(४०) ५:१४:२, ६:१५:१६

निर्धनी,[४१] कृपण[४२] तथा मंगन[४३]बुरे दृष्टि से देखे जाते हैं।

---

(४१) २:५:१६

(४२) ८:५:२

(४३) ८:५:३

(३) सामाजिक दशा

(अ) रहन-सहन

(१) तन, वस्त्राभूषण, खानपान और सुगंधित वस्तु

(६८ शब्द ५८८ पर्याय सहित तन,वस्त्राभूषण आदि के संदर्भ में प्रयुक्त हैं)

अनुच्छेद	संदर्भ
१—	शरीर-रचना
२—	शरीर की अवस्थाएं
३—	आदर्श शरीर
४—	तन-वेश
५—	शरीर-प्रसाधन
६—	शरीर के अंग—
	(१) मुख
७-९	(२) सिर, मनोवृत्तियां,शिरोभूषण
१०—	(३) कान
	(४) नाक
१२—	(५) आंख
१३—	(६) अधर
	(७) दांत
	(८) जीभ
	(९) दाढ़ी
१४—	(१०) गला
	(११) धड़
१५—	(१२) हृदय
	(१३) मन
	(१४) चित्त
१६—	(१५) कुच
	(१६) छाती
१७—	(१७) कंधा
	(१८) कांख

शरीर-रचना

पिंड (शरीर[1]) कच्चा है, और (उस शरीर में निवास करने वाला) सुर (चेतन जीव) सच्चा है[2]। क्योंकि इस पंच-तत्व[3] निर्मित शरीर में दस द्वार[4] और दो कपाट हैं[4] जिनके बन्द होने से इसका नाश हो जाता है।[4] मनुष्य इस शरीर को विशेष रूप से सम्वर्द्धित करता है, किन्तु अन्त में हंस (जीव) तन[6] पंजर छोड़ कर चला जाता है[6]। तब इस शरीर को जलाते हैं।[7] ऐसी स्थिति आने पर मनुष्य बहुत डरता है।[7]

शरीर की अवस्थाएं

मनुष्य माता के गर्भ में वास करने के अनन्तर दिन पूरा होने पर जन्मलाभ करता है।[8] किशोरावस्था में शरीर कुरंगियों के समान कोमल होता है।[9] यौवनागम पर शरीर थोड़ा पीन लगने लगता है[10] और इसमें कामाग्नि जाग उठती है।[11]

---

(१) गत १२:४४:१, गात २:३३:१, गातयो ३:१७:७, तन २:२२:२, १२:१८:३५, तनु २:२३:१, देह २:५:३६, १२:१६:१, पिंड ८:३६:२, १२:३८:१, बदन १०:२६:१, बपु ३:३२:३४, ११:७, १२:३:१, सरीर १:२:२

(२) (चन्द कथन पृथ्वीराज से) पिंड कच्चउ सुर सच्चउ । १२:३८:१

(३) अप्पु तेज समीर धरा आयास ज पंचउ । १२:३८:२
= पंच भच १२:४३:१

(४) लागि दसन रसन दस रुंधिअउ विहु कपाट बंधे सघनं ।१२:३८:५

(५) बपु विसेस बढ़्ढअउ । ३:३२:३

(६) जिम चलइ हंस..... छंडि मोह तन पंजरहि । १२:३८:५

(७) अंत डहुअउ डर डरयउ । ३:३२:३

(८) मातु गब्भ बास करिवि अंत बासर बसि लभ्भउ । ३:३२:१

(९) कोमल कुरंगि किंचित किसोर । २:५:९

(१०) बाल बलिन स पीर । २:५:११

(११) वा सुंदरि कामागनि जग्गय । ६:२५:२

(१२) जिय अयन मयन ति संभयउ । १०:११:१७

यह युवाजनों के देह[१३] को विदीर्ण करता है।[१३] यह शरीर जरा (वृद्धता) के जाल में बंधा हुआ है।[१४] यौवन के चले जाने पर जब तन[१५] विकृत हो जाता है, तो यौवन के दिनों की रति इसके साथ कोई नहीं मांडता।[१५] यह शरीर काल के मुख में खेलता रहता है[१६]। मरने पर इसके दसों द्वार और दोनों कपाट बंद हो जाते हैं।[१७] तब मृतक शरीर[१८] पर श्रेष्ठ अंगना का स्नेह भी नहीं भेद पाता।[१८] युद्ध में शरीर पर चोट[१९] भी पड़ती है।

आदर्श-शरीर

आदर्श शरीर[२०] में कांति होती है, गौर वर्ण होता है[२०]। गात्र[२१] में कपोलों की रेखा प्रात:कालीन इंदु सदृश्य है।[२१] रमणियों की मंद गति गजों और हंसों के मार्गों को उत्थापित करने वाली हो।[२२]

तन-वेश

कवि चन्द ने अपने शरीर[२३] में बहुत-सी विभूति (राख) लपेट ली और यम के कूट जैसी जटा बांध शाह शहाबुद्दीन से मिलने गया[२३]। महेश जी नट के वेष में रिंद (मस्तमौला) हैं।[२४]

---

(१३) विदारये वीर जुव जननि देह। २:४:३६

(१४) जरा जाल बंधियउ। १२:३८:३

(१५) गये जोबन कुव्वन तन सु को मंडव रति सोई। २:२२:२

(१६) काल आनन मधि षिल्लव। १२:३८:३

(१७) देखिए इसी अध्याय की टिप्पणी संख्या ४

(१८) भिदइ न तेह सुष दुष्ष मन मृतक वरांगना नेह। १२:१६:२

(१९) त्रुटि ८:१६:२

(२०) सरीर नीर गहिरा गौरी। १:३:२

(२१) कपोल रेख गातयो। उवंत इंदु प्रातयो। १:१७:७+८

(२२) गय हंस मग्गुन उथप्पनं। १०:११:८

(२३) वपु विभुति बहु विट्ठमव जट जैसी जम कूट। अवधूत वेष
१२:३:१+२

(२४) नटे भेष रिंद। नमो ईस इंद। १:३०:२०+२१

शरीर- प्रसाधन

हिन्दू धार्मिक जनों का शरीर[२५] गंगा जल से विलसित है[२५]। शाह शहबुद्दीन ने चंद के आतिथ्य में उसके शरीर[२६] में अगुरु-धूप आदि सुगंधित द्रव्य लगवाए।[२६] महिलाएं अपने शरीर को साड़ी से सजाती हैं।[२७]

शरीर के अंग

(१) मुख

समाज उस मुख[२८] की ओर अधिक आकर्षित होता है जो कमल की तरह कोमल,[२९] द्युतिमान[३०] और आनन्द[३१] से परिपूर्ण होता है। अनपेक्षित घटना मिलने पर मुख[३२] सन्ध्याकालीन कमल सदृश्य मलिन हो जाता है।[३२] यह अपने सम्मानित तथा प्रिय-जन के मिलन-अवसर मुख-[३३] लालिमा द्वारा उनका स्वागत प्रदर्शन करता है।[३३] मदन अपने साथ मुख[३४] में चतुराई लाता है।[३४] कठिन समस्या के समय प्रिय प्रिया का मुख[३५] देखता है। पृथ्वीराज के मुख[३६] को शाह शहाबुद्दीन संमुख सहन नहीं कर सकता था, उसी के लिए अपने मुख[३६] से (शाह) `गहन रूप से पकड़ो` कह रहा है।[३६] वीरों का कर्तव्य है कि मुख[३७] चाहे खंड खंड हो जाय किंतु सत्य को न छोड़े।[३७]

---

(२५) वपु वपु विलसदे। ४:११:७

(२६) करिग चंद महिमानं तब अगुर धूप दिव देह। १२:१६:१

(२७) १:२:२, २:७:६, २:२४:१-४, ३:१७:२२, १०:११:४६, ३:३४:१, ४:२०:३७, ४:२५:६, ४:२५:१०, ५:३८:१०, ४:२३:१७, ७:१७:३५

(२८) आनन २:२०:४, तुंड ८:१४:४, मुख्ख २:३१४२, मुख ५:६:१, ५:७:१, ५:८:१, १०११:१६, मुह ११:१८:१५, वदन १०:२६:१

(२९) कमोलव मानंन। ५:७:१

(३०) चोंप लरिलो। ५:७:१ = मुख मडण। १०:११:१६

(३१) राका कानि वालि रालि भिलया मंदाननभ्भासने। ६:१२:२

(३२) (पृथ्वीराज को अपने अधीन न कर सकने पर जयचंद का मुख) भयु मलिन मुख्ख वानुं कमल संझ। २:३:४२

(२) सिर

महेश अपने सिर[३८] पर चन्द्र[३६] और गंगा[४०] को लिए हुए, दूसरे विशिष्ट व्यक्तियों के सिरों[४१] की माला गले में लटकाए हैं। उनके पुत्र गणेश नव हाथी के तुंड[४२] वाले हैं जो मद-गंध के घ्राण-लुब्धा भूरि अलियों से आच्छादित हैं।[४३] मन्मथ के सिर[४४] पर काम के भौंर, वसन्त ऋतु में, चामर का काम कर रहे हैं।[४४] गुरु गोविन्दराज का कहना था कि जब तक पृथ्वीराज के कंधे पर सिर[४५] है, जयचन्द का राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता।[४५]

---

(३३) (जयचंद के कवियों और चंद के मिलने पर)

मुख परस्परपर देखत भयउ रहे। ५:६:१

(३४) दूती कथन संयोगिता से –

चतुरे तुं चतुराय आनन रहे सा जीव मदनावरे।

२:२०:४

(३५) (शाह शहबुद्दीन के आक्रमण पर संयोगिता का पृथ्वीराज को रोकने पर) सुनि प्रिय प्रिय दिष्यो वदन। १०:२६:१

(३६) जिहि मुह साह समुक्ख सहि न तिहि मुह अंपक गहु गहन।

११:१८:५

(३७) [कनक कहू गुज्जर-कथन] जीव लगि सव न खंडहु।

चंड चंड हुअ तुंड मुंड। ८:१४:३+४

(३८) तुंड १:१:३, ८:१४:४, भ्रुवं (भाल) १:१:१, मांग ४:२०:३

ललाट १:३:२, सिर २:५:२६, ४:११:३, ८:२४:१

सीस २:३:३५, सीसु ८:१६:३

(३६) ललाटीय चंद। १:३:२ (४०) हर सिर परसने। ४:११:३

(४१) (महेश की) सिरोमाल लहं। १:३:४, मुंड हरि-हार सु मंडहु ८:१४:४

(४२) करि नव तुंडीर। १:१:३

(४३) भ्रुवं या मद गंध घ्राण लुब्धा अलि भूरि आच्छादिता।

१:१:१

(४४) बनि बग्ग मग्ग हलि भंभ भउर।

सिर ढोरिहिं मनहुं मनमथ चउंर। २:५:२५+२६

वीर सोचते हैं कि जीवन के लिए सत्य नहीं छोड़ेंगे, तुंड (मुख-सिर)[४६] खंड खंड हो जायगा तो मुंड से[४६] हर-हार को तो मंडित करेंगे।[४६] युद्ध में शत्रुओं का सिर,[४७] खड्ग मारने का सबसे उपयुक्त स्थान है।[४७] युद्ध के रक्त-सरोवर में सिर[४८] सरोज सा दिखाई पड़ते हैं।[४८] कन्नौज की तरुणियों की मोहनी मांगें[४९] मुक्ताओं का वर्ण लिए हुए ऐसी लगती हैं मानों उनकी वेणियों के सर्पों के आहार के लिए दूध की धारा प्रवाहित की हुई हो।[४९] संयोगिता के भाल में जो मृगमद-बिंदु है मानों वह सिंधु से उत्पन्न नव इंदु में इन्दु-नन्दन(मृग) हो।[५०अ] सिर[५०ब] झुकाना शिष्टता थी।

× मनोवृत्तियां

× गंगा नदी के तरंगों के समान सिर में बुद्धि[५१] तथा मन से[५२] × चिंता,[५३] मत[५४] और युद्ध-हेतु पागलपन[५५] तरंगित होता है कभी × कभी वे अचेत[५६] और भटक भी जाते हैं।

---

(४५) उच्चरउ गुरुअ गोयंद राज।

तिहि कंधि सीस किम जग्ग होइ। २:३:१३+३६

(४६) जीव लगि सत न छांडहुं।

खंड खंड हुइ तुंड मुंड हर हार सु मंडहु। ८:१४:३+४

(४७) खग्गह सीसु हनंत खग्ग खुप्पिय खरकार। ८:१६:३

(४८) सरं श्रोणित। सिरं सा सरोजं। ७:१७:२०+२१

(४९) मांग मोहन्नि लय मुत्ति वानी।

मनउ धार आहार कउ दूध तानी। ४:२०:३१ ४

(५०अ) तस मध्य मृग मद बिंदुआ।

जस इंदु नंद ति सिंधुआ। १०:११:४१+४२

(५०ब) (कैमास राजा को) सीस नामइ दस बार। ५:३:२

(५१) जिनै बुद्धि तारंग सु गंगासरिसं। १:४:१४

(५२) कवि देखत कवि कउ मन रहो। ५:८:१

(५३) (प्रभात होता देख पृथ्वीराज के) उप्परिय चित चिंता नरेस। ४:७:१

(५४) राजं का प्रतिमां स बीन धर्मा रामा रमै सा मतीन्। ३:२:१

(५५) सोमेसुर नर नंद धंग गडिला.... । १:६:३

(५६) समल अचेत न चेत हुव..... । ८:२७:१

शिरोभूषण

शरीर में सिर को वह स्थान प्राप्त है जो छत्र[५८] धारण करता है। इसको चामर[५६] हिलाया जाता है। सुंदरियां मणि-बंध[६०] पुष्प बांधती हैं। नर्तकियां शेखर[६१] (चन्द्रिका, शिरोभूषण) कस कर अपनी कलाप्रदर्शित करती हैं। युद्ध-वीर इसके रक्षार्थ टोप[६२] पहनते हैं। रणक्षेत्र में सिरों से संयुक्त गजझंप[६३] हाथियों को झपाये रखता है।

(३) कान

जयचंद के यहां कवियों और गुणियों की वार्ता सुनने के लिए देवताओं और मनुष्यों ने अपने श्रवण[६४] लगा रखे थे।[६५] युवतियों की रची रची बातें सुनकर कान शीतल[६६] होते हैं। किंतु पृथ्वीराज के भय से जयचंद के यहां लोगों के कानों[६७] में समस्त आनन्द नहीं प्रवेश कर पा रहे थे।[६७] गणेश जी के कानों[६८] के अग्र-भाग में कुंडल, सरस्वती और संयोगिता के कानों[६६] में ताटंक तथा कवि चंद के स्वागतार्थ कन्नौज के वासियों के श्रवणों[७०] में मोती तारओं के समान शोभित थे। कन्नौज की सुन्दरियों के श्रवण में ताटंक ऐसे हैं मानो सूर्य और चन्द्र एक साथ छिप रहे हैं।[७१]

---

(५८) २:१:७, ५:३:३, ५:१०:२, ५:१२:२, ५:१३:४, ६:१५:१८१ ८:१२:२, १२:१३:१३

(५६) ४:११:१२, ५:१०:१ (६०) ३:१७:२६, १०:११:१५

(६१) ५:३८:११ (६२) ७:६:२६

(६३) ७:१०:२१

(६४) कानि २:१०:६, स्रवन २:५:१४, ५:२४:११, स्रुति १:१:२, श्रवन ५:५:४, १०११:३, श्रवन्न ३:१७:११

(६५) सुर नर श्रवन मांहि रहि वही। ५:५:४

(६६) सुवचन जुवति रचि कहत बात।
स्रवननु सिराति नयननु अघात। २:५:१३।१४

(६७) वारचंद सकल सुविचल न कानि (कान्ति)। २:१०:६

(६८) कर्णे वा स्रुति कुंडला। १:१:२

(६६) श्रवन्न ताट पिष्षयो। ३:१७:११

* भालमलति श्रवन (अ)टकंता। १०:११:३३

नाक

कन्नौज के सुन्दरियों की नासिका[७२] विज्ञान और ज्ञान की शासिका है।[७२] उनके नासिका के मोती स्वभाव से ही शोभित हैं और उनके साथ अन्य भाव का चमत्कार ले आने के लिए बीच बीच में गुंजा लगे हुए हैं।[७३] संयोगिता की नासिका[७४] जीवन के प्रेमों का भवन है और अंजन प्रिय (रंगा जाना जिनको प्रिय हैं ऐसे) ओष्ठों को त्रास देने वाले हैं।[७४]

आंख

आंखें[७५] लाल होने[७६] से बढ़ कर अपनी ज्वाला[७७] से विश्व को भस्म कर देने तक की क्षमता रखती हैं,[७७] तो नयन-जल प्रवाह बहा कर अतीत घटना का स्मरण दिलाती[७८] और नेत्र-जल बिछुड़े हृदय को एक भी करता है।[७९] शरीर के विभिन्न अंगों के अन्त:सम्बन्ध में किसी दूसरे का हाथ[८०] सोते मनुष्य के छाती पर पड़ते ही नयन[८०] खुल जाता है और ऐसे अंधकार में जहां हाथ का[८१] संचारण तक न हो पावे, आंखें[८१] अपने देखने का

---

(७२) नासिका। विनान राग षासिका। ४:१४:२५+२६

(७३) सुभाय मुत्ति सोभये। दुभाय गुंज लग्गये। ४:१४:२७+२८

(७४) प्रेम भवन जीवन नासिका। नेसु अंजन प्रिय त्रासिका। १०:११:३१:३२

(७५) अषि ३:६:२, अच्छि ५:३६:२, अक्खु १०:११:३५, चख्खु ४:६:२, चषन २:५:८, चषि २:८:१, चख्खं १:३:१२, द्रिग ६:२७:३:४, दृग २:४:२, नयन २:३:४४, २:५:१४, नयन्न ३:७:१, नैन २:१३८२, लोचन ४:१४:२६, लोयण ५:७:२, लोयण्णो ५:७:२

(७६) (दूत-वचन सुन जयचन्द) अति रोस भिए रये नयन्न। २:३:४४

(७७) (महेश) चख्खे अग्गि दरं। पुंछे यदि अदं। १:३:१२+१३

(७८) नयन प्रवाह ति विवहा पिवा कथ्य कथा। ६:३२:२

(७९) (पृथ्वीराज कथा बंद) चोह कंठ लग्गिय गहन नयनह जल गल न्हांनु। ३:४०:१

कार्य कर सकने में असमर्थ हो जाती हैं।[८१] द्रुतिया नेत्रों से मूक भाषा बोलने में बहुत पटु थीं। ८२ कन्नौज में पृथ्वीराज के चक्षुओं को जो कुछ देखने की इच्छा थी प्रात: ने उन्हें दिखाया।[८३] संयोगिता के मिस, मानों इंदु ही यवांकुर चरते हुए मृग-शावकों को नेत्रों[८४] से देखकर आनंदित हो रहे हैं।[८४] चंचल और चारु[८६] लोचन[८७] अपने कायो का दुराय करके (कटाक्ष द्वारा) प्रत्यक्ष काम (बाण) मोचन करते हैं।[८७] ऐसी दृष्टि[८८] लगते ही कामाग्नि जल उठती है। उन्हें देखकर नेत्र[८९] अघाते थे।[८९] उनके अर्ध-निमीलित नेत्र[९०] भाग्य में कुछ और ही हो जाने के लिए बाध्य करते हैं। आदर्श नेत्र, कुरंगिनी,[९१] चक्रवाक[९२] और मीन[९३] के नेत्र के से थे। चक्षु [९४] की चंचलता ऐसी होनी चाहिए मानों खंजन-वत्स

---

(८०) (सोते हुए पृथ्वीराज के) हक्कि (दासी के) हत्थु धरंत (पृथ्वीराज के)नयन्नतु चाहियउ। ३:७:१

(८१) (घने अंधकार में) पानि न अंखि न संचरइ महुल कज्जल कयमास। ३:६:२

(८२) जे ग्रीव ग्रीव तार तार नैन सेन मोहिहो। २:१३:३

(८३) जु कछु इच्छि चक्खनु द्रुति से सब दिष्षव प्रात। ६: ४:६:२

(८४) मनु मानिनि मिस इंदु आनंदह देषि दृगु। २:४:२

(८५) चषि चंचला। २:८:१

(८६) लोयण्णो चलु चारु। ७:७:२

(८७) दुराय कोय लोचने। प्रतच्छ काम मोचने। ४:१४:२९।३०

(८८) दीठ विलग्गिय। सा सुंदरि कामानलि जग्गिय। ६:२५:११२

(८९) नयननु अघात। २:५:१४

(९०) अध चषन लिषन छिति नषन छीन। २:५:८

(९१) नैन कुरंगी। ५:३६:१

(९२) कोका चखी। ५:३६:२

(९३) ६:१५:१२

(९४) चष्षिवहिं षंजन चतुप्पो। १०:११:३८

उड़ने का अभ्यास कर रहे हों। उनकी भौंहें[९५] वक्र शंकु (कील) के समान अत्यंत सम (वैषम्य रहित) क्षीण और श्रेष्ठ वर्ण वाली होनी चाहिए।[९५] वरांगिनायें[९६] भी श्रेष्ठ हों।[९६]

अधर

सुवासित[९७] और बिंबवत[९८] अधर[९९] अच्छे समझे जाते थे। आदर्श दांत[१००] दाड़िम-बीज[१०१] और मोती-सा[१०२] होते थे। लेकिन दांतों[१०३] का झंझट धीर व्यक्ति नहीं रखते थे।[१०३] दांत का जीभ से लगना ऐहिक लीला का अंत है।[१०४] जीभ में[१०५] चतुराई मदनागम पर आती है।[१०५] तब रच रच कर बातें होती हैं।[१०६] लेकिन असामाजिक बातों को प्रकट करने में जीभ[१०७] लजाती है। युद्ध की व्यापकता से शेषनाग की दाढ़ी[१०८] भूमि के भार से डोल गई[१०८] म्लेच्छ मुख पर दाढ़ी का साधन करते थे।[१०६]

दांत

जीभ

दाढ़ी

---

(९५) भुव अंक संकु अति सम सषीन। २:५:७

भुव वर वरणान। १०:११:३६

(९६) वरू वरूणि। १०:११:३६

(९७) अधरत पत पल्लव सुवास। २:५:१७

(९८) अधरनु अदिठ्ठ अच्छह तमोर। २:५:१०

(९९) (अधरा?) बिंबाह कीयग्गहे। ५:७:२

= अधर पंकक सु बिबनं। १०:११:२५

(९९) अधर २:५:१०, २:५:१७, ५:७:२, १०;११:२५

(१००) दंत ३:३२:४, दसन १०:११:२७, १२:५८:५,

दांत ५:७:१

(१०१) डाडिम्म ली बीयलो। ५:७:१

(१०२) दसन सुचि सु मंडनं। १०:११:२७

(१०३) दंत च रारि धीर किम किम हच्चारयइ। ३:३२:४

(१०४) हनि दसन रसन दस लंधिकइ विहु कपाट बंधे दसनं।

धरि परइ सांहि चा पुक्कारउ...... । १२:५८:५

हमारे ईशेन्द्र (महेश) के गले [११०] में सर्पिणी हैं।[११०]

गला

नल के अवतारी श्री हर्ष ने नैषध (नल) के गले [१११] में 'नैषधीय' का हार दिया।[१११] ग्रीवा सेकेंत मंडन का साधन है।[११२] दो कंठ [११३] परस्पर मिल कर प्रेमाभिव्यक्ति करते हैं।[११३] शंख-सा [११४] त्रिवल्ली[११५] रेखाओं से युक्त मत्त कोकिल-सा कल कंठ [११६] सर्वोत्कृष्ट गला होने का प्रमाण है। देवता सिरोमाल [११७] अथवा गुंजहार[११८] से, उच्च वर्गीय जन मुक्ताहार[११९] से तथा निम्नवर्ग वाले पोति [१२०] (कांच की गुरिया) की माला से अपने अपने गलों को सजाते हैं।

धड़

धड़ [१२१] का प्रयोग वीभत्स-वर्द्धन में हुआ है। पृथ्वीराज के वाण छूटते ही कयमास का धड़ [१२२] पृथ्वी का आधार ग्रहण करता है।[१२२] रणभूमि में धड़ कट कर पड़े हुए हैं।[१२३]

हृदय

हृदय[१२४] प्राणघातक आघात[१२५] एवं परिरंभण-हेतु उत्तम स्थल है। हृदय मदन मंदिर है। १२७ इसमें रस की आकांक्षा[१२८]

---

(१०५) चतुरे तुं चतुराय आनन रसे सा जीव मदनावरे। २:२०:४

(१०६) कुवजन कुलचि रचि कह्य आत। २:५:१३

(१०७) जंपत लज्ज बीह न अकुष र लहु लच्छ। २:१५:२

देखिए ऊपर की टिप्पणी १०४ भी

(१०८) सेस सीसु कंपियउ वाउ हल्लिय भुवि भारह। ८:३४:४

(१०९) दुम्मि साह मुच्छी। ७:१५:११

(११०) भुजंगी गलिंद। १:३:४

(१११) नले राय कंठ दिय नैषध्य हारं। १:४:१०

(११२) (दूतियां) ग्रीव ग्रीव .... सैन मंडिही। २:१३:३

(११३) (चंद तथा पृथ्वीराज) दोउ कंठ लग्गिय गरुअ मयनह कल महल्लाई। २:४०:१

(११४) बानु पंचजन्य त्रिवलया। १०:११:२४

(११५) कल ग्रीव रेह त्रिवलया। १०:११:२३

(११६) कल कंठ कोकिल बदया। १०:११:३०

= कंठ कलयंठ मद। २:५:१६

कुच

पर्वत के समान पीन कुच[१३९] मानों वस्त्रों में अनंग भरा है।[१४०] अंगुलियों के स्पर्श के लिए ये कमल के समान हैं।[१४१] काम-कुंभों[१४२] (कुचों) को ग्रहण कर सुख पूर्वक रात बिताना एक उत्तम जीवन है। उरोजों के भार को मध्य से विभाजित करने वाली स्तंभ के समान रोम राजि को इस काव्य में अच्छा माना गया है।[१४४] सुकेत और केतकी, आरा और कंघी के सदृश्य विरहिणियों की छाती को[१४५] विदीर्ण करती हैं।[१४५] छाती पर[१४६] हाथ रखते ही नींद खुल जाती है।[१४६]

---

(११७)(महेश) सिरोमाल लई (२:३:५

(११८) (गणेश) गुंजहार। १:१:२

(११९) १:२:१, २:३:४, २:३:६, २:७:११, ३:१७:१६, ५:१०:४, ५:३८:२०

(१२०)(दासी) पुने पि हथ्थ कंठ तोरि पोंति पुंब बप्पये। ६:१५:४

(१२१) धर ३:११:१४, ७:१७:३१, कबंध ७;१२७ :११

(१२२) बानाबरि तटकंति घुटित धर धरनि बाधारिय। ३:११:४

(१२३) कटे कंध कावंध सधे ननारे। ७:१७:११
परे पानि अंध धरनं निनारे। ७:१७:३१

(१२४) उर २:१२:२, ३:२७:२, ५:४०:३, हई १:३:८, हिर्दै १२:४:८, हिय ३:३३:५, १०:११:१७, हियाह २:१२:१, हृदय ६:१४:३

(१२५) उर उप्पारि परषरिय। ३:२७:२

(१२६) उर भी रंभ किवा गुणं धरि हरो हुरभीम पमनापिता। ५:४०:३

(१३९) कुच ६:१४:४, १०:११:१५, कुच्च ४:१४:१३, पुनिय पीन कुचानि ६:१४:२

(१४०) दुराय कुच उभ्भरे। मनहु अनंग की भरे। ४:१४:१३।१४

(१४१) कुच कंज परसन अंगुली। १०:११:१५

(१४२) सर्व सुख्य सकाम कुंभ गहिता अपराज रात्रि गता।५:४०:४

कंधा

कांख

हाथ-बाहु

कंधा[१४७], सिर का आधार[१४८] और कभी कभी वाहन[१४९] भी बन जाता है। कांख[१५०] प्राण-रक्षा तक करता है।[१५०] हाथ कमल-सा कोमल[१५२], स्वच्छ और नलिनी की-सी आभा,[१५३] वाले उत्तम हैं। संगीत के लिए वीणा,[१५४] युद्ध के लिए धनुष,[१५५] बाण,[१५६] वज्र,[१५७] दस्ताना,[१५८] क्रीड़ा विनोद के लिए यवांकुर[१५९] और आभूषण में कंकड़,[१६०] युक्त हाथ, इस काव्य में उल्लिखित हैं। बाहु-बल[१६१] उस युग के पौरुष का प्रतीक है।

---

(१४४) उर भार मध्य विभंजनं। दिय रोम राइ स थंभनं।

१०:११:१३+१४

देववर्णरत्नाकर : डा० मोतीचन्द्र : पृ० ७,८२,

पद्मावत : यू० संजी०वा०श०अ०पृ०१२६

(१४५) करवत केत केतकि सुकचि। विहरंति रव वितरंति रुचि।

२:५:३६+४०

(१४६) इच्छिय हत्थु धरंत नयन्नन बालियउ। ३:७:१

(१४७) अंस ३:१६:३, काँधि २:३:३५

(१४८) तिह काँधि सीस किम जग्ग होइ। २:३:३५

(१४९) (सरस्वती का) वाहन हंस अंस सुखदाइ। ३:१६:३

(१५०) एकुवान पुहवी नरेस कयमासह मुक्कउ।
उर उप्परि थरहरिउ वीर कष्ष हतर चुक्कउ। ३:२७:१+२

(१५१) बाँह ८:८:१, कर २:२०:१, ५:३:१, पानि १:२:३,
२:४:१, ३:६:२, ६:१४:३, १०:११:२१, हत्थु ३:७:१,
हथ्थ ८:१०:२४, ८:१५:१, हथ्थि ३:११:३

(१५२) कमल ति कोमल पानि। ६:१४:३

(१५३) नलिनाभ पानि वियक्खणउ। १०:११:२१

(१५४) (सरस्वती) बीना पाणि। १:२:३

(१५५) सिंगिनी सु धनिर्न सज्जा सुहथ्थ। १२:१३:१७

(१५६) उभय बान लिय हथ्थि। ३:११:३

(१५७) ऊपर का (१५५) अनिव।

(१५८) हथ्थरी हथ्थ लग्गे सुहाई। ७:६:३३

(१५९) जव अंकुर करि पान बरावति बच्छा भुजु। २:४:१

(१६०) कंकिनी कंकन। ४:२५:२३, पीपाँत पौर कंकनै। ५:२४:७

मल्ल भुजदंडों से[१६२] सरों की साधना करते थे ।[१६२] वीर के बाहु में[१६३] बाण और वेवि के सुंडर[१६४] शोभित थे । बाहुपाश[१६५] से छूटी वस्तु सुंदर, किन्तु अपनत्व से दूर होती है । हाथ[१६६] जोड़ कर विनय करना अथवा नमस्कार[१६७] कहना शिष्टता थी । बड़ा हाथ[१६८] भाग्यवान का लक्षण और हाथ[१६९] हारना खेल की अनचाही स्थिति थी । हाथ[१७०] सोते को जगा सकता है ।[१७०] भय में इसका रुकना[१७१] अच्छी स्थिति का द्योतक नहीं है ।[१७१] हाथ का संचारण तक न हो सकना घने अंधकार को प्रकट करता है ।[१७२]

ताली
मुट्ठी
अंजलि

ताली,[१७३] दूती की मूक भावाभिव्यक्ति का साधन है ।[१७३] कयमास के मारने में क्रोध के कारण पृथ्वीराज की मुट्ठी[१७४] ढोल गयी और बाण चूक गया, इसीलिए कवि चंद गोरी-वध

---

(१६१) उछंग (बाहुपाश) ८:१५:८, बाहु ७:१०:१०, बाह ३:७:३, बाहुठ ७:१०:१०, भुजदंड ४:१०:५, भुजा ३:१७:२१, भुज ६:३३:६

(१६१क) इहि भुवन ढिल्लि अनवज्ज करउं इहि कप्पउं ढिल्लिय तखत । ६:३३:६

(१६२) कहों मास भुजदंड ते सरोह साधह । ४:१०:५

(१६३) बानावरि सुद्ध बीह रोस रिस दाखियउ । ३:७:३

(१६४) (सरस्वती) भुजा स बाहु सुंडरं । ३:१७:२१

(१६५) उछंग गंग मभिभ्भ छुटिक सर्मपति अच्छरी । ६:१५:८

(१६६) तब सु हेक्कम सुमन कर जोरि । ५:३:१

(१६७) सत भट किरण समुरउ सुरंगी गरेन नाम नावेस । ८:८:१

(१६८) बड चक्कव बड गुज्जरह झुभ्भिझ्झ मग्गउ बैंठि । ८:१५:१

(१६९) रहे हारि चक्कव ति जुवारि जूवं । ८:१०:२४

(१७०) हक्किय उट्ठयु धरेउ मयन्नदु पाखियइ । ३:७:१

(१७१) पानि न संचरइ (अंधकार के कारण) ३:९:२

(१७२) (पृथ्वीराज के भय से जयचंद के) कर पग्ग भग्ग कग्गह सुनाह हुए मुक्कि मुक्कि सुह मनहु प्रहार । २:१०:११ २

(१७३) (दूती) तार तार बेन मौंडती । २:१३:३

संदर्भ में मुट्ठी[१७५] दृढ़ करने के लिए उनको सावधान करता है ।

अंगुलि

अंजलि-जल[१७६] की तरह यौवन-धन अस्थिर है, फिर भी काम-कुंभों (कुचों) को ग्रहण कर आनंद लेने का सौभाग्य एक मात्र अंजलि को ही है । अंगुलि[१७८] की उत्तमता कली[१७६] सी और कोमलता[१८०] में है । अंगुलि[१८१] में अंगूठी[१८१] मनुष्य का स्तर-मापक है । अधम अंगुलि[१८२] ने तड़ित सा काम किया और पृथ्वीराज का बाण कयमास-वध के लिए धनुष पर जा लगा ।[१८२] फिर जिस प्रिय की

नख

और लोगों की उंगलियां[१८३] अभीप्सित नख कोमल[१८४] स्वच्छ,[१८४] रक्षित,[१८४] लक्षण युक्त,[१८४] सटे हुए,[१८५] रक्त-प्रतिबिम्बित[१८५] और कुंद-सा[१८६] होते हैं । म्लेच्छबड़े नख[१८७] रखने के प्रेमी थे ।[१८७] लज्जा के समय नख[१८८] क्षिति पर लिखने लगता है ।[१८८]

---

(१७४) मुट्ठि दिट्ठि रिषि हुलिग चुक्कि निक्करिग एक सर । ३:११:१

(१७५) प्रथमि राज कमान बानं द्रिढ मुट्ठि गल्हि कर । ११:४६:१

(१७६) जुव्वनु धन अथिर रहे अंु कि अंजुरिमाहं । २:३३:२

(१७७) कुच कंभ परसन अंजली । १०:११:१५

(१७८) कुच कंभ परसन अंजली । १०:११:१५

(१७६) कली सी चंप अंगुरी । ३:१७:३६
= कलि कुट्टल अंगुलिय । ६:१४:३

(१८०) पत्त अंगुरी । टीका है (कोमल) ४:१४:२,(१८१)५:३६:३,
१०:१५:६

(१८२) तडित किक्क अंगुलि अधक सु धरिग बान प्रथीराज। ३:१०:२

(१८३) जिहि प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहि प्रियजन कहा कज्ज ।
६:३०:२

(१८४) नखादि अद्द रक्षिणा । धरंति सच्छ लच्छणा । ३:१७:२३-४
नख निर्मलं दर्पणं भाव दीसं । ४:२०:३५

(१८५) नख कुंद मिलिय सुमेसनं । प्रतिबिंब श्रोणि सुदेसनं । १०:११:५-६

(१८६) (नख) कनु कुंद कुंदन संपुठ । १०:११:२२

(१८७) मेछ । रोम राइं रखी । ७:१५:२१३

(१८८) (सुन्दरियां) अध वचन लिखन छिति नखन कीन । २:५:८

त्रिवल्ली

गर्भ

पीठ

कमर

कवि चंद का कथन है कि गंगा में सुंदर मुक्ति की वल्ली अनंग-रंग (काम-क्रीड़ा) की त्रिवल्ली [१८६] है। मनुष्य सर्व-प्रथम माता के गर्भ[१६०] में वास करता है।[१६०] सुंदरियों का शरीर कुसुंभी चीर में काम-कदली-गर्भ[१६१] के समान लगता है।[१६१] कन्नौज - रमणियों के केश मानो जनमेजय के नागयज्ञ से बचे नाग हैं जो पुन: नागयज्ञ होने के भय से उनकी पीठ [१६१] पर जा लगे हैं।[१६२]

शरीर भर में अभागी कमर[१६३] ही एक ऐसा अंग है जिसको लोग चाहते हैं कि दुबली-पतली[१६४] हो, बल्कि न [१६५] हो तो और भी अच्छा है। जबकि यही पटोर[१६६] (लहंगा) ग्रहण कर लाज बचाती है। मेखला द्वारा[१६७] शरीर सुषमा की वृद्धि करती है। कांचे की घंटिका[१६८] ग्रहण कर स्वयं नर्तकी नृत्य को आकर्षक बनाती है।

---

(१८६) मुगति सकल वल्ली नंग रंग त्रिवल्ली । ४:१२:२

(१६०) मातु गभ्भ वास करिवि अंम वासर वसि लग्गउ । ३:३२:१

(१६१) मातु गभ्भ वास करिवि अंम वासर वसि लग्गउ ।

(१६१) कुसुंभ सा चीर सा कीर सोभा । मध्य ता काम कदली सु गोभा
४:२३:१७१८

(१६२) पुनर जनमेजय ते जानि जग्गे । ४:२०:१६२

(१६३) कटि २:८:१, ६:१५:१२, कटिय ३:१७:३० (छिमाभाव)
४:२०:२६

(१६४) कटि एवं २:८:१

: (मंतव) मधुमध रिपु हीन राषउ मध्यं । ४:२०:२६

: केहरी न पीन । ६:१५:१२

(१६५) कटिय हीन कामिनी । ३:१७:३०

(१६६) दिव्यहि धारि ... पटोर । ४:२५:१६

(१६७) रसनेम रंव निर्वानी । १०:११:११

(१६८) घर्माहि धार घंटिका भर्वति भेष लेषयं । ५:३८:७

(१६६) कटि क्वे साषि सर सप तौन । १२:१३:१५

वीरों का तुणीर धारण करती है। कमर की मोटाई लोग निलंब में[२००] देखना चाहते हैं। जांघ[२००क] शीत-ऋतु-कोष को दूर[२०१] करता है। इसका भारी भरकम होना[२०२] होना अच्छाई है। गतिशीलता[२०३] और चंचलता[२०३] उत्तम जांघ[२०३] के लक्षण हैं। काश्मीर की केशर के सुंदर रंग को खींच कर उनसे रंगे हुए उलटा रक्खा कदली के सदृश जंघ[२०४] सर्वोत्तम जंघ है।[२०४]

अंघ

नारंगी[२०५] की छोटी, सुन्दर पिंडुरी,[२०६] कांच की चीनी शीशियों में फिरता हुआ लाल रंग का जल जैसा शोणित वर्ण की एड़ी[२०७] और स्वभावतः रंजित[२०८] पाय[२०९] अच्छे माने जाते हैं। हरि चरण[२१०] से गंगा का उद्भव हुआ है। नग[२११], हेम, हीर[२११], और गुंजा[२१२] पैर के आभूषण हैं। सैनिक टांगों में राग[२१३] पहिनते[२१३] थे।

पिंडुरी

एड़ी

पांव

---

(१९९) कीट कसे साहि सर सत्त तौन। १२:१३:१५

(२००) नितंब उतंग कुरे वे गयंद। ४:२०:२५

दृष्टव्य—कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन, ...

(२००) जांघ १०:११:१०, जघना १:२:४, जंघया ४:१४, जंघा, २:८:१, ४:२०:२७

(२०१) सीत सनेह रितु रोष भंग। ४:२०:२८

(२०२) भार जघना। १:२:४ = गुरु जंघ २:८:१

(२०३) सकोल लोल जंघया। ४:१४:७

(२०४) कसि कासमीर सुरंगनं। विपरीत रंभ वि जंघनं। १०:११:१०

(२०५) नारंग रंग पींडी सु छोटी। ४:२०:६

(२०६) सुरंग वर्ग पिंडुरी। ३:१७:३५

(२०७) एड़िया हंबरं शोण वाणी। फिरै कच्च चीनीन मद्ध रत्त पानी ४:२०:३३+३४

(२०८) सुभाय चाय रंगु वा। ३:१७:३६

(२०९) चरण ४:११:१०, पया १:१:२, पाय ३:१७:३६

(२१०) (गंगा) हरि चरणासं। ४:११:१०

(२११) (चरण में) नग हेम हीर सु चप्पनं। १०:११:७

कच

कच[२१४] से उलझने वाले मूढ़ और उबरने वाले धीर हैं।[२१५] प्रतिवाद में शिव के जटाजूट में उलझी हुई एक मात्र गंगा जी की स्तुति की गई है।[२१६] जिसके चरण कच[२१७] से पुछे वह समाज का बहु-सम्मानित व्यक्ति माना गया है।[२१७] जब चिहुर विवानल को बढ़ावे तो समझना चाहिए कि भोग करने का समय आ गया है।[२१८] मुक्त अलक[२१६] प्रवाहमान होते हुए मोह में बांध लेते हैं।[२१६] उलझे बालों[२२०] में मानो तीर्थराज को त्रिवेणी आरूढ़ हो।[२२०] मणिबंध पुष्प से कच[२२१] संवारने वाली रमणी राज घराने कुल की होती है।[२२१] लेकिन महेश का जटाजूट यों ही बहुत प्रसिद्ध है।[२२२] रणक्षेत्र के रक्त सरोवर में कच[२२३] शैवाल से लगते हैं। केश लम्बे[२२४] कलिंद[२२५] सर्प[२२६] अथवा अलि के से रंग वाले, कुंतल,[२२८] वक्र,[२२८] और बहुलता में[२२६] उत्तम माने जाते हैं। किंतु शरीर के समस्त बाल एक-सा नहीं होते। रोम[२३०] की अच्छाई पिपीलिका-सा होने में है।[२३१] इसका बड़ा

---

(२१२)(गणेश के) लंबा पया भासिता। १:१:२

(२१३) राग जपी बनावत महुहे। ७:६:३५

(२१४) अलक ६:१५:१६, अलक २:५:१६, अलक्क ४:२०:१८,
कच ५:३२:४, ७:१७:३३, १०:११:४३, १०:१८:१, कच्चु ४:२०:२१
केस ३:१७:५, चिहुर २:२४:१, चिहुरारि १:२:४, जटा
४:११:३, जटाजूट १:३:१, बाल ५:७:३, त्रिसरावली बेनी
१०:११:४७

(२१५) कच ब रार धीर किम किम उब्बरयउ। ३:३२:४

(२१६) (कवि चंद द्वारा गंगा-स्तुति में) हर सिर पर सने, जटा
विलसे, अरुझे। ४:११:३

(२१७)(दासियों ने कवि चंद और राजगुरु के) चरन चारुह सुच्चिय
दिय कचधारिय तह रेनै। १०:१८:१

(२१८) बाने चिहुरा बाढ़ंति विवानला।
सोयं तोय संजोगि भोग समया प्राप्ते वंसतोत्सवं। २:२४:१४

(२१६) अलक्क बरोहं प्रवाहे ति मोहं। ४:२०:१८

(२२०) कंच समुरुझ। मनहु तिपुथ राज त्रिवल्ली अरुझ। ४:२०:२१
१२२

होना अच्छा नहीं। म्लेच्छ रो-प्रिय[२३२] थे। संयोगिता को भी रोमाली[२३३] वन था। उसके उरोजों के भार को विभाजित करने वाली स्तंभ के समान उर-रोम-राजि[२३४] को कवि ने बुरा नहीं माना है। लेकिन उसकी बरौनी [२३५] थीं।

रक्त

सुकेतु और केतकी धारा विरम्भिणियों की छाती विदीर्ण होने से मानो रक्त[२३६] निकल कर फैल रहा है। रणभूमि में

---

(२२१) (संयोगिता) मणिबंध पुष्प सु दीसये। १०:११:४५

(२२२) (महेश) जटा जूट बंध (१:३:१

(२२३) कचे सा सिवालों। ७:१७:३३

(२२४) नंबी या बिहुरारि। ९:२:४

(२२५) क्यंद केस मुक्करे ; ३:१७:५

(२२६) उरग्गभास बिठ्ठरे। ३:१७:६, कच वक्र सर्प ति कुंतलं।
१०:११:४३

(२२७) अलि अलक। २:५:१६

= त्रिसरावलि बनि वेनियं। अवलंबि अंकुल सेनियं। १०:११:
४७-४८

(२२८) कच वक्र सर्प ति कुंतलं। १०:११:४३

(२२९) केसीरी। टीका में - अधिक केशों वाली। ५:७:३

(२३०) रोम ३:१७:२७, ७:१५:३, रोमाली ६:१४:१,
उर-रोम-राइ १०:११:१४

(२३१) विविच्च रोम रिंभये। मनु पपील रिंगये। ३:१७:२७-२८

(२३२) मेछ। रोम राइं रची। ७:१५:२१३

(२३३) रोमाली वन। ६:१४:१

(२३४) उर भार मध्य विभंजनं। बिय रोम राइ स थंभनं। १
०:११:१३-१४

(२३५) वरु बरुणि। १०:११:३६

(२३६) रत २:५:५०, रुधिर ८:२६:२, सोनित ८:१६:४,
श्रोणि १०:११:६

करवत केतकि सुकवि। बिहरीत रत वितरंपि छवि।
२:५:३६

संहार से धरा में रुधिर[२३७] के द्रह पूरित होकर भर गए उस रक्त-[२३८] पंक में गज फसे से लगते हैं। [२३८] संयोगिता के चरण-नख में झलकता हुआ सोणित[२३६] सुंदर लग रहा है।[२३६] किन्तु रक्त-सरोवर में

हड्डी-अंतड़ी त्वचा

हड्डी[२४०] और अंतड़ी[२४१] वीभत्सता उत्पन्न कर रहे हैं। ऐसी धारणा है कि त्वचा[२४८] से मूढ़ उलझते और धीर उबरते हैं।[२४६] किंतु महेश गज चर्म [२५०] ओढ़े रहते हैं। मित्र पृथ्वीराज की विपत्ति देखकर चंद को विराग हो गया और उसने अपनी त्वचा पर[२५१] पर अम्बर तक नहीं रखा।[२५१] म्लेच्छ अपने शरीर के संधो[२५२] बांध रखते हैं।[२५२]

---

(२३७) संघरउ पूरि धर महत रुधिर द्रह। ८:२६:२

(२३८) सोनित बिंदु परंत पंक विध्धि हित गयधर। ८:१६:४

(२३६) प्रतिबिंब शोणि सुदसनं। १०:११:६

(२४०) वज्ज मंस अंचि गंधि वासि करंक। ७:१७:२८

(२४१) गहे अंत ग्रध्धी। ७:१७:३४

= तिहि गिधधारव रुलिंग अंत्र गहि अतंर लुक्किग। ८:२३:३

(२४८) चम्म १:३:१०, तुच ३:३२:४, १२:७:४

(२४६) तुचा ज रार धीर किम किम उव्वरयइ। ३:३२:४

(२५०) मेछ। संध संमरु नहीं। १२:७:४

(२५१) तुच अंबरु संमरु नहीं। १२:७:४

(२५२) मेछ। संध सा बध्धयी। ७:१५:२८

(२५३) दिव मंडन तारक सयव्ल सर मंडन कमलानूं।

जग मंडन नर भट सयल महि मंडन मव्हिलानूं। ६:२:११२

मव्हिलक मंडन नृपतिग्रिह कनक कांति ललानि। ६:३:१

मनोवृत्तियां

गंगा नदी के तरंगों के समान सिर में बुद्धि[२५२अ] तथा मन[२५२आ] में चिंता,[२५२इ] मत[२५२ई] और युद्ध-हेतु पागलपन[२५२उ] तरंगित होता है। कभी कभी वे अचेत[२५२ऊ] और भटक[२५२ए] भी जाते हैं।

मन

हृदय मदन-मंदिर है[२५२ऐ] इसमें रस की आकांक्षा[२५२ ओ] अनुराग,[२५२औ] निश्चयात्मक प्रवृत्ति,[२५२अं] दया,[२५२अः] वीरता,[२५२क] है। इसको विरह विदीर्ण करता है।[२५२ख] देवताओं की कृपासे यह पवित्र[२५२ग] बनता है। संयोगिता के मन[२५२घ] में जो गुह्य था उसे गुरुजनों से भी न कह कर अपने दूती से उसने बताया।[२५२ङ०] गुरु गोविंदराज का मन[२५२ च] पृथ्वीराज को छोड़कर अन्य किसी को जगत का भूप नहीं मानता था।[२५२छ] कमास-पत्नी के मन[२५२ज] में पृथ्वीराज की शुद्ध गति है, अत: उसने राजा सांभरपति सांभरपति कह कर स्मरण किया।[२५२झ] कन्नौज में प्रभात होता देख कर पृथ्वीराज के चित्त[२५२ट] की चिंता उतर गई।[२५२ठ]

(२५२अ) जिनै बुद्धि तारंग सु गंगा सीरं। १:४:१४

(२५२आ) कंध देषत कवि कउ मन रत्तो। ५:८:१

(२५२इ) (प्रभात होता देख पृथ्वीराज के) उतरीय चित चिंता नरेश। ४:७:१

(२५२ई) रावं आ प्रतिमा स बीन धर्मा रामा रमे इह मीन।३:२:१

(२५२उ) सोमसुर नर नंद यंग गहिला। .... । १:६:३

(२५२ऊ) अचल अचेत अ चेत हुव.... । ८:२७:१

(२५२ए) नृप भ्रमिम जानि पहु पुच्छ देस। ४:७:१५

(२५२ऐ) हिय मयन- भवन वि संपयए। १०:११:१७

(२५२ओ) रवि कंषिय। ५:२५:१

(२५२औ) सुनत राउ अवरिज भयउ हियअ मन्मथ अनुराउ। २:१२:१

(२५२अं) नृप वर वनि उर अंगमह दैवहि अवर सु भाउ। २:१२:२

(२५२क) बोलिवह वचन सु दयन हिय। ३:३३:५

आभूषण

जिस प्रकार से आकाश के मंडन (आभूषण) समस्त तारे, सरोवर के मंडन कमल, राजाओं के यश के मंडन समस्त भटजन, यही के मंडन महल, महलों के मंडन कनक कांति वाली ललनाएं होती हैं,[२५३] उसी प्रकार शरीर के मंडन आभूषण [२५४] होते हैं। यह सुदान में भी दिया जाता था,[२५५] और पुत्री के विवाह में पिता द्वारा आभूषण[२५६] देने की एक विशेष परम्परा है किन्तु, इस काव्य में, संयोगिता के विवाहोत्सव पर पृथ्वीराज ने जयचंद से आभूषण के रूप में युद्ध मांगा।[२५६] ये साधारण तथा जड़ाऊ और मोती मढ़े[२५७] भी होते हैं। साधारण नागरिक के अतिरिक्त सैनिक के अंगों का आभूषण जिरह और गोरखपंथियों के कंठ का कंठा है।[२५८]

(२५२ख) त्रिभंग वस्तु वीर। १२:४:१

(२५२ग) विरहा मम हृदय विदारिये। ६:१४:३

(२५२घ) उरगे गंग हद्दं। १:३:८

(२५२ङ०) मय मन मभाभ ज गुभाभ गुरुज्जन छंडि स तुम कहंड।
२:१५:१

(२५२च) मानहि न अग्गु मनि अन्न-भूप। २:३:३८

(२५२छ) तुव आंति मह मन संभरिव संभरिव त संभरराय।
३:३४:२

(२५२ज) उत्तरिय चित्त चिंता नरेस। ४:७:१

(२५३) दिव मंडन तारक सयल सर मंडन कमलानुं।
जस मंडन नर भर समय महि मंडन महिलानु। ६:३:१:३
महिलउ मंडन नृपति ग्रिह कनक कंति ललनानि। ६:३:१

(२५४) २:३:५६, ७:२:२

(२५५) भूषन सुदान २:३:५६

(२५६) परणावें तब पुत्री भूषं मंगति भंजनं सोह। ७१२:२

(२५७) मुत्ति जराव मढे बहु भाय। ४:२५:१३

(२५८) जिर जंगीम गहि जंगि लाई।
मनउं कंठ कंगीम गोरख पाई। ७:६:३११ ३२

शिरोभूषण

राजाओं के सिर का आभूषण छत्र है। यह अमूल्य[२६०] और द्युतिपूर्ण [२६१] है। इनको चामर [२६२] भी ढला जाता है।[२६२] स्त्रियां शशिफूल[२६३] लगाती हैं। राजघराने की रमणियां इसे मणियों से ग्रथित भी करती हैं।[२६४] कुछ सुंदरियां कलंगी [२६५] भी लगाती हैं। नर्तकियां शेखर[२६६] पहनती हैं। सैनिकों का शिरोभूषण ऊंचे टोप[२६७] हैं।

कलंगी का प्रारूप

ताटंक

ताटंक[२६८] स्त्रियों के कानों को विभूषित करता है। यह सूर्य-रथ के पहिए आकार[२६९] का, तारक के समान द्युतिपूर्ण [२७०] होता है। गणेश के कानों में कुंडल[२७१] है। रमणियों के (नासिका के) मोती स्वभावत: शोभित हैं। [२७२] उसमें लगे गुंजा[२७२] और शोभा बढ़ा रहे हैं। ग्यारहवीं सदी से पूर्व भारतीय साहित्य में कहीं भी नासिका के आभूषण का उल्लेख नहीं आया है और न शिल्प एवं चित्र में उसका अंकन है।[२७२क] नासामुक्ताफल का सर्वप्रथम उल्लेख विल्हण कृत विक्रमांक देवचरित काव्य में आया है। (८:८०) [२७२ख]

कुंडल

नासिका के मोती और गुंजा हार

---

(२६०) सारसीसं। बालह अर्क समान तेवं क्रिटीय कंमोहिता।
५:१०:११ २

(२६१) ऊपर का (२६०)

(= जयचंद का) आतपत्र धुव तिम तपत्र। ५:१२:२
धरहि सिर सोम दुति कनक पत्रं। ५:१३:४

(२६२) चमरेन ५:१०:१, चामर ५:११:१२

(२६३) सुराग सीस दिष्षया। ३:१७:२६

(२६४) मणि बंध पुष्प सु दीसये। १०:११:४५

(२६५) कपोलं कलंगी कलिंदीय छोहं। ४:२०:१७

(२६६)शेष्षरं कारुन्नं। ५:३८:११

(२६७) टोप टंकारि पीछे ढलंगा। ७:६:२६

(२६८) ताट ३:१७:११, ताटंकता १०:११:३३, ताटंक ४:२०:११
दे० प्राकृत पैंगलम ३१

हाथ के आभूषण

हार [२७३] सामान्य आभूषण है। इसे देवी [२७४], देवता, [२७५] राजा, [२७६] और दासी [२७७] सभी पहने हुए हैं। उच्च वर्ग का मोती [२७८] निम्नवर्ग का पोति [२७६] और मानवेतर गुंजा [२८०] अथवा सिरोमाल [२८०] अलंकरण है। कंकण नारियों के, [२८१] धनुष [२८२] वीरों के और दस्ताने [२८३] सैनिकों के हाथ के आभूषण हैं। कंकण प्रदीप्त है [२८१] वज्र पार्थ के हाथ में उल्लिखित है। [२८२] अंगूठी [२८४] अंगुलियों की शोभा बढ़ाती है। बिना नग के मुंदरी [२८५] हीन समझी जाती है।

---

(२६६) झलमलाति श्रवन ताटंकता। रथ अंग अर्क विलंबिता।
१०:११:३३:३४

(२७०) सुवन्न मुत्ति तारये। ५:२४:११

(२७१) मुत्ति कुंडला। १:१:३ देखिए प्राकृत पैंगलम मात्रावृतम २१

(२७२) सुभाय मुत्ति सोभये। दुभाय गुंज लग्गये। ४:१४:२८:२६

(२७३क) भारत में नथ नायक नासिकाभरण की प्राचीनता, भंडारकर प्राच्य संस्थान पत्रिका, भाग १६ जुलाई १६३८, पृष्ठ ३१३-३३४

(२७३) कादम्बरी: संपा० वा०श०अग्रवाल, पृ० २४६

(२७३) कंठ (माल) ६:१५:४, गुंजाहार १:१:२, माल २:३:६, मुक्ताहार, २:३:५, ५:३८:२०, मुक्ताहार १:२:१, मुत्यो (माल) ३:१७:१६, हार ५:१०:४, दे० प्राकृत पैंगलम् मात्रावृतम् २१:३१:५३ वर्णा वृत्त्म १८५

(२७४) (सरस्वती) मुक्ताहार १:२:१, सुग्रीव कंठ मुत्यो ३:१७:१६

(२७५) (गणेश) गुंजाहार। १:१:२

: (महेश) सिरोमाल लर्स। १:३:५

(२७६) (जयचंद) मेखिया कंठ बिमि मुत्ति हार। २:३:६

(२७७) (दासी) पुनै पि लख्य कंठ तौरि पोति पुंज अप्पयै।
६:१५:४

(२७८) २:३:५, २:३:६, ३:१७:१६, ५:१०:४

(२७६) ऊपर का (२७७)

(२८०) देखिए इसी अध्याय की टिप्पणी संख्या २७५

कटि के आभूषण

मेखला[२८६] राज रमणियों का, धार-घंटिका[२८७] नर्तकियों का और तुणीर[२८८] वीरों का कटि आभूषण है। मेखला की ध्वनि कुसुमेषुप्रत्यंचा सा कामोद्दीपक[२८६] होता है। नूपुर[२८६] इस काल का सामान्य आभूषण है। इसे देवी[२६०] देवता[२६१], राजकुलीन[२६२], नर्तकी[२६३] और दासी[२६४] सभी पहिनते हैं। इसका

पैर के आभूषण

---

(२८१) (सुंदरियोंके) करिवर्करि कंकन अंकइ जोव। मनउ दुज हीन सरसद्द सोम। ४:२५:२३:२४

(२८२) (शाह शहाबुद्दीन) सिंगिनी सु अनिअं सज्जइ सुहथ्थं। जिम सेन वज्र साजिअउ पथ्थ।१२ : १३ : १७+१८

(२८३) (सैनिकों के) हथ्थरे हथ्थ लग्गे सुहाई। ७:६:३३

(२८४) अंगोले ५:३६:३, मुंदरिय १०:१५:४

(२८५) भुत बिन त्रिप दरबार सुनग बिनु मुंदरिय। १०:१५:४

(२८६) रष नेव रंज निर्तोवनी। कुसुमेष रष विलोवनी।

१० : ११ : ११

(२८७) (नर्तकियों के) बर्मांहि धार घंटिका। ५:३८:७

(२८८) कटि कसे साहि सर सत तोन। १२:१३:१५

(२८६) संबा १:१:२, नूपुर ३:५:२, ३:१७:३७, ५:२४ ,६:६:१

(२६०)(सरस्वती) सबद बद बुप्पुरे । ३:१७:३७

(२६१) गणेश— सबा पया भासिता। १:१:२

(२६२) बलति सोभ नुपुरं। अनेक भांति सादुरं।

५ : २४ : २ + ३

(२६३) दादुर दादुर सौर नव नुपुर नारि भन । ६: ६ : १

: (नर्तकियों के) रोचि आरोहि मंजीर बद्दं।

मंद मुद्दु तेज परकीर बद्दं। ४ : २० : ३१ + ३२

(२६४) दीपक बदय सुसुभा नुपुर बहानि भानि अच्छानि।

५: ३:५: २

शब्द मंद, मृदु और तीव्र,[२६३] मराल की चाल [२६५] अथवा दादुर-[२६३] सादुर ध्वनि की भाँति होता है। विलासिता की पृष्ठभूमि में इसका प्रयोग होता था।[२६६] संयोगिता के चरण नग, हेम और हीरे को स्थापित करते वाले हैं।[२६७] सैनिकों के राग[२६८] (टांगों के कवच) और जरबीन [२६८] ऐसी बनावट के लगते थे मानो योगिन्दों को (कक्षोंटा) काढ़े देख रहे हों।[२६८] कनकाभरण के लिए हेमतार [२६६] खीचे जाते हैं। गहनों में रत्नादि के कोर[३००] अवर्णनीय हैं। वे सोमपाट[३०१] (रेशम के लच्छे) से गुहे जाते हैं। वसन[३०२] (सं०वसन) से

वस्त्र के पर्याय

गजनी की बालाएं अपने बिंबवत ओष्ठों को शुक के भय से छिपाती हैं[३०३] मित्र के दुख से उत्पन्न विराग के फलस्वरूप चंद ने अपनी त्वचा पर अंमर [३०४] (सं० अम्बर) भी नहीं रक्खा।[३०४] संयोगिता के चित्र विचित्र प्रकार से चित्रित अम्बर[३०५] हैं। उसके अंबर में घुंघुंची भी लगे हैं।[३०६] रणक्षेत्र के रक्त-सरोवर में पड़े बहुत से रंगीन चीर (सं० चीर) [३०७] वस्त्र का ही बोधक लगता है।

---

(२६५) (नूपुर) चलंति हंस अंकुरे। ३:१७:३८

(२६६) (पृथ्वीराज के हर्म्य में) दादुर सादुर सोर नव नूपुर नारि घन।
मिलि सुरमध्धि मधु भ्रत माधुर मंधु मन। आदि ६:६
समस्त पद

(२६७) (संयोगिता के चरण) नग हेम हरि सु थप्पनं। १०:११:७

(२६८) राग जरबी बनावट कछे।
देखिकक जानु जोगिंद कढ़े। ७:६:३५१ ३६

(२६६) कसिककसि हेम ति कढ़ढ़ तार। ४:२५:२१

(३००) सु कढ़ढहिं कोर कहे सु न जाय। ४:२५:१४

(३०१) सुंदरि सोम गुहावति पाट। ४:२५:३०

(३०२) वसनन २:७:६, क्मल १२:७:४, कटच ५:३४:२

(३०३) बिंब फल बानि घन कीर धावत
वसन भय बाल बसनी छपावत। २:७:१५+१६

(३०४) (गजनी में दरबान कथन चंद से) तुच अंमर संमर नहीं।
१२:७:४

जयचंद के उत्सव में परदे के कप्ट(सं० कर्पट) में फांकते हुए महिलाओं के उत्तम मुख मानो शरद-अभ्र में से निकलती हुई शशि की कोरें हों। आज कल वसन, अम्बर और चीर शब्दों का सामान्य प्रयोग गौण हो गया है। कप्ट के कपड़े रूप को ही प्रचलन है।

प्रकार

कन्नौज की हाट में (१) कतान[३१०], (२) तनसुख[३११]

---

(३०५) चित गिरि चित्रति अंबरं। १०:११:४६

(३०६) सुरचि लग्गि अंबरं। ३:१७:२२

(३०७) तटं रंभ रत्तं भरतं चिचीरं।

कतं स्याम स्वतं कतं नीरं पीरं। ७:१७:३५+३६

डा० निर्मला सक्सेना के सूरसागर शब्दावली (एक सांस्कृतिक अध्ययन) में चीर वस्त्रों के पर्यायवाची में भी उल्लिखित है। उसमें यह भी लिखा है कि वास्तव में चीर शब्द पुराने साहित्य में भी, बिना सिले कमचौड़े पर लम्बे वस्त्रों के अर्थ में ही प्रयुक्त होता था, जैसे साड़ी ओढ़नी, धोती या पगड़ी। अलीगढ़ का `पचरंग चीरा` कई रंगों की धारियों वाला चादर है। वर्ना वर के वस्त्रों में एक लाल रंग की पट्टी को भी चीरा कहते हैं। कपड़ा फाड़ने को भी `चीरना` कहते हैं।

(३०८) करी चम्म छदं। १:३:१०

(३०९) अमनि कप्ट उच्च महिल मुख जनु शरद अभ्र शशि कोर।

५:३४:२

(३१०) (स्त्रियां) लच्छिलच्छि कतानं। ४:२५:१७ टीकाकार ने इसका अर्थ `क्षौम` लिखा है।

(३११) (स्त्रियां) ले तनसुख्ख रहे अपार। ४:२५:१५

डा० निर्मला सक्सेना द्वारा सूरसागर (एक सां०अध्ययन) में लिखा है कि तनसुख संभवत: बढ़ी का फूलदार कपड़ा होता है। आइने अकबरी पृ० २०८ में सूती कपड़ों की सूची में तनसुख का नाम है। चार पांच रूपए थान इसका मूल्य था।

(३) तान[३१२] (४) पट [३१३] (५) पटोर[३१४] और (६) पाम [३१५] प्राप्य हैं। तनसुख [३१६] में शैय्या के लिए उपयुक्त सुगंधि लिपटी हुई है। पटोर[३१७] कोई बहु प्रचलित और मूल्यवान् कपड़ा रहा होगा जिसको देखती हुई नारियां उसी प्रकार से नहीं अघा रही थीं जैसे द्विज को दक्षिणा थोड़ी लगती है। [३१७] महेश ने अपने को गज चर्म [३१८] से आच्छादित किया है। [३१८]

पहिनावा

चीर

पहिनावे में चीर, [३१९]सारी, [३२०] कछोटा, [३२१] कंचुकी, [३२२] और पटोर[३२३] चीर हैं। सरस्वती श्वेत चीर[३२४] धारण किए हुए हैं।

---

(३१२) लहिल्लहि तानं। ४:२५:१७ टीकाकार ने इसका अर्थ `तामि` लिखा है। तानं वह कपड़ा है जो ताना-पाई करके बनाया जाता है।

(३१३) (कन्नौज हाट में) हाटक पट धनु धातु सहि तुझ तुझ दिष्षियइ संचार। ४:२४:२

डा० निर्मला सक्सेना ने सु०सा०(एक सा० अध्य० के) अनुसार पट (सं० पट्ट) शब्द अत्यंत प्राचीन है तथा रेशम का द्योतक है। प्रा०भा०वे० पृ० २६, २७, २८, ६५- जैन ग्रंथ जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति में ` पट्टगार` रेशमी वस्त्र के बुनने वाले के अर्थ में है (पृ० २६) आचारांग सूत्रमें (२:५:१:४) भी यह शब्द रेशम का बोधक है। ((पृ०२७)। चीन पट्ट का अर्थ चीन का बना रेशमी कपड़ा है। (पृ० २८)

(३१४) दिष्षहि नारि स कुंभ पटोर। ४:२५:११, पटोर

(सं० पत्रोर्ण) रेशम को क्षीरस्वामी ने कीड़ों की लार से बना बताया है। हर्ष सां० अ०, पृ० ७७—लकुचवटादिपत्रेषु कृमि-लालोर्णाकृतं पत्रोर्णम्-क्षीर स्वामी, पत्रोर्ण धौत कौशेयं बहुमूल्यं महाधनम्` —अमर कोश,` पटोर` को टीकाकार ने ` लहंगे का वस्त्र` लिखा है। अवधी में अब भी अच्छे रेशमी लहंगा के रूप में वर पक्ष की ओर से कन्या को दिया जाता है।

गजनी की गौरांगनाओं के चीर[३२४] हवा से फट कर इस प्रकार उड़ रहे हैं मानों वसंत में द्रुमों से पत्ते गिर रहे हों[३२५]। ऐसी धारणा है कि जब चीर[३२६] चितानल से चढ़ावे तो समझना चाहिए कि भोग का समय आ गया।[३२६] नायिकाओं के कुसंभी चीर[३२७] कीर की शो... के हैं और (उन चीरों में लिपटा हुआ) उनका शरीर काम-कदली-गर्भ (के समान लगता) है। कन्नौज में चतुर बजाज साड़ियां बेच रहे हैं।[३२८] वे ऐसी झीनी हैं कि दिन में भी छूने पर

---

(३१५) `लम्हिलहि पाम``। ४:२५:१७
टीकारकार ने अर्थ में`पाम`का अर्थ प्रकार की छींट लिखा है।

(३१६) तनुसुब्ब। जिन सेभि सुगंध रही लपटाइ। ४:२५:१६। १७

(३१७) दिव्भहि नारि स कुंब पटोर। मनउ दुज दक्खिन लग्गइ थोर। ४:२५:११।१२

(३१८) (महेश) करी चम्म दरं। १:३:१०

(३१६) १:२:२, २:७:६, २:२४:११ ४, ७:१७:३५

(३२०) सार ४:२५:६।१०, ५:३८:१०, ४:२३:१७

(३२१) कच्छ ४:११:८, कछुवे ७:६:३६

(३२२) कंचुकी १०:११:१६, कुंब ४:२५:११

(३२३) ४:२५:११

(३२४) (सरस्वती) सेतं चीरं। १:२:२

(३२५) चीर सम्मीर उड्डंति छुट्टइ। मनहु रितुराज द्रुम पत्त छुट्टइ।
४:७:६।१०

(३२६) चाने चीर चाढंति चितानला। चायं भोग समया प्राप्तो।
२:२४८:१। २

(३२७) कुसंभ सा चीर सा कीर सोभा। मध्यता काम कदली सु गोभां।
४:२३:१७:१८

(३२८) छुटि बजाज सु बिच्चहि सार। छूवंत न बाहर सुझझइ तार।
४:२५:६।१०

साड़ी — उनके तार-ताने-बाने सूझते नहीं हैं ।[३२८] नर्तकियां कुसुम-शर (कामदेव) के आयुध के सदृश्य कुसुंभी साड़ी पहने हुए नृत्य करने लगीं । सुंदरियों की जांघें उनके कछोटों[३३०] में छिपी हुई हैं । राग और जरजीन के

कछोटा — बनावट ऐसे थे मानों योगीन्द्र कछोटा[३३१] काढ़े हैं । नारियां बजाजों

कंचुकी — से लेकर कंचुकी[३३२] और पटोर देउ रही हैं । संयोगिता की कंचुकी [३३३] इतनी झीनी है कि मानों है ही नहीं । [३३३] जब सुंदरियों के हाथों

अंचल — से उनके अंचल[३३४] उड़ते हैं तो (उनके हारोंके) कांति युक्त मोती हिलते दिखाई पड़ते हैं । संयोगिता अंचल देकर[३३५] अपने चंचल नेत्रों को मूंदती किंतु वे इसी प्रकार न मानते जिस प्रकार अपने कुल स्वभाव के कारण बांधने पर भी घोड़ा उछलता कूदता रहता है ।[३३५] तब विरदिया चंद शाह (शहाबुद्दीन) के आगे हाथ जोड़ कर कहा कि कृपण की गांठ[३३६]

गांठ — के समान पृथ्वीराज अब अपने मन की गांठ नहीं खोल रहा है ।

---

(३२६) कुसंभ सार आवध कुसंम सार उड्डह नट्टरी । ५:३८:१०

(३३०) ति लीन कच्छ रंभया । ४:१४:८

(३३१) राग जरवी बनाइत मच्छे । देषिअह जानु जोगिंद कच्छे ।
७:६:३५+३६

(३३२) दिष्षहि नारि स कुंच पटोर । ४:२५:११

कंचुकी (सं०कंचुक, कंचुली, कंचुलिका) । वा०श०अग्र० के ह०च० (एक सा० अध्य०) में कंचुक पैरों तक लम्बा बांहदार कोट था जिसका गला सामने से बंद रहता था (चित्र ७२) । अमरकोश (२:८:६४) के अनुसार कंचुक का तात्पर्य शरीर के वस्त्र से हैं । डा० मो०च० के प्रा०भा० वे० (पृ० ११ से १४ तक में) के अनुसार सिपाही, अंग रक्षक और द्वारपाल आदि भी कंचुकी पहिनते थे । राजे भी कभी कभी कंचुक पहिनते थे । स्त्रियों के कंचुक प्राय: घुटने तक पहुंचते थे । शेष कंचुक साड़ी के नीचे अथवा ऊपर पहने जाते थे ।

(३३३) जानुं हीन झीन ति कंचुकी । १०:११:१६

(३३४) उचिय रत्न अंचले । हारोंति भुति सा चले । ४:१४:१७+१८

(३३५) दै अंचल चंचल द्रिग मुद्दय । कुल सभाउ तुरी जिम कुद्दय ।
६:२०:३१४

(३३६) कृपन गांठि जिम बाधि राज अब गांठि न छोरह । १२:४:२

उपसंहार

इस काल में नारी के शरीर की उत्तमता की मान्यता उसके गौर वर्ण[३६७] होने में है । तन,[३६८] मुख,[३६९] और हाथों[३७०] में कांति हो, मुख,[३७१] हाथ,[३७२] अंगुली[३७३] और नख[३७४] कोमल कोमल हों, मुख[३७५], अधर,[३७६] नख[३७७] एड़ी,[३७८] और पांवों[३७९] में लालिमा हो । कुच,[३८०] नितंब और जंघों में[३८२] भारीपन और उभाड़ हो, भौंह[३८३] और कमर[३८४] पतली हों, आंख[३८५] और जंघा[३८६] चंचल तथा गतिशील हों । बाल[३८७] और भौंह,[३८८] टेढ़े, नख[३८९] लम्बे तथा काले, रोम[३९०] में बहुलता, दांत[३९१] लघु तथा चमकदार, नख[३९२] सटा हुआ और नाक[३९३] कीर की टोंट की तरह हो, इसी में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा है ।

---

(३६७) दे० इसी अध्याय टिप्पणी २०
(३६८) ,, ,, २१
(३६९) ,, ,, ३०
(३७०) ,, ,, १५३
(३७१) ,, ,, २६
(३७२) ,, ,, १५२
(३७३) ,, ,, १८०
(३७४) ,, ,, १८४
(३७५) ,, ,, ३३
(३७६) ,, ,, ६८
(३७७) ,, ,, १८५
(३७८) ,, ,, २०८
(३७९) ,, ,, २०६
(३८०) ,, ,, १३६
(३८१) ,, ,, २००
(३८२) ,, ,, २०२
(३८३) ,, ,, ६५

म्लेच्छ को रोम[३६४] और दाढ़ी[३६५] प्रिय है। उनका वने-चरों जैसा मुख[३६६] है। वे अपने शरी के संधो[३६७] (जोड़ों) को बांध कर रखते हैं। बड़े लोग शरीर[३६८] पर अगरु धूप आदि सुगंधित द्रव्य लगवाते हैं। [३६८] हिन्दुओं में जटाजूट बांध कर तन में राख (विभूति)[३६६] लगाना बैराग का प्रतीक माना गया है और सम्मानित है। शरीर को वे प्राय: क्षणभंगुर तथा अस्थायी समझते हैं।[४००] सत्य के लिए

---

(३८४) दे० इसी अध्याय की टि० सं० १६४

(३८५) ,, ,, ८५

(३८६) ,, ,, २०३

(३८७) ,, ,, २८८

(३८८) ,, ,, ६५

(३८९) ,, ,, २२४, २२५, २२६, २२७

(३९०) ,, ,, २२३

(३९१) ,, ,, १००, १०१, १०२

(३९२) ,, ,, १८५

(३९३) ,, ,, ७४

(३९४) रो राहं रमी। ७:१५:३

(३९५) दुम्मि साह मुखी। ७:१५:११

(३९६) वनेचरं तं मुखी। ७:१५:६

(३९७) सधं सा बध्धधी। ७:१५:८

(३९८) देखिए इसी अ० की टि० संख्या २६

(३९९) ,, ,, २३

(४००) ,, ,, २ से ७, १४ से १८

उसका टूट टूक हो जाना स्वीकार है।[४०१] उससे उलझने वाले मूढ़ माने जाते हैं।[४०२] स्वजन-मिलन पर[४] गले लगाना[४०३] तथा मुख पर ललाई छाना[४०४] सामाजिक शिष्टता के अन्तर्गत परिगणित है। सिर[४०५] झुका कर विनय और शील दिखाना, विशिष्ट गुण है।[४०५] ग्रीवा,[४०६] ताली,[४०६] और नेत्र[४०६] रसिक जनों के मूक विचार-वाहक हैं।[४०६] यह युग बाहु-बल[४०७] का था। फिर भी शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने की ओर ध्यान नहीं के बराबर है। विलासिता के लिए रमणियों के अंग कैसे होने चाहिए की दृष्टि में उपमानों के सहारे, परम्परागत शैली में स्त्रियों के शरीर का नख-सिख-वर्णन अधिक है।

परवर्ती पद्मावत, सूरसागर और मानस की तुलना में वस्त्राभूषणों की संख्या और वर्णन कम है। पुरुषों में प्रचलित पहिनावे धोती, चादर, पट्टी, जूता अथवा पादुका में किसी का भी उल्लेख नहीं है। स्त्रियों के पहिनावे में चीर,[४०८] साड़ी,[४१०] कछौटी,[४११] कंचुकी,[४१२] और पटोर[४१३] उल्लिखित है। चीर[४१४], साड़ी और

---

(४०१)	दे० इसी अध्याय की टि०सं०		३७, ४६
(४०२)	,,	,,	२१५
(४०३)	,,	,,	११३
(४०४)	,,	,,	३३
(४०५)	,,	,,	५०७
(४०६)	,,	,,	८२, ११२, १७३
(४०७)	,,	,,	१६१
(४०८)	,,	,,	३२४ से ३२७
(४१०)	,,	,,	३२८ से ३२६
(४११)	,,	,,	३३०, ३३१
(४१२)	,,	,,	३३२, ३३३
(४१३)	,,	,,	३१४
(४१४)	,,	,,	साड़ी के लिए ३२४ से ३२७ तक, वस्त्र के लिए ३०७

वस्त्र दोनों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[४१४] कछौटा,[४१५] योगीन्द्र और सुन्दरियां दोनों पहनते हैं।[४१५] साड़ी और चीर तथा कुंचुकी के पहिनने के ढंग और आकार पर यह काव्य प्राय: मौन है। अम्बर[४१६] चित्र विचित्र प्रकार से चित्रित हैं।[४१६]

आभूषणों में छत्र,[४१७] ताटंक,[४१८] हार[४१६], कंकण,[४२०] अंगूठी,[४२१] मेखला,[४२२] नूपुर,[४२३] बहु प्रचलित हैं। छत्र अमूल्य और द्युतिमान होते हैं।[४२४] नूपुर[४२५] की शब्द दादुर-दादुर-ध्वनि की भांति अच्छा[४२५] माना जाना उल्लेखनीय है। चामर,[४३६] मणि ग्रथित शशिफूल,[४२७] कलंगी[४२८] शेखर[४२६] और नासिका में[४३०] मोती (नथ नहीं) का भी उल्लेख है। सैनिकों का आभरण जिरह-[४३१] बख्तर, राग,[४३२] जरीन,[४३३] टोप,[४३४] दस्ताने,[४३५] धनुष,[४३६]

---

(४१५) वै० अ० टि० सं० ३३०, ३३१
(४१६) ,, ,, ३०५
(४१७) ,, ,, ३५६
(४१८) ,, ,, २६८, २६६, २७०
(४१६) ,, ,, २७३, से २८०
(४२०) ,, ,, २८१
(४२१) ,, ,, २८४, २८५
(४२२) ,, ,, २८६, २८७
(४२३) ,, ,, २७६, से २८६ तक
(४२४) ,, ,, २६०, २६१
(४२५) ,, ,, २६२, २६३
(४२६) ,, ,, २६२
(४२७) ,, ,, २६३, २६४
(४२८) ,, ,, २६५
(४२६) ,, ,, २६६
(४३०) ,, ,, २७२
(४३१) ,, ,, २५८

तथा तुणीर[४३७] कहा जा सकता है। गहने जड़ाऊ तथा मोती से मढ़े हुए होते हैं।[४३८] उनमें रत्नादि के कोर हैं[४३९] तथा रेशम के पट्टे से गुहे हैं।[४४०] आभूषण दान[४४१] अथवा कन्या के विवाह में दिया जाता है गहनों अथवा प्रसाधनों से शरीर को सजाने की रुचि नहीं है। सामाजिक मान्यता की परम्परा में, जनजान से प्रतिबद्ध लोग आभरणों से भूषित हैं। भूषणों से अधिक ध्यान स्त्रियों के रूप,[४४३] वर्ण,[४४४] प्रभा,[४४५] और विलास [४४६] की ओर अधिक आकृष्ट है।

---

(४३२) दे० अ० टि० सं० २६८

(४३३) ,, ,, २६८

(४३४) ,, ,, २६७

(४३५) ,, ,, २८३

(४३६) ,, ,, २८२

(४३७) ,, ,, २८८

(४३८) ,, ,, २५७

(४३९) ,, ,, ३००

(४४०) ,, ,, ३०१

(४४१) ,, ,, २५५

(४४२) ,, ,, २५६

(४४३) ,, ,, १०,१५, २६ से ३१, ७२से ७४, १३६, १४२, १७६, १८०, १८५, १८६, १६४, १६५, २००, २०२, २०४, २०५, २२४

(४४४) ,, ,, २०,७६,६२, १०२, १५३, १८४, १८५, २०४, २०५, २०७, २०८, २०६, २२५,से २२७ तक

(४४५) ,, ,, २०१ २१, ३०, १५३

(४४६) ,, ,, ६६, ८७, ६०, ११६

(२) खान-पान और सुगंधित वस्तु

(१६ शब्द अपने २१ पर्याय सहित खान-पान आदि के संदर्भ में प्रयुक्त है

प्रस्तुत महाकाव्य में परवर्ती हिन्दी महाकाव्यों की अपेक्षा खान-पान के वर्णन का नितांत अभाव है। उच्चकुलीन पारिवारिक खान-पान के सम्बन्ध में तो यह काव्य सर्वथा मौन है। केवल केवल के मांसा[१] हारी होने और उपमान में, भूखे के लिए सक्कर[२] और दूध[२], तथा, वारुणी[३] में मानो छक कर दोनों दल (हिन्दू और मुसलमान) भिड़े इस का वर्णन है। मीर बंदन की दुम्मियां[४] मोटी दुम वाले मेंढ़ खाने और म्लेच्छ के सर्वभक्षी होने का जिक्र है[४क]। देवी-देवताओं के संदर्भ में शिव का भोजन (१) काल[५] (२) विषकंद,[६] काल द्वारा राधे हुए पकवान,[७] और सदेह देवी का महिष[८] पर अनुराग उल्लिखित है। खानपान के लिए आहार शब्द का प्रयोग उपमान रूप में ही व्यवहृत है। यथा मोहिनी की मांगे मुक्ताओं का वर्ण लिए

---

(१) बे कोल पलब भषी । ७:१५:१

(२) (जयचंद के कवियों और चंद का सरस्वती-गुण-गान करना रुचि कर था) जानुं भुष्षह साकर पय लिन्नउ । ५:६:४
साकर (सं० शर्करा — पा० सक्कर-सक्कर, फा० शक्कर) ईख-रस को औटा कर बनता है।

(३) मिले आय चहुआन सुरताण भग्गे ।
मनउ वारुणी छक्कि, बे वार लग्गे । ११:१२:११२

(४) (मीर बंदन) भषह चोष दुम्मीन । ७:१५:२

(४क) मेछ सर्व भषी - ७:१५:२

(५) करे काल चह । १:३:११

हुए ऐसी लगती हैं मानो वेणी रूपी सर्पों के आहार के लिए दूध की धारा प्रवहमान हुई हो । समस्त श्रेष्ठ कवियों के अनन्तर सरस्वती की वाणी का उच्छिष्ट[१०] लेकर कवि चंद ने छंद-निबन्ध निर्माण किया । इस प्रकार उच्छिष्ट विचार, जूठन (खान-पान जूठन नहीं) के रूप में प्रयुक्त हुआ है । गंध[११] की वस्तुओं में अगरु-धूम[१२], घनसार[१३] और गज-मद[१४] उल्लिखित है । पान[१५] इतना बहु-प्रचलित है कि बाहडाल जब ताम्बूल की पीक फेंकता है, तो उगाल को उलीचने से कीचड़ हो जाता है ।[१६] इससे अतिथि-सत्कार होता है[१७] इसका प्रियतम के जाने से रोकने के लिए संकेत-रूप में भी प्रयोग होता है ।[१८]

हिन्दुओं में कोल के मांस[१९] खाने, मुसलमानों में दुम्मिया[२०] खाने और सर्वभक्षी[२१] होने का वर्णन मात्र है । मांस खाना और सर्वभक्षी होना उपेक्षणीय है ।

---

(६) जठ हर झंडल विष कंद । ३:२४:१

(७) अंतकु कर रंध्यासु । ३:३३:४

(८) बहु महिष रती । ४:२२:५

(९) मांग मोहन्नि लय मुचि वानी । मनउ धार आहार कढ दूध तानी । ४:२०:३१४

(१०) गिरा सेष बानी कवी कव्व बंध
जिनै सेस उच्छिष्ट कवि चंद छंद ।

(११) गंध, घ्राण १:१:१

(१२) (हर्म्यके) अगर धूप धुम्म गउष उन्नयउ मेघ जनु । ६:५:१
जलन दीप दिव अगर । ५:३४:१

(१३) (दरबार में) फिरि घनसार । ५:३४:१

(१४) मद-गंध । १७१:१

(१५) तंबोर ४:२५:३, तम्बोल ५:४६:१, ६:१७:२,तंमोर ५:३४:१
पान ५:२१:२

(१६) जु नच्चइ मोर तंबोर सुढार । उच्चित कीचत होइ उगार । ५:३५:३१४

(१७) अवलूप ते कनवज भट्टहि अप्पन पान । ५:२१:२

(१८) अवलूप ते कनवज भट्टहि अप्पन पान । ५२१:२

(१८) (संयोगिता अपन पृथ्वीराज) सर्व विधि निषेधस्य य: तंबोलस्य समापार्य, ६:१७:२

(१९) दे० अ०टि०सं० १

(२०) ,, ४

(२१) ,, ५६

(ङ) मनोरंजन — क्रीड़ा, त्योहार और वाद्य

(प्रयुक्त शब्द संख्या ७४)

अनुच्छेद — संदर्भ

१— मनोरंजन-स्थल

२—४ — क्रीड़ा-विनोद:—वेश्यागमन, जुआ खेलना गायिका, मृग-वत्स और मत्स्य पालना, शिकार करना, स्वरों-साधना, मुस्लिमों में रंग शाला, नाटक, नृत्य, हृदक, उपमान रूप में अखाड़े के मल्ल, पतंग, फिरकी, नट, जुआ और शिकार.

५—६ त्योहार उत्सव समारोह संपादन-विधि
वाद्य-युद्ध के बाजे

७—८ वाद्य: विलासिता के बाजे, समय-सूचक वाद्य, उत्सव-सूचक-वाद्य, उत्सव-वाद्य, देवी-देवता-वाद्य

६— उपसंहार

मनोरंजन-स्थल

कन्नौज में कवि चंद ने " ८० सहस्र[३९]शूर और घने सामंतों के मध्य में कविता की[४०] से ज्ञात होता है कि लोगों के मनोरंजनार्थ बैठने के लिए बड़े-बड़े मंडपों की व्यवस्था की परंपरा है।

क्रीड़ा-विनोद

प्रस्तुत काव्य में, विनोद के साधनों में वेश्यागमन,[४१]जुआ खेलना,[४२] गायिका,[४३] मृग-वत्स[४४] और मत्स्य-चराना, शिकार करना[४६] और सरो साधना[४७] है। मुसलमानों में सार[४८] (रंग शाला) नाटक,[४८] नृत्य[४८] और हदफ[४९] इन मनोरंजनों का उल्लेख कन्नौज और गजनी नगर वर्णन में द्रष्टव्य है। उपमान में अखाड़े के मल्ल,[५०] पतंग[५१] की अधिष्ठितता फिरकी[५२] के नाचने, नट[५३] के शीघ्र वेश-परिवर्तन, जुए[५४]के दाव और शिकार में वाराह[५५]-घिरने का भी उल्लेख है।

---

(३९) असिय सहस । ५:३०:१ (टीका भी)

(४०) सकल सूर सामंत घनमधि कविता किय चंद । ५:३१:१

(४१) जिते कुशल संघट्ट बखानि रचे । ४:२२:७

(४२) जिते सुप्पे जुआरी । ४:२३:३, देखिए उक्तिव्यक्ति प्रकरण, दामोदर, पृ० ८२.

(४३)कलि कलाप सुख विंदु (संचरिय) । ५:३३:१ (जयचंद के नृत्य-संगीत समारोह में)

(४४) जब अंकुर करि पान चरावति वच्छ मृगु । २:४:१

(४५) (पृथ्वीराज कन्नौज के दक्षिण गंगा में) मीन चरिग्न भुल्ल । ६:६:२

(४६) लिहि तप आखेटक भमइ थिर न रहइ चहुआन । ३:१:१
साथ में सेना और हाथी भी रहते हैं। ३:८:१

(४७) जहाँ मास भुजबंड ले सरोह साधइ । ४:१०:५

(४८) (शाह अलाउद्दीन के यहाँ) नट नाटक बहुसार । १२:६:१

(४९) हदफ शाह खेलन चढ्ढ । १२:१२:२
: तब भट हदफ करि खिल्लयो । १२:१७:१

राजन्य वर्ग में पृथ्वीराज द्वारा आखेट[४६] और मत्स्य-धराने[४५] जयचंद द्वारा नित्य निर्तोन्नी नर्तकियों का समारोह, शहबुद्दीन गोरी द्वारा कदफ[४६] (लक्ष्य भेद) तथा संयोगिता द्वारा मृगवत्स को यवांकुर चराने[४४]का वर्णन है। मध्यम वर्ग मल्ल युद्ध[५०] सरोह साधने[४७] तथा सामान्य जन वेश्यागमन[४१] और जुआ के[४२] खेल में अनुरक्त दिखाई पड़े हैं।

ग्रन्थकार के वन्दनीय कवियों में कालिदास, माघ, भारवि आदि सभी ने उद्यान क्रीड़ा और सलिल क्रीड़ा का रोचक वर्णन किया है किन्तु ग्रन्थ में इनका नामोल्लेख नहीं है। भरहुत, सांची की शुंगकला में और मथुरा की कुषाणकला में मनोरंजन करती हुई शाल भंजिका और पुष्प प्रचायिका रूप में संलग्न स्त्रियों के अनेक दृश्य अंकित हैं, किंतु ग्रन्थकार का ध्यान इस ओर नहीं है। मध्यकालीन स्त्रियों में बहु-प्रचलित गुड़िया और झूला का भी उल्लेख नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि मनोरंजन के साधनों को व्यक्त करने की ओर ग्रन्थकार की रुचि नहीं है। तुलना के लिए सूरसागर में वर्णित झुनझुना, चक-डोरी, आंगन खटा गुड़ी डोर, अंगनि सुलाक और हिडोरना उल्लेख-नीय है जिसका उपयोग आलोच्य ग्रन्थ में नहीं किया गया है।

त्योहार-उत्सव

पृथ्वीराज रासो के अन्य प्रतियों में नवरात्रि, नौ दुर्गा, विजयादशमी, दीपोत्सव, शिवरात्रि, वसन्तोत्सव, होलिकोत्सव, जन्मोत्सव और विवाहोत्सव आदि सामूहिक एवं अपेक्षाकृत व्यक्ति-गत अनेक उत्सवों का वर्णन है।[५६] किन्तु प्रस्तुत काव्य में मात्र

---

(५०) जयचंद पक्ष के योद्धा उसी प्रकार नहीं हिले)
जुरे मल्ल हल्लह नहीं वे अखारे। ७:१७:१४

(५१)(नर्तकियां) (अंधकार होते ही) पथिक बधू पथि दिठ्ठ बहुद्दिय बंध जिमि। ७:२२:२

(५२)(नर्तकियां) उलट्टि पलट्टि नट्टने फिरंकिक चक्कि चाहने। ५:३८:१५

(५३) (पृथ्वीराज केलि विलास छोड़कर)
तरिक तोम सक्कियह स किरि जिमि वेष छंडि सु नट्ट। १०:२४:२

फाग

उपमान रूप में फाग [६०] का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि कन्नौज की नायिकाएं शैया संवारने में इतनी अबीर उड़ाती हैं मानो भूप के द्वार पर फाग [६०] हो रहा हो ।

समारोह संपादन-विधि

समस्त काव्य में केवल जयचंद द्वारा किया हुआ एक नृत्य समारोह का वर्णन है जिसका सम्पादन यथावत् है :—दीपों में जलने के लिए अगुरु रस डाला गया । घनसार और ताम्बूल सभा में घुमाए गए । यवनिकाओं (आच्छादक पटों) के कपड़ों में से झांकते हुए महिलाओं के उत्तम मुख ऐसे प्रतीत होते हैं मानों शरद के बादलों में से निकलती हुई शशि की कोरें हों ।[६१] दीपक की लौ जैसी अंग वाली कुरंगिनी और चक्रवाक के से नेत्रोंवाली और कोकिला सी रागवती नित्तंबिनी नर्तकियों की अंगूठिया उनकी घूमती फिरती उंगलियों के साथ चपलता पूर्वक डोलने लगी ।[६२] मृदु मृदंग-ध्वनि संचरित हुई ।

---

(५४) (कठिन युद्ध करते भट) रहे हारि हथ्थं ति जुग्गारि जुग्गं ।
८:१०:२४

(५५) वाराह रोह जिमि पारधी हम रोकउ संभरि धनी । ७:२१:६

(५६) ७:४:१२, ७:२८:५

(५६क) पा० भारत०:दा०दे०श०अ०, पृ०१६३

(५७)मृदु मृदंग ध्वनि संचरिय अलि अलाप सुध विंदु ।
तार त्रिगाम उर्वग सुर अवसर पंग नरिंदु । ५:३३:११ २

(५८) दे० अ०टि०सं० ५६, ५७ और
सत सहस्र अप्पन बहुल बहुल अंस विधि नंद
सत सहस्र संष ध्धुनि मुदित जांम जयचंद । ५:११:११२

(५९) पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा) : वि०वि० त्रिवेदी, पृ०६५-११०

(६०) उड़ह अब्बीर सझ्झया समारह ।
मनउ होय चारंत भुपाल दुवारह ।। ४:२३:१५११६

(६१) जलन दीप दिय अगर रस स फिरि घनसार तंमोर ।
झमनि कपट उघ महिल मुख जनु सरद अभ्म ससि कोर ।
५:३४:११२

सुधा सदृश गायिकाओं के अलाप हुए। ताल के तीनों ग्राम तथा उपंग (वाद्य) के स्वर होने लगे।[६२क] नर्तकियों ने `ततथेइ` `ततथेइ` करके काम (के अन्तर्गत) विराम को दंडित किया।[६४] उन्होंने स रि ग म प ध नी` आदि ध्वनियों को प्रस्तुत किया।[६५] तानों के जो अंग होने हैं, वे उनके भ्रमित होते समय ज्योति बन कर उनके अंग अंग में दिखाई पड़ने लगे।[६६] कला कला (नृत्य संगीतादि) के भेद-प्रभेद दर्शकों के मन को भेदने लगे।[६७] उनकी कटि में लगी हुई थार (कांसे) की कंटियां (उनके नाचने से) शब्द करने लगीं, और उनकी वेष-लेखा भी भ्रमित होने - चक्रावर्तित होने लगी।[६६] उनके लहराते हुए (सुनहले) खुले केश-पाश श्लाघ्य पीत रेखा निर्मित करने लगी।[७०] यति, गति और ताल के भेद वे कटि से कुशलतापूर्वक इंगित करने लगीं।[७१] कामदेव के आयुध-सदृश्य कुसुंभी साड़ी पहने हुए वे उड़ीसा के नृत्य करने लगीं।[७२]

---

(६२) दीपकांगी नैत्र चंगी कुरंगी।

कोकाच्छी कोकिला रावबे भागवानी।

अंगोले लोल होलं..... । ५:३६:१+२-३

(६२क) दे०अ०टि० सं० ५७

(६३) ततथेइ त त थे इ त त थे इ सु मंडियं

(६४) थं थु ग थे इ थं थु ग थे इ विराम काम डंडियं।

(६५) स री गम प्प ध न्नि धा धुनं धुनं ति रच्छियं।

(६६) भंवति जोति अंग तान अंगु अंगु मनं मनं।

(६७) कला कला सु भेद भेदै भेदनं मनं मनं।

(६८) रणकि झंकि नूपुर झुलंति वे झनंझन।

(६९) झटिच छुट केश पाश पीत साह रेषयो

(७०) घमंडि थार घंटिका भंवति भेष लेषयो।

(७१) जति गतिस्सु तारया करिस्सु भेद कट्टरी।

(७२) कुसुंभ सार आयधं कुसुंभ सार उड्ड नट्टरी।

तदनंतर हृदय से भेष-लेखा को लगाकर और कलेवर (शरीभूषण) को कस कर[73] तिरप की गतियुक्त कला प्रदर्शित करती हुई उन्होंने सुंदर दक्षिण का नृत्य दिखाया।[74] स्वरों के साथ गीत प्रस्तुत करने में वे ध्वनियों का शासन धारण करती थी,[75] और योग के काटे (कौशलपूर्वक क्रियायें) प्रदर्शित कर वे त्रिविध नृत्यों का सम्पादन करने लगीं।[76] वे उल्टे पल्टे नृत्य करती हुई फिरकी की भांति घूम कर वक्रित दृष्टि से देखती हैं।[77] नर्तन में निरत वे ऐसी दीखती हैं मानो सरस्वती का वाहन मयूर हो।[78] विशेष देशों के तथा ध्रुव पद रागों को कहती हुई[79] वे बालाएं चक्रवाक का वेष और चक्रवाक की वृत्ति विशेष रूप से साज रही है।[80] यह मुग्धा मण्डली ऊर्ध्व आरोह में चल कर जब अवरोह में चलती थी[81] तो ऐसी लगती थी मानो मराल माला धुतिपूर्ण मुक्ता-माला ग्रहण कर चुग रही हो।[82] वे प्रवीण की वाणी का आधार लेती हुई जब मुनीन्द्रों की मुद्रा और कुंडली का प्रदर्शन करती हैं[83] तो ऐसा लगता है मानो भूमि पर इन्द्र का स्वर्गीय वेष प्रत्यक्ष उतरा हो।[84] मृदंग जब `तलपक्ल` की ताल युक्त सुंदर ध्वनि कर रहा है,[85] उसके साथ थपा थपा` कहती हुई वे ऐसी हो रही हैं मानो आत्म-योग में लग रही हों।[86] अलक्ष्य और लक्ष्य लक्षणों

---

(७३) उप्पारंभ भेष रेष वेष रं करक्कंय।

(७४) तिरप्पि तिक्ख सिक्खयो सुदेस दक्खिन दियं ॥

(७५) सुरं ति संग गीतने धरंति सासने धुने।

(७६) अमाय योग कट्टरी त्रिविध्ध नंच संचने ॥

(७७) उलट्टि पिलट्टि नट्टने फिरक्कि वंकि चाहने ॥

(७८) निरत्ने निरक्खि वानु वंभ मुद्दि वाहने ॥

(७९) विसेष देस ध्रुप्पदं वदं वदनं रागयो।

(८०) चक्रभेष चक्रवृत्ति वालि ता विराजयो।

(८१) उरध्ध मुग्ध मंडली अरोह रोह चालिनं।

(८२) ग्रहंत द्युति द्युक्तिमा मनुं मराल मालिनं ॥

(८३) प्रवीण वाणि अध्धरी मुनिंद्र मुद्र कुंडली।

(८४) प्रतिक्ख भेष उध्धरउ सु भोमि लो अखंडली ॥

तथा नयन, बचन और आभूषणों से[८७] वे नर-नर में और राजाओं में काम-सुख का उन्मेष कर रही हैं।[८८] उत्सवों के अवसर पर बंदनवार[८९] और धौंसा[९०] बजते हैं।

वाद्य—
युद्ध के बाजे

वाद्य[९१], वीरों में वीर रस भरते हैं।[९२] युद्ध में धौंसों[९३] का बजना सुनकर समुद्र का शब्द भी लज्जित हो जाता है।[९३] रण जोत्रीय बाजों में दक्षिण देशीय उपंग[९४] है। तबल,[९५] तंबूर[९५] और जंगी[९५] मृदंग ऐसे हैं मानों वे नारद के नृत्य के प्रसंग में निकले हों।[९५] बंसी[९६] विस्तृत रूप में नाना प्रकार से बजती है।[९६] वीर मुंडीर (मुंड देश के सैनिक) सिंगा[९७] बाजों के साथ इस प्रकार शोभित होते हैं मानो ऐसे शिव नृत्य कर रहे हों जिनके सिर ने गंगा को धारण किया हो।[९७] रणभूमि में शहनाइयों[९८] में गाया जाता हुआ सिंधु राग श्रवणों में इस प्रकार उत्कृष्ट लगता है मानो आकाश में स्वच्छ अप्सराएं अपने सुंदर अंगों को निमज्जित कर रही हों।[९८] नफीरी,[९९] वारंग[९९],

---

(८५) तलवलस्सुलालिता मृदंग धुक्कली धुमे।
(८६) अपा अपा भणंति मे अपंति आनि योजने।।
(८७) अलच्छ लच्छ लच्छने नयन वयन्न भूषने।
(८८) नरे नरे नरिंद मा स मेल काम सुच्छने।। ५:३८:१ से २६ तक
(८९) सुनि सहन बाँधिय बदनवार। २:३:५७
(९०) धुम्मिया बार निसान ताम। २:३:५६
(९१) कज्जन ५:११:१, ६:८:२, ७:७:१, उपंग ५:३३:१
(९२) सहनाइ नफेरिय काहलियं। रस वीरह वीर बली मिलियं।
७:४:६+१०
-अब भरहिं सुर सुनि सुनि निसानं। ४:७:६
-सुनि बज्जन राजन चहिन बहु बज्जर बजवाइ। ७:७:१
(९३) दिसा निसान बज्जयी। समुद्र सद लज्जयी। ७:१२:३+४
(९४) दिसा देस दक्खिन्न लच्छी उपंगा। ७:६:४०
(९५) तबला तंबूर जंगी मृदंगा। मनउ नृत्य नारद कढ़े प्रसंगा।
७:६:४१+४२

हैं। राजमहलों में, संभवत: समय सूचनार्थ, जयचंद के यहां पहर पहर पर, शत सहस्त्र बहुतेरे वाद्य, बहुत सी वंशियां [१०६] और शत सहस्त्र शंखों [१०६] की ध्वनि तथा सुल्तान शाह शहाबुद्दीन के द्वार पर प्रभात होते समय

समय-सूचक-वाद्य

धौंसे[१०७] ही धौंसे [१०७] बजने लगते हैं। उत्सवों पर भी मनोरंजन कार्यक्रम के

उत्सव-सूचक-वाद्य

अतिरिक्त, संभवत: जनता-सूचनार्थ, बाजे बजते हैं। जयचंद के यहां राजसूय यज्ञ करने की बात निश्चित हो जाने पर राजद्वार पर धौंसा[१०८]

उत्सव वाद्य

बजने लगा और तैयारियां होने लगीं। उत्सवों में, मृदु मृदंग-ध्वनि[१०९] और उपंग-स्वर के बिना समारोह अधूरा ही है। ईशेन्द्र (महेश) शृंग[११०]

देवी-देवता-वाद्य

और सरस्वती वीणा[१११]पाणि हैं। वीणा[११२] अथवा वंशी [११२] के स्वर से मृग और नागिने मुग्ध हो जाती हैं।[११२] गजनी में मुस्लिमों की धारणा है कि नट नर्तक, और पाखंडी की भांति डमरू[११३] पर भी विश्वास न करे क्योंकि यह ध्वनि तो बहुत करता है, किन्तु अंदर से खोखला होता है।[११३]

---

(१०६) सत सहस्त्र बज्जन बहुत बहुल बंस विधि नंद।
सत सहस्त्र संष ध्धुनि मुदित जांम जयचंद। ५:११:११२

(१०७) धधु निशान सुरितान दरवज्जि निसानं निसानं। १२:१८:१

(१०८) धुम्मिया बार नीसान तांम। २:३:५६

(१०९) मृदु मृदंग धुनि संचरिय अलि कलाप सुध बिंदु।
तार त्रिगांम उपंग सुर असर पंग नरिंदु। ५:३३:११२
= ५:३८:१

(११०) सुरे सिंग नद। १:३:७

(१११) बीना पानि। १:२:३
= सोभंति बाहु सुंदरं। सुराग राग सुंदरं। ३:१७:३१६
= बैनिय रहौ बजी मिनी नागनी। ५:७:३

(११२) दे० कोटि० सं० १११ और
जाहि बंस बिस्तार बहु रंग रंगा।
जिने मोहि करि सपिथ लग्गे कुरंगा। ७:६:४३, ४५

(११३) (तातार खां-कथन शाह शहाबुद्दीन से)
नट नाटक हमो डमरू नहि बुध्धिभाय सुरतान। १२:२०:२

और भेरी[९९] का नया ही रंग है । इनका बजाना ऐसा लगता है मानों बिल्कुल इन्द्र के केलि-अखाड़े की मण्डली में नृत्य हो ।[९९] नरसिंघे[१००] और साउभ इस प्रकार बजते हैं जैसे गगन में भेरी बजती हो ।[१००] भांभ[१०१] और भावभ[१०१] कड़े हाथो से बजाए जाते हैं ।[१०१] घन-घंट[१०२] पर हुए आघात का स्वर घेर कर उद्भासित होता है ।[१०२] युद्धारम्भ में सावधानी के लिए निसान[१०३] के बजने की परम्परा लक्षित[१०३] है । जयचन्द के ताजी घोड़े के मुख के दोनों ओर बाग ऐसा लगता था मानो आउभ[१०४] (ढोल के जाति के एक वाद्य) पर दोनों हाथों से ताल बजाए जा रहे हों ।[१०४]

विलासिता के बाजे

हर्म्य में विलासी जीवन को और मधुर बनाने के लिए सारियों में वीणा[१०५] में प्रवीण दस दस दासियों की व्याख्या रहती

---

(९६) बजहि बंस बिसतार बहु रंग रंगा । ७:६:४३

(९७) वीर गुंढीर सा सोम मृंगा । नच्च हंस सीसं धरो जाम गंगा ।
७:६:४५+४६

(९८) सिंधु सहनाइ श्रवने उतंगा ।
सुने अष्ठरिन अष्ठ मज्झ सुभंगा । ७:६:४७+४८

(९९) नफेरि नवरंग सारंग भेरी, मनउ नृत्य नव आरंभ केरी ।
७:६:४९+५०

(१००) सिंधु सावभुभान गैन भेरी । ७:६:५१

(१०१) भाभे भावभुभ हथ्थ करी । ७:६:५२

(१०२) उठ्ठरहि घाउ घनघंट घेरी । ७:६:५३

(१०३) सुनि सुबनन बहुवान कउ भयउ निसानहि घाउ ।
जानु भभूवत रवि अस्तमन चंपक अभूपन घाउ । ७:३:११२

(१०४) वाजिनं बग्ग अठ्ठउ वि तारा ।
मनउ आवझउ हथ्थ वज्जंति तारा । ६:५:५१६

(१०५) तहं तहं बजिय सुवीन प्रवीन ति दासि दस । ६:६:४

उपसंहार

सैन्य-क्रीड़ा में सर साधना, हदफ (लक्ष्य भेद), साहित्यिक क्रीड़ा में कविता-पाठ, जीव-जन्तु द्वारा मनोरंजन में मृग-वत्स और मत्स्य चराना, सामान्य प्रचलित क्रीड़ा-विनोद में जुआ, वेश्यागमन, नृत्य, सार (रंगशाला), नाटक, पतंग और फिरकी आदि का वर्णन हुआ है।[११४] उत्सव-प्रधान देश में कोई भी त्योहार व उत्सव नहीं मनाया गया है। जयचंद द्वारा एक नृत्य समारोह का आयोजन बहुत उच्चकोटि का हुआ है। धौंसा, मृदंग और उपंग उत्सव वाद्य के रूप में उल्लिखित हैं। वीणा,[११५] बंसी,[११६] और शंख[११६] विलासिता तथा समय सूचक वाद्य हैं।

---

(११४) दे० टि० सं० ३: ब२:४१-५४

(११५) ,, ३: ब२:१०५

(११६) ,, ३: ब२:१०६

(३) ब—नगर, प्रासाद एवं गार्हस्थ्योपयोगी उपकरण

(६८ शब्द १८६ पर्याय सहित नगर, प्रासाद आदि के संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं)

अनुच्छेद	विषय
१—	कन्नौज नगर का वर्णन
२—	गजनी
३—	वीथी, बस्ती
४—	उपसंहार
५—	गृह
६—	राजद्वार, सभा, धवलगृह, हर्म्य
७—	उपसंहार
८—	गार्हस्थ्योपयोगी उपकरण—शयनासन
९—	दीप, दर्पण, आसन, कील, तराजू, संदूक, छाता, भूर्जपत्र, कागज, चंदन, सम्बल, ताम्बूल, मधु, घातक बूटिया, कलश, जल, अग्नि, अलंकार, दूध, गाय, बैल, दुग्धिका, बकरा, धूप, सर, बाग
१०—	उपसंहार
११—से — १३	समस्त अध्याय का उपसंहार:— (११) खाई, परकोटा, स्कन्धवार, राजसभा (१२) धवलगृह

कन्नौज नगर का वर्णन

~~नगर, प्रासाद एवं मार्गस्थ्योपयोगी उपकरण~~

नगर[1] को पट्टन[2] (महानगर) द्रुंग[3] (बड़ा नगर), पुर[4] मापन और कोट[5] भी अभेद[6] रूप में कहा है। परकोट[6क] के अतिरिक्त नगर-निर्माण अथवा मापन आदि पर प्रकाश न पड़कर ~~इसके~~ नगर के राजनैतिक जय-पराजय तथा रहन-सहन का उल्लेख इस काव्य में मिलता है। कन्नौज के राजमहल के कलश[8] का कंचन सूर्य वर्ण का होकर अपने रत्नों[8] को रवि-किरणों की भांति चमकाता है। कहीं, कहीं पर ऐरावतेन्द्र के समान गजेन्द्र[9] खड़े हैं। वायु में भागते हुए कुरंग के समान अच्छे घोड़ों[10] को कहीं राजागण घुमा रहे हैं।[10] कहीं पर मल्ल[11] भुजदण्डों से सरो साध रहे हैं।[11] कहीं पर पदातिक बाने बांधते हुए दिखाई पड़ रहे हैं।[12] कहीं पर विप्रगण उठकर प्रात:काल ही जल

---

(१) नयर ७:७:१६, ४:१३:१, ६:१:२

(२) ४:२३:२४, ११:१०:२३

(३) द्रुंग ६:१४:१, दंग ११:१२।१२

(४) पुरि ५:२५:२

(५) कोट २:३:१८

(६) कन्नौज और दिल्ली को नगर और पट्टन दोनों कहा है। देखो०टि०सं० १ और २

(६क) कोट ७:१६:४, परिकोट ७:२६:१

(७) इस सम्बन्ध में राजनैतिक-स्थिति के अध्याय में उल्लेख होगा।

(८) कंचन कुलिसं कलिन रतन विकिरन प्रकार।
 बह कलस्य कलपंच प्रिब धुनि धुनि कर्मारिकार ।४:६:१४२

(९) कहीं कंभेनाथ ठाढ़े गयंदा। सुरं दिग्विजयी रूप ऐरावत इंदा ।। ४:१०:११२

(१०) कहीं फेरवे भूप बाहे तुरंगा। मनुं दिग्विजयत बाय लग्गे तुरंगा ।। ४:१०:११४

पड़े हैं ।[१२] कहीं पर विप्रगण उठकर प्रात:काल ही चल पड़े हैं, मानो देवगण सेवा से आकृष्ट होकर (स्वर्ग का) मार्ग भूल रहे हो ।[१३] कहीं पर राजागण यज्ञ-यजन कर रहे हों ।[१४] कहीं पर देव-देव (महादेव) (के मंदिरमें) नृत्य सजे हैं ।[१५] कहीं पर तपस्वी[१६] तप के ध्यान में लगे हैं, जिन्हें देखते ही रूप का संसार भाग जाता है[१६] और कहीं पर वे पृथ्वी[१७] (भूमि) का दान प्रमाणित कर रहे हैं [१७] कन्नौज में गंगा तट पर इतने चरित्र दिखाई पड़ रहे हैं, जिन्हें स्वयं देखने पर शरीर के पाप नष्ट हो जाते हैं ।[१८] गंगा के दोनों तटों पर दो कनक-शंभु हैं ।[१९] कन्नौज की क्यारियाँ[२०] पुरंदर को मुग्ध करती हैं, और इस कारण इन्द्र यहीं रहता है ।[२०] कंचन वस्त्र तथा शुद्ध तन की पानी भरने वाली दासियां मानो सिद्धों का भी मन हरती हैं, कंचन-कलशों[२१]

---

(११) कहों माल भूमदंड ते सरीत साथक । ४:१०:५

(१२) कहों पिच्छि पायवक बानैत बांधक । ४:१०:६

(१३) कहों विप्रते उठ्ठि ते प्रात चल्ले । मनु देवता सेवता मर्ग भुल्ले ।
४:१०:७।८

(१४) कहों यग्य याज्यंति ते राज राजा । ४:१०:९

(१५) कहों देवदेवा त नृत्यान साजा । ४:१०:१०

(१६) कहों तापसा तप्प ते ध्यानं लग्गे ।
जिने देषितं रूप संसार भग्गे ।। ४:१०:११। १२

(१७) कहों षोडसा राय अप्पंति दानं ।
कहों हेम सामान प्रथ्वी प्रमानं ।। ४:१०:१३।१४

(१८) इतने चरित्र ते गंग तीरे । सोयं देषते पाप नट्ठे सरीरे ।
४:१०:१५।१६

(१९) उभय कनक शिवं । ४:१२:१

(२०) मोहय वष्पिन पुरंदर इंद मु रहि रज्ज । ४:१२:२

(२१) चष कंचन तनु शुध्ध च सिध्धनु मनु हरइ ।
कंचन कलस भकौरि ति गंगहि जल भरइ । ४:१२:३।४

को भकोर कर गंगा का जल भरती हैं। नगर के नागर नरों की गृहणियां[२२] आवासों में रहती हैं। वे दिनकर के लिए भी दुर्लभ दर्शन[२३]वाली हैं, अपने भर्तार का मंडन करने वाली पतिव्रता[२३] हैं, वे विधाता के द्वारा सुख के लिए[२३] निर्मित हैं, और वे कर्तार की रची हुई दुख की कारनी[२३] हैं। उनके मस्तक पर के तिलक के नग[२४] को देख कर जगत की समस्त ज्योति जैसे जाग पड़ी हो।[२४] उनके वस्त्र[२५] लाल, नीले और पीले हैं, और वे ऐसे लगते हैं मानो पावस में सुरपति (इन्द्र) ने धनुष धारण किया हो।[२५] गंगा की ओर से नगर में प्रवेश करते समय संदह देवी[२६] का मंदिर है। इसका मंडप[२७] सोने के गुह का है। उसके छत्र[२८] में लगे मोतियों का अंत नहीं दिखाई पड़ता है।[२८] प्रात: काल नियमपूर्वक मनुष्य उसकी पूजा करते हैं।[२९] नगर में लंगरी[३०] (वस्त्र धारी साधु) और करोड़ों नंगे साधु[३०] हैं। कहीं रूपए के जुए में चुप्पे (चुपचाप खेलने वाले) जुआड़ी[३१] हैं, तो कहीं दूसरे ऐसी भी हैं जो

---

(२२) नगर ति नागर नर धरणि रहहिं आवासि आवासि।
४:१७:२

(२३) दंसन दिणि यर दुल्लही निय मंडन भरतार।
सुह कारणि विहि निम्मयी दु दुह कर्तार करतार।
४:१७:२

(२४) तिलक नग निरखि जग जोति जग्गी। ४:२०:५

(२५) अंबर रत्त नीलं व पीतं।
मनउ पावसं धनुष सुरपति कीतं। ४:२०:३७।३८

(२६) दिक्खिय बाह संदेह सोह। ४:२२:१

(२७) मंडप बाह सोवन्न गेह। ४:२२:३

(२८) मुत्तिआ छत्ति दीसअ न छेहं। ४:२२:४

(२९) प्राति पूजंति नर नेम अही। ४:२२:६

(३०) लंगरी जूथ जिनके प्रसंगा। दिक्खिये कोटि कोटिन्न नंगा।
४:२३:१।२

(३१) किते रूप के जूप चुप्पे जुआरी। ४:२३:३
दे० पद्मावत मूल सं०पृ०४५

जो सौगंधपूर्वक कह रहे हैं कि अन्य की पारी नहीं है, (उनकी है)[32] जहां एक और साधु[33] (सज्जन) संभाल कर खेलते दिखाई पड़ते हैं। [33] वहां विपक्ष में दानवों का[34] सरदार भी दिखाई पड़ता है। [34] कहीं छैलों [35] के समूह वेश्याओं में अनुरक्त है, वहां द्रव्य के नाश होते ही उनकी गति-हीन हो जाती है।[35] कहीं सुरूपा दासियों[36] की आशा में लोग टकटकी लगाए हुए ऐसे लगते हैं माने बगुले मछलियों को ताक रहे हैं।[36] नायिकाओं[37] को देख कर लोगों के नेत्र चंचल हो उठते हैं, और सुरलोक में समस्त देवता भी उनको देखकर सुधि-बुधि-भूल जाते हैं।[37] उनसे मिलने पर लोग कहते हैं कि उनके विरह में वे कई रातों से जागते रहे हैं, और उनसे ऐसा मधुर संभाषण करते हैं मानों कोकिल संगीत भाषण करने लगा हो।[37] नायिकाओं की शय्या[38] संवारने में इतनी अबीर[38] उड़ती है, मानों भूपाल के द्वार पर फाग हो रहा हो।[38] उनकी कुसुंभी[39] चीर की शोभा के हैं और उन चीरों में लिपटा हुआ उनका शरीर[40] काम-कदली-गर्भ[40]

---

(३२) उच्चरै सौहं आन न पारी। ४:२३:४

(३३) जिते साध संभारि खेलंत लच्छे। ४:२३:५

(३४) तिते विप्पिचर भूप दानव विपच्छे। ४:२३:६

(३५) जिते छल संघ वेसानि रत्ते। ४:२३:७

तिते दव्व च्छीनत हीनेति गत्त। ४:२३:८

देखिए पद्मावत मूल सं० पृ० ४५

(३६) जिते दासि के आसि लग्गे सरूपा।

मनउ मीन चाहंति बग मघ्य कूपा। ४:२३:९+१०

(३७) नायिका देखि नर नयन हुल्ले।

रहे सुरलोक सब दे भुल्ले।

उच्चरह वयन निसि जग्गे।

मनउ कोकिला भाष संगीत लग्गे। ४:२३:११ से १४ तक

(३८) उड़ अबीर सेज्या सवारह।

मनउ होय फागुंन भूपाल दुवारह।। ४:२३:१५+१६

के समान है। वे छत्तीस राग[41] कंठ में धारण करती हैं, वीणा[42] बजाने में कुशल हैं। इस पट्टन (महानगर कन्नौज) के घर घर संवारे दीप पड़ते हैं।[43] कन्नौज का हाट [44] जनाकीर्ण होने के कारण अगम्य[44] है। रत्न, मुक्ता[44] और मणियों [44] को लोग धारण करते हैं।[44] स्वर्ण,[44] रेशमी वस्त्र, मूल्यवान[44] पदार्थ और धातु[44] को तुच्छ जन भी[44] संवार कर धारण किए हुए हैं। चांडाल[45] जब तांबूल [45] की पीक फेंकता है तो उगाल के उलीचने से कीचड़ हो जाता है।[45] मालती पुष्प,[46] दुर्वादल[46]

----

(३९) कुसुम सा चीर सा कीर सोभा । ४:२३:१७

(४०) मध्य ता काम कदली सु गोभा । ४:२३:१८

(४१) राग छत्तीस कंठे करंती । ४:२३: १९

(४२) बीन बाजं ति हथ्ये धरंती

दिष्षि अभिमान मृगी छुट्टक्की ।। ४:२३:२०+२१

इसके पूर्ववर्ती गुप्तकाल में संगीत और नृत्य का बड़ा प्रचार था। संगीत में कुशलता तो वैशिकीशिक्षा का एक विशेष अंग माना जाता था। अन्त:पुर की स्त्रियां भी गाने, बजाने और नाचने की आचार्यों द्वारा शिक्षा पाती थीं। चतुर्भाणी : संपा० मोतीचन्द्र, पृ० ४४(भूमिका) कालिदास के मालविकाग्निमित्र (अं०१-३) से भी तात्कालिक नृत्य और संगीत पर काफी प्रकाश पड़ता है।

(४३) पहले ग्रेह दीसे संवारे। ४:२३:२४

(४४) अगम ति हट पट्टन नयर रतन मोति मनि धार।

हाटक पट धनु धातु सचि तुछ तुछ दष्षियत संवार ।।

४:२४:१+२, ४:२५:१ भी

मध्यकालीन नगरों के वर्णन में ८४ हाटों की गिनती की जाती थी, जिनकी सूची पृथ्वीचन्द्र चरित्र (वि०सं०१४७८, मुनि जिन विजय जी द्वारा सम्पादित प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ, पृथ्वीचन्द्र चरित्र पृ० १२९) दी हुई है।" पदुमा०भू०सं०)

तथा चंपा के स्पर्श से जो शीतल समीर बहता है उससे मानो हेमंत की कंपकंपी होती है।[46] बेला, सेवंती[47] और जाही[47] मालिकाओं में गुथे जा रहे हैं,[47] जिन्हे लोग गूंथने वाली दासियों को द्रव्य देकर अपने गले में डलवा रहे हैं।[47] चतुर जुलाहे[48] जो साड़ियां बेच रहे हैं वे ऐसी झीनी[48] हैं कि दिन में भी छूने पर उनके ताने-बाने सूझते नहीं हैं।[48] नारियां उन जुलाहों से लेकर कंचुकी[49] और पटोर देख रहे हैं। और उन्हें अधिक देखने पर भी संतोष नहीं हो पाता है।[49] और उन्हें अधिक देखने पर भी संतोष नहीं होता है।[49] नारियों के उजाड़ आभरणों में मोती बड़ी सुंदरता से मढ़े हुए हैं,[50] और रत्नादि के जो कोर दिए गए हैं वह अवर्णनीय हैं।[50] तनसुख, तान, कतान और पाम वस्त्रों को लेकर स्त्रियां पूर्ण काम बनी हुई हैं।[51] स्वर्णकार खींच खींच कर सोने तार निकाल रहे हैं।[52] तोले जाने वाले आभरणादि तराजुओं में जोख कर जब तोले जाते हैं तब ऐसा

---

(४५) जु नच्चइ मोर तंबोर सुढार। उलिच्चत कीच त छोह उगार॥ ४:२५:३।४

(४६) सुमालइ पुहुप हुवे दल चंपु।
ति सीत समीर मनउ हिम कंपु। ४:२५:५।६

(४७) बेलु स सेवंतीय गुठिहि जाय।
जु दे देव दासीय लेहि ढहाय। ४:२५:७।८

(४८) सुचित्त जुलाह जु बिक्कहि सार।
छुवंत न वासर सुझ्झइ तार॥ ४:२५:९।१०

(४९) दिक्खहि नारि ब कुंच पटोर।
मनड धुव दक्खिन लग्गइ थोर॥ ४:२५:११।१२

(५०) सुचि जराव मढ़े बहुभाय। जु कड़हि कोर कहे सु न जाय।
४:२५:१३।१४

(५१) हैं तनसुख्ख रहे कनकाय। जिन देखि सुगंध रही लपटाय॥
तहिल्लहि तान कतान ति पाम। बनी त्रिय दिक्खिय
पूर्ण काम। ४:२५:१५ से १८ तक

लगता है मानों घन में तड़िते का ओप हुआ है।[५३] नग जड़े हुए सुंदर आभूषण रेशम के लच्छों में गुहे जा रहे हैं।[५४] नगर में दिशा दिशा में भारी हय-गज पूरित हो रहे हैं।[५६]

गजनी

म्लेच्छ नामधारी शहाबुद्दीन का नगर गजनी को देखिए। गजनी में हय-गजादि आकाश की जैसी शुभ्र गति के हैं।[५७]

---

(५२) कसिक्कसि हेम ति बद्धढ तार। ४:२५:२१

(५३) तुलंत जु तुज्ज तरातुन्ह ओष।
मनउ घन मंझिभ तड़ितह ओप।। ४:२५:२७-२८

(५४) जरे जिमं नग्ग सुरंग सुघाट।
सुंदरि सोम कुसावति पाट।। ४:२५:२६-३०

(५५) ट अंगुलि नारि निरष्षहि हीर। मनउ फल बिंबहि चंपत कीर।।
नषन्नष चाह ति मुक्तिय कंत। मनउ भष छंडि रहउ गहि दंत।।
४:२५:३१ से ३४ तक

(५६) दिसिद्दिसि पूरि हयग्गय भार। ४:२५:३५

कन्नौज नगर की समता में एक पूर्ववर्ती प्रसिद्ध नगर का संक्षिप्त वर्णन द्रष्टव्य है :—

गुप्तकालीन सार्वभौम नगर (उज्जयिनी) जो जम्बू द्वीप का तिलक समझा जाता था, का वर्णन — नगर संगीत, गहनों की झंकार, क्रीड़ा-पक्षियों के कलरव, स्वाध्याय की ध्वनि, संगीत, धनुष की टंकार, कमाई जाने के शोर, कक्षाओं के भीतर अभिनेत्रियों की आवाज से भरा था। सार्वभौम नगर का बाजार माल के खरीदने और बेचने वालों से भरा था जिससे वहां शोर मच रहा था। दुकानों में फूल बिक रहे थे, पानागारों में लोग प्याले चढ़ा रहे थे। राज-वीथी में पणिकापण में वेश्याएं रहती थीं। नगर इतना समृद्ध था

नट-शालाओं में बहुत से नट तथा नर्तक हैं ।[५७]

" वीथी " [५८] शब्द का भी प्रयोग हुआ है , किन्तु टीकाकार ने इसका अर्थ पंक्ति " बताया है । हेमन्त वर्णन में उल्लिखित है कि वस्तियों[५६] में शीत व्याप्त हो रही है ।[५६]

(५६ का शेष) कि भारत वर्ष में चारों ओर से और बाहर से भी वेश्याएं आकर बस गयी थीं । इसी उज्जैयिनी का में बाण की कादम्बरी के अनुसार महाकाल का मंदिर था । वहां की दुकानों में शंख, सीपी, मोती, मूंगा, पन्ना और ध्वजायें एवं सोने का चूर्ण बिकते थे । नागरिकों के मंदिर सुवर्ण कलशों और ध्वजाओं से सजे थे । बागों में सिंचाई का प्रबन्ध था । घरों में भी बगीचे होते थे । धारागृहों से युक्त मकानों में मोर नाचते थे वहां के नागरिकों ने सभा, अवसथ (धर्मशाला) प्रपा और मंदिर बनवा रक्खे थे । अच्छे कपड़े पहनने वाले थे । उन्होंने आख्यायिकाएं, पुराण, रामायण, बृहत्कथा और वेद पढ़ रक्खे थे । वे धूत विद्या में कुशल, स्त्रियों के चहेते और नाट्य विद्या में पारंगत थे । शहर मोहरों, मंदिरों, जुआखानों और कामुकों से भरा था । वर्णरत्नाकर - संपा० मोतीचन्द्र, पृ० २६ से ३१ तक (भूमिका) ।

भारतीय साहित्य में नगर वर्णन की यह प्रथा ईसा की पहली दूसरी सदी में चल चुकी थी । ऊपर का ग्रन्थ पृ० ३२ (भूमिका)

(५७) हय-गय-सम्पुत्ति-सुम्भ-गति-नट-नाटक बहु सार ।
  इह चरित दीपत नयन नयड चंद दरबारि ।। १२:६:१-२

(५८) (जयचन्द की सेना) वीथ कलापित लब्ध वद । ७:५:२
  (वीथियों में पंक्ति लगा थी)

(५६) शीतं वसेत । ६:१३:१

उपसंहार

नगर के संदर्भ में केवल कन्नौज नगर के रहन सहन का विस्तृत वर्णन है । यह जनकीर्ण[५६क] और हय-गजादि[५६ख] से पूरित है । इसके हाट में सुंदरियों के हाव-भाव[५६ग] रूप-सौन्दर्य [५६घ] और उनसे सम्बन्धित बहुमूल्य आभरण[५६ङ] एवं वस्त्रों [५६च] का विविध उल्लेख हुआ है । इसके अतिरिक्त खुले आम जुआड़ी[५६छ] तथा वेश्यागामी[५६ज], ठेला,[५६झ] मल्ल[५६ञ] पदातिक,[५६ट] विप्रगण,[५६ठ] लंगरी,[५६ड] तपस्वी,[५६ढ] करोड़ों नंगे साधु[५६ण] घोड़े फेरते हुए राजागण[५६त] आदि दिखाए गए हैं । रत्न, मुक्ता, मणि, स्वर्ण, रेशमी वस्त्र, मूल्यवान् पदार्थ तथा धातु जन सामान्य भी संवार कर पहने हैं । [५६थ] ताम्बूल खाने की प्रथा बहु-प्रचलित है । [५६द] पुष्प वाटिका एवं बाग

(५६क) देखिए अ० टि० सं० ४४
(५६ख) ,, ,, ६, १०, ५६
(५६ग) ,, ,, २१, ३७
(५६घ) ,, ,, २१, ३७
(५६ङ) ,, ,, २४,५०,५२,५३,५४
(५६च) ,, ,, २५,३६,४८,४६,५१
(५६छ) ,, ,, ३१ से ३४
(५६ज) ,, ,, ३५
(५६झ) ,, ,, ३५
(५६ञ) ,, ,, ११
(५६ट) ,, ,, १२
(५६ठ) ,, ,, १३,१७
(५६ड) ,, ,, ३०
(५६ढ) ,, ,, १६
(५६ण) ,, ,, ३०
(५६त) ,, ,, १४
(५६थ) ,, ,, ४४
(५६द) ,, ,, ४५

के मैदान कीभी व्यवस्था है।[५६ध] सुगंधित फूलों की माला बाजार से खरीद कर लोग पहनते हैं।[५६न] कहीं यज्ञ-यजन, दान तथा शिव के मंदिर में नृत्य भी हो रहा है।[५६प] नगर की अथाइयां स्वर्ग से भी अनुपम हैं।[५६फ]

(५६ध) देखिए अ० टि० सं० ५६

(५६न) ,, ,, ५७

(५६प) ,, ,, १५, १७

(५६फ) ,, ,, २०

गृह

गृह[६०] व्यक्ति के विशेष के पहिचान का साधन है। चंद ने पृथ्वीराज से बताया कि दूर से जो सोने का कलश चमक रहा है, वही जयचंद का घर है।[६१] पृथ्वीराज के भ्रम को दूर करने के लिए दासी ने कहा कि मैं अप्सरा नहीं, पंगुराज के घर की दासी हूं।[६२] उच्चकुलीन परिवार में अतिथि-शाला[६३] का होना आवश्यक है। जयचंद ने कुंकुम वर्ण के कलश वाले सुवासित आवास (प्रासाद) में चंद को स्थान दिया।[६३] घर बंदी खाने का भी काम करता है।[६४] क्रोधित होकर जयचंद ने गंगा तट पर एक ऊंचा आवास रचि पचि कर संयोगिता को रक्खा कि देखने के लिए आने पर उसके प्रियतम पृथ्वीराज को पकड़ लूंगा और उसकी आशा को सदा के लिए मिटा दूंगा।[६४] ऐसा विचार है कि जब घर[६५] फाड़ खाने लगता है तो मानो भोग का समय आ गया है।[६५] घर घर में सोनार का सोना काटना, सम्पन्नता का द्योतक है।[६६]

---

(६०) अयन १०:११:१७, आवास ५:२६:२, आवास २:२७:१, ग्रहि २:३:५८, ग्रहे ११:१२:१६ , ग्रिह ४:६:२, ग्रेह१:२८:२, ६:१५:६, घरि १२:१:१, मंदिर २:२४:१, ८:२८:५, धाम २:३:६१, सौध (मंदिर) ४:२२:१

(६१) इह कलस्स जयचंद ग्रिह। ४:६:२

(६२) रुड अच्छरी नरिंदु नाहि दासि गेह राय पंगुरे। ६:१५:६

(६३) हक्कारिउ रब्बत नृपति कुंकुम कलस सुवास।
पच्छिम दिसि जयचंद पुरि तिहि रब्बउ जाय अवास ।।
५:२६:१+२

(६४) तब भ्रुकित राव गंगत्तट त रचि पचि उच्च आवास।
चाहि गच्छ चहुआन तहु सु मिट्टह आसा आस ।। २:२७:१+२

(६५) खाने मंदिर दार चीर चिहुरा खाडौंत चिंतान्वता।
होयं तोय संजोगि भोग समया प्राप्ते यवांतोत्सवे। २:२४:१+२

(६६) (कन्नौज में) कट्टहि त हेम ग्रहि ग्रहि सोनार। २:३:५८

उत्सव के प्रारंभिक तैयारी में घर[६७] को सफेदी से पोतते हैं।[६७] पृथ्वीराज को पकड़ कर रण क्षेत्र से शहाबुद्दीन का घर[६८] लौट जाना वीरता है,[६८] किंतु म्लेच्छों का रणक्षेत्र से घर[६९] लौट को भागना कायरता है। इसीलिए विंझ घर[७०] की दिशा में लौट कर युद्ध-स्थल से नहीं चला आया, वहीं अड़ा रहा और मरना जान कर सेना (युद्ध) में जूझा।[७०] पृथ्वीराज को क्रोध में देखकर दरबार से लोगों का घर चला जाना किसी दुर्घटना को बचाने की बुद्धिमानी है।[७१] है। मदन का कथन[७२](घर) हृदय, ऐसा किसी का भी घर-नहीं है।

राजद्वार

ग्राम अथवा नगर के सामान्य गृहों के सम्बन्ध में यह काव्य मौन है। राज-प्रासादों का विविध वर्णन करना भी कवि को अभीष्ट नहीं है। कथा-प्रवाह में केवल-सभा,[७३] धवलागृह[७४] और हर्म्य[७५] का उल्लेख हो गया है। राज-द्वार[७६] पर प्रतिहार[७७] से

---

(६७) (जयचंदके यज्ञारम्भ की तैयारी में) धवलेहु धाम। २:३:६१

(६८) गहि चहुआन नरिंद गयउ गज्जने साहि धरि। १२:१:१

(६९) (रणक्षेत्र) ग्रहे मेछ भग्गे। ११:१२:१६

(७०) वलि गयउ न मंदिर दिसि रह्यउ मरण जाणि झुझुझउ जी।
८:२८:५

(७१)(पृथ्वीराज को क्रोधित अवस्था में देखकर राजदरबारी)
अप्पु अप्पु गए ग्रेह परानहु। ३:२८:२

(७२) हिय कथन मदन ति संचयउ। १०:११:१७

(७३) सभ्य ५:३:४, दरबारि १२:६:२

(७४) ५:२१:२

(७५) ६: पद ४ से ७ तक

(७६) १२:१०:२

मिलने के ठीक पहले जो रुय[७८]-गजादि[७९] और बाजार[८०] का वर्णन हुआ बाह्य सन्निवेश[८१] है। राज प्रासाद के मध्यभाग, राजकुल[८२] के बीचो बीच आस्थान[८३](राज सभा, दरबारे आम) है। जयचंद का आस्थान[८३क] पुरन्दर को मुग्ध करता है। इसके आगे अभ्यंतर भाग में धवलगृह[८४] है।

सभा

धवलगृह

---

(७८) मन्दुरा (घोड़ों और ऊंटों के लिए स्थान) दे० हर्ष०सां० अध्ययन पृ० २०७

(७९) गजशाला,दे० हर्ष ० सां० अध्ययन,पृ० २०७

(८०) दे० अ०टि०सं०, ३० से ५६

(८१) " बाह्य सन्निवेश में सबसे पहले एक ओर गजशाला (हाथी-खाना) और दूसरी ओर मन्दुरा, अर्थात् घोड़ों और ऊंटों के लिए स्थान होता था। इसके बाद बाहर के लम्बे चौड़े मैदान में राजकाज से राजधानी में आने वाले राजाओं और विशिष्ट व्यक्तियों के शिविर लगे थे। इस प्रकार, राजकुल के सामने एक पूरा शहर ही छावनी के रूप में बस गया था। इसी में हाट और बाजार भी था। विपणि-वर्त्म या बाजार की मुख्य सड़क स्कन्धावार का ही अंग मानी जाती थी। उनमें अनेक देशों के राजा, युद्ध में परास्त हुए शत्रु, महा सामंत देशान्तरों के दूत मंडल, समुद्रपार के देशों के निवासी, जिन्हें म्लेच्छ जाति का कहा गया है, जनता के विशिष्ट व्यक्ति और सम्राट से मिलने वाले धार्मिक आचार्य एवं साधु-सन्यासियों के अलग अलग शिविर थे।" हर्ष सां० अध्य०, पृ० २०७

(८२) देखिए हर्ष०सां० अध्ययन, पृ० २०८ से २११ तक

(८३) बाहुब, ४:१३:२, सप्त ५:३:४, दरबारि १२:६:२ , दरबार शब्द का प्रयोग विद्यापति ने भी किया है। पृथ्वीचन्द्र चरित (१४२१) में तात्कालीन भाषा में इसे अत्थािर(= सं० अर्थापार,जहाँ सब पहुंच सके) कहा गया है। दे०हर्ष०सां०अध्य० पृ०२०९

(८४) " धवलगृह (हिन्दी धौराहर या धरहरा) जिस ड्योढ़ी से

राज सभा में बैठे हुए राजा जयचंद की आज्ञा हुई थी कि कवि चंद के स्वागतार्थ पान देने के लिए कुमारियां धवलगृह[८५] से चले। इसी धवलगृह में पृथ्वीराज ने संयोगिता के साथ विलास करने के लिए सुखदायक हर्म्य[८६] बनवाया है। संयोगिता के लिए, क्रुद्ध होकर उसके पिता पंगुराज द्वारा रच पच कर बनवाया गया गंगातट का उच्च[८७]

आरंभ होता था, उसका नाम बाण ने गृहावग्रहणी अर्थात् (धवल) गृह में रोक थाम की जगह कहा है। इस नाम का कारण यह था कि यहां से प्रतिहारी का पहरा, रोक टोक और प्रबन्ध की अत्यधिक कड़ाई आरंभ होती थी। यहां पर नियुक्त प्रतीहारी अधिक अनुभवी और विश्वासपात्र होते थे। रामायण में इसे प्रविविक्त कक्ष्या (अयोध्या-काण्ड, १६।४७) कहा गया है। जहां राम और सीता युवराज अवस्था में रहते थे और जहां केवल विशेष रूप से अनुज्ञात व्यक्ति ही प्रवेश पाते थे। इस भाग में नियुक्त प्रतिहारी को रामायण में वृद्ध वेत्रपाणि स्त्र्यध्यक्ष कहा गया है।" हर्ष सा०अध्य०,पृ० २११

(८५) धवलगृह ते मनसरइ भट्टिहि अप्पन पान। ५:२१:२, दे०पदुमा०पू०खं० पृ० ३३५

(८६) सुभ हरम्य मंडिग न्रिपति। ६:४:१.

" कविघोष ने यह संकेत दिया है कि महल के हर्म्यपृष्ठ या ऊपरी तल्ले में गवाक्ष होते थे।" "गुप्तकालीन" पादताडितकम्" नामक ग्रन्थ (पांचवीं शती का मध्यभाग) में वार वनिताओं के श्रेष्ठ भवनों का वर्णन करते हुए उनकी कक्षाओं के विभाग को खुल कर फैला हुआ कहा है। उन घरों के वर्णन-प्रसंग में हर्म्य (ऊपरी तल के कमरे) शब्द का प्रयोग है।"हर्ष०सा०अध्य०पृ० २१५.

(८७) तब क्रुध्धित राइ गंगह तट त रचिपचि उच्च आवास। २:२७:१

" अविवाहित राजकुमारियों को वयस्क होने पर धवल गृह में अलग निवास स्थान दिया जाता था। राजकुमारों के लिए भी ऐसी ही प्रथा थी। रामचन्द्र,चन्द्रापीड़ और हर्ष के लिए पृथक अन्तःपुर थे।" पदुमा० मूल सं०,व्याख्या वा०श० अग्र०, पृ०६४

आवास के "उच्च" विशेषण का तात्पर्य "धवलगृह दो या

हर्म्य

आवास भी संभवत: इसी धवलगृह में होगा ।[८७] पृथ्वीराज के हर्म्य में मोर तथा मराल का नृत्य तथा मत्त ध्वनि से शब्द करना, सारंग और सारिका का क्रीड़ा करना तथा पक्षी गणों का आनन्दपूर्वक चहकना, यह प्रकट करता है कि, परम्परानुसार धवलगृह का मुख्य भाग गृहोद्यान[८८] भी वहां था ।[८८] सघन नारियों का नव नूपुरों का[८९] रव, युवती-यूथ द्वारा विविध वाद्यों का वादन[८९] तथा श्रेष्ठ प्राकृत अथवा संस्कृत में सम्भाषण[८९] इस हर्म्य के संगीत भवन[९०] होने का द्योतक है । हर्म्य में अनेक सारियां[९१] (घर के कमरे) थीं और उन सारियों में वीणा में प्रवीण दस-दस

उससे अधिक तल का होता था । सम्राट और अन्त:पुर की रानियां ऊपर की तल में निवास करती थीं," भी हो सकता है । दे० हर्ष० सां० अध्य० पृ० २११.

(८८) गृहोद्यान, धवलगृह के आवश्यक अंग होने के लिए देख हर्ष०सा० अध्य०पृ०२१०

" कुमार पाल चरित में धवलगृह के साथ सटे हुए गृहोद्यान का भी उल्लेख है (२।९१) गृह्योद्यान वाह्यास्थान मराहप से अंदर की ओर विशाल भू भाग में बनाया जाता था । हेमचंद ने राजमहल के उद्यान का विस्तृत रूप खड़ा किया है (द्वयाश्रय काव्य ३।१ से ५।८७ तक)" दे० हर्ष०सा०अध्य०पृ०२१५

: (पृथ्वीराज के हर्म्य में) त मोर मराल निरत्तहि रम्भहि मत्त धुन।
सारंग सारिग रंग पत्तक ति पंखि रषि । ६:५:२७२

(८९) (पृथ्वीराज के हर्म्य में) दादुर सादुर सोर नव नूपुर धन ।
६:६:१

के जून जूथ नि वाद ।

के वर भाष पराक्रति संक्रति वेष हुर । ६:७:११२

(९०) दे० हर्ष०सा०अध्य०पृ० २११ । कादम्बरी(९१) में भी धवलगृह के संगीत- भवन का उल्लेख है ।

(९१) (हर्म्य में) सारक पंच पचीस । ६:६:३

दासियों की अथाइया [६२] थी । हर्म्य के गवाक्षों [६३] के मुखों में अगरु-धूम ऐसा लगता था मानो उन्नमित मेघ हों ।[६३] जयचंद के महल का कंचन कलश[६४] दूर से ही चमकता है । उपमान-रूप में स्तंभ[६४] और कपाट[६५] का भी प्रयोग हुआ है । रणथंभोर अपने स्थिर स्तंभ[६६] के लिए प्रसिद्ध था ।[६६] उत्सवों में गृहों की सफेदी[६७] होती और वंदनवार [६८] बंधते हैं ।

---

(६१) ....

" धवलगृह के भीतर बीच में आंगन होता था और उसके चारों ओर शालाएं या कमरे बने होते थे, इसीलिए उसे चतुश्शाला कहा जाता था । चतुश्शाला का ही पर्याय गुप्तकाल की भाषा में संजवन था । (यहां तक बाहरी व्यक्ति जा सकते थे । इसके आगे भीतर जहां सम्राट और अन्त:पुर की रानियां रहती थीं, जाने का एक दम कड़ा निषेध था — नीचे की टिप्पणी से) ज्ञात होता है कि चतुश्शाला में बने हुए कमरे वस्त्रागार, कोष्ठागार, ग्रन्थागार आदि के लिए एवं अतिथियों के ठहराने के काम में आते थे ।" हर्ष सां० अध्य० , पृ० २१२

(६२) तहं तहं अथिय सुचीन प्रवीन ति दासि वस । ६:६:४

टीका में अथिय [आस्थान= अथाई ।

हर्ष०सां०अध्य० पृ०, २०६ में आस्थान, राजसभा के लिए लिखा गया है ।

(६३) अगर धूम मुख गउख उन्नयउ मेघ जनु । ६:५:१

टिप्पणी के लिए दे० अ०हि०सं०८६

१५ वीं शती के पृथ्वीचन्द्र चरित (१४२१ई०) में महल और उससे सम्बन्धित अंगों में अनेक गवाक्षों का उल्लेख किया है । यह शब्द बाण कालीन परम्परा का है । दे०हर्ष०सां०अध्य०, पृ० २१६

(६४) कंचन कुलिसं कर्क कन रतन वि किरन प्रकार ।

वह कलस जयचंद ग्रिह सुनि सुनि कंभरिवार । ४:६:११२

कीर्तिलता में भी इसका उल्लेख है ।

(कन्नौज की सुंदरियों के शरीर कनक स्तंभ-सा और बाल भुजंग-

पृथ्वीराज के हर्म्य में शयन[९९] के लिए प्रत्येक कमरे में दो-दो पलंग[१००] हैं। उच्चकुलीन व्यक्तियों के सुखपूर्वक सोने[१०१] के लिए कथाकार कथा कहते रहते हैं। हेमंत ऋतु में यौवन के कारण शय्या[१०२] संज्वर कारिणी हो जाती है, फिर भी कामाग्नि शांत करने के लिए वियोगिनी क्षण भर के लिए अपने तन को तलप[१०३] (पलंग) पर ले जाती है।[१०३]) लेकिन महामात्य कयमास ने काम के वशीभूत होकर सुरूपा दासी के साथ शय्या-गत[१०४] होने पर प्राण-दंड

सा है। उनकी झलक) जानु भुजंग सउंड चढ्ढ कंचन थंभ प्रमान।

४:१५:२

(९५) गोरी के कपाट- ओष्ठ बंध गए (मर गया)

बिहु कपाट बधे सघनं। १२:८८:५

(९६) रण थंभ थिर थंभ सीस भविराणि। २:१७:३

(९७) धवलेहु धाम। २:३:६१

(९८) (यज्ञ होना) सुनि सदनि बाँधिय बंदनवार।

२:३:५७

(९९) ५:३२:२

(१००) सालक पंच पचीस प्रजंक त दुन तस। ६:६:३

(१०१) कंचिक बहुब कहयहि कथा सुष्ष सयन प्रथिराज।

५:३२:२

(१०२) सज्ज संज्वर बाम यौवन। ६:१३:२

तलप ६ : २५ : ३, प्रजंक ६ : ६ : ३, सज्ज ६ : १३ : २, सज्या ३ : २ : २, सेज्भा ४ : २३ : १५, सेभि४:२५:१६

(१०३) (संयोगिता कामाग्नि शान्त करने के लिए)

छिनु तनु तलप, कलप मन किन्नउ।

कछ चख वारि भर तनु भीनउ।। ६:२५:३१४

(१०४) मिथोरे कर काम वाम वचना सकेन सेज्या गति:। ३:२:२

शयनासन

पाया है । शय्या को समलंकृत करने वाला अबीर उड़ रहा है मानो भूपाल के द्वार पर फाग का आयोजन हुआ हो ।[१०५] इस काल में शय्या[१०६] के लिए उपयुक्त, सुगंधि , लपटा हुआ तनसुख (एक प्रकार का वस्त्र) अच्छा माना जाता है ।[१०६]

दीप

पृथ्वीराज सुनिद्रा में है और दीपक जल रहा है किन्तु कयमास और दासी के अवैध शय्या-गत के समय दीपक[१०८] पतला किया जाकर जल रहा है । जयचन्द के नृत्य-संगीत-समारोह में दीपों[१०९] के जलने के लिए अगर रस[१०९] डाला गया । कामदेव के दीपक[११०] के समान चंपक और शरीफे की कलियां हैं ।[११०] कन्नौज-सुंदरियों के अचंचल नेत्र मानो निवात दीप-शिखा[१११] हो । पृथ्वीराज के हर्म्य के दीप[११२] आकाश लोक तक प्रदीप्त होते हैं,[११२] यह सामाजिक

दर्पण

वैभव का द्योतक है । हर्म्य के मुकुरों[११३] में चन्द्रमा की मयूखों का अमृत झड़ा करता है, जो दंपति के मन को विशोक किया करता है । दर्पण-भाव[११४] के सदृश नख अच्छे समझे जाते हैं ।[११४] हर्म्य में कवि

आसन

चंद और पृथ्वीराज के राजगुरु के आने पर दासियों ने नमस्कार

---

(१०६) ले तनसुख्ख रहे अपणाइ । जिन देखि सुगंध रही लपटाइ ।
४:२५:१५१६

(१०७) भुप्रत सुचिंद सुनिद्दा ।
दीपक जरइ । ३:५:१२२

(१०८) दीपक अब संकुरि । ३:४:३

(१०९) जलन दीप दिव अगर रस । ५:३४:१

" रुद्र के भक्तों द्वारा गुग्गल जलाने का उल्लेख बाण ने कई बार किया है, यहां तक कि माथे के ऊपर गुग्गल की बत्ती जला कर भक्त अपना माथ और खोपड़ी तक जला डालते थे (१०३, १५३) = दग्ध गुग्गुलव: रौद्रा: ।" दे० हर्ष० सां० अध्य०, पृ०३३

(११०) उच्चरिय

पूर्वक उन्हें आसन दिया।[११५] सरस्वती का आसन [११६] बाल हंस है।[११६]
युवतियों की भौंह वक्र शंकु [११७](कील) के समान अत्यंत सम
वैषम्य रहित) और क्षीण है।[११७] तराजू [११८] आभूषणादि
वस्तु तौलने के काम आता है। हाथियों के हांकने के निमित्त रेशमी
रेशों वाली नालीके तथा बढ़ियां उनके देह से श्लिष्ट तथा उन पर
रक्खे गए संदूक[११९] में रहती हैं। पृथ्वीराज-जयचंद-युद्ध में संप्राप्त-सार
(शस्त्रास्त्र) आतपत्र[१२०] हो रहे हैं। पट्टराज्ञी ने कयमास को कामा-
तुर होकर अन्त:पुर में घूमते हुए सुनकर अत्यन्त रोष से भूर्जपत्र में
लिख कर अपने कांत पृथ्वीराज के पास भेजा।[१२१] चंद और राजगुरु ने
दासी के द्वारा पृथ्वीराज को कागज[१२२](चिट्ठी) भेजा। कामाग्नि
शान्त करने के लिए वियोगिनी स्त्रियां चंदन[१२३] लगाती हैं, पर

तराजू

भूर्जपत्र

कागज

चंदन

---

(११०)उच्छलिय कलिय चपंक सदीप।
    प्रज्वलित प्रगट कंदर्प दीप।। २:५:३७।३८
(१११) पंगुरे अपन ते नयन दीसं। चिवि जोति सारंग निवांति दीसं।।
    ४:२०:६।१०
(११२) सुभ हरम्य मंडिन त्रिपति दिपति दीप चिव लोक। ६:४:१
(११३) (हर्म्य के) मुकुरु मउण अमूल भ रहि करहि जु मनहि असोक।
    ६:४:१
(११४) नग निर्मल दर्पण भाव दीसं। ४:२०:३५
(११५) आसन आइस सुचित्त दिय। १०:९८:१
(११६) (सरस्वती का) मराल बाल आसनं। ३:१७:१
(११७) भुव अंक संकु अति सम सचीन। २:५:७
(११८) तुलं जु तुच्छ तराजुन्न तोल। ४:२५:२७
(११९) रेस रेसमिय ढारी ति भल्ली। ७:१०:१३
    सेस संदेष संदूकि मिल्ली। ७:१०:१४
(१२०) आतप्प (आतपत्र = छाते)
    सार संपत्र आतप्प रप्पं। ८:१०:११, ५:१३:२ भी
(१२१) अति सरोस भरि भुज लिषि दीय दासी करि कंपत। ३:४:५

उसका प्रभाव व्यर्थ सिद्ध होता है। गजनी में द्वारपाल ने चंद से चिल्लाकर कहा कि तेरे पास सम्बल[१२४] नहीं है। इस समय ताम्बूल[१२५] बहु-प्रचलित एवं सम्मानित था। पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध-जप में मानो रुधिर का मधु[१२६] है। संयोगिता के शब्द मधु सदृश[१२७] मधुर हैं। युद्ध-जप में तिल हाथियों के शरीर हैं।[१२८] संयोगिता ने मोतियों से थाल भरकर[१२९] दूती द्वारा पृथ्वीराज के पास भिजवाया। कनौज-तरुणियों की नारंगी-रंग की छोटी पिंडलियां ऐसी हैं मानों स्वर्ण की लुटिया[१३०] कुंकुम में लिपटी हों। वहां की सुंदरी दासियां कंचन कलश में [१३१] झकझोरि कर गंगा जल [१३२] भरती हैं। गृहस्थी के लिए अग्नि [१३३] आवश्यक है और इस काव्य में प्रयुक्त भी हुआ है।

सम्बल
ताम्बूल
मधु
थाल
लुटिया
कलश-जल
अग्नि

---

(१२२) कग्गल अप्पिय राज कर। १०:२०:१

(१२३) कंगना कंन सउ चन्दनु लायउ। १०:२७:१

(१२४) संमलु नहीं। १२:७:४

(१२५) जु नच्चइ मोर तंबोर सुढार।
उलिच्चत कीच त होइ उगार। ४:२५:३१४
चंद के स्वागतार्थ धवलागृह से चाहिसियों को पान देने के लिए बुलाबाबाना (५:२३:११२) चंद का हाथ में तांबूल बाल्क रखना।

(१२६) रुधिर मधु। ८:३०:३

(१२७) मधु मधुरया मधु सदया। १०:११:२६

(१२८) करि तनु तिल। ८:३०:३

(१२९) पंगुरा सा मुत्तिय मुत्तिय थार भरि। ६:१३:१

(१३०) नारंगी रंग पीडी सु छोटी।
मनउ कनक कुंडीनु कुंकुं लोटी। ४:२०:२६-३०

(१३१) कंचन कलस झकोरि ति गंगहि जल भरहि। ४:१३:४

(१३२) जलु ४:११:७, नीर ४:१४:१, वारि ६:२५:४

(१३३) चलि सीत मंद सुगंध वात।
पावकक मनहु विरहिनि निपात। २:५:२७-२८
गौरी रा धुरकंक पंढ दमनो अग्नि उविठ्ठा कर। २:१७:२

शक्कर-दूध
गाय
बैल
दुम्मिया
बकरा
कूप-सर

किन्तु गार्हस्थ्योपयोगी वस्तु के रूप में नहीं । शक्कर-दूध[१३४] गरीबों का एक अच्छा भोजन है । दूध[१३५] सर्पों का भी प्रिय आहार है । दूध[१३६] से गाय का महत्व है ।[१३६] धवर (बैल [१३७] का प्रयोग नंदी के लिए हुआ है । मीर बंदन दो दुम्मिया[१३८] मोटी दुम वाली भेड़ें लाता था । संयोगिता के अपांग सित-असित बकरे[१३९] के सदृश हैं । उपमान में कूप[१४०] और सरोवर[१४१] का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु गार्हस्थ्योपयोगी-रूप में नहीं ।[१४१] बसंतागमन में बागों[१४२] के आम फूलते हैं लेकिन शहाबुद्दीन के आक्रमण में बाग[१४३] मुरझा और झुलस गए हैं ।

---

(१३४) जानु भुज्जइ साकर पय लिन्नउ । ५:६:४

(१३५) दूध ४:२०:४, छीर २:२०:२, पय ५:६:४

' मनहु धार आहार कढ दूध तानी । ४:२०:४

(१३६) बच्छी छीर...... । २:२०:२

(१३७)(लखणा बघेल के वीरतापूर्वक रण क्षेत्र में जूझने के बाद सूर्यलोक में पहुंचने पर) चिढ्ढउ धवर...... । ८:३२:६

(१३८) भषड दोइ दुम्मिनि । ७:१४:२

(१३९) सित असित उररि अपंग्यो । १०:११:३७

(१४०) (लोग सुलफा दासियों ताक रहे हैं) मनउ मीन आर्गत मध्य कूपा । ४:२३:१०

(१४१) युद्ध भूमि रक्त-सरोवर हो जाता है । (सरं बोणि रंग ७:१७:२७) । सर में जल रहने पर कमल, हंस और कीचड़ रहते और सूख जाने पर चले जाते हैं । (६:२:१, ३:३१:६, १०:२५:६)।

(१४२) (बसन्तागम पर) बनि बग्ग मग्ग हलि अंब मउर । २:५:२५

(१४३) झुंझलीअ झाम मधि माल मह । ११:१०:१०

मालः आराम, बाग

उपसंहार

गृहस्थी के किसी भी विभाग में प्रयुक्त वस्तुओं का वर्णन करना इस ग्रन्थकार का अभीष्ट नहीं है। कथा प्रवाह में कुछ उपकरण आ गए हैं। उपमान-रूप के वस्तुओं को छोड़ देने पर पलंग, दीप, शीशा, पान, थार, कलश, तराजू, भूर्जपत्र, कागज, मेंह और बाग मात्र का उल्लेख हुआ है। पान का अत्यधिक प्रचार था।[१४३क] कलश का प्रयोग बहुधा मांगलिक कार्यों में हुआ है। यहाँ भी गंग-जल भरने के कार्य में प्रयुक्त है।[१४३ख] पत्र-लेखन के लिए भूर्जपत्र और कागज दोनों का प्रयोग हुआ है। महारानी ने भूर्जपत्र पर किन्तु चंद और राजगुरु ने कागज पर पृथ्वीराज को पत्र लिखा है।[१४३ग]

(१४३क) दे० अ०टि०सं० १२५

(१४३ख) ,, ,, १३१

(१४३ग) ,, ,, १२१, १२२

" चौदहवीं शती के शुरू में कागज का प्रयोग ग्रन्थ-लेखन के लिए चल गया," वर्ण० डॉ० अध्य०, पृ० ५३.

उपसंहार

खाई

प्राचीन नगर का सन्निवेश रक्षात्मक दृष्टिकोण से दुर्ग के ढंग पर होता था। उसके निर्माण में खाई और परकोटा आवश्यक अंग था। खाई का काम नदी से भी लिया जाता था। इस काव्य में में कन्नौज नगर की खाई गंगा बनी है। चंद सहित समस्त सामंतों के साथ पृथ्वीराज के कन्नौज नगर-प्रवेश में सर्व प्रथम गंगा मिली हैं।[१४४]

परकोटा

जिसके बाद परकोटा है।[१४५] इसके पार्श्व में पृथ्वीराज-जयचंद का प्रथम युद्ध हुआ है।[१४५] तत्पश्चात् इन सब को कन्नौज के हाट-बाजार तथा राज महल के दर्शन हुए हैं। प्राचीन भारतीय राजप्रसाद की रचनानुसार

स्कन्धावार

महल के तीन प्रमुख अंग होते हैं। सबसे बड़ी इकाई `स्कन्धावार` है। इसके आभ्यांतरिक भाग में `राजकुल` पड़ता है। तीसरा `धवलगृह` सर्वाधिक सुरक्षित; `राजकुल` के भीतर होता है जिसे `शुद्धान्त` भी कहते हैं। राजकुल के प्रवेश-द्वार के पहले का समस्त विस्तृत भू भाग `स्कन्धावार है। इसमें एक पूरा शहर छावनी के रूप में बसता है। गजशाला, मंदुर (घोड़े और ऊंटों के रहने का स्थान)हाट-बाजार, अनेक देशों के राजा गण, जनता के विशिष्ट व्यक्ति, सम्राट से मिलने वाले धार्मिक आचार्य और साधु-सन्यासियों का अलग-अलग जमाव होता है।[१४६] कन्नौज का वर्णित बाजार संभवत: इसी स्कन्धावार का बाह्य सन्निवेश है। गजनी में हाट-बाजार नहीं हैं, किन्तु द्वारपाल के मिलने के पहले चंद द्वारा देखे गए आकाश जैसी सुगति के हय-गजादि , रंगशाला बहुत से नट तथा नर्तक[१४७] भी स्कन्धावार के

---

(१४४) ४- पद ७ से १७ तक

(१४५) संभ उपट्ठिय नृपति रण दिय पारस परि कोट। ७:२६:१

(१४६) दे० हर्ष० सां० अध्या०, पृ० २०७

(१४७) हय गय अम्बु ति सुम्भ गति नट नाटक बहुवार।

इह चरित्र दीषत नयन गयउ चंद दरबारि। १२:६:११२

बाह्य सन्निवेश के सूचक ही प्रतीत होते हैं। कन्नौज और गजनी दोनों स्थान पर मिले हुए हेजम[१४८] (कन्नौज में) और दरबान[१४९] अथवा पहरेदार[१४९] (गजनी में) प्राचीन बाह्य प्रतिहारी के मध्यकालीन नवीन रूप हैं। राजद्वार के बाद राजकुल के मध्य में सभा (कन्नौज में) और दरबार (गजनी में (का उल्लेख हुआ है[१५०] जो पहले महा आस्थान मंडप, बाह्य आस्थान मंडप, आस्थान, राज सभा अथवा सभा के नामों से उल्लिखित होता रहा है। मुगल काल में यही 'दरबारे आम' के रूप में प्रचलित हुआ। कन्नौज की राज सभा कितनी बड़ी है, उसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि चंद ने अपनी कविता अस्सी सहस्र भट और घने सामंतों के मध्य में सुनाई है।[१५१] इतने लोगों के बैठने और सुन सकने की व्यवस्था प्रशंसनीय है।

राजसभा

धवलगृह

राजसभा के भीतर धवलगृह [१५२] होता है। इसे अन्त:पुर अथवा रनिवास भी कहते हैं। यहीं पहरा अत्यधिक कठोर हो जाता है। कयमास को बिना आज्ञा यहां की दासी के पास जाने के कारण महामात्य होने पर भी प्राण-दण्ड मिला था।[१५३] कविचंद और राजगुरु भी इसके भीतर जाने में असमर्थ रहे।[१५४] इसी भूभाग में हर्म्य,[१५५]

---

(१४८) ५:१:२, ५:२:१ , ५:३:१

(१४९) १२:७:१, १२:८:१

(१५०) दे० अ० टि० सं० ५३, ५३ क

(१५१) आयस रावन सहिस्र चढि असिय सहस्र तिहि सहिस्र। ५:३०:१
सकल सूर सामंत घन मधि कविता किय चंद। ५:३१:१

(१५२) दे० अ० टि० सं० ८४, ८५

(१५३) देखिए कयमास-वध अध्याय ३

(१५४) अप्प्प कहि कविराज गुरु चंपि कपाट निवार।
को सूतो नरेस कहं' किम अच्छे पुकार।। १०:१४:१:२

(१५५) दे० अ०टि०सं०- ८६

गृहोद्यान[१५६] और संगीत-भवन[१५७] आदि कीभी व्यवस्था है। इस अन्त:पुर में वयस्क होने पर राजकुमार अथवा राजकुमारी के रहने के लिए भिन्न भवनकी प्रथा है। राम, चन्द्रापीड, और कादम्बरी की भांति संयोगिता के लिए भी सयानी होने पर अलग भवन की व्यवस्था की गई है।[१५८] अन्त:पुर में पुरुष-रस और स्पर्श वंचित अनेक कुमारी षोडषियां जयचन्द[१५९] के धवलागृह में निवसित हैं। हर्म्य के प्रत्येक कमरे में मनोरंजन कला-कुशल दस-दस सुन्दरी युवती दासियों की अवाइयां रखने की व्यवस्था पृथ्वीराज[१६०] के यहां भी हैं।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय स्थापत्य एवं प्रासाद-निर्माण की परम्पराएं किसी न किसी रूप में, इस काव्य में, उपलब्ध हैं।

---

(१५६) दे० अ०टि०सं० - ८८

(१५७) ,, ,, - ८९

(१५८) ,, ,, - ८७

(१५९) जे त्रिय पुरुष रस परस बिनु उठिग राय सुरतान।
धवलगृह ते अवसरह भट्टकि अप्पन थान ॥ ५:२१:११२
षोडस वरष स मुग्घि गृह ते सब दासि सुजान।
५:२३:१

(१६०) सालक पंच पचीस।
तहं तहं अच्छिय सुबीन प्रबीन ति दासि दस ॥ ६:६:३१४
= दे० ६-७ समस्त पद भी।

(ख४) वाहन

(३५ शब्द अपने ८३ पर्याय सहित वाहन के संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं)

अनुच्छेद	विषय
१—	सामाजिक रहन-सहन का मापदण्ड
२—	हाथी
३—	हाथी का सामाजिक महत्त्व
४—	हाथी- नियंत्रण के साधन
५—	हाथियों के प्रकार
६—	हाथियों का पहिनावा और शृंगार
७—	घोड़ा
८—	घोड़ों के प्रकार
९—	घोड़ों के साज
१०—	रथ, विमान
११—	उपसंहार

सामाजिक रहन-सहन का मापदण्ड

वाहन[1]

सामाजिक रहन-सहन की स्थिति का मापदंड, इस काल में, ये पांच प्रमुख वस्तुएं हैं — (१) हय (२) गज (३) सेना (४) सुन्दरी और (५) सुभट । जयचन्द की महानता के संदर्भ में चंद ने पृथ्वीराज से बताया कि उपर्युक्त पांचों वस्तुएं जयचन्द के यहां अवर्णनीय हैं ।[2] सुन्दरियों का उल्लेख कन्नौज-नगर-वर्णन में पीछे हो चुका है । सेना तथा सुभट राजनैतिक अध्याय में उल्लिखित होंगे । यहां, इस काव्य में वर्णित, वाहन—(१) हय और (२) गज की स्थिति पर विचार किया गया है ।

हाथी[3]

हाथी, गणेश का अवतार, एक गौरवपूर्ण तथा पूज्य वाहन है । आजकल द्रुतगामी कार ने इसकी उपयोगिता बहुत सीमित कर दी है । विवाहोत्सव में सर्व प्रथम पूजा यह भले ही ले ले, किन्तु युद्ध-स्थल से यह सर्वथा बहिष्कृत कर दिया गया है । इस काव्य में, हाथी का सर्वाधिक प्रयोग युद्ध के लिए ही हुआ है । जयचंद के सेना के मुख भाग में घने हाथी हैं, उनकी गिनती कोई नहीं कर सकता, अगणित हैं ।[4] शहाबुद्दीन गोरी की सेना में दस हजार हाथियों का वैभव है ।[5] "हाथियों की इतनी भारी सेना बनाने के ऐतिहासिक

---

(१) वाहन ३:१६:३, वहणी ८:७:२

(२) हय गज बहु सुंदरि सहस बल बरनउ बहुवार ।
    इह चरित्र कह लगि कहउं..... । ४:२१:१+२

(३) करी ८:६:२५, गज ४:२१:१, गयंद ८:६:२४, गयंदा ४:१०:१
    गय २:१:३, ६:३१:२, दंतिन ७:६:१, ७:२५:३, मूष ८:२३:२
    मैम ७:१०:२०, वारुणि १०:२३:३, हस्ती ७:१७:३६

(४) दल संमुह दंतिन सघन गणि को सकइ अगणित । ७:६:१

(५) दस हजार वारुणि । १०:२३:३
    " ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष की सेना में ६० सहस्र हाथी थे ।" ह०भा०अ०, पृ० १३०

कारण कुछ इस प्रकार जान पड़ते हैं । गुप्तकाल में सेना का संगठन मुख्यत: घुड़ सवारों पर आश्रित था, जैसा कालिदास के वर्णनों में भी आया है । गुप्त कालीन राजाओं ने यह पाठ संभवत: पूर्ववर्ती शकों से ग्रहण किया होगा । शकों का अश्व-प्रेम संसार-प्रसिद्ध था । गुप्तकाल में अश्वबल की वृद्धि पराकाष्ठा को पहुंच गई थी, उसकी प्रतिक्रिया होना आवश्यक था । घुड़सवार सेना की मार को सामने से तोड़ने के लिए हाथियों का प्रयोग सफल ज्ञात हुआ । दूसरा कारण यह भी हो सकता है, कि गुप्त साम्राज्य के बिखरने पर देश में सामंत, महासामंत और मांडलिक राजाओं की संख्या बहुत बढ़ गई और प्रत्येक ने अपने अपने लिए दुर्गों का निर्माण किया । दुर्गों के तोड़ने में घोड़े उतने कारगर नहीं हो सकते, जितने हाथी । हाथियों को फौलादी दीवार कहा है, जो दुश्मन की फौज से होने वाली बाणवृष्टि को झेल सकती थी । तात्कालीन सेनापतियों के ध्यान में यह बात आई कि घुड़ सवारों बाणों की मार का कारगर जवाब हाथियों से बना लोहे का प्राचीर ही हो सकता है । हाथियों का दूसरा उपयोग था कोट या गढ़ तोड़ना हाथी मानो चलते-फिरते गिरि दुर्ग थे । जैसे दुर्ग के अट्टाल या बुर्ज में सिपाही भरे रहते हैं, जो वहां से बाण चलाते हैं, वैसे ही हाथियों पर भी लकड़ी के ऊंचे ऊंचे अट्टाल या बुर्ज रखे जाते थे, जिनमें सैनिक बैठकर पहाड़ी किलों को तोड़ते थे[5] । किन्तु हाथी को सेना के मुख भाग पर रखने में एक बड़ी बुराई भी थी । वह यह कि हाथी जब भागने लगते थे तो अपने ही दल को कुचलने लगते थे । कहते हैं कि मुगलों से हार का यह भी एक कारण था । इस काव्य में भी पृथ्वीराज-जयचन्द के भयानक युद्ध के समय हाथियों ने भागना प्रारंभ कर दिया[6] । गजों के कुंभ कुंभ[7]

---

(५) दे० हर्ष०चा० अध्या० ३६-४०

(६) चल चलिय विहुरारि । ७:२५:३

(७) फुट्टे कुंभ । गये कुंभ पंतीनु दंता उभारे । ७:१७:१८-१९

फट कर झूलने लगते हैं, सूंड कट जाते हैं, दांत[७] उखाड़ लिए जाते हैं और शरीर से रक्त का फव्वारा निकल पड़ता है, तो ये एक भयानक दृश्य उपस्थित कर देते हैं। हाथी[८] काल के यमजाल के समान है।[८]

हाथी का सामाजिक महत्व

हाथी[९] सुरक्षा का साधन है [९] द्वार पर झूम कर स्वामी को ऐश्वर्यशाली बनाता है।[१०] हाथी [११] का दांत ठेल देने[११] अथवा उसका सूंड उखाड़ लेने वाला वीर समझा जाता है। सब से अधिक वीरता तो तब है जब एक बाण से सात हाथियों को मार गिराए। पृथ्वीराज ही ऐसे बने गिने लोग ऐसे कर सकते हैं।[१२] उसका सुगंधित मद प्रसिद्ध है।[१३]

नियंत्रण के साधन

हाथियों को मिठ[१४] (महावत [महामात्र) अंकुश,[१५] रेशमी णारी[१६] (नाली के) और भल्ली[१६] (बर्छी) से नियंत्रित रखता है। मंगोल महावत के कार्य में बहुत कुशल और प्रसिद्ध हैं। जयचन्द के सेना में हाथियों के अधिकांश महावत मंगोल हैं।[१७]

---

(७) देखिए पिछले पृष्ठ पर।

(८) काल जल जाल हथ्थी समानं। ७:१६:३६

(९) बारराय भुमि हय गय अनग्ग। २:१:३

(१०) (जयचन्द के यहां) जको संभरे नाथ ठाडे गयंदा। ४:१०:१

(११) हथि सण्डहि सामंत सुभट जाव ठिल्ल हि गय दंत। ६:३१:२

(११)" हाथी से भिड़कर उसे वश में करने की शारीरिक शक्ति वाला व्यक्ति हस्त्र कहलाता था (३:२:५४,अनुवो हस्ति-अपारुयौ:)। बाण ने ऐसे महाकाय बलशाली व्यक्ति को मंठ कहा है। सेना में या राज दरबार में उनकी मांग रहती थी।" हर्ष० सां०अध्य०, पृ० २११, २१३

(१२) सर ढक्क ति विध्धति सत हथी। ८:६:२५

(१३) मद गंध गयंदन। ८:६:२४

(१४) मिठं अंकुस बहु कोप करे। ७:१०:६

(१५) अंकुसे कोप से नहि कठोरे। ७:१०:८

(१६) रेस रेसमिय णारी ति भल्ली। ७:१०:१३

(१७) दे० क० टि० सं० १४

हाथियों के प्रकार

पहले प्रकार के कुछ हाथी वे हैं जो मत-उन्मत्त हैं । जो शृंखलाओं से छूट कर उनसे बंधते नहीं हैं और वायु के बहुत वेग से अपने दांतों को झटकते हैं ।[१८] दूसरे प्रकार के सिंहली हाथी हैं जो सिंहों पर अपनी सूंडों से प्रहार करते हैं । युद्ध में शस्त्रास्त्र के सम्मुख दौड़कर प्रहार करते हैं । हुंकार लगाने पर उद्यत होकर वे भागना सजते हैं और अंकुश-कोष गड़ाने पर भी चीत्कार नहीं करते हैं । भूप गण उनको बाहुटे और भाजु से हांकते हैं । उनके महावत मंगोल हैं ।[१९] तीसरे प्रकार में उन्हीं के समान कुछ वेगवान अधिक हैं जो पाद-प्रहार नहीं झेलते हैं । यदि उन्हें हाथ चांपा(लगाया) जाय तो वे मेरु को हिला दें । उनको हांकने के निमित्त, जयचंद की सेना में, रेशमी रेशों वाली नालिके तथा बंकियां हैं जो उनके देह से श्लिष्ट तथा उन पर रक्खे हुए संदूक से मिलते हैं । उन पर लाल-पीले वेरख, वनराजि की डाल सदृश हिलती हैं । उनके घोर घंटों का बहुत शोर होता है ।[२०] चौथे प्रकार में सिंधु देश के धुरंग (अंगों पर धूल डालने वाले- हाथी) बन्धन से बंधे हुए हाथी आते हैं । इन हाथियों के साथ रहने वाले

---

(१८) दिग्विजय इक गय मत मत्ता । ७:१०:१

जे न अनंत छूटे जुरंता । वाय बहु वेग झटकंत दंता । ६:१०:३-४

(१९) जिने सिंघली सिंघ सुंडे प्रहारे । ते सार संमुष धाइ धकारे ।।

हक्कारे पान सज्जे हकारे । अंकुसे कोष ते नहि चिकारे ।।

भूप बाहुठ बाजुन हके । मिंठ मंगूल बहु कोप बके । ७:१०:५से१०

सिंहली हाथी का वर्णन देखिए पद्मावत (पृ० ४५) सिंहल द्वीप वर्णन खंड

(२०) तेह तर जोर पट्टे न भिल्ले । चंपियं पानि तउ मेर हिल्ले ।।

रेष रेसमिय धारी ति भल्ली । देह लग्गैत संदूकि मिल्ली ।।

सु रंग बहरष्ष रत्त पीत भल्ली । मनो बनराय डाले ति हल्ली ।।

घंट घोरं न घोरं अघोरं । हल्लवे मत्त सज्जे चिघोरं ।।

-७:१०:११ से १८

होने का द्योतक है। नव-विवाहिता संयोगिता वधू घोड़े[२७] के द्वारा ही अपने ससुराल दिल्ली पहुंचाई गई है।[२७] इससे स्वामी के गौरवमें वृद्धि होती है।[२८] राजागण भी इसको फेरने में अपने को गौरवान्वित समझते हैं।[२८] इसको, अतिथि सत्कार में उपहार स्वरूप, देने की प्रथा है।[२९] जयचन्द ने अपने अतिथि चंद को उपहार में विभिन्न रूप-रंग वाले सौ घोड़े दिए हैं।[२९]

प्रकार

जयचंद की अश्वसेना में श्वेत[३०] ताजी है जो युद्ध-क्षेत्र में पीछे नहीं हटते हैं।[३०] वे स्वामी के युद्ध में दुधारे झेलने वाले हैं।[३०] वे छिकारे (हिरन) के सदृश हैं। उनके मुखों में बाग मानों झांझ ढोल हैं।[३०] शरीर से ऐसा तेज विकीर्ण होता है, मानो काल उठा हो ऐसे मतवाले तुखार[३१] घोड़ों का कंधा तलवार की धार से नहीं नमित होता।[३१] वे घाट-औघाट को स्वयं समझ कर चलते हैं।[३१] लाहौर के लोहित वर्ण वाले घोड़े तुकी कहे जाते हैं।[३२] उनके दौड़ते समय खुर की धूल नहीं दिखाई पड़ती है।[३२] सिंधु के

---

(२७) तबहि प्रान प्रथिराज त कंचिय बाहु करि ।।
दिय रूप पुट्ठिय भार सु सच्च सु लच्छिनमउ ।
करति तुरंग सुरंग पुट्ठिक ति बहुब नउ ।। ६:३४:२ से ४

(२८) कहाँ फेरवे भूप बाढ़े तुरंगा । ४:१०:३

(२९) सत तुरंग जिति भाय । भट्ट समप्पणा जाय ।। ५:४४:११२

(३०) प्रवाहे श्वेत ताजी न लग्गे कहारे ।
सामि संग्रामि भिरतह दुधारा ।
उप्पमा तेज दीजह छिकारा ।।
साहियं वग्ग झट्ठव कि तारा ।
मनउ बाबभाव रूप बज्जंति तारा । ६८५:११३ से ६ तक

(३१) उट्ठियं तेज कट्ठे कि कारा ।
ते कज्जियं सूर बग्गे तुखारा ।
कंधं नाम्य नहीं लोह धारा ।
घाट अवघाट देख (ख?) सिमारा । ६:५:७।८।१०। ११

पश्चिम के घोड़े थकना नहीं जानते हैं।[33] सिंधी घोड़े औरार से मुड़ते-फिरते चलते हैं।[34] पवन, पक्षी, मन और मनकी गति वाले हैं।[35] जब वे रागे (टांगों के कवच) और भाग से सुसज्जित

(३० का अवशेष) ' ताजी — अरब देश के घोड़े । अरबों का प्रसिद्ध नाम ताजिक था । आठवीं शती में जब अरब सौदागर और यात्री पश्चिमी भारत में आने लगे तो यह नाम इस देश में चल पड़ा था । नौसारी के ७३८ ई० के लेख में चालुक्य राज पुलकेशी द्वारा सिंध सौराष्ट्र पर आक्रमण करने वाली ताजिक सेना की पराजय का उल्लेख है।गुर्जर राजा जयभट्ट तृतीय के ७३४ ई० के लेख में ' ताजिक ' आया है (एपी ग्राफिया इंडिका २०।१६३ एवं २३।१५१) शाब्दायें में (दसवीं शती) ताजी अश्व' का कई बार उल्लेख है । भोज कृत युक्तिकल्पतरु (११ वीं शती) में ताजिक देश के घोड़ों के नाम आए हैं जिनमें ताजिक अश्वों को सर्वोत्तम माना गया है । (युक्ति पृ० १८२) सोमेश्वर ने ताजी न कहकर तेजी कहा है (मानसोल्लास ४।६६६,६१२, वीसलदेव रासो,माताप्रसाद गुप्त, संस्क०, छंद २१, दीन्हा तेजीय केकाणा) विद्यापति ने तेजी ताजी को अलग माना है (कीर्तिलता, पृ० ८४,८८) वर्ण रत्नाकर और पृथ्वीराज चरित्र में तेजी और ताजी दो प्रकार के अश्व हैं । पद्मावत मूल संस्क० पृ० ६३५ ।

(३१) हुटि्टयं तेज कूठे जि कारा । ते सज्जियं सूर सब्बे तुखारा ।
कंध नामक नहीं लोह धारा ।
घाट अघाट केके (ता?) निनारा ।। ६१५:७८=११०१११

—' तुखार ' (तुखार देश का, मध्य एशिया में शकों के एक कबीले व मूल स्थान से आने वाले घोड़े कुषाण तथा गुप्तकाल में इस नाम से प्रसिद्ध थे।' मू०अ०पृ०२७८' भोजकृत युक्ति कल्पतरु(ग्यारहवीं शती) में तुखार देश के घोड़ों का नाम है।' पद्मा० मू०सं०पृ०६३५

(३२) लोह लाकर बाजक तुरक्की । जिने धावते दीठ्ठ नहि पुरि चक्की

फिर जाते हैं तो उन्हें अपने प्राणों की भी सुधि नहीं रहती ।[३४] लोहित वर्ण वाले अरबी अश्व लाखों की संख्या में हैं ।[३५] सुन्दर कंठ वाले कच्छी घोड़े अगणित हैं ।[३६] वे रणधारा की भित्ति पर टूट कर वेग से खुरों से खूंदते हैं ।[३६] एक से एक बढ़ कर वे ताजी दिखाई पड़ते हैं।[३६] पंडुवे (पांडु के घोड़े) शत्रु पक्ष को देखकर लज्जित हो रहे हैं ।[३७] चहुआन हरसिंह के अनम नाम का क्याह जाति का घोड़ा भी रणभूमि में फिरने लगा और धरणी को अपने खुरे के सदृश खुर से खूंदने लगा ।[३८] पृथ्वीराज का अश्व पट्टन[३६] था । उसने जब अपना मरण रणभूमि में पहिचाना तो दौड़ते हुए लात मारने और शत्रु

---

(३२) लोह लाच्छर आजअ तुरक्की । तिने धावते दीसअ नहिं धुरिष्टरकी
(३३) पच्छिमी सिंधु जानह न थक्की । ६:५:१५
(३४) ते साथि सीधी चले वंकिअ जक्की ।
पवन पंचीन अंची मनक्की । जे धास च्छुडे नहीं चंपि नक्की ।।
रंग धागे नहीं सुधि उरक्की । मनउ उप्पमा उच्च भावव धुरक्की ।
६:५:१६ से २०
(३५) आरबी देसावरी लोह लक्खी । ६:५:२१
(३६) गनअ को कंठ कंठीन कच्छी ।।
धरा भित्ति च्छुडि खूंदि धावी ।
दिब्भ[illegible] एक अनेक ताजी ।। ६:५:२२ से २४
(३७) पंडवे पंडुरे राउ सज्जे । दुवन दल तुच्छ देखंत लज्जे ।
६:५:२५-२६
(पशु चिकित्सा, पृ० ११५) पिन सेती तन पांडुरो कोई कम उमरंग पंडुआ—बंगाल की राजधानी थी — दे० हिन्दी अनुशीलन, अष्टूषविशo, १९५५, डा० वा०श०अग्रवाल के " पद्मावत में अश्व वर्णन" निबन्ध है ।
(३८) अनम क्याहढ फिरिय धरणी खुर खुर खंड चपंड ।
८:११:३
" जिसका रंग पके ताड़ के जैसा हो ।" पद्मा० पृ० सं० पृष्ठ संख्या ६४.

पक्ष के सैनिकों को देखकर दांत काटने लगा।[४०] रवि-रथ का घोड़ा उच्चै:श्रवा है।[४१]

घोड़ों के साज

पाखर,[४२] गलगाह[४३] (घोड़ों के कंठ में बांधी जाने वाली झालर जो उनके अगले पैरों के सामने लटकती रहती है।) राग[४४] (टांगों के कवच), बाग[४५] का उल्लेख हुआ है। शहाबुद्दीन के घोड़े का मुखड़ा[४६] सोने का है जिससे किरणें अपसरण कर रही हैं और जीन[४७] नग जटित हैं जो देखने में रवि-शशि के समान लगती हैं।

---

(३९) पहु पट्टन । ८:१६:३

(४०) मरण अपणउ पहिचानउ ।

उड्ड मारिउ लातहुं धाय देखि अरि दंतह कट्टुठ ।

८:२९८२।४

(४१) जिने उच्चाश्रु रवि रथुं नहियं । ७:६:६

(४२) पक्खर ६:५:६, ८:६:५

* प्राकृत धातु पक्खर - अश्व को कवच से सज्जित करना (पासद०पृ० ६१६)। यों भी साधारणत: मनुष्य, हाथी, घोड़ों के कवच के लिए पक्खर शब्द अपभ्रंश में प्रयुक्त होने लगा था — पिंधउ दिढ सण्णाह बाह उप्पर पक्खर दइ। बंधु समदि रण धसउ साभि हम्मीर वअण लइ (प्राकृत पिंगल सूत्र)। विद्यापति में भी पक्खर शब्द कई बार आया है — विहि बाहि तें वि ताजी। पक्खरोहि साजि साजि, अर्थात् दोनों पार्श्वों में और सामने वक्षस्थल पर तेजी और ताजी अश्वों को पक्खरों से सजा जाता। (कीर्तिलता पृ०८४)। वर्तमान काल में हाथी के दोनों बगलों की लोहे की झूल को पाखर और सामने सिर की ओर के कवच को सिरी कहते हैं (कला और संस्कृति, पृ० २६१)।

(४३) कंठ झूलंति गलगाह भारा । ६:५:१२

(४४) राग बागे नहीं सुधि उरक्की । ६:५:१६

रथ

जब पृथ्वीराज ने संयोगिता हरण कर दिल्ली की ओर प्रस्थान करने के लिए उपयुक्त समय समझा तभी कन्नौज के हय, गज वाहन, रथादि[४८] तथा जयचन्द गत-चिंता हो चले। प्राचीन-भारतीय-सेना के चार अंगों में तथा श्रीमंत नागरिकों के प्रमुख सवारियों में रथ बहु-प्रचलित वाहन था। इस काव्य में भी कामदेव,[४९] चन्द्र[५०] और सूर्य[५१] के रथों का उल्लेख है। इसके वाहक का इतना मान था कि महाभारत के रचयिता व्यास ने पार्थ-सारथी[५२] (श्रीकृष्ण) से गीता की साक्षी दिलाई है।[५२] किन्तु इस काल तक आते आते इसका प्रयोग बन्द-सा हो गया है। छन्द ८:७:२ में नामोल्लेख मात्र हुआ है। प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध वाहन विमान भी है।

विमान

इसकाल में यह केवल देवी-देवताओं भर का वाहन रह चुका है।

---

(४५) इ०अ०टि० सं०, ४४, सर्ग ६:५:५, सर्ग ७:१७:१, स० कला, आज इसको रास भी कहते हैं।

(४६) कंचन मुकुल्ल किरणीय कंगन। १२:२३:११

(४७) नग जहित जीन रवि ससि चाप। १२:१३:१०

(४८) प्राची हय गय वहणाँ रहणांगत चिंता नरेन्द्र तहं।
८:७८:२

(४९) (सरस्वती का कर्णफूल मानो) अनंग रथ्थ चक्कयो।
३:१७:१२

(५०) (सरस्वती के) कपोल रेख भासयो। उवंत इंदु प्रासयो। अभ्भ कुम भंचये। १३:१७: ७ से ६

(५१) जिम्मे उच्चासु रवि रथ्थ नंधियं। ७:६:६

(५२) जिसी भारती व्यास भारथ्थ भाख्यो।
जिने उच पारथ्थ सारथ्थ साख्यो।। १:४:५१६

मृतवीरों के स्वागतार्थ अप्सराएं विमान[५३] में बैठकर कभी सुरलोक तथा ना नाग लोक में आ उतरती हैं, अथवा युद्ध-रव इतना अधिक व्याप्त हो जाता है कि उससे लग कर विमान[५४] तक हिलने लगे हैं। सरस्वती का वाहन[५५] हंस तथा शिव का वाहन[५६] नंदी इस काव्य-काल में तथा आज भी उसी ढंग से मान्य है।

उपसंहार

इस काव्य में चार वाहनों— घोड़ा, हाथी, रथ और विमान के नाम उल्लिखित हैं। रथ और विमान, प्राचीन भारत के प्रमुख सवारियों में हैं, किंतु इस काल तक आते आते ये समय से बहुत दूर पीछे छूट चुके हैं। विमान, सुरलोक की वस्तु बन गया है। अप्सराएं उनमें बैठ कर वीरात्माओं का, स्वर्ग में, स्वागत करती हैं।[५६] ऐसे ही रथ भी सूर्य,[५७] चन्द्र और कामदेव[५७] के वाहन-रूप में प्रयुक्त हुआ है। धरनि अंक का कोई भी व्यक्ति उस पर बैठ कर गमन करता हुआ नहीं दिखाई पड़ा है। हां, घोड़े और हाथियों का अत्यधिक प्रचार है। दासियों[५८] से लेकर सामंत, राजा अथवा सेना सभी की यह सवारी है। केवल जयचंद के यहां ८० लाख घोड़े हैं।[५९] इनका नाम देशों के नाम पर है[६०] जब कि वाणा भट्ट के १०० वर्ष बाद घोड़ों का नाम उनके रंग पर होने की प्रथा चल पड़ी है।[६१] 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' में भी २७ घोड़ों के नाम देशों पर गिनाए गए हैं।[६२] हाथी भी जयचंद

---

(५३) लह अहुट्टि अहुट्टि विमान सुरलोक नाग तह। ७:५:४

(५४) घट्टं घोरं न सोरं समानं। हल्लये मन लग्गे विमानं।। ७:१०:१८

(५५) वाहन हंस अंस सुषदाह। ३:१६:३

(५६) चढ़े वीर नंदीस सूली अनंदी। ११:१२:१३

(५६) दे० आदि सं० ५३

(५७) ,, ,, ४६ से ५१

(५८) ,, ,, २६

(५९) ,, ,, २५

(६०) ,, ,, ३० से ३६

(६१) हर्ष सांस्कृतिक अध्ययन पृ०४२

के यहां अगणित तथा शहाबुद्दीन के पास दस हजार की संख्या में हैं । इनकी अधिकता का कारण संभवत: शक और गुप्त काल के बढ़ते हुए युद्ध के घोड़ों को हराने का एक अभिनव प्रयोग रहा[६३] जब कि वे स्वत: आगे चल कर भारत के हारने का एक ऐतिहासिक कारण बने ।

---

(६२) पद्माo मुoसंo , पृo ५५
(६३) देखिए इसी अध्याय की टिoसंo ५

(३) सामाजिक दशा

(ब— ५) नाम— व्यक्ति और परिमाण बोधक

(प्रयुक्त शब्द संख्या १६१ है ।)

अनुच्छेद	विषय
१—	स्त्री-पुरुषों के नाम
२—	प्रवृत्त्यानुसार नाम
३—	सामान्त,पौराणिक और साहित्यिक नाम
४— ५—	उपसंहार
६—	समय सूचक नाम :—
	क्षण (पल), घड़ी, प्रहर, आज, दिन, रात, कल, नक्षत्र, तिथि, वार,पक्ष, मास, वर्ष, जन्म, युग, कबहु न
७—	दिशाएं, रंग और फुटकर- नाम
८—	उपसंहार (संपूर्ण अध्याय का)

स्त्री-पुरुषों के नाम

नामों से काल विशेष की जातीय तथा वैयक्तिक-सुरुचि, आस्था और संस्कृति का ज्ञान होता है। इस काव्य में हिंदू-मुसलमानों के क्रमशः २६[1] और ७[2] एक पदीय, ३८[3] और ११[4] दो पदीय, ४[5] तीन पदीय, २[6] चार पदीय और १[7] छ पदीय नामोल्लेख से प्रकट होता है कि दो पदीय नाम का अधिक प्रसार है। एक पदीय नाम भी बहुत हैं। कुछ नाम, प्यार अथवा नामोच्चारण में लाघव वश घिस पिटकर अपनी सार्थकता खो, आज अपरिचित-से हो गए हैं।[8] इस नाम-सूची से यह

---

(१) अल्हन ८:२३:१, अनवज्जनी १०:२७:२, करनाटी ३:३:१, कमधज्ज ७:२१:४, कमधुज ८:३०:१, कयमास ३:२:४, करण ५:१३:१३ कन्ह ६:२:१, कूरन ८:१६:५, जालु ७:३१:५, जावला ७:३१:५, जीरा ५:१३:१७, पंगानि १०:१५:२, पंमार ७:२७:४, पद्ममिनिय १०:२५:१, बाहर ८:२६:६, भोज ७:३१:१६, मल्ल ७:३१:२०, रावन ५:३०:१, विंभ ८:२७:२, संजोगि २:४:४, सलष ८:३०:६, सामला ७:२७:३, सांषुला ७:३१:१६, सिंह ७:३१:१६, रठ्ठिवर ७:५:१ विम्भीषन ५:१३:२१

(२) माबी ७:३१:११, अंबा ५:१३:२३, मलिक्क १२:२२:१, मियां १२:२२:१, रुस्तमा ११:७:२, षांन १२:२२:१, गोरिअ १२:५:१,

(३) अचलेस ८:२५:२, गोयंदराज २:३:१३ (गोविंदराज ७:२०:१) चंद पुंडीर ७:२०:३, चालुक (भीम) ८:४:२, जयचंद ८:६:२, तोमर पाहार (राय) ८:३३:२, दहिम्मउ (दाहिया कयमास) ३:३५:२, दाहिम्मउ नरसिंह ७:२०:२, नीडर (निडर राय) ८:१६:६, निर्वाण वीर ७:२७:५, पंगराउ २:३:१, परिहार राना ७:३१:१३, प्रथिराज २:३:११, पावरीर राव ७:३३:१३, बागरी बाघ (राय) ७:३१:७, भरभीम ८:२:३, भीमसही ८:४:३, भोवाल राय ७:३१:२१, माल बदेल ७:२७:१, जादव राय ८:४:४, रघुवंश कुमार ५:१:२, लषन बघ्घेल ८:३१:२ ; वरसिंह ८:१६:६ ,

प्रतीत होता है कि इस युद्ध-काल में भी विशेषत: राजस्थान के युद्ध-प्रिय राजपूतों में, 'युद्ध' सम्बन्धी (जैसे संग्राम सिंह, रणवीर आदि) नामों की लोक-प्रियता नहीं मिली है। जाति, गोत्र अथवा देश के नाम पर व्यक्ति विशेष का सम्बोधन (जैसे वर्मा जी, पाण्डे जी ...... इलाहाबादी आदि) हिन्दू मुसलमान दोनों जातियों में है,[८क] किन्तु आज कल की तरह नामों का तत्सम रूप उच्चरित नहीं है।[६] जब कि ये राजा, महाराजा, सामंतों तथा उच्चकुलीन

विजयपाल ८:१०:५, सारंग (राय) ७:३१:११, सिंघली राइ ७:३१:१७, सोलंकी सारंग ७:२०:४, सिध्धु सोलंकी ५:१३:१४, हरसिंघ ८:१०:२७, सातल्ल मोरी ७:३१:१७, जंगलीराय ७:२१:३ ढिल्लियपुर ४:१:१, दिल्लीश्वर ११:१७:१, पुव्वी नरेस ३:२७:१, योगिने पुरेस ७:१२:२७, संभरिधनि ३:२७:४, संभरू राय ४:२:२ हिंदुराइ ११:७:३, पंगुराय २:१:१७, सोमेस २:३:३३, सोमेसुर १:६:३, भीमसेन २:३:३२

(४) ततार षांन १२:२०:१,(षां ततारि ११:७:२,)नसुरति षांन १२:१३:७ (निसुरति षांन १२:१६:२, निसिरति षाही ५:१३:२०), मीर बंदन ७:१३:२, षुरसान षांन ११:७:१, (षुरासान षांन ११:७:१, (षुरासान षांन ११:१५:१) साहलो साह ७:३०:११(साहाबदाही ५:१३:१६),(गज्जनेस १०:२३:१ सह सहाब १२:१०:२, साहि आलमु ११:१०:१, पातिसाह ११:११:२) बालिकाराय (बलख का राजा) २:७:३

(५) कनक बड़ गुज्जर ८:१४:१, ढिल्ली पुरह नरिंद (३:३५:१, भान भट्टी भुआल ७:२७:२,योगिनीपुर पति ८:८:२

(६) मंडली राय मालन चंद (७:३१:३, कूरंभ राय मालन्न चंद , ७:२७:५

(७) बलीराय बाने वाला बीर आवध ७:३१:६ (बीर बध्द बलीराय बाना)

(८) बल्लन ८:२३:१, कमधज्ज ७:२१:४, कमधास ३:२:४, कूरंभ

व्यक्तियों के ही नाम हैं। राजाओं (जैसे जयचंद,[क] पृथ्वीराज[ख] तथा शहाबुद्दीन गोरी[ग] एवं संयोगिता[घ] आदि) के नामों के बहुल पर्याय प्रयुक्त हैं। प्रवृत्त्यानुसार महानता सूचक १६ प्रतिशत,[११]

प्रवृत्त्यसूचक नाम

(शेष ८) ७:२०:५ , जालु ७:३१:५, जावला ७:३१:५, जीरा ५:१३:१७, भाहर ८:२६:६, विंभ ८:२७:२, विभः = एक जैन मुनि (विसे २५१२), एक श्रेष्ठि पुत्र (सुया ५७८) पाइ असदहणमे) सलष ८:३०:६, पुंडीर ७:२०:३, भट्टी ८:४:३, बागरी ७३१:३ माल ७:२७:१, मालन ७:३१:३, विंभ ८:२७:२, सलष ८:३०:६, सामला ७:२७:३, साषुला ७:३१:१६

(८क) पंमार (७:२७:४,), पङभिनिय १०:२५:१, सिंह ७:३१:१६, चालुक ८:४:२, तोमर पाहार ८:३३:२, परिहार राना ७:३१:१३, जादवराय ८:४:४, हिन्दुराइ ११:७:३, देखिए अ०टि०सं० २ = कनवज्जी १०:२७:२, गज्जनेश १०:२३:१ ढिल्लीश्वर ११:१७:१, कंलीराय ७:२१:३, संभरराय ४:२:२

(६) दे०अ०टि०सं० १ से ७ तक

(१०) (क) जयचन्द ४:६:२, कमधज्ज ७:२१:४, पंगुराज २:३:१,

(ख) प्रथिराज २:३:११, कंलीराय ७:२१:३, ढिल्लियपुर ४:१:१, ढिल्लीश्वर ११:१७:१, पुथ्वी नरेस ३:२७:१, योगिने पुरेस ७:१२:२७, संभरिधनि ३:२७:४, संभर राय ४:२:२, हिन्दुराइ ११:७:३

(ग) गोरिय १२:५:१, साहबोसाह ७:३१:११, साहाब साही ५:१३:१६, गज्जनेश १०:२३:१, सब सहाब १२:१०:२, साहि बालु ११:१०:१, पातिसाह ११:११:२

(घ) पंगनि १०:१५:२, संयोगि २:४:४, कनवज्जी १०:२७:२ पङभिनिय १०:२५:१

(११) ६० में १७ नाम जैसे :— कमलेश ८:२५:२, गज्जनेश १०:२३:१

देव-पुराण-[१२] इतिहास[१२] तथा प्रकृति[१३] सम्बन्धी १३ और १३ प्रतिशत, स्थान[१४] सम्बन्धी दस प्रतिशत, नक्षत्र[१५] और विशेषण[१६] पर आधारित चार प्रतिशत, धर्म [१७] पर दो प्रतिशत और आशिर्वाद[१८], भाव सवेंग [१९] तथा धातु [२०] सम्बन्धित एक एक प्रतिशत नाम प्रयुक्त हैं। राज्य शब्द से सम्बद्ध `राउ`, `राज`, `राय`,

नामान्त

(शेष ११) ढिल्लियसुर ४:१:४, (ढल्लीश्वर ११:१७:१)नरसिंह ७:२०:२, निर्वाण वीर ७:२७:५, प्रथिराज २:३:११, पातिसाह ११:११:२, पुहवी दरेस ३:२७:१, भान भट्टी भुआल ७:२७:२ भोआल राय ७:३१:२१, योगिनेपुरेस ७:१२:२७, वलीराय बाने वाला वीर जादव ७:३१:६, विजपाल ८:१०:५, सलखलाख १२:१०:२, साहिआलम ११:१०:१, सोमेस २:३:३३। सोमेसुर १:६:३, हिंदुराज ११:७:३

(१२) ६० नामों में १२ नाम हैं (कन्ह ६:२:१, करण ५:१३:१३, कूरंभ राय पालन्न देउ ७:२०:५, गोयंदराज २:३:१३, (गोविंदराज ७:२०:१), भीमभट्टी ८:४:३, भरभीम, ८:२:३, भीमसेन २:३:३३, भोज ७:३१:१६, रघुवंश कुमार ५:१:२, लषण बघेल ८:३१:२, रावण ५:३०:१, हरसिंघ ८:१०:२७, बिभीषन ५:१३:२१

(१३) ६० में १२ नाम :— बघेल ८:२५:२, धीरा ५:१३:१७, तोमर पाहार ८:३३:२, नरसिंह ७:२०:२, पज्झभिनिय १०:२५:११ बागरी बाघ ७:३७:७, बरसिंघ ८:१६:६, सारंग ७:३१:११, सिंह ७:३१:१६, सोलंकी सारंग ७:२०:४, हरसिंघ ८:१०:२७

(१४) ६० में ६ नाम :— कनवज्जी १०:२७:२, कारनाटी ३:३:१, गज्जनेस १०:२३:१, जंगलीराय ७:२१:३, ढिल्लियसुर ४:१:४, (दिल्लीश्वर) ११:१७:१, योगिने पुरेस ७:१२:२७, संभरिधन ३:२७:४ (संभरराय ४:२:२) तातार खान १२:२०:१, खुरासान खान ११:१५:१

(१५) ८८ में ४ नाम :—(मालन-हंस-मंडलीराय ७:३१:३, भरभीम

अथवा `रायु` संयुक्त नाम सर्वाधिक तेरह प्रतिशत हैं।[२१] `सिंधाल`[२२] चार प्रतिशत, `भट्टी`[२३] दो प्रतिशत, तथा `सेन`[२४] `राना`[२५]

(शेष १५) ८:२:३, वरसिंघ ८:१६:६, वली राय थाने वाला वीर जादव ७:३१:६), कनक अहु गुज्जर ८:१४:१

(१६) ६० नामों में चार नाम :— (जयचंद ४:६:२, प्रथिराज २:३:११, भुपाल भान भट्टी ७:२७:२, सोमेस २:३:३३ (सोमेसुर १:६:३)

(१७) ८८ में दो नाम (निर्वाण-वीर ७:२७:५, सिध्धु सोलंकी ५:१३:१४)

(१८) जयचंद ४:६:२

(१९) नीहर ८:१६:६

(२०) कनक अहु गुजर ८:१४:१

(२१) कूरंभ राय पालन्न देउ ७:२०:५, गोविंद राज ७:२०:१, (गोयंदराज २:३:१३), अंगलीराय ७:२१:३, जादवराज ८:४:४, पंगुराय २:१:१६, पापरीय रायु ७:३३:१३, चालिका-राय २:७:३, भोआल राय ७:३१:२१, मंडली राय माल्हन हंसउ ७:३१:३, वली राय थाने वाला वीर जादव ७:३१:६, संभरूराय ४:२:२, सिंघली राज ७:३१:१७

(२२) सिंह ७:३१:१६, नरसिंघ ७:२०:२, वरसिंघ ८:१६:६, हरसिंघ ८:१०:२६

(२३) भीमभट्टी ८:४:३, भान भट्टी भुपाल ७:२७:२

(२४) भीमसेन २:३:३२

(२५) परिहार राना ७:३१:१३

रिवाज मुसलमानों में है[३१]।

हिन्दुओं में नाम करण एक संस्कार है । इसमें ज्योतिषियों द्वारा उच्चकुलीन परिवारों में विशेष रूप से सोच-विचार कर नाम रक्खा जाता है।[३२] ऐसी बात इस काव्य में नहीं पायी जाती है । नाम सूची देखने से लगता है कि नाम करण में लोकरुचि कम है । इसीलिए तत्सम नामों का अभाव है और घिस-पिट कर कुछ नामों के वे रूप मिलते हैं जो हिन्दी के लिए अतिरिचित से हैं।[३३] महानता सूचक नाम सर्वाधिक हैं । इसके पश्चात देव-पुराण-इतिहास सम्बन्धी और प्रकृति तथा स्थानों पर आंधारित नाम हैं ।[३४]

समय-सूचक-नाम

इस काव्य में आजकल की तरह समय को वार[३५] (वेला= समय) भी कहा हैं । इसकी सबसे छोटी ईकाई तद[३६] (तत्काल) नयन सयन[३७] (निमिष मात्र), छाण,[३८] अथवा पल[३८क] है ।

---

(३१) गाजी ७:३१:११, मलिक्क १२:२२:१, मियां १२:२२:१, षानं १२:२२:१, गोरिअ १२:५:१ , (१२ में ५ नाम)
तब सहाष सन उच्चरयउ मियां कलिक्क जु षानं । १२:२२:१

(३२) रा०च०मा०— राम और उनके भाइयों का नामकरण

(३३) दे० अ० टि० सं० ८

(३४) दे०अ०टि०सं० ११, १२, १३ और १४

(३५) इकु दिन प्रथीराज रस मुष कहुढी तिह वार । १२:२७:१

(३६) जुरे काम तद । १:३:१६

(३७) ३:४:६

(३८) निमिष्ष ३:३२:५, छिन्न १२:६:२, षिन ३:३८:१, ६:१:१ षिनुक ५:४५:५

(३८क) ३:६:१, ३:१८:३, ३:४:६, ४:५:१

रिवाज मुसलमानों में है[३१]।

हिन्दुओं में नाम करण एक संस्कार है । इसमें ज्योतिषियों द्वारा उच्चकुलीन परिवारों में विशेष रूप से सोच-विचार कर नाम रक्खा जाता है ।[३२] ऐसी बात इस काव्य में नहीं पायी जाती है । नाम सूची देखने से लगता है कि नाम करण में लोकरुचि कम है । इसीलिए तत्सम नामों का अभाव है और घिस-पिट कर कुछ नामों के वे रूप मिलते हैं जो हिन्दी के लिए अतिरिक्त से हैं ।[३३] महानता सूचक नाम सर्वाधिक हैं । इसके पश्चात देव-पुराण-इतिहास सम्बन्धी और प्रकृति तथा स्थानों पर आधारित नाम हैं ।[३४]

समय-सूचक-नाम

इस काव्य में आजकल की तरह समय को वार[३५] (बेला = समय) भी कहा हैं । इसकी सबसे छोटी ईकाई तह[३६] (तत्काल) नयन स्यन[३७] (निमिष मात्र), छण,[३८] अथवा पल[३८क] है ।

---

(३१) गाजी ७:३१:११, मलिक्क १२:२२:१, मियां १२:२२:१, षानं १२:२२:१, गोरिय १२:५:१ , (१२ में ५ नाम)
तब सहाब सन उच्चरयउ मियां कलिक्क जु षानं । १२:२२:१

(३२) रा०च०मा०– राम और उनके भाइयों का नामकरण

(३३) दे० प० टि० सं० ८

(३४) दे०प०टि०सं० ११, १२, १३ और १४

(३५) इक्कु दिन प्रथीराज रस मुष अहुठी तिह वार । १२:२०:१

(३६) कुरे काम तह । १:३:१६

(३७) ३:४:६

(३८) निमिष्ष ३:३२:५, छिन्न १२:६:२, छिन ३:३८:१, ६:१:१ छिनुक ५:४५:५

(३८क) ३:६:१, ३:१८:३, ३:४:६, ४:५:१

बोलचाल की व्यावहारिक भाषा में, आज कल की तरह, क्षण, किसी एक काम के पूरा होने के समय तक को कहते हैं। जैसे पृथ्वीराज ने अपने सामंतों से कहा कि यदि तुम क्षण[३९] भर रण क्षेत्र में कन्नौज नगर की प्रदक्षिणा कर आऊं। शहाबुद्दीन गोरी के पहरेदार ने चंद से कहा कि एक क्षण[४०] और पर विलंब करो, अनुत्साह न हो, तुम्हें गोरी से मिला देंगे। चंद ने पृथ्वीराज से कहा, कि क्षण[४१] भर मन में धीरज धरो, जयचंद से आप को मिला देंगे। 'नयन सयन' की भी यही स्थिति है। नेत्रों के संकेत[४२] मात्र के समय में दासी राजमहल से चल कर गजों से प्रक्षीण वन को पार करती हुई शिकार पर गए हुए पृथ्वीराज के पास जंगल में पहुंच गई।[४२]

पल. पल के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण उल्लेखनीय बात यह है, कि रात में भी एक एक पल का हिसाब है और ग्रन्थकार असाधारण रूप से उसकी सूक्ष्मता बताने में सक्षम है। जैसे कयमास के महल में दासी के पास आने के अनन्तर ६६ पल निशा बीत पाई थी, कि पृथ्वीराज उसको मारने के लिए घूमने लगे।[४३] कयमास-कांड के सम्बन्ध में पृथ्वीराज रात में दो घड़ी पांच पल[४४] दौड़ा था। तीन दिन, तीन रात्रि और तीन पहर में पल[४५] भर कम था जब सामंतों सहित पृथ्वीराज दिल्ली

---

(३९) जउ पहुच्चउ छिन चौर मह तउ दच्छिन नयन विराज। ६:१:२

(४०) छिक्कन इक दरहि विल किय्य कवि न करह मनु मंडु।१२:६:२

(४१) छिन त मनहि धीरज धरहु। ३:३८:१

(४२) पल नयण प्रयण बनि संचरिय नयन सयन प्रथिराज बंह। ३:४:६
देख ४:४४:४ भी

(४३) मवति मवप्पल निसि गलिहु भनु घुम्मक चिंहु पासि। ३:६:१

(४४) निस पल पंच घटिय दोर्ड धायौ। ३:६०:३

(४५) अब दिवस अब कांमिनी प्रयत यांम पल उन्न। ४:५:१

घड़ी-पहर

से कन्नौज पहुंचा। पल से घड़ी इकाई घड़ी[४६] और पहर[४७] की मानी गयी है। इससे प्रतीत होता है कि कवि के समय में समय बोध की दृष्टि से एक माप दंड उपस्थित रहा जिसका प्रयोग भी व्यावहारिक ढंग से अधिक होता रहा। यही कारण है, कि समय सूचक इन विशिष्ट रूपों की बार बार यहां तक कि संख्या [४७क] क्रम से उल्लेख हुआ है। आज[४८]

आज

तात्कालिक काल[४६] और` आजकल` [५०] के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। त्रयत दिवस त्रय जांमिनी (४:५:१), एक प्रहर रात्रि जब समाप्त हो गयी (जाम एक छनदा घटित ५:३६:१) से स्पष्ट होता है कि रात-दिन की गणाना अलग अलग और सूर्यास्त तथा सूर्योदय से होती है। एक से चौबीस घंटे के दिन की परम्परा नहीं है। पो[५१] फटते ही रात का शरीर क्षीण हो जाता है।[५२] भानु रात्रि के लिए शल्य रूप है। [५२] और तब विहान[५३] और प्रात[५४] हो जाता है। इस

दिन[५५]

महि मंडल में दीर्घ दिनों [५६] तक भोग करके कौन नहीं गया, में प्रयुक्त दिन, रात-दिन का अभेद करके, अनेक वर्षों के अर्थ में है। इसी ढंग से`मनुष्य माता के गर्भ में वास करके दिन [५७] पूरा होने पर जन्म लाभ करता है में दिन का मापदण्ड करीब नौ माह के बराबर है। दिन में दो प्रहर[५८] बीतने पर इसका` मध्यान`[५६] काल आता है। दोपहर

---

(४६) दे० अ०टि०सं० ४४ और ३:४:५

(४७) छनदा ५:३६:१, जाम २:१३:६, ३:४:१, पहर ३:१६:१, याम ४:५:१

(४७क) जैसे :—दो घड़ी तथा पांच पल (३:१८:३), दो घड़ी में (३:४:५), चार पहर (२:१३:६), एक पहर रात्रि (३:४:१) (प्रथम या मध्य के) प्रहर के मध्य (समय) (३:१६:१), तीन दिन , तीन रात्रि और तीन प्रहर (४:५:१) एक प्रहर रात्रि (५:३६:१)

(४८) २:३:१४, २:३:५४

(४६) (अमात्य ने जयचंद के यज्ञ के लिए कहा कि)
विक्कन बोलि दिन धरहु आज। २:३:५४

बीतने पर तीसरा[६०] पहर आता है। तत्पश्चात् सन्ध्या[६१] होती है जिसमें सूर्य मलिन पड़ जाता है। रात चार[६३] पहर की होती है और अपने तीसरे पहर में पीत पड़ जाती है,[६४] ऐसा उल्लिखित है। फिर कल्ह[६५] (कल) हो जाता है।

रात[६२]

कल

---

(५०) (पृथ्वीराज के एक गुरु गोविन्दराज ने जयचन्द के दूत से कहा कि) कलि मधि भूपन जग्गु को करइ आज। २:३:१४

(५१) पुल फटिग घटिग सरवरि सरीर। ४:७:१३

(५२) सरवरिय साल भानं। ४:७:७

(५३)४:७:८

(५४) ३:१७:८, ३:२०:४

(५५) दिन २:३:५४, दिनु २:१:१४, दिवस ४:५:१, दीहा ८:१०:१, दीहाइ २:२:१, वासर ३:३२:१, ८:११:४

(५६) के के न गया महि मंडलनि धर ढिल्लाय दीह दीहाइ।

(५७) मातु गम्य वास करिवि अंग वासर वसि तहवड। ३:३२:१

(५८) त्रिपहर ७:२६:१, जाम दोह ११:१२:१७

(५९) ८:१०:२३, १२:५:२

(६०) त इमि विधि जाय दोई बीति गए भयउ त्रतिय पहुरम्म।
१२:१२:१

(६१) भयु मलिन मुख्य भानु कमल संभ। २:३:४२

(६२) छपया ८:१०:३, जाय ८:८:१७, जाम ५:३८:१, जामिनी ३:१७:२८, निस ३:१८:३, निसा ५३२:१, निसि ३:८:१, यामिन्या ८:११:४, रजनी ३:३:१, रयणि ३:४:१, रयनी १ २:७:१४, रैणा ८:८:१०, सर्व ८:८:१३, सरवरिया ४:७:८, सुरेणा ११:१०:२५, भयि निसि च्यारि जाम। ३:२८:४-(६३)

(६४) मल जामं ति जामं सुपीत परी। ८:८:१७

(६५) १२:१५:१४

नक्षत्र-तिथि-वार पक्ष

माह-वर्ष-जन्म युग कबहु न

दिशाएं

दिनों की गणना नक्षत्र, तिथि, वार और पक्ष में होती है। इस काव्य में भरणी[६५क] नक्षत्र, अष्टमी[६५ख] और नवमी[६६] तिथि, शुक्र[६७] और शनि[६८] वार तथा शुक्ल[६९] पक्ष का, पृथ्वीराज-जयचन्द के युद्ध का दिन बताने के संदर्भ में, उल्लेख हुआ है। इसके बाद क्रमशः माह, वर्ष,[७०] जन्म,[७१] युग,[७२] कबहु न[७३] होता है। तब[७४] का भी प्रयोग हुआ है। मास में आषाढ़,[७५] भादों,[७६] और कार्तिक का उल्लेख है। प्रत्येक युग में यज्ञ कर्ता के नाम गिनाने के संदर्भ में सतयुग,[७८] त्रेता,[७९] द्वापर[८०] और कलियुग[८१] चार युगों का उल्लेख हुआ है। दिशाएं आठ ही मानी गई हैं। संयोगिता-हरण के फलस्वरूप पृथ्वीराज-जयचंद के कन्नौज-युद्ध में आठों दिशाएं[८२]

(६५क) ७:२१:२

(६५ख) ७:२१:२

(६६) ७:३०:१

(६७) ७:२१:२

(६८) ७:२५:१

(६९) ७:२१:२

(७०) बरिख २:५:२, बरख १२:१:३

(७१) १२:१:३

(७२) जुग २:१:१२,जुगु ३:२८:४

(७३) २:३:२६

(७४) २:३:७

(७५) आषाढ़ ७:१७:८, अषाढ़ ५:२४:४

(७६) भद्द १:३:१५, भद्दव ७:३:२

(७७) ६:१२:३

(७८) सतजुग्ग अक्ख बलिराव किन्न। २:३:१५.

(७९) त्रेता व किन्न रघुनन्द राव। २:३:१७

(८०) धनि धम्म जुग द्वापर जुलाव। २:३:१६

(८१) कलि २:३:१४, कलिजुग्ग २:१:१२

धुंधले पन के कारण विस्मृत हो गई हैं।[८२] इनमें पूर्व,[८३] उत्तर[८४] और दक्षिण[८५] का नामोल्लेख है। दूरी[८६] की बड़ी इकाई[८७] योजन और कोस[८८] हैं। दिल्ली से कन्नौज २१ योजन[८९] और कन्नौज से दिल्ली ६५ कोस[९०] है, इस कथन से एक योजन में साढ़े चार कोस पड़ते हैं। रंगों में सेत,[९१] लाल,[९२] पीत,[९३] कपिर[९४] (कपिल = भूरा = धूल धूसरित) गौर[९५] और सुवानि[९६] (अच्छे वर्ण वाली) का उल्लेख है। आरंभ,[९७] आदि[९८], अग्रे,[९९] मध्य,[१००] आर[१०१], (आसपास) लम्बी,[१०२] दीह (दीर्घ),[१०३] घना,[१०४] गहिरा,[१०५] भार,[१०६] सार[१०७] और तण्य[१०८] (तंत्र = वश) भी उल्लिखित हैं।

रंग

फुटकर

---

(८२) बिसरी दिसि अट्ठ ति धुंधरियं। ७:४:१४

(८३) प्राची ८:७:२, पुव्व ४:७:१५

(८४) ४:७:१६

(८५) दक्खिन ४:२:२

(८६) दुर २:३:४३, दुरि १:३:१६

(८७) जोजन ४:५:२

(८८) कोस ८:६:३

(८९) (दिल्ली से कन्नौज) जोजन एकइस संचरिग प्रथीराज संपन्न। ४:५:२

(९०) पंच षट्ठि सौ कोस कहइ ढिल्लीय अस कनवज। ८:६:३

(९१) १:२:२

(९२) रत्ते २:३:४४

(९३) ३:६:१७

(९४) (पृथ्वीराज का) राजं आ अजमेरि केलि कपिरं। १:६:१

(९५) १:२:२

(९६) १:२:३

(९७) २:३:२, (९८) १:३:३, (९९) १:१:३, (१००) मध्य २:३:६, मज्झिम २:३:१४, (१०१) २:३:३, (१०२) १:२:४,

(१०३) २:२:१, (१०४) १:२:४, (१०५) १:२:२ (१०६) १:२:४

(१०७) १:१:१, १:१:२, (१०८) २:३:१०

उपसंहार

संभवत: लोक में नाम-करण-संस्कार की प्रतिष्ठा के बहुप्रचलन के अभाव वश उच्चकुलीन परिवारों में भी नाम, जन्म-कुण्डली अथवा ज्योतिष-सम्मत नहीं हैं तथा राम चरितमानस के राम और उनके भाइयों की भांति, साभिप्रायिक और तत्सम भी नहीं हैं। राजवंश, सामंत-कुल तथा उनके स्थानों से सम्बद्ध तथा महानतासूचक विशेषण सम्पन्न नाम अधिक लोकप्रिय हैं।[१०९] मुसलमानों में जातीय नाम सर्वाधिक हैं।[११०] समय सूचक मापदंड विकसित और व्यावहारिक हैं। पल-पल की गणना पर भी अत्यधिक सावधानी वर्ती गई है।[१११] आजकल की तरह बोलचाल में छण का तात्पर्य एक काम के पूरा होने तक की अवधि है।[११२] आज, तात्कालिक,[११३] वर्तमान काल और आजकल[११४] दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। प्रयोग में दिन का तात्पर्य दिन-रात का अभेद किए हुए अनेक[११५] वर्षों तथा करीब नौ माह[११६] तक है। दिन-रात, सूर्योदय तथा सूर्यास्त से अलग-अलग गणना पाकर चार-चार प्रहर वाले हैं।[११७] दिशाएं[११८] आठ ही मानी गई हैं। एक योजन में साढ़े चार कोस का उल्लेख है।[११९]

---

(१०९) दे०अ०टि०सं० ८क, ११, १४, १६, ३०
(११०) ,, ३१
(१११) ,, ४३ से ४५ तक
(११२) ,, ३६ से ४२
(११३) ,, ४६
(११४) ,, ५०
(११५) ,, ५६
(११६) ,, ५७
(११७) ,, ५८-के बाद,६३
(११८) ,, ८२
(११९) ,, ८९, ९०

(ग) सामाजिक आचरण और शिष्टाचार

अनुच्छेद —	संदर्भ
१.	राजाओं का सामाजिक आचरण
२.	राजाओं का पारिवारिक आचरण
३.	राजाओं का अतिथि-सत्कार
४.	मध्यम वर्ग
५.	सामान्य-जन
६.	निम्न कर्मचारी वर्ग
७.	स्त्रियां
८.	साधु वर्ग
९-१०.	उपसंहार

राजन्य, मध्यम एवं सामान्य किसी भी वर्ग के सामाजिक आचरण की विस्तृत सूचना इस काव्य में नहीं मिलती। सामाजिक आचरण के प्रति कुछ संकेत मात्र अवश्य मिलते हैं।

राजाओं के सामाजिक आचरण

राजाओं के राजनीतिक, धार्मिक और कलात्मक आचरणों का विवेचन तत्संम्बन्धी अध्यायों में किया गया है। प्रमुख रूप में यहां उनके उन आचरणों का विवेचन किया गया है जिनका सीधा सम्बन्ध समाज से है। पर स्त्री-गमन के जघन्य अपराध को दूर करने के लिए समाचार पाते ही निद्रा और सुख को त्यागकर, रातोरात अपने विश्वसनीय और उच्चपदाधिकारी को पृथ्वीराज ने प्राणदण्ड दे उसके शव को पृथ्वी के अन्दर गाड़ दिया। प्रस्तुत काव्य में ऐसा ज्ञात होता है कि अपराध की इतनी जघन्यता पृथ्वीराज और महाराज्ञी के व्यक्तिगत दृष्टिकोण की वस्तु है, क्योंकि दिए गए गंभीर दण्ड को सुनते ही राजसभा के सभी सामंत लोट पड़े,[1] मानों उनके सिर पर लाठी लगी हो।[2] अन्त विरहिया ने राजा से पूछा कि ऐसे प्रलयंकारी कार्य से क्या लाभ होगा? रावण को किसने गाड़ा था? क्रोध में रघुराज (राम) ने उसे बाण ही तो मारा था। बालि को किसने गाड़ा था? उसका सुग्रीव ने जीवन ही तो लिया था। चन्द्रमा को किसने गाड़ा था? उसने गुरु-पत्नी से केलि की थी। पाण्डु ने भी सूर्य को नहीं गाड़ा था। इन्द्र को गौतम ऋषि ने नहीं गाड़ा था, भले ही उन्होंने शाप दिया था। हे पृथ्वीराज, सुनो, ऐसे आचरण पर इतना रोष करना दोष है, अपराध को मत गाड़ो|आंख निकलवा लिए जाने के पश्चात् गजनी के जेल में पृथ्वीराज

---

(१) (पंक) सुनि सुनि सोच कानहु। अप्पु अप्पु मन ग्रेव परानहु।।
१:२८:११२

(२) बहुर सब्ब सामंत मनउ लग्गिय सिर लट्ठिय। ३:२६:२

(३) तब अंपइ चंद विरहिया सु कहा मिसाट्रिय इव [illegible]।। ३:[illegible]

(४) रावन किनि गड्डिअउ क्रोध रघुराय बान किय।

के दुर्दशा पर चन्द ने कहा, कि —

` जि कहु दिखउ कयमास किबउ अप्पनउ सु पायउ ` [५]

राजा का पारिवारिक कार्य

गृहस्थी का काम करते हुए कोई राजा नहीं दिखाई पड़ता है। केवल जयचन्द अपनी पुत्री संयोगिता के वयस्क होने पर उसके लिए रवि-पवि कर अलग आवास की, परम्परानुसार, व्यवस्था करता है [९] और अपनी नव-विवाहिता पत्नी संयोगिता को सुखी बनाने के लिए पृथ्वीराज द्वारा एक हर्म्य बनवा कर सामान्य रनिवास से उसको अलग रखने का उल्लेख मिलता है। [१०]

राजा का अतिथि-सत्कार

राजा के यहां कोई राजा अतिथि नहीं बना है। पृथ्वीराज वेश बदल कर जयचंद के दरबार में अतिथि रूप में गया है जिसका रहस्योद्घाटन होने पर शस्त्रास्त्रों से स्वागत हुआ है। [११] पंगुराज ने अपने कलाकार अतिथि (कवि चंद) का स्वागत पुरुष-रस और स्पर्श विहीन पवित्र भोहिसियों द्वारा पानार्पण से आरम्भ किया है। [१२] दूसरे दिन दस हाथी, बहुत से मोती, विभिन्न

(शेष ४) बालि किनि गहिड्डयए सु त सुग्रीव जीव लिय ।।
बद किनि गहिड्डयेउ कोबं गुरुदारु स किल्लउ ।
रवि न पंडु गहिड्डयउ पुच्छि सह देव पहिल्लउ ।।
गहुडउ न इंदु गौतम रषि बस सराप छंडिय जिनी ।
इह रोस दोस पृथिराज सुनि मम गहुडउ संभरि धनी ।।२:३६

(५) १२:४६:२

(९) तब भुक्ति राव गंगह तट स रवि पवि आवास । २:२७:१

(१०) सुभ हर्म्य मंडिम नृपति । ६:४:१

(११) ५:४८ छ०पद

(१२) ५:२१ छपद

रूप-रंग के सौ घोड़े तथा बहुत-सा सुंदर द्रव्य भेंट में देने के लिए लेकर जयचंद अतिथि के निवास-स्थान पर आता है।[१३] शहाबुद्दीन गोरी ने भी अपने योगी अतिथि (चंद) के सत्कार में उसके शरीर में अगर-धूप आदि सुगंधित द्रव्य लगवाए।[१४] दोनों राजाओं ने अपने अतिथि की इच्छा-पूर्ति के लिए प्रयत्न किया है।

मध्यम-वर्ग

मध्यम वर्ग के सामाजिक आचरण को द्योतित कराने वाली कोई सामग्री प्रस्तुत काव्य में नहीं है। राज-दरबार में भाग लेना एक मात्र कार्य है।[१५] दरबार में सिर मुकुटादि से ढक कर रहते हैं।[१६] हाथ जोड़ कर राजा से निवेदन करते हैं।[१७] किसी नवागन्तुक के आने पर उठ कर आदर करते हैं।[१८] अपने से बड़ों को सिर नवाते हैं।[१९] चंद ने गोरी को आशीष देते समय सिर नहीं नवाया है।[२०] कलाकार भेष बदलते[२१] और बदलवाते हैं।[२२] इनकी परीक्षा होने की परम्परा है।[२३]

सामान्य-जन आचरण

सामान्य जन मंदिर में भजन करते मिले हैं।[२४] अपने राजा को छ मास तक न देख सकने पर चिंतित हुए हैं और राजकुल के

---

(१३) ५:४४ सपद (१४) १२:१६:१

(१५) २:३ सपद, ३:१६ सपद, १२:११ सपद

(१६) ५:१८:१

(१७) ११:१८:१

(१८) २:१४:१, १०:२:१, १०:४:१

(१९) ३:२०:३

(२०) १२:१४:११२

(२१) चंद गोरी के यहाँ योगी बन कर गया है।

(२२) जयचंद के यहाँ पृथ्वीराज को ताम्बूल वाहक बनाकर चंद गया है।

(२३) ५:४ से १४ पदतक

के माध्यम से इसके कारण की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं ।[२५] जुआ[२६] और वैश्याओं[२७] तथा दासियों[२७] में अनुरक्त होना इनके दो दुर्व्यसनों पर प्रकाश पड़ा है, जिन्हें युग बुरा नहीं समझता है, ऐसा ज्ञान पड़ता है ।

निम्न कर्मचारी वर्ग

हिन्दू और मुसलमान दोनों राजाओं के द्वारपालों का काम शिष्टता के साथ कार्य को करवाना है । यवन पहरेदार ने चंद से हंस कर कहा कि एक क्षण रुको, मन को हतोत्साहित न करो ।[२८] कवि चंद का वचन सुनकर जयचंद का हेजम उठा । देखते देखते उसके कार्य के लिए हाथ जोड़ कर दस बार जयचंद को सिर झुकाया और चंद का संदेशा सुनाया ।[२९] राजगुरु और कवि को देखकर मोहिनी दस दासियां उसके पैरों में पड़ कर हंसती हुई रस पूर्वक कहने लगीं[३०] कि राजा से क्या कहा जाय, आप उसे भासित कर कहें ।[३१] उन्होंने उनको आसन दिया और अपने कच से उनकी चरण-रेणु झाड़ी ।[३२]

---

(२५) सकल लोह पुच्छन गुरु इच्छहि ।

गुरु षट मास राज नहि दिष्षहि । १०:१:११२

(२६) ४:२३:३ से ६ तक

(२७) ४:२३:८ से १४ तक

(२८) बिलम एक दरहि बिलषियव कवि न करहु मनु मंद । १२:६:१

(२९) सुनत बोल हेजमह उठत दिष्षित चंद लिल ताहि ।

न्रिप अग्गह गुदरन गयउ जहां पंगु न्रिप आहि ।। ५:२:११२

तब सु हेजम युगम कर जोरि ।

सीस नामह दस बार ।।

कहहि सु इब चंद । ५:३:११२१७

(३०) मोहन दासि दस ।

कछु हसि कछु पय लग्गि पयंपह सीय रचि । १०:१७:११२

(३१) कहा पयंपह न्रिपति सउं कहिय चंद गुरु भाखि । १०:१६:२

(३२) आसन आदस सुच्चिय दिय कच झारिय तब रेनु । १:१८:१

आदस (आदेश) प्रणाम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

गृहणियां पति को मंडित करने वाली, सुखकारिणी हैं।[३३]

स्त्रियां

नायिकाएं शय्या संवारती, नाचती, गाती और वाद्य बजाती हैं।[३४] नारियां बाजार घूमती और शृंगारिक वस्तुओं(गृहस्थी के उपयोग की नहीं) का क्रय करती हैं।[३५] थोड़सियां अतिथि-सत्कार में प्रयुक्त हैं।[३६] ये राजाओं का मनोरंजन भी करती हैं।[३७] दासियां राज-रमणियों का संदेश उनके प्रियतम तक पहुंचाती हैं।[३८] हर्म्य में पुरुष मनोरंजन[३९] और बाजार में माला बनाकर द्रव्य से पुरुषों के गले में डालने का काम करती हैं।[४०] जल भी भरती हैं।[४१] दूती काम की उत्तेजना कर पर पति के लिए प्रेम की लालसा उत्पन्न कराती और स्वपति से सम्बन्ध-विच्छेद करवाती हैं।[४२] ग्रीवा, ताली तथा नेत्रों के संकेत और अपनी वचन-रचना की निधि से ज्ञानियों के भी धैर्य खंडित करती हैं।[४३] साम, दाम, दंड और भेद से नायिकाओं के नायक के प्रति दृढ़ विचार को छुड़ाती हैं।[४४]

साधु-वर्ग

भीड़ से अगम्य बाजार में कोटि-कोटि नंगे साधुओं के घूमने के अतिरिक्त उनका कोई भी कार्य नहीं उल्लिखित है।[४५] उनके

---

(३३) निय मंडन भरतार। सुह कारिणी। ४:१८:११२

(३४) ४:२३, १५ से २३ तक

(३५) ४:२५, ११ से १६ तक और ३१ से ३४ तक

(३६) ५:२१ सपद,

(३७) ५:३५ से ४० तक, ६:७ सपद

(३८) पृथ्वीराज के पास संयोगिता और उनकी महारानी का संदेश दासी द्वारा पहुंचाना।

(३९) ६:७ सपद

(४०) ४:२५:७-८

(४१) ४:१३:४, ४:४४:१

(४२) अनेक बुध्धि बुध्धि सच्च बुध्धि काम बम्भय।
तै प्रचारि काम च्यारि बाम अंगनं समुभ्भयं।। २:१३:३१४

साथ में लंगरी-वस्त्रधारी साधुओं के यूथ भी दिखाई पड़ते हैं।[४६]

उपसंहार

इस समय लोगों के सामने न तो कोई समाज-कल्याण के लिए संगठित कार्यक्रम था और न इसकी आवश्यकता का कोई अनुभव ही हो रहा था। पड़ोसी देश के नवोदित मुसलमान जाति से सम्पर्क तो हो चुका था, किंतु उनके-सुल्तान के भारत भूमि को अपने स्वत्व में रखने की लालसा से उत्पन्न आक्रमण और देशके भावी समाज की आरक्षा की समस्या के प्रति दूरदेशी का कार्य नहीं किया गया है। समाज के नायक को अपनी शूरता पर अधिक आस्था हो गई है। वह विलासोन्मुख है, भावी संकट से विमुख है।

मध्यम वर्ग में राज-दरबारी होना आदर्श है।[४७] उनमें औपचारिकता अधिक है।[४८] सामान्यजन के दुर्व्यसनों में जुआ और वेश्याओं में अनुरक्ति है।[४९] इस कार्य को तथा दूती के कार्यों को समाज बुरी दृष्टि से नहीं देखता है। दासियों के आदेश पूर्वक आसन देने [५३] और पूछने [५४] में प्रयुक्त `आदेश` शब्द `नमस्कार` के लिए उल्लिखित है।

---

(४३) जे ग्रीव ग्रीव तार तार नैन सेन मंडिही।
जे बचन्न विंध्य निध्य धीर ही संधान चंडिही। २:१३:३१४

(४४) परठ्ठि पंगराज दुत्ति दुतीय आलि सुबेकने।
साम दान दंड भेद सारंग विपच्छने। २:१३:११२

(४५) दिव्षिये कोटि कोटिन्न कंगा। ४:२३:२

(४६) लंगरी यूथ तिनका प्रसंगा। ४:२३:१

(४७) देखिए अ०टि० सं० १५

(४८) ,, ,,, १६ से १६

(४९) ,, ,, २४ से २५

(५०) ,, ,, ४२ से ४४

(५१) ,, ,, ३५ से ३६

(५२) ,, ,, २२ से २३

(५३) आसन आदेस सुच्चिय दिय। १०:१८:१

(५४) आयसु सम पुच्छइ दासि। १०:१६:१

(घ) लोक-दृष्टि

(११६ शब्द, १६७ पर्याय सहित लोक दृष्टि के संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं।)

अनुच्छेद	——	संदर्भ
१ —		लोक विरुद्ध आचरण त्याज्य है
२ —		सुख, युद्ध
३ —		देव—गुरु—सेवा
४ —		यश
५ —		द्रव्य
६ —		परिवार
७ —		लज्जा
८ —		बुद्धि
९ —		शील, दान, स्नेह, भय, मान, आत्मबल, आत्मरक्षा, विश्वास, आशा, क्रीड़ा, विलाभ, अशोक, दोष, स्वप्नांतर
१० —		देवी-देवताओं के माध्यम से
११ —		सहज-प्रवृत्तियाँ
१२ —		सामयिक-मांग
१३ —		इच्छाएं
१४ —		उपसंहार

लोक-दृष्टि[1]

लोक-विरुद्ध आचरण त्याज्य है

लोक नीति, व्यावहारिक ज्ञान और लोक-मंगल की भावना पर निर्मित होती है। इसलिए उसके प्रतिकूल आचरण स्तुत्य नहीं है। भारत में लोकनीति के विरुद्ध तो शास्त्रीय आचरण तक को भी प्राथमिकता नहीं मिलती है[2]। इस काव्य में लोक नीति पर पूरा ध्यान रक्खा गया है। पृथ्वीराज को युद्ध-स्थल से लौटते देख कर संयोगिता ने अपना सिर पीट लिया और सखियों से कहा, कि जिस प्रिय की ओर लोगों की उंगलियां फिरें, उस प्रियजन से कोई प्रयोजन नहीं[3]। दूती ने संयोगिता को समझाया कि ` हे बुद्धिहीना। लीक त्याग कर चलने वाली बाला,[4] तू भिन्न रस की पृथ्वीराज-वरण सम्बन्धी बातें क्यों बोल रही है[2]। तू राजेश्वर की दुहिता है और वह लघु[3] लघु पिता का पुत्र है।`[4]

वैदिक काल से लेकर आज तक भारतीयों के सामाजिक जीवन का लक्ष्य सुख और शांति की प्राप्ति रही है।[5] इस काव्य में भी

---

(१) यहां लोक विचार से उन तात्कालीन समाज सम्बन्धी मान्यताओं और निषेधों का संदर्भ है जो इस अध्याय में नहीं अथवा कम महत्वपूर्ण ढंग से उल्लिखित हैं। स्पष्ट वर्णित सामाजिक विधि-निषेधों के अनावश्यक पुनरावृत्ति से बचा गया है

(२) यद्यपि शुद्धम्,

लोक विरुद्धम्,

न करणीयम् ,

न करणीयम् ।

(३) इह कहि सिर धुनि सखिन सउं दिखिय संजोगि सुरज्ज।
जिहिं प्रिय तन अंगुलि फिरइ तिहि प्रियजन कहा कज्ज ।।

६:३०:११२

सुख मार (कामदेव) का आरोह (उत्कर्ष)[७] है जो अन्य युगों के संयमित सुख से भिन्न और अपने परवर्ती संत-साहित्य के सर्वथा विपरीत है।[८]

युद्ध

क्षात्र-धर्म-प्रधान काव्य होने से शांति के बदले युद्ध और उसमें मरण की सर्वोच्च मान्यता है।[९]

संहिता-युग के चार सामाजिक ऋणों — (१) देव ऋण (जिसने जल, हवा, अग्नि और वर्षा दी) (२) ऋषि ऋण-(जिसने वेद दिया) (३) पितृ ऋण (जिसने अच्छा कुल दिया) और (४) मनुष्य ऋण (आपसी व्यवहार)[१०] में से प्रस्तुत काव्य में केवल दो ऋणों ~~का उल्लेख है~~ — देव ऋण और गुरु ऋण ~~। इन्हीं की प्रधानता~~ रह गई है जिनकी सेवा द्वारा उऋण होना अच्छे लोगों का धर्म है।

देव-गुरु-सेवा

संयोगिता-विलास ने पृथ्वीराज से देव सेवा[११] और गुरु सेवा भी विस्मृत करा दिया है। यदि किसी के मन गुरु[१२] जन के प्रति आदर नहीं होता है और वह तात तथा ज्ञानी पुरुषों से रहित रहता है तो उसके कार्य जब तक चन्द्र तथा दिवाकर होते हैं (सदैव) नष्ट होते हैं।[१२]

---

(४) अबुधा अबीह बाला क्यंउ उच्चरिय भिन्न रस रनम्।
लहु आ लुहार पुत्ता तुं पुत्तीय राकसं धीय ।। २:१६:११२

(५) ऋग्वेद ५:५१:११+१५, १०:६३:३:१६, १:८९:१,२,६, ८,९,१०, १०७:१ और अथर्ववेद १:३१:४ तथा १९:८:७ में स्वस्ति, भद्र और अभय अर्थात् सुख के लिए देवताओं और देवाधिदेव से प्रार्थी हुए हैं कि " बढ़े हुए यश वाला इन्द्र हमें सुख दे, सब ज्ञानों वाला पूषा हमें सुख दे, अटूट और अकुंठित वज्र वालातार्क्ष्य हमें सुख दें, बड़ी वाणी का स्वामी हमें सुख दे।

ऋग्वेद १:८९:६ —भा०नी०शास्त्र (भा०शा०क०), पृ०३५,३६

(६) आनन्द २:१०:६, ९:१२:३, भोग २:२४ सफर, रस १०:१४:१, सुख ४:१८:२, सुखं ३:१७:३२

(७) सुख सुख मार आरोह। १०:२५:२ ·

(८) हिन्दी के परवर्ती भक्ति साहित्य में कामिनी अवगुण की खान और

इसके परवर्ती संत साहित्य में गुरुओं की महत्ता और अधिक बढ़ गई है वह गोविन्द के तुल्य बन गया है।

सुखमय जीवन मान्य और श्रेयस्कर होते हुए भी यह सभी जानते हैं कि भोगों को भोग कर कोई यहां रहा नहीं है।[१३] केवल जिसकी कीर्ति विस्फुटित होती है, वही मरने पर भी नहीं मरता।[१४]

यश

कहते हैं कि सतयुग में राजा बलि ने कीर्ति के लिए तीनों लोक दे दिया था।[१५] इसी कारण यश-लाभ के लिए जयचंद ने यज्ञ करने की ठानी। पृथ्वीराज का कहना है कि अपमान पूर्ण जीवन से मृत्यु भली है।[१८]

(८ का शेष) त्याज्य है। काम परम शत्रु है।

(६) इसका उल्लेख राजनीतिक परिस्थिति के अध्याय में है।

(१०) अरु गुरु देव सेव सुनि साई। १०:७:२, २:१५:१, २:१६:१ भी देखिए।

(१२) गुरु जनो जि मनो नास्ति तात आतात वर्जिता।
तस्य कार्य विनस्यंति यावत् चन्द्र दिवाकर।। ६:२६:१:२

(१३) के के न गया महि मंडलमि धर ढिल्लाय दीह दीहाइ। २:२:१

(१४) विफुफुरइ जासु किती ते गया नहु गया हुंति। २:२:२

(१५) सतजुग्ग कहइ बलिराइकिन। तिनिकिति काज त्रैलोक दिन।
२:३:१६

(१७) अब करहि जग्गु जे लेहि कव्व। ९:१:१०

(१८) अब जीवन वांछहि अधिक कहि कवि कोन सयानु। ३:४०:२

परिवार

दिन दिव्य उसका माना जाता है जो पिता-पुत्रादि के स्नेह और गृह का भोग करता है।[२३क] लघु का पुत्र होना अवांछनीय है।[२४] पर-स्त्री-गमन रावण, बालि, चन्द्र, सूर्य और इन्द्र के समय से इस काल में अधिक जघन्य सामाजिक अपराध माना गया है।[२५] नगर के नागर नरों की गृहणियाँ आवासों में रहती हैं।[२६] ह अथाइयां पुरन्दर को भी मुग्ध करती हैं।[२७]

लज्जा[२८]

सुल्तान शहाबुद्दीन ने अपने भटों से रणभूमि में कहा कि तुम लज्जा धारण करना, और मुझे लज्जित न करना।[२९]

बुद्धि

आंखें चार मानी गयी हैं। पृथ्वीराज ने कवि चंद से कहा कि मैं दोनों आंखों से हीन हो गया हूं, तुचार-- तात्पर्य दो शरीर और दो बुद्धि की -- आंखों से भी हीन है। यह देखने में चूक रहा है कि असुरबध सुर के बिना कैसे संभव है? मैं सुर तो बंदी उल्लू हो रहा हूं।[३०] कवि चंद सर्वज्ञ[३१] है और उसकी बुद्धि तीनों पुर में संचरण करती है।[३२] लोगों की ऐसी धारणा है कि भावी भोग के अनुरूप मत[३२क] भी हो जाता है। पंडित[३२]

(२३क) पिवे पुत्त सनेह गेह भुगता युक्तानि दिव्या दिने। ६:१२:१

(२४) भिन्न रस ...... । लहु आ तुहार पुत्त। २:१६:१+२

(२५) ३:३६ स० पद

(२६) नगर ति नागर नर धरणि रहहिं आवासि अवासि ।। ४:१७:२

(२७) मोहइ अथिय पुरंदर। ३:१३:२

(२८) लज्ज ११:७:६, लज्जह २:१५:२, लज्जा २:५:१५, फिर १० : २२:२

(२९) धरहुं लज्ज, लज्जहुं न कर। ११:७:६

(३०) आंषिहीन दोउ भयउं तुं चहु आंषिन चूक।
असुर बध्धु किम बिन सुरह मय सुर बंधउ उलूक ।।
१२:३७:११२

(३१) तुम सरवग्गि सु कव्वि। १०:१७:३

(३२) तिहु पुर तुह मति संचरइ कब्बन सुहे कवि चंदु। ३:२५:२

बुधजन,[३३] विद्धजन,[३४] और संज्ञानी[३५] सम्मानित तथा अबुधा,[३६] दुर्मति,[३७] मति नष्ट,[३८] और मूर्ख[३९] निंद्य हैं। बुद्धि[४१] उपाय के उपाय के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। दूतियां अनेक बुद्धि (युक्तियां) शोध शोध कर सुप्त काम को संयोगिता में जगाती हैं।[४१] धूर्तता[४२] अच्छी समझी गई है। यह कुशल राजनीतिज्ञ के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। पृथ्वीराज की प्रशस्ति में उसका दरबारी गुरु गोविंद राज ने जयचंद के दूत से कहा कि हमारा राजा, पृथ्वीराज, रूप में दानव और धूर्ताधिराज[४२] है। कवि चंद ने पृथ्वीराज को उत्साहित करने के लिए कहा कि तुम मन्मथराज हो, अवधूत हो, और धूर्त हो। कवि चंद ने अपने लिए गोरी के दरबान से कहा[४४] है।

(३२क)जस भावी नर भोगवइ तस विधि अप्पइ मत्त ।। १०:१३:२

(३२ख) ३:१६:१

(३३) २:३:४०

(३४) २:३:५४

(३५) २:१३:४

(३६) २:१६:१

(३७) दुम्मइ ११:१२:६

(३८) मति नट्ठ १२:३०:२

(३९) मुघ्ध १२:१:३

(४१) अनेक बुध्धि सध्ध मुच्छि काम जग्गवइ । २:१३:५

(४२) दानव ति रूव अवतार धुत्त । २:३:३४

(४३) मनमथ्थराय अवधूत धुत्त । १२:३३:११

(४४) धूत धूत । १२:७:६

(४५) (जयचंद ने) बुद्धि पुराण बलि बंध वीर । २:१:५

(जयचंद की दूतियां) अनेक बुध्धि बुध्धि सध्ध मुच्छि काम जग्गवइ । २:१३:५

कि ' तू धूर्तों का भी धूर्त है ।'[४४] किंतु आजकल धूर्तता का युग समाज में यह बुरा और निंदनीय है । शोध कर कार्य करना,[४५] समदर्शी[४६] होना अथवा किसी को संकट में [४७]न देखना अच्छाइयां हैं । कोकिल की तरह,[४८] मधुर बोल[४९] सर्व प्रिय है । लेकिन जो कथन[५०] मेटा नहीं जा सकता वह सार मंत्र कहना स्तुत्य है ।[५०] जो कहा जाय, वह बोल[५१] प्रमाणित रहना चाहिए [५१] क्योंकि मर्द वही जो मुख से जो कुछ उच्चारण[५२] करे आगे उसे सब को साथ सके ।[५२] मनुष्य का जीवन वहीं तक है जहां तक वचन[५३] के जाने पर मनुष्य मृत हो जाता है ।[५३] आजकल की भांति उस समय में भी बात बनाना[५४] अच्छा नहीं समझा जाता था । सामंतों से पृथ्वीराज के इस कथन, ' कुछ समय आप लोग रणक्षेत्र में रहें, तब तक मैं नगर की प्रदक्षिणा कर आऊं ' पर कन्ह ने कहा, ' हे अज्ञानी राजा, तू बात बनाने में समर्थ है, पर यदि तू साथियों का साथ छोड़ता है, तो तू ने उन्हें साथ ही क्यों लिया ।' [५४]

(४४,४५) देखिए पिछले पृष्ठ पर ।

(४६) (कवि चंद बलन राजगुरु के लिए) तुम समदिष्ट ।१०:६:१

(४७) ,, ,, तुम अरिष्ट न देखउ । १०:६:१

(४८) मनउ कोकिला भाष । ४:२३:१४

(४९) बोलइ सु मिट्ठउ । १२:७:५

(५०) मिट्यउ न जाइ कहणो वय सार सा मंत । ८:७:१

(५१) जि कहु मोहि अप्पणा कहउ सु बोलु रहउ परवानं । १२:३१:२

(५२) मरद सु मुख उच्चरइ जि कहु अग्गइ सब सध्धिइ । १२:४१:४

(५३) साजीवन जतह वय नु वयन गये मृत होइ । २:२१:१

(५४) सुनउ सबै सामंत हो कहइ नृपति प्रथीराज ।
जउ महुकउ छिन थंतमइ तउ दक्खिन नयर विराज ।।
बोलउ कन्ह अयान नृप मति मंडन समरथ्थ ।
जउ मुक्कइ सथ सथ्थियनु तउ किम लिन्ने सथ्थ ।
६:११२ समस्त पद ।

दूतिया अपनी वचन-रचना[५५] की निधि से सज्ञानियों के भी धैर्य को खंडित करती है।[५५] गुरु गोविन्द राज के इस कथन कि जयचंद अपने दल और द्रव्य के झूठे गर्व के कारण यह देवताओं की तरह बोल बोल[५६] रहा है, में देवताओं का बोल अच्छे संदर्भ में नहीं प्रयुक्त है।[५६] प्रतिज्ञा [५७] सामान्य रूप में प्रयुक्त है। इसको बहुत महत्व नहीं दिया गया है। हठ[५८] अच्छा नहीं, यह फणीन्द्र के मुख में उंगली देने के समान है। [५९] अमात्य जयचंद को परामर्श दिया कि कलियुग में राजसूय यज्ञ न करके प्रतिदिन षोडस दान[६०] दे। पृथ्वीराज और उनके चंद आदि साथियों ने भी देखा कि गंगा के तट पर प्रातः काल राजागण स्वर्ण, आभूषण और पृथ्वी भी दान में देते हैं।[६२] लेकिन ब्राह्मण को चाहे जितना दक्षिणा मिले, उनको वह थोड़ी ही लगती है।[६३]

स्नेह

स्नेह [६४] उत्तम वृत्ति है, किंतु मन्मथ के स्नेह[६५] संज्वर के बाणों द्वारा युवाजन के तन विदीर्ण होते हैं।[६५] करनाटी दासी के स्नेह[६६] ने कयमास की ऐहिक लीला समाप्त की।

भय

भय ने सती और पृथ्वीराज के महत्व को बढ़ा दिया

---

(५५) जे वचन्न विध्धि निध्धि धीर ही सज्ञानं षंडिही ।।
२:१३:४

(५६) दल दव्व गव्व तुम अप्रमान ।
बोलहु त बोल देवन समान ।। २:३:२३-२४

(५७) मरुज ८:२९:१, पनहु १२:२६:३, परतंग ७:२८:१

(५८) आलि (आहि) २:१३:१, हठि ३:२५:१

(५९) हठि लग्गह बहुआन न्रिप अंगुलि मुषाह फणिंदु । ३:२५:१

(६०) करौं षोडसा राय अप्पाति दानं । ४:१०:१३

(६१) षोडसा दान दिनु देहु देव । २:१:१४

(६२) करौं हेम सामान पृथ्वी प्रमानं ।। ४:१०:१४

(६२) भूषन सुदान । २:३:५६

(६३) मनउ हुअ दक्खिन लग्गह थोर ।· ४:२५:१२

(६४) निधि ३:४:२, नेह २:५:३५

(६५) संवर सुबान सुमनाह नेह । विदारये बीर जुव जननि नेह ।।
२:५:३५-३६

मान

आत्मबल-
आत्मरक्षा
विश्वास

दरबान, क्यमास-पत्नी के सती-श्रृंगार को भय[67] से देखकर रोक न सका, उसे जाने के लिए मार्ग दिया।[67] पृथ्वीराज के प्रताप के भय से गजनी की गोरांगनाएं थर्राती हैं।[68] पृथ्वीराज के हठ पर कवि चंद द्वारा क्यमास-बध के रहस्योद्घाटन जनित विषम परिस्थिति में दरबारियों का अपने अपने घर भाग जाना व्यवहार-कुशल बुद्धिमान मनुष्य का कार्य है।[69] आन-मान[70] न छोड़ना श्रेष्ठता का सूचक है, किन्तु क्यमास पत्नी ने कविचंद से याचना की कि इस समय समस्त मान-भंग[71] की भावना को छोड़, क्योंकि जो निर्धारित है वह अवश्य होगा। पर काज[71क] के लिए आज नृपति से प्रार्थना कर।[71] आत्मबल[72] और आत्मरक्षा[73] के लिए चन्द्र ने पृथ्वीराज को उत्साहित किया है। मंत्री के विश्वास[74] से हमारा विश्वास उठ गया उससे हमारा सब बिगड़ गया, कथन में विश्वास अच्छे भाव में नहीं प्रयुक्त है। काम बिगड़ने पर लोक में हंसी होती है।[75] आशा[76] ऐसी उत्तम वस्तु है, पिता (जयचंद)

---

(६६) निधि ३:४:२

(६७) दरणा पेषि दरबान रुक्कि सक्किय न मग्गु दिय। ३:३३:२

(६८) सबद सह रोस साहीय संकी। २:७:१७
थरहरति थकि रही भीन लंकी। २:७:१७

(६९) अप्पु अप्पु गए ग्रेह परानहु। ३:२८:२

(७०) आ न मुक्कइ मान। २:२६:२

(७१) मान भंगु मुक्कइ सयल लषित निमिष्ष नि मिट्टहि।

(७१क) पर काज आज मंगउ नृपति...... । ३:३२:५१ ६

(७२) १२:४६:२

(७३) १०:२३:५

(७४) बिग्गहयउ जग्गु मंत्री बिसासि। १:१०:८

(७५) बिग्गरइ तु बहु बिधि हसइ लोग। २:३:२२

(७६) चाहि गहउं चहुआन तकु जु मिट्टइ बाला आस। २:२७:२

आशा

अंगीकृत

अशोक

विक्षोभ

दोष

स्वप्नांतर

अपनी पुत्री (संयोगिता) की आशा[७६] (कि पृथ्वीराज को वरण करूंगी) मिटाने के प्रयत्न में है । लोगों से अंगीकृत होना उचित है ।[७७] पृथ्वीराज ने सामंतों से कहा, कि अपना इतना बड़ा बोझ[७८] (अहसान अपने पास रक्खो (मुझे प्राण-रक्षा के लिए रण छोड़ कर घर जाने की सलाह न दो । शुभ हर्म्य[७९] हो, उसके मुकुलों से चन्द्रमा की मयूखों का अमृत झड़ता हो, उसमें दम्पति का मन अशोक[७९] हो के रहना अच्छा समझा जाता है । गजनी में पृथ्वीराज का विक्षोभ[८०] जुटा देना अधिक गौरव का विषय है । प्रधान ने जयचन्द को परामर्श दिया, कि हे देव ! अनेक देवालय[८१] निर्मित कराइए, यह अच्छा है । तातार खां ने शाह शहाबुद्दीन से बताया कि नट नर्तक, पाखंडी और डमरू अविश्वसनीय हैं ।[८२] दोष[८३] बहुत बुरा है । रातोंरात घर घर में यह वार्ता चली कि, " दाहिमा (कयमास) को कोई बड़ा दोष[८४] लगा है और वह दोष[८४] उसके सिर से उतर कर मिट नहीं रहा है ।[८४] " कवि चंद अपने अभीष्ट देवी सरस्वती के गुह्य प्रदेश का वर्णन करके अपभाषण[८५] दोष से बचे । पृथ्वीराज ने स्वप्नांतर का तथ्य ध्यानपूर्वक सुनकर राजगुरु ने राजा के श्रेष्ठ मस्तक पर हाथ रख कर

---

(७७) न्याय नयर कनविज्ज पहुत्तो ।
कवि अग्गहि अंगीकित ...... ।। ५:८:२१२

(७८) बुझिअइ न सूर सामंत हो इतउ बोझ अप्पन धरहु ।
८:२:६

(७९) सुभ हरम्य ।
मुकुल मऊष अमृत झरहि करहि जु मनहि असोक ।। ६:४१२

(८०) (दूत का सगर्व कहना पृथ्वीराज से) गज्जने देसि विच्छोहि गोरी ।
२:७:५

(८१) करि धम्म देव देवर अनेय । २:१:१३

(८२) नट नाटक डंभी डमरू नहि बुझिभव सुरतांन । ११:२०:२

(८३) दोस, कलि (कल्मष,दोष) १:२६:६, दोष १:३०:११

अभय-पंजयंत्र पढ़ा। सहस्र कलश भर कर फूक कर लीर रवि-शशि को अर्ध्यदान किया। दस हाथी, दस वृष, दस महिष तथा मोती का अनंत दान दिया। जिससे कि स्वप्न का बुरा प्रभाव न पड़े।[८६]

देव और देवी की स्तुति में आनंद,[८७] कल्याण,[८८] शक्ति[८९] पवित्रता,[९०] उदारता,[९१] रूप,[९२] छवि,[९३] गुण,[९४] अनुराग[९५] करुणा,[९६] बुद्धि,[९७] उद्धार होना,[९८] मस्तमौलापन,[९९] आत्माभिमान[१००] को अच्छा समझ कर सामाजिक मान्यता दी है। द्वन्द,[१०१] विघ्न[१०२] अबुधा[१०३] अथवा ओछी मत,[१०४] कलंक,[१०५] छैल,[१०६] नीचता,[१०७] और मोह[१०८] आदि को सामाजिक बुराइयां मानकर इनसे दूर रहने के लिए प्रार्थना की गई है।

सहज प्रवृत्तियां

इस काव्य में क्रोध[१०८] सहित युयुत्सा[१०९] की प्रवृत्ति लोगों में ३३ प्रतिशत व्याप्त है। भोग[११०] और काम[११०] २१ प्रतिशत है।

---

(८४) दाहिभउ दोस लग्गउ भरउ मिटइ न कलि सु उत्तरी ।३:२९:६

(८५) अभाव दोष बंचही । ३:१७:३१

(८६) १०:२९ समस्तपद ।

(८७) १:३:६, ४:११:६

(८८) चंगे ४:११:२, सुहं ३:१७:३२, सुभ ६:४:१

(८९) १:४:४

(९०) उणो १:३:८ (९१) १:१:३ (९२) ३:१७:४

(९३) ३:१७:२६ (९४) १:१:२ (९५) रचे १:३:१८

(९६) ४:११:१४ (९७) १:२:१ (९८) १:४:८

(९९) १:३:२०, (१००) भद्दव १:३:६

(१०१) १:३:१६, ४:११:६ (१०२) १:२:४, (१०३) १:२:१

(१०४) ३:१७:१०, (१०६) ४:११:१२ (१०७) ४:११:१३

(१०८) १:३:१८

(१०९) १५४ में ४६ आवृत्त :- क्रोध २:१:१७, २:३:७, २:३:[illegible]

दुख[१११] उद्वेग के सहित संवेदना[१११] १४ प्रतिशत, पलायन[११२] और और भय[११२] ६ प्रतिशत तथा हास[११३] की आवृत्ति ७ प्रतिशत है। पुत्र कामना और योजनान्वेषण की सहजप्रवृत्तिया नहीं हैं। विधायकता[११४] एक प्रतिशत है। हिन्दुओं में प्रमुख प्रवृत्ति युद्ध और भोग है। मुसलमानों में भोग की प्रवृत्ति नहीं है। युद्ध और स्वत्व की प्रधानता है।

सामयिक मांग

अपने अपने इष्ट देवों से याचना की गयी है कि कीर्ति[११५] दें, रक्षा[११६] करें और विघ्न[११७] हटावें। संयोगिता ने पृथ्वीराज को वर के[११८] रूप में और कवि ने पृथ्वीराज-काव्य[११६] के

(१०६का शेष) २:१७:३, २:२८:१, ३:४:४, ३:७:३, ३:११:२, ३:२६:४, ३:३६:६, ५:१३:२२, ५:१३:२५, ५:१४:१, ७:५:१, ७:१३:४, ७:१४:१, ७:१७:२, ७:१७:५, ७:१७:१६, ७:२६:१, ७:२६:२, ७:२८:३, ८:६:२१, ८:१०:४, १०:६:३, १०:२८?:४। ११:१०:४, १२:१५:६, १२:३४:२,

युयुत्सा:—२:१७:४, ५:४८:३से५, ७:१:२, ७:४:५, ७:५:५, ७:७:२, ७:१७:४०, ७:२१:२, ७:२५:१, ७:२५:६, ७:३०:५, [illegible]:३१:८, ८:१:३, ८:१:५, ८:५:६, ८:३०:१, १०:२८:३, ११:१२ सपद, ११:१२:१७

(११०) १५४ में ३३ आवृत्त :—भोग— २:२:१, २:२४:४, ३:६:२ ३:१२:२, ३:४२:१, ६:१:४, ६:८:१, ६:८:[illegible], ६:६:४, ६:१२:१ १०:४:२, १०:१४:१,

काम— २:१३:५, २:१३:६, २:२०:४, २:२२:२, ३:२:१, ३:३:२, ३:१०:१, ५:२५:१, ५:३६:२, ५:४० सपद, ५:३८:२६ ६:१५:५, ६:१५:१८, ६:२१:१, ६:२५:२, ६:३२:१, ६:७:२, ६:८:३, ६:१३:२, १०:५:४, १०:१२:१+२

(१११) १५४ में २१ आवृत्ति। दुख:—२:३:५, २:३:४२, २:७:७, २:१०:१७, ३:३२:२, ६:२३:६, ६:३०:१, ६:३२:२, ७:३१:४, ८:१०:१, ८:१५:१, ८:२४:६, १०:२२:२, १०:२४:१, १२:१६:२,

सफलता की मांग की है। पृथ्वीराज ने चंद से जयचंद को[१२०] दिखाने और जयचन्द से दहेज में युद्ध[१२१] की मांग की है। जयचंद ने अपने सुभटों से पृथ्वीराज को[१२२] पकड़ने और अपने गुणियों से कवि चंद की परीक्षा[१२३] लेने की मांग की है कि कविचंद दंभी है अथवा वास्तव में सरस्वती का बरदानी है।[१२३] चंद ने गोरी से मांगा है,[१२४] कि वह पृथ्वीराज द्वारा एक वाण से सात घड़ियाल मारने की कला

(१११का शेष) १२:२६:२, १२:३३:१६, १२:३४:२

संवेदना:- १२:१:५, १२:१५:४

(११२) १५४ में १४ आवृत्ति। पलायन :- ३:२८:२, ७:४:२०, ७:३१:८, ११:१२:१६

भय:- २:७:१८, २:७:२०, २:१०:१, २:१५:४, २:२८:४, ३:३१:५, ३:३२:३, ३:३३:२, ५:२६:१, ५:४८:५

(११३) १५४ में ११ आवृत्ति। हर्ष:- २:३:५६, ३:३२:२, ५:१६:२ ६:६:२, ६:३४:१, ६:२१:१, ७:२७:४, ८:१२:१, ८:२२:१, १२:३०:१, १२:४६:३

(११४) संयोगिता के लिए जयचंद के द्वारा अलग आवास बनवाने और पृथ्वीराज द्वारा शुभ हर्म्य के निर्माण कार्य। १५४ में दो बार।

(११५) वञ्चिय किंत्ति बोलियं बयन ढिल्लीपुरह नरिंद। ३:३५:१

(११६) साय पातु गणेस..... । १:१:४

(११७) (सरस्वती से) विघना घना नासिनी। १:२:४

(११८) वर मेकं सयं देह अन्यथा पृथिराज ए। २:१६:२

(११९) सोय पातु गणेस सेस सफलं प्रिथिराज काव्ये हितं। १:१:४

(१२०) तउ अप्पउं क्यमास तु हि मिटिहि उरह अंदेसु।

[illegible] पहु पंगुर जा जयचंद नरेसु ।। ३:३७:११२

(१२१) परणेव तव पुत्री युध्यं मंगति भूषनं सोइ। ७:२:२

(१२२) भाषि प्रथिराज बाइ जिनि। ५:४८:४

पसु परतंग गहन किय। ७:२८:१

दिखलाये।[१२४] कयमास-पत्नी ने अपने मृत पति के शव को सती होने के निमित्त मांगा[१२५] है, जयचंद के गुणियों ने, परीक्षा में, चंद से मांगा[१२६] है, कि वह जयचंद का अदृश्य वर्णन करे।[१२६] पृथ्वीराज ने कवि चंद से यह भी मांग की है[१२७] कि या तो वह कयमास-कांड का रहस्योद्घाटन करे अथवा हरसिद्धि का वर छोड़ दे।[१२७]

इच्छाएं

रात में कन्नौज पहुंचने पर सामंतों सहित पृथ्वीराज की इच्छा है कि अब शीघ्र प्रात: हो।[१२८] वह कन्नौज की प्रदक्षिणा करना चाहता है।[१२९] उनकी युद्ध करने की साध[१३०] है। उनकी अभिलाषा है कि जयचंदको[१३१] जीतूं, यश[१३२] मिले, संयोगिता को दिल्ली जाऊं[१३३] (कन्नौज में उनके सामंतों की भी यही इच्छा है कि पृथ्वीराज संयोगिता को दिल्ली ले जाय)[१३४] उसके साथ रहूं[१३५]

---

(१२३) आयस भयु गुनिजन तन चाह्उ।

किधउं हिमं कवि कवि परमांनी। ५:४:११३

(१२४) इकु दिन प्रथीराज रस मुष कढ़ी तिह वार।

सिंगिनि सर वर अग्र विन सव हनन धरिहार।।

तिहि आयउ तुहि आस करि तुकि तु पास चहुआंन।

सोइ दुरोग लग्गहुं मनह कढ़न कउं सु विहान। १२:२७:२८सपद

(१२५) देव वरदाइ वर मंगि बाला। ३:३०:४

= पर काज आज मंगउ नृपति कहु त प्राण पमुक्कहि। ३:३२:६

= बाला मंगइ वर्‌यो ..... । ३:३४:१

(१२६) (जयचंद के गुनियों ने कहा) अहो चंद वरदाइ कहावहु।

कनवज्जह दिष्षन नृप आवहु।

कउ सरसइ बल जानहु रंकउ।

तउ अदिट्ठ वरनउ न्रिप संकउ।।. ५:६:१सैक्ष

(१२७) कह कयमास बताहि मौ कह हर सिद्धी वर छंडि। ३:२३:२

(१२८) सु कहु इच्छि बच्छनु हुति ते सब दिष्षव प्रात।।४:६:२

(१२९) उचरिय चित्त चिंता नरेस। ४:७:१

और उसका सुख सुख [१३६] दूं। संयोगिता की एक मात्र दृढ़ अभिलाषा पृथ्वीराज को वरण करने की है। [१३७] चंद की इच्छा है कि वह पिंगल, भारत और महाभारत से बढ़ कर रचना करे। [१३८] अपने बाल मित्र और काव्य-नायक पृथ्वीराज को कैद में नेत्र विहीन कर देने की घटना सुनकर चंद को वैराग्य उत्पन्न हुआ और इच्छा हुइ कि वदरिकाश्रम में जाकर तप करे। [१३९] म्लेच्छ भूमि (गजनी) पर जो कुछ है, उसे वह देखना चाहता है। [१४०] कवि चंद चाहता है कि पृथ्वीराज गोरी को मार कर इस विपत्ति से मुक्ति पाने के लिए स्वत: भी मर जाये। [१४१] गोरी का फरमान मिलते ही कवि की साध कुछ बलवती हो गई। [१४२] वह अब मन में झखने (संतप्त होने) लगा कि शुचि प्रभात हो। [१४३]

---

(१२६) जउ अछ्छउ चित्र चेतमह तउ दक्खिन नयर विराज। ६:१:२

(१३०) जुध्ध साध लग्गियं। ६:१५:२५

(१३१) मोहि चंद हुइ विजय मन..... । ३:२१:२

(१३२) वंछिय कित्ति। ३:३५:१

(१३३) परणि राउ ढिल्लिय मुषह रुष किन्निप्र मन आस। ७:१:७

(१३४) सो नृप युवति न मुंकई कोइ। ६:२३:८

पहु परणि जाय दिल्लिय लगइ होई घरिघ्घरि मंगली। ८:४:६

(१३५) गंठि छोहि दक्खिन फिरिग प्रान करिग मनुहारि।।६:१६:२

(१३६) दइ सुष जोग संजोगि सोइ प्रथिराज जिय।। ६:८:२

तुं गोरी अनुरत्त। १०:२०:२

(१३७)२:२१:२, २:२५:२, ६:१३:२, ६:१३:४

(१३८) छंडिहउ पिंगल भरह भारथ्थ। १:५:२

(१३९) मइ तक्यउ तप्प बदरीय थान। १२:१५:७

(१४०) सह सहाव दर दिष्षयह जु कछु भुम्मि पर मिछ्छ। १२:१०:२

(१४१) १२:३५ सपद। उहुं महुठउ तुंहि जल्लिपहि। १२:३५:५

(१४२) भयउ चंदु भुष चंदु वंदु मयु काम सपत्तउ।

पातिसाहि गोरी नरिंद विद्ध बोल निरत्तउ।। १२:४२:१+२

जयचंद को लिखित भुगोल को बदलने,[१४४] राजसूय यज्ञ करने,[१४५] काव्य-लाभ[१४६] करने और पृथ्वीराज को पकड़ने[१४७] की इच्छाएं हैं। गोरी की भी पृथ्वीराज को[१४८] पकड़ने और भारत भूमि की प्राप्ति की[१४९] इच्छा है। सामंतों की इच्छा है कि स्वामी का वचन किसी भी दशा में भंग[१५०] न हो और उनके लिए प्राणोत्सर्ग[१५१] करें। नारियों को कंचुकी और पटोर देखने की बड़ी लालसा है।[१५२] चहुआन की एक दासी ने रस (सुख) की आकांक्षा की।[१५३] वीर प्रात:[१५४] और रात[१५५] चाहते हैं।

उपसंहार

सहज प्रवृत्तियों उभाड़, इच्छाओं की प्रबलता, और मांग की घनिष्टता से प्रकट होता है कि यह युद्ध का युग है।[१५६] जीवन[१५७] सुखमय है। कलाकार के कुशलता की परख की मांग बहुत है।[१५८]

---

(१४३) भाषत चंदु मन महि तब सुइ अच्छोत विहान। १२:१७:२

(१४४) भुवगोल लिषित दिष्षय सहीर। २:१:६

(१४५) अब करहि जग्गु। २:१:१०

(१४६) लेहि कव्व। २:१:१०

(१४७) चाहि गहउं चहुआन ... । २:२७:२

(१४८) तिहि गहन हउं इच्छहूं। ११:७:५

(१४९) (कवि चंद और राजगुरु का पृथ्वीराज को संदेश)
गोरी रत्तउ तुव धरा। १०:२०:२

(१५०) वचन सामि भंगु नन करहु। ६:१६:२

(१५१) तन तिलु ति तिलु कर भयउ कन्ह मन भिष्ष ।। ८:१८:२

(१५२) दिष्षहि नारि स कुंज पटोर। मनउ दुख दष्षिन लग्गइ थोर
४:२५:११+१२

(१५३) चहुआन दासिअ रखि कंषिअ। ५:२५:१

(१५४) निसि गत बंछीय मानं चक्की चक्काय सूर सा चित्तं।
विधु संयोग वियोगे कुमुदिनि कली कातरा णारा ।। ७:१८:१+२

लोक सम्मत आचरण श्रेयस्कर है। लज्जा, बुद्धि, सद् वचन और दृढ़ विचार, दान, स्नेह, मान्, आत्मबल, आत्मरक्षा और अंगीकृत होना आदि की समाज में मान्यता है। आश्चर्य है कि भारतीय समाज के मेरुदण्ड वर्णाश्रम व्यवस्था पर कोई विचार व्यक्त नहीं किया गया है।

अध्याय ३
सामाजिक-दशा का उपसंहार

विवेच्य काव्य की सामाजिक रचना हिन्दू,[१] मुसलमान,[२] यवन[३] और मंगोलों[४] से गठित है। इन सभी का जन्म-सम्पर्क प्राचीन है।[५] इनके पारस्परिक, सम्बन्ध की स्पष्ट असंतुलित दुर्व्यवहार की कोई उभाड़ नहीं है। हिन्दू और मुस्लिम राजाओं में, अवश्य, तनातनी घृणा एवं संघष द्वारा अनुप्राणित प्रवृत्ति विद्यमान है।[६] हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था, कुल और गोत्र के आधार पर अपने सामाजिक स्वरूप में भिन्न भिन्न जातियों में संगठित हो गयी है।[७] यह यहां मात्र क्षत्रियों में उल्लिखित है।[७] ये क्षत्रिय अपने को राजपूत भी कहने में गौरव का अनुभव करते हैं।[८] जबकि कुछ लोगों की धारणा है कि राजपूत कुलीन नहीं हैं।[९] हिन्दू जातियों के

---

(१५५) निसि गत वंक्षीय मानं चक्कीचक्काय सूर सा चितं।
विधु संयोग वियोगे कुमुदिनि कली कातरा णारा। ७:१८:११२

(१५६) युयुत्सा सहज प्रवृत्तियों में ३३ प्रतिशत सबसे अधिक विद्यमान है। मांग और इच्छाओं में भी सात सात प्रतिशत उपस्थित है। कुल-योग १६ प्रतिशत।

(१५७) सुख सहजप्रवृत्ति में २१ प्रतिशत और इच्छाओं में भी २१ प्रतिशत व्याप्त है। मांग में नहीं है। कुल योग १४ प्रतिशत

(१५८) दे० अ०टि०सं० ११६, १२३, १२६, १२७। मांग में ३१ प्रतिशत सबसे अधिक है।

(१) दे० अ०समाज रचना की टि०सं० ३५क से ७४ तक

(२) ,, ,, १ से ३५ तक

(३) ,, ,, ३५ क

(४) ,, ,, ७५

पारस्परिक व्यवहार की अन्य कोई समस्या दृष्टिगत नहीं होती ।

वर्णित हिन्दू परिवार ~~मूल किंतु विस्तृत~~ संयुक्त, पुरुष-सत्ताक, पितृ-वंशी, पितृ-नामी, पतिस्थानी, बहुपत्नीत्व, एक पति प्रथा मूलक है । उच्च कुलों में विवाह वयस्कावस्था में होता है । राजपूत की पत्नी अपने पति-वरण और अर्द्धांगिनी होने के अधिकारों के प्रति सजग है । उच्च कुल के लिए दासी परिवार की एक अनिवार्य आवश्यकता सी है ।[१०]

वेश्या प्रथा बहु-प्रचलित किन्तु असम्मानीय है ।[११] मुख्य हाट बाजारों में छैलों द्वारा वेश्याओं के प्रति अनुराग प्रधान होता था ।[११]

रहन-सहन का ढंग पुराना है । पश्चिमी पड़ोसी की नवागत सभ्यता का प्रभाव नहीं परिलक्षित होता । प्राचीन भारतीय स्थापत्य कला से निर्मित नगर और प्रासादों में,[१२] जनकीर्ण हाट-बाजारों में चिर-परिचित जन अपने पुराने ढंग के वस्त्राभरणों[१३] और मनोरंजन के साधनों द्वारा[१४] जीवन यापन में रत दिखाई पड़ते

---

(५) देखिए अ० अन्तर्जातीय सम्पर्क टि० सं० ५
(६) ,, समाज रचना ,, ६ से २४तक
(७) ,, ,, ,, ३५ से ५६ तक
(८) ,, ,, ,, ४२
(९) ,, ,, ,, ८३ के बाद
(१०) ,, परिवार ,,
(११) ,, समाज रचना ७१ और इसी अध्याय के (२, ३) की टि० सं० ३५ से ४२ तक
(१२) दे० अ० का (ख३)
(१३) ,, (ख१)
(१४) ,, (ख२)

हैं। मौलिक विचार और रचनात्मक कार्यक्रम का अभाव है।[१५] युग की अति विलासिता[१६] और युद्ध प्रियता[१६] ने हिन्दू समाज को ऐसा आत्म-निर्बल बना दिया कि जातीय-चेतन्य से स्फूर्त नवागत मुस्लिम समाज के सम्पर्क में अपने को वे उत्तम नहीं प्रमाणित कर सके और किसी भांति नव संस्कृति के पुनर्निर्माण में अपने को स्थिर कर पाए।

---

(१५) दे० अ० का घ लोक विचार

(१६) ,, (ह०) समाज में परिवर्तन लाने वाले सामाजिक तत्व।

(४) राजनीतिक स्थिति

(३६६ शब्द ४५६ पर्याय सहित राजनीतिक संदर्भ में प्रयुक्त है ।

१– राज्य

२– राजतन्त्र और शासन

३– युद्ध

४– राजनीति और राजकी शिष्टाचार

५– उपसंहार

(१) राज्य

(प्रयुक्त शब्द संख्या ६०)

अनुच्छेद - संदर्भ

१- राजतंत्र

२- शीघ्र बनने-बिगड़ने वाले, प्रेरणास्पद नहीं

३- राज्यों के नाम :- (१) कन्नौज

४- (२) दिल्ली

५- (३) गजनी

६- (४) आबू

७- (५) महाराष्ट्र

८- राजा

९- पदवी-प्रियता

१०-११- अन्तर्राज्य सम्बन्ध

१२- राज्यों की अस्थिरता

१३- उपसंहार

(१) राज्य

राजनीतिक भारत का जनपद युग बहुत पीछे छूट चुका है[१]। उसके स्थान पर आलोच्य काल में राज[२] (राज्य) है। इसका अधिपति राजा[३] होता है। इसको नरनाह[४], नरिंद[५], नरेसु[६], त्रिप[७], नृप[८], त्रिपति[९], पातिसाहि[१०], भुअपति[११], भुआल[१२], भूप[१३], भूभ्रत[१४], राइ[१५], राइसं[१६], राउ[१७], राव[१८] और सुल्तान[१८क] भी कहा है। मुसलमान सरदारों ने गोरी को हमीर[१९] द्वारा भी सम्बोधित किया है, जबकि रासो में हमीर[२०] मुसलमान जाति का बोधक है।

प्राचीन जनपद धर्म, अर्थ व्यवस्था, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से स्थानीय जीवन की दृढ़ इकाई थे। जनपदीय आदर्श लोक-जीवन में प्रभावशाली प्रेरक शक्ति के रूप में प्रविष्ट थे। प्रत्येक जनपद में समूह विशेष के सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन का स्वतंत्र विकास हुआ था और उसके साथ वहाँ के जन का विशेष स्नेह बंध गया था। `माता भूमि- पुत्रो हं पृथिव्याः` यह उसी उदात्त भावना की अभिव्यक्ति थी[२१]। इससे सर्वथा भिन्न इस काव्य में राज्यों का प्रयोग द्रष्टव्य है :— जयचंद ने मरट्ठ (महाराष्ट्र), थट्ठ, निम्मांच और

---

(१) ब्राह्मण युग (लगभग ई०पू०एक सहस्र) के अन्त में जनपद संस्था का प्रारम्भ और पाणिनि के समय तक (ई०पू०५००वर्ष) इसका पूर्ण विकास हुआ है। पा०भारत०भा०अ०अग्र० पृ०४१८.

(२) सुनियइ न पुन्य सभ अभ्भ राज(अभी राज्य में पुण्य नहीं सुनाई पड़ रहे हैं) २:१०:६

(३) १:६:१, २:१:७, ६:१२:२

(४) ६:३३:३, (५) २:७:१, (६) २:३:३० (७) ३:२५:१, ५:२:२ (८)२:१:१५ २:१२:२, (९) ६:१:१ (१०) १२:२६:१ (११) ४:१:५ (१२) ३:३८:२

(१३) २:३:३२ (१४) ३:५:१ (१५) २:१२:१ (१६).२:१६:२ (१७) २:३:५३, (१८) १:४:८

मुसलमानी इतिहासों के अनुसार उस समय हिन्दू राजाओं का `राय`

(देखिए अगले पृष्ठ पर

कारागर को भ्रष्ट किया [२२], करणाटी, करबीर, गुंडी और गुर्जर के लिए ग्रहण स्वरूप होकर उनकी कांति हरण की [२३], मालव, मेवाड़ और मंडोवर को हस्तगत किया [२४]। पृथ्वीराज ने मंडोवर को काटकर मण्डित किया [२५]। मल्लदंड के मोरी राज को दंडित करके उसका दमन किया [२६], रणथम्भौर के सिरका अभिरमण किया [२७],

---

खिताब था । अमीर खुसरो कृत अशीका-नायक इतिहास में गुजरात, रनथंभौर, माण्डू, तिलंग, याबर (चोल मंडल) देवगिरि के हिन्दू राजाओं को राय कहा गया है । इन्हीं में से बड़े `राय रायान` कहलाते थे, जैसे देवगिरि के राय-रायान रामदेव । इसी से हिन्दी ` रैया राय` बना । पद्मावत, मूल संजी०, वा०श०अग्रवाल, पृ० ६४८

(१८ क) ५:१३:८

(१९) ११:८:३

चन्द्र०काव्य: वि०वि० त्रिवेदी, पृ०५६

में लिखा है — हम्मीर (हमके मीर) = बराबरी के मीर (अधिकारी)

पद्मावत: मूल और संजी०वा०श०अग्रवाल,पृ० ६८० में लिखा है —

उमरा : सामंत, राजा, नवाब आदि । मीर : राज्य के उच्च पदाधिकारी । निजामुद्दीन कृत `तबकाते अकबरी` में अकबर द्वारा चित्तौड़ के घेरे का वर्णन करते हुए लिखा है, बादशाह के हुक्म से किले के चारों तरफ की भूमि भिन्न-भिन्न अमीरों को बांट दी गई कि अपने अपने हिस्से में हमला करें ।

(तबकात, पृ० १७०) ।

(२०) भिरे जांम दोह जुधध हींदु हमीरं । ११:१२:१७

(२१) प्रा०भारत०, वा०श०अग्र०, पृ०४१८

(२२) २:१८:१, (२३) २:१८:२, (२४) २:१८:३, (२५) २:१७:१ ,

(२६) २; १७:२ (२७) २:१७:३ ,(२८) २:१७:३, (२९) २:७:२

(३०) २:७:३+४, (३१) २:७:५, (३२) २:८:१

शीघ्र बनने-बिगड़ने वाले

कालिंजर को जलमग्न किया[२८], खोंबर को खंडित किया[२६], कालिकाराय को नष्ट किया[३०], गजनी में विद्याभ छुटाया[३१] और मरुदेश को दंडित किया[३२], इन अस्थिर शीघ्र बनने-बिगड़ने वाले राज्यों में न किसी समूह विशेष की संस्कृति पनप सकी और न ये राज्य अब किसी समूह विशेष की प्रेरणा के पात्र ही रह सके। यूनानी पुर-राज्य (सिटी स्टेट) की भांति जिन्हें भारतीय जनपदों में विविध शिल्प और दर्शनों की उद्भावना हुई थी, उनमें इस समय विनाश और दमन की प्रवृत्ति विकास पा रही हैं।

प्रेरणास्पद नहीं

राज्यों के नाम:—

(१) कन्नौज

राज्यों में प्रमुख और काव्य के केन्द्र विंदु कन्नौज—दिल्ली हैं। प्रत्येक राजा कन्नौज पर अधिकार जमाना चाहता था, क्योंकि कन्नौज उत्तरी भारत में साम्राज्यवाद का प्रतीक समझा जाता था। यहां तक, कि मान्यखेट के राष्ट्रकूट तक कन्नौज पर कई बार चढ़ आए थे और अन्तर्वेद उनकी अश्व सेना के खुरपुटों से निनादित हो गया था। पाल भी निश्चिंत न थे तथा उनकी भी कन्नौज पर गृध्रदृष्टि थी[३३] पृथ्वीराज को इसे देखने की बड़ी लालसा है[३३क], इस समय यहां का शासक राठौर[३३ख], जयचंद है। इसके पिता का नाम विजयपाल[३४] है।

---

(२८) २:१७:३, (२६) २:७:२, (३०) २:७:३ +४

(३१) २:७:५, (३२) २:८:१

(३३) प्राकृत पैंगलम भाग २ पृ०५१। (३३क) ३:३७:१+ २

(३३ख) ५:१३:२४

इतिहास-ग्रन्थ जयचन्द को गाहड़वाल (गहरवाल) क्षत्रिय लिखते हैं, परन्तु रासो की प्रत्येक वाचना में उन्हें राठौर कहा गया है। पृ०रासो : एक समीक्षा : वि०वि० त्रिपाठी, पृ० २१७

(३४) सुकड राठ जयराठ विजपाल नंदा। ५:१३:२४। इतिहास विजयचन्द्र का पुत्र बतलाता है। (भंडारकर : इंस्क्रिप्शंस -आफ नार्दर्न इंडिया, अभिलेख सं०३३३, ३३६, ३३७, ३४०, ३४५)

इसने सिंध नद पार कर म्लेच्छों को भगाया, हिमालय के राज्यों को तहस-नहस किया, आठ सुल्तानों को वश में किया, तिरहुत में थाना स्थापित किया, डाहल के कर्ण को[३४क] (दो बार) और खुरासान के अमीर को बंदी बनाया, सोलंकी (चौलुक्य) सिद्धराज को कई बार खदेड़ा, तिल्लिंग और गोवाल कुण्ड को तोड़ा, मुंह के जीरा को बांध कर छोड़ा, वैरागर के हीरे लिए और लंका जाकर विभीषण से भिड़ा आदि।[३५] अपने पिता विजयचंद्र के साथ यह दिग्विजय में सम्मिलित था, यह सं० १२२४ के कमौली के दानपत्र से प्रमाणित है जो वाराणसी के विजयचन्द्र तथा युवराज जयचन्द के द्वारा प्रदत्त है और जिसमें `भुवन दलन हेला` शब्दावली आती है।[३६] किन्तु ऊपर

(३४क) (जयचन्द ने) करण डाहल्ल हु बार बांध्यउ। (५:१३:१३)
डाहल का सबसे प्रतापी शासक लक्ष्मीकर्ण कर्ण नाम से प्रसिद्ध था। इसका समय सं०१०६७ —११२७ के बीच पड़ता है। (हेमचन्द्र रे : डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ् नार्दर्न इंडिया, भाग २, पृ०८१८।) सं० ११३० से इसके उत्तराधिकारी और पुत्र यश:कर्णदेव के अभिलेख मिलने लगते हैं। (हेमचन्द्र रे डा०हि०ना०इं० भाग २, पृ० ७८६)। प्रकट है कि लक्ष्मी-कर्ण जयचंद का समकालीन नहीं था। किंतु उसके दो उत्त-राधिकारियों —यश:कर्ण और गय कर्ण—के नामों में भी `कर्ण` लगा रहा है, इसलिए असंभव नहीं कि कवि का आशय यहां डाहल के जयचन्द के समकालीन कलचुरि शासक से हो, वैसे जयचंद के समकालीन डाहल के कलचुरि शासक क्रमश: नरसिंह (सं० १२१२- १२२७), जयसिंह (सं०१२३२) तथा विजयसिंह(सं०१२३७-१२५२) थे। हे०रे०: डा०हि०ना०इं० भाग २ पृ० ८१८ पृ० रासउ (मा०प्र०गुप्त) भूमिका पृ० १०७

(३५) ५:१३ सप्त। स्थानों के लिए दे० निबन्ध का भौगोलिक पर्यावरण

(३६) इपिग्राफिया इंडिया, भाग ४ पृ० ११७। दे० पृ० रासउ (मा०प्र०गुप्त)भूमिका पृ०१०६,दे०पृ०रासो(एक समीक्षा) वि०वि० वि०पृ० २२२ ।

उल्लिखित समस्त राजाओं को उसने परास्त किया था, इसके प्रमाण नहीं मिलते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ नाम केवल सूची वृद्धि के लिए सम्मिलित किए गए हैं, लंका के विभीषण से जाकर मिलना तो एक अतिरंजित कल्पना मात्र है।[३७] यह दान कवि प्रीति[३७क] (५:४३:१) है। इसके सात सहस्र सामंत दरबारी हैं।[३७ख]

(२) दिल्ली

जयचन्द का प्रमुख प्रतिद्वन्दी दिल्ली नाथ (पृथ्वीराज) हैं। उसने जयचन्द का राजसूय यज्ञ विध्वंस किया और उसकी पुत्री संयोगिता का हरण किया।[३८] इन दोनों घटनाओं के सम्बन्ध में इतिहास मौन है।[३९] इस काव्य में संयोगिता का प्रेमानुष्ठान `संयोगिता परिणाय` और `पृथ्वीराज-संयोगिता का केलि-विलास

---

(३७) पृ० रासउ (मा०प्र०गुप्त) भूमिका पृ० १०८

(३७क) दे० अ० टि० सं० ३६

(३७ख) सयल करइ दरबार जिहि सच सहस्स अस भूप । ५:४२:२

(३८) विवेच्य काव्य में कई स्थानों पर इसका नाम योगिनी पुर भी आया है। टेस्ट आव मैन, टेल्स नं० २-४१ में आया, योगिनी-पुर शब्द पुरानी दिल्ली की कथा कहानियों में आने वाला नाम बतलाया है। प्राचीन पुस्तकों में कई स्थानों पर दिल्ली का नाम योगिनीपुर बतलाया गया है। विद्यापति : शिवप्रसाद-सिंह, पृष्ठ ४३ ।

(३८क) स ज रिपु ढिल्लियनाथ सो ध्वंसनं जग्गियं आये,
परणेवं तव पुत्री युध्यं मंगीत भूषनं सोइ । ७:२ स-पद

(३९) गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि जयचंद एक बहुत दानी राजा था, जो उसके दिए हुए अनेक दानपत्रों से प्रकट है, किन्तु किसी दान-पत्र में भी राजसूय यज्ञ का उल्लेख नहीं है, नयचन्द्र सूरि ने सं० १४६०के लगभग लिखे हुए `हम्मीर महाकाव्य` तथा `रंभा मंजरी नाटिका` में, पृथ्वीराज-जयचंद के संघर्ष अथवा जयचंद के राजसूय यज्ञ और संयोगिता-स्वयम्बर का कोई उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि `हम्मीर महाकाव्य` में उसने पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के संघर्ष की कथा निरंतर

विस्तार से दी है, और ` रंभा मंजरी` में, जिसका नायक जयचंद है, जयचन्द की प्रशंसा में पन्ने रंगते हुए भी उसके द्वारा किए हुए किसी राजसूय यज्ञ अथवा संयोगिता-स्वयंबर का उल्लेख नहीं किया है, इसलिए ` रासो` के ये विवरण अनैतिहासिक हैं। किन्तु जहां तक दान-पत्रों की बात है, `रासो` के अनुसार पृथ्वीराज ने आरंभ में ही उक्त राजसूय यज्ञ को विध्वंस किया था, इसलिए तत्संबंधी दानपत्रों का न मिलना आश्चर्यजनक नहीं है। ` हम्मीर महाकाव्य` और `रंभा मंजरी` को, जो सं० १४६० के लगभग लिखे गए हैं, और काव्य की दृष्टि से लिखे गए हैं उन्हें ऐतिहासिक महत्व प्रदान करना उचित नहीं है।` हम्मीर महाकाव्य` के पृथ्वीराज-चरित्र में पृथ्वीराज और परमर्दिदेव के भी युद्ध का उल्लेख नहीं है, जो उस युग की एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है, जिसके स्मारक में सं० १२३६ का मदनपुर का शिलालेख है। (भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स आव नार्दर्न इंडिया, पृ०५८)` रंभा मंजरी` में तो जयचंद को मल्लदेव का पुत्र कहा गया है, और कहा गया है कि वह लाट के मदन वर्मा की पुत्री रंभा से विवाह करता है। (ए०एन०उपाध्ये:जयचन्द्र एंड हिज रंभा-मंजरी, जर्नल आव यू०पी०हिस्टारिकल सोसाइटी, भाग १६, पृ०, ६० ।) फलतः जयचन्द के उक्त दोनों काव्यों के आधार पर उपर्युक्त प्रकार कोई परिणाम निकालना उचित नहीं माना जा सकता है।

दूसरी ओर, डा० दशरथ शर्मा का कथन है कि पृथ्वीराज से जयचन्द की कन्या के विवाह की घटना इतिहास- सम्मत ज्ञात होती है, क्योंकि ` पृथ्वीराज विजय` में पृथ्वीराज ने तिलोत्तमा के चित्र पर मुग्ध होने और उसके विरह में व्यथित होने की जो कथा है, वह बाद में किसी राजकुमारी से होने वाले उसके विवाह की भूमिका मात्र है, और यह राजकुमारी गंगा तटवर्ती किसी स्थान की थी, यह उक्त काव्य के अंतिम प्राप्त सर्ग के ८८ वें त्रुटित श्लोक के ` नाक नदी तट स्थित :` शब्दावली से ज्ञात होता है, इसलिए यदि`विजय`में इस कथा के अनन्तर` रासो` में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता अथवा दुर्लभ चरित्र में वर्णित पृथ्वीराज-कांतिमती के विवाह की

और ' षड ऋतु ' संदर्भ ने संयोगिता-पृथ्वीराज घटना को मान्यता दी है ।[४०] यहां का शासक पुराण-प्रसिद्ध जरासंध के वंश का पृथ्वीराज है ।[४१] अनुश्रुति है कि जरासंध के समय में मगध से ही साम्राज्य की परम्परा आरंभ हुई जो

आत आई हो तो आश्चर्य न होगा । (पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, (सं०१९८६,पृ०५८) जैसा अन्यत्र दिखाया गया है, ' सुर्जन चरित महाकाव्य ' में वर्णित पृथ्वीराज का समस्त चरित्र ' रासो ' के प्रस्तुत संस्करण का अनुसरण करता है, इसलिए उसमें आयी हुई कांतिमती के साथ पृथ्वीराज के विवाह की कथा ' रासो ' में वर्णित पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह के सम्बन्ध में स्वतंत्र साक्ष्य के रूप में नहीं रक्खी जा सकती है । ' पृथ्वीराज विजय ' में आई हुई ' नाक नदी तट स्थित: ' शब्दावली ही उसके पक्ष में रक्खी जा सकती है, किन्तु यह जयचन्द की कन्या के सम्बन्ध में ही रही होगी, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है । पृ० रासउ (मा०प्र०गुप्त) भूमिका पृ० १०६, ११० ।

(४०) पृथ्वीराज-संयोगिता-सम्बन्ध पृथ्वीराज रासो के सभी संस्करणों में पाया जाता है । डा० विपिन विहारी त्रिवेदी का अभिमत है कि पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता-हरण तथा कन्नौज-युद्ध रासो की अत्यंत महत्वपूर्ण घटना एवं केन्द्र बिंदु है । इतिहास-ग्रन्थों में प्रबल जनश्रुति के कारण इस घटना का उल्लेख तो है परन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में समर्थन नहीं है । अनुमान है कि रासो में संयोगिता-हरण पर आने से पूर्व ऐतिहासिक अथवा कल्पित पद्मावती और शशिवृत हरण के प्रसंग लिखे जा चुके थे । रासो के पाठक जानते हैं कि पद्मावती-हरण की रोमानी कथा बड़ी रोमांचक और रोचक है परन्तु शशिवृता-हरण में ये तत्व और अधिक प्रभावशाली हैं तथा संयोगिता-हरण तो रासो के वरण-हरण प्रसंगों में सिरमौर है । साथ ही ऐसा प्रतीत होता है कि संयोगिता-हरण की पूर्णता का गौरव कवि-कल्पना में उससे पूर्व घटित किए गए पद्मावती और शशिवृता-हरण लिखने के क्रमश: अभ्यास को है । पृ० रासो-एक समीक्षा पृ० २२५, २२६

(४१) जरासिंध वंसि पुहमी नरेसु । २:३:३०

कि शिशुनाग और नन्द राजाओं के युग में और भी आगे बढ़ी, यहां के मौर्य शासन में एक राज जनपद और गणाधीन संघ, इन दोनों को समाप्त करके देशव्यापी साम्राज्य कायम हो गया।[४२] पृथ्वीराज इस परंपरा का अन्तिम हिन्दू राजा है। यह सोमेश्वर[४३] का पुत्र है। कहा गया है कि इसने मुर (मरु[४४]) धरा को विजित किया, मंडोवर[४५] को तहस-नहस किया मरु-मंह के गोरी[४६] राजा को दंडित किया, रणथंभौर [४७] को जलाया, कालिंजर

---

(४२) पा० भारत० पृ० ४३५

(४३) सोमेसुर नर नन्द। १:६:३। यह 'पृथ्वीराज विजय', 'हम्मीर महाकाव्य', 'पुरातन-प्रबन्ध संग्रह', 'सुर्जन चरित महाकाव्य,' सं० १०३० का हरस, सं० १२२६ का विजोल्यां, सं० १२३९ का मदनपुर शिलालेख सम्मत है।

(४४) २:९:१, (४५) २:१७:१, (४६) २:१७:२, (४७) २:१७:३

(४८) २:१७:३ (४९) ८:४:३ (५०) ८:४:४ (५१)

(४५) का शेष- मंडोवर के शासक नाहर राय पड़िहार (प्रतिहार) ने अपनी कन्या की सगाई पृथ्वीराज से कर दी थी, जब वे केवल ८ वर्ष के थे (छ० २६ सं० ७)। परन्तु बाद में ओछे कुल का दाग लगा कर उसे अस्वीकार कर दिया। (छं० २८-२९ स०७) फलस्वरूप सोमेश्वर और पृथ्वीराज ने आक्रमण कर दिया (छ० ३१-३४ सं० ७) पृथ्वीराज विजयी हुए और राजकुमारी से विधि पूर्वक विवाह संपन्न हुआ (छं० १७२-१७८ सं० ७) मध्यम वाचना की नाहरराय कथा समय ६ में ७६ छंद हैं। लघु एवं लघुतम वाचनाओं में यह प्रस्तव और प्रसंग नहीं है। पृ० रासो (एक समीक्षा) वि वि०चि पृ० १७३-१७४

को जलमग्न किया, भीममही से पंगुर[४६] और यादव राज से रणथंभोर की[५०] रक्षा की। चालुक्य (भीम) को दमनकर[५१] जालोर को बचाया। "पृथ्वीराज अपने युग का एक अति पराक्रमी शासक था, और उसने अनेक लड़ाइयां लड़ी थीं, कालिंजर के चंदेल शासक परमर्दि पर उसकी विजय गाथा मदनपुर के सं० १२३६ के शिलालेख में अंकित है। असंभव नहीं कि ये अन्य विजयें भी जिनका उल्लेख ऊपर हुआ है, उसको प्राप्त हुई हों, किंतु यह भी असंभव नहीं है कि कुछ नाम कल्पना से रख दिए गए हों, इस प्रकार के काव्यों में सूची-वृद्धि एक सामान्य बात रही है।"[५२]

---

(५१) ८:४:२

"रासो" में कहा गया है कि पृथ्वीराज ने युद्ध करके भीम की शक्ति को नष्ट किया (२:३, १२:३३), वह दूर के विश्वासर में था, जब उसने मंत्री (कैंवास) को भीम को बंदी करने भेजा था (३:६), उसके सामंतों ने ही भीमसेन को पराजित किया था (८:२) और भीमसेन से पृथ्वीराज ने जालोर की रक्षा की थी (८:४)

गुर्जराधिपति भीम (सं० १२६५- १२९८) (हेमचन्द्र रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् नार्दर्न इंडिया, पृ० १०५८) पृथ्वीराज का समकालीन था यह प्रमाणित है। पृथ्वीराज विजय में शहाबुद्दीन के भीम पर किए गए आक्रमण की ओर संकेत करते हुए कदम्बवास द्वारा कहलाया गया है कि "जैसे तिलोत्तमा के लिए सुंद और उपसुंद नष्ट हुए थे, वैसे ही मनोज्ञा लक्ष्मी के उद्देश्य से आपके शत्रु स्वयं नष्ट हो जायेंगे" (पृथ्वीराज विजय, सर्ग ११, प्रारंभ)। प्राह्लादन के "पार्थ पराक्रम व्यायोग" में भीम के सामंत आबू के परमार धारावर्ष पर जांगल-नरेश पृथ्वीराज के किए हुए एक असफल सौप्तिक प्रस्ताव (रात्रिकालीन आक्रमण) का उल्लेख हुआ है (पार्थ पराक्रम व्यायोग" गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, पृ० ३) जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा रचित "खरतर गच्छ पट्टावली" में पृथ्वीराज और भीम चालुक्य के सेनापति जगदेव प्रतिहार के बीच कठिनाई से हो पाई एक संधि का उल्लेख हुआ है (अगरचन्द नाहटा: जगदेव और पृथ्वीराज की संधि, हिन्दुस्तानी, भाग १०, पृ० ९८)। इस प्रकार भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज में पारस्परिक वैमनस्य और छेड़छाड़ के प्रमाण मिलते हैं। जालोर की रक्षा

कहा गया है कि पृथ्वीराज ने बलख के शासक और गजनी के शाह शहाबुद्दीन को हराया है।[५३] पहली घटना इतिहास सम्मत नहीं प्रतीत होती है।[५४] इस काव्य में केवल पृथ्वीराज और गोरी के अन्तिम युद्ध का वर्णन है। इसके पूर्व के युद्धों के सम्बन्ध में कहा गया है कि पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को तीन बार बांधा है,[५५] सरवर में परास्त किया है।[५६] एक स्थान पर आता है कि भीम को जब मंत्री (कंवास) ने बंदी किया था, पृथ्वीराज दूर विश्वासर में था [५७], असंभव नहीं कि सरवर, से तात्पर्य इसी विश्वासर से हो।[५८] मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार शहाबुद्दीन के दो ही युद्ध पृथ्वीराज से हुए थे, एक जिसमें शहाबुद्दीन पराजित हुआ था, और दूसरा जिसमें पृथ्वीराज पराजित हुआ और मारा गया था।[५९] 'रासो' में 'सरवर' और 'विश्वासर' का उल्लेख हुआ है। मुसलमान इतिहासकारों ने स्थान का नाम 'तरवर हिन्द' या 'सरहिंद' दिया है। सरवर (सरहिंद ?) के युद्ध के अतिरिक्त अंतिम युद्ध से पूर्व के युद्धों का कोई विवरण 'रासो' में नहीं मिलता है, और न तात्कालिक इतिहास में मिलता है, वे काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं।[६०] पृथ्वीराज रासो के अन्य संस्करणों में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के कुल २० युद्ध उल्लिखित हैं।[६१] इनका अन्तिम युद्ध जिसमें पृथ्वीराज पकड़ा और

के लिए भी दोनों में कोई युद्ध हुआ था यह ज्ञात नहीं है। पृथ्वीराज रासउ : माताप्रसाद गुप्त, पृ० १११ (भूमिका)

(५३) २:७ सपद

(५४) पृ० रासउ (मा०प्र०गुप्त) भूमिका पृ० ११०

(५५) तिहु वारि साहि बंधिआ बेनि। २:३:३१

जिहि सहं गहि छंडिअउ बार सात सहं अप्पउ कर। ११:७:४

(५६) ८:४ - १ और भूमिका पृ० १११

(५७) ३:६:३

(५८) पृथ्वीराज रासउ (भूमिका) : माताप्रसाद गुप्त, पृ० १११

(५९) मिनहाजुस्सिराज : तबकात-ए-नासिरी, इलियट और डाउसन, भाग २, पृ०२९५-२९७ तथा हेमचन्द्र रे, डायनैस्टिक हिस्ट्री आव नार्दर्न इंडिया, पृ० १०८८-१०९३

(६०) पृथ्वीराज रासउ (मा०प्र०गुप्त) भूमिका पृ० १११

बाद में मारा गया है, इतिहास सम्मत है,[६२] किंतु पृथ्वीराज द्वारा शहाबुद्दीन को लक्ष्यबेधी बाण से मारने की 'रासो' की कथा काल्पनिक-सी लगती है।[६२क] और निश्चित रूप से उसमें वीरत्व की उद्भावना की दृष्टि परिलक्षित होती है।

---

(६१) पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा) विपिन बिहारी त्रिपाठी, पृष्ठ १७२ और १८१-२०४

(६२) देखिए - विरुद्ध विधि - विध्वंस, जामिया-उ- हिकायत, ताज-उल-मासिर, तबकात- ए-नासिरी (समसामयिक), प्रबन्ध-चिन्तामणि, हमीर महाकाव्य (भिन्न प्रकार से घटना वर्णित है), फिरिश्ता, तबकात-ए- अकबर आदि (बाद के), द स्ट्रगल फार इम्पायर : डी०सी० गंगोली, पृ० ११५

(६२क) धरि परउ साहि धा पुक्करउ भयउ चंद राजहिं मरन ।
१२:४८: ६
मरन चन्द्र विरदिया राज ——— धुनि साहु हन्यउ सुनि ।
१२:४६:१

प्राय: समसामयिक मुसलमान इतिहासकारों, मिनहानुस्सिराज तथा हसन निजामी, के अनुसार (इलियट और डाउसन, भाग २, पृ०२१५— २१७ तथा हेमचन्द्र रे : डायनैस्टिक हिस्ट्री आव इंडिया, भाग २ पृ० १०८८-१०८३) दोनों के अंतिम युद्ध में पराजित होने पर पृथ्वीराज भागता हुआ सरस्वती के निकट पकड़ा गया और मारा गया। पृथ्वीराज रासउ : माताप्रसाद गुप्त, पृ० ११२ (भूमिका)

आबू-नरेश सलख पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ते हुए मरा है।[६३] इसके बाद इसका पुत्र जैत शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के अंतिम युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से युद्ध करते हुए मरा है[६४]। किंतु पृथ्वीराज के समय में धारावर्ष परमार आबू नरेश था,[६५] जो कि भीम का सामन्त था, जैसा उसके अभिलेख[६६] तथा प्राह्लादन के पार्थ पराक्रम व्यायोग[६७] से प्रमाणित है। सलख और जैत के आबू-नरेश होने का उल्लेख इतिहास विरुद्ध है।[६८]

(४) आबू

महाराष्ट्रपति कन्ह कन्नौज के युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से लड़ा[६९]। महाराष्ट्र के इतिहास के अनुसार कृष्णा या कन्हार का समय सं० १३०४—१३१७ वि० है।[७०] इस नाम का कोई अन्य महाराष्ट्र शासक उस युग में नहीं मिलता है, इसलिए `रासो` का `कन्ह` महाराष्ट्र के इतिहास का यही कृष्णा या कन्हार है।[७१]

(५) महाराष्ट्र

गुर्जर- गुर्जराधिपति भीम की शक्ति पृथ्वीराज ने नष्ट की[७१क]। आपने मंत्री (कैमास) को उसको बंदी करने भेजा है[७१ख]। उसके (पृथ्वीराज) के सामंतों ने भीमसेन को पराजित किया है[७१ग] और उससे (भीमसेन) पृथ्वीराज ने जालौर की रक्षा की है।[७१घ] भीम सं० १२३५ से सं० १२९८ तक गुर्जर का

---

(६३) ८:३० सपद

(६४) ११:१२:२३

(६५) हेमचन्द्र रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग २, पृ० ९२१

(६६) भांडारकर : इंस्क्रिप्शन्स आफ नार्दर्न इंडिया, अभिलेख संख्या ४५५तथा४८८

(६७) `पार्थ पराक्रम व्यायोग`, गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, पृ० ३

(६८) पृथ्वीराज रासउ (माताप्रसाद गुप्त) भूमिका पृ० ११२

आबू के यहां मंडलेश्वर धारावर्ष के सं० १२२० से सं० १२७६ तक के अनेक अभिलेख, धारावर्ष के पूर्ववर्ती आबू नरेश महामण्डलेश्वर यशधवल के सं० १२०७ का अभिलेख तथा सं० १२६५ का धारावर्ष का ही एक कांटल(आबू) का शिलालेख इसके विरुद्ध पड़ते हैं। रासो साहित्य विमर्श (माताप्रसाद गुप्त) पृ० १०६

(६९) ८:१८ से २२ तक (७०) भांडारकर: अर्ली हिस्ट्री आफ द डकन पृ० [illegible]

(७१) रासो साहित्य विमर्श : माताप्रसाद गुप्त, पृ० ६०

शासक था [७१ठ०]। प्राह्लादन के 'पार्थ पराक्रम व्यायोग' में भीम के सामंत आबू के परमार धारावर्ष पर जांगल-नरेश पृथ्वीराज के किए हुए एक असफल सौप्तिक प्रस्ताव (रात्रि कालीन आक्रमण) का उल्लेख हुआ है। [७१च] जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२) द्वारा रचित 'खरतर गच्छ पट्टावली' में पृथ्वीराज और भीम चौलुक्य के सेनापति जगदेव प्रतिहार के बीच कठिनाई से हो पाई एक संधि का उल्लेख हुआ है। [७१छ] इस प्रकार भीम चौलुक्य और पृथ्वीराज में पारस्परिक वैमनस्य और छेड़छाड़ के प्रमाण मिलते हैं। [७१ज]

इस काव्य में उद्धरित अन्य राज्य भौगोलिक पर्यावरण में देखे जा सकते हैं। तत्सम्बन्धी राजनीतिक घटना के अभाव में उनका नामोल्लेख यहां नहीं हो रहा है। सामंतों से सम्बन्धित राज्य सामंतों के प्रकरण में उल्लिखित हैं।

पृथ्वीराज को नरनाह[७२], नरिंद[७३], निप[७४], नृपति[७५], पृथ्वी-नरेश[७६], भुअपति[७७], भूआल[७८], भूभ्रत[७९], राई[८०], और राजा[८१], तथा जयचन्द को त्रिर्प[८२], नृर्प[८३], राउ[८४] और राइस[८५] कहने तथा अन्यत्र कन्नौज के गंगा

(७१क) २:३, १२:३३ (७१ख) ३:६, (७१ग) ८:२, (७१घ) ८:४,

(७१ठ०) हेमचन्द रे : डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव् नार्दर्न इंडिया, पृ० १०४८

(७१च) 'पार्थ पराक्रम व्यायोग', गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, प० ३

(७१छ) अगरचंद नाहटा : जगदेव और पृथ्वीराज की संधि, हिन्दुस्तानी भाग १६ पृ० ६८

(७१ज) माताप्रसाद गुप्त : पृथ्वीराज रासउ, भूमिका पृ० १११

(७२) ६:३३:३, (७३) २:७:१ (७४ ३:२५:१ (७५) ६:१:१ (७६) २:३:३० (७७) ४:१:५ (७८) ३:३८:२ (७९) ३:५:१ (८०) २:१२:१ (८१) राजा १:६:१ (८२) ५:२:२ (८३) २:१:१५, २:१२:२ (८४) २:३३:५५ (८५) २:१६:२

जयचन्द ने क्षिति के क्षत्र-बंध राजाओं को जीता।[८६क]

पदवी-प्रियता

तट पर कहीं घोड़े घुमाते हुए भूप,[८६] और कहीं घोड़ेस दान देते हुए राय के वर्णन से ज्ञात होता है कि इन शब्दों में कोई भेद नहीं समझा जाता था। जिसमें (पहले) प्रत्येक कुल का प्रधान राजा कहलाता था (गृहे गृहे हि राजान:, सभापर्व १४।२) । लिच्छवि गण में ७७०७ कुल और उनके उतने ही राजा थे। वेद जनपद में साठ सहस्र क्षत्रियों की गणना की जाती थी और उन सबकी उपाधि (राजा थी)।[८७] शासन में भाग लेने के अधिकारी क्षत्रिय को राजन्य कहते थे।[८७क]

पृथ्वीराज के लिए जंगलीराय, ढिल्लिपपुर, दिल्ली-पुरह नरिंद, दिल्लीश्वर, पुथ्वी नरेश, योगिनी पुरपति, योगिने पुरेस, संभरिधनि, साभंरपति, संभरराय और हिन्दु-राइ,[८८] तथा गोरी के लिए गज्जनेश, सहसहाब, साहिबालम, और पातिसाह[८६] से पता चलता है, कि तत्कालीन राजे पदवी-प्रेमी हैं और अपने विरुद की अतिरंजित प्रशंसा सुनने के अभ्यस्त हैं। डा० बृजनाथ सिंह यादव का अभिमत[६०] है कि राजा के साथ उपाधि लगाने की प्रवृत्ति ईरानी और हेलेनेस्टिक प्रभाव की देन है, क्योंकि १० वीं सदी से १२ वीं सदी के बीच यह एक सामान्य परम्परा बन गयी थी और अपने विकास के चरम उत्कर्ष पर थी। ईश्वर, ईश, भूपति, पृथ्वीपति और महा-राज आदि उपाधियां भारत की प्रगाढ़ धार्मिकता की परिचायक हैं जिससे राजा के साथ दैवी शक्ति संघटित प्रतीत होती है।

---

(८६)कहीं फेरवै भूप बाहे तुरंगा । ४:१०:३

(८७) जातक ६, ५११

देखिए पा० भारत० पृ० ४३२-४३३

(८७क) देखिए पा०भारत०पृ० ६३

(८८) वे० टि० सं० ३ : ३५: १४

(८६) वे० टि० सं० ३ : ३५: १०(अ)

(६०) बृ०ना०सि०यादव : १२ वीं सदी में उत्तर भारत में समाज के कुछ तत्व: पृ० ६६-१०४

किन्तु यह द्रष्टव्य है कि ये उपाधियां विशुद्ध राजनीतिक हैं और राजा के पर्यायवाची शब्द रूप से गृहीत हैं। प्राचीन साहित्य में ईश्वर शब्द प्राय: राजा या पृथ्वीपति के लिए प्रयुक्त हुआ है, भगवान के लिए नहीं।[६१] ईश्वर, भूपति और अधिपति शब्दों के प्रयोगों को जनपद के राजा के नाम सूचित करने के लिए नियमित किया गया है (सूत्र १:४:६७ और २:३:६)[६१] ऐश्वर्य (=ईश्वर या राजा की अधिकार शक्ति) सम्पन्न स्वामी प्रारंभ में राजा के लिए ही प्रयुक्त होता था। भूपति का अर्थ साधारणत: भूमिका स्वामी ऐसा नहीं था, अन्यथा वह किसान आदि के अर्थ में प्रयुक्त हो जाता है। पृथ्वी के स्वामित्व की ईश्वरता या ऐश्वर्य जिसमें हो वही भूपति कहलाता था। महाराज भी प्राचीन राजनीति का पारिभाषिक शब्द था।[६१]

अन्तर्राज्य सम्बन्ध

सम्प्रति अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की दृष्टि से 'पंचशील' के सिद्धान्त पर बल प्रदान किया जा रहा है। सभी राष्ट्र समान रूप से सम्माननीय मान लिए गए हैं। मतभेदों के समाधान के लिए शांतिपूर्ण व्यवस्था के समाधान निकालने के लिए संगठित प्रयत्न किए जाते हैं। राष्ट्र-संघ एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है, जो विश्व-शांति और समृद्धि के लिए राज्यों के बीच की कड़ी है। राज्य अब अपने सीमित स्वार्थ की सीमा का अतिक्रमण कर एक सुव्यवस्थित राजपथ पर अग्रसर होने का संकल्प कर रहे हैं, किंतु विवेच्य काल में राज्यों ने अपने जनपदीय सुसंस्कृत अवस्था से नीचे उतर कर पारस्परिक व्यवहार को बहुत कटु बना लिया था। जयचंद ने हेमकूट-स्थित राज्यों को सम्पूर्ण रूप से ढहाया[६२], एक दिन में आठ सुलतानों को वश में किया[६२], सोलंकी सिद्ध राजा को कई बार खदेड़ा,[६२] तीन दिनों तक लगातार युद्ध करके तिलंग और गोलकुंडा को तोड़ा,[६२] बैरागर देश

---

(६१) पा० भारत, पृ० ३८६-३६०

(६२) ५: १३ समस्त पद

के सब हीरे ले लिए,[६२] भूल से लंका जाकर विभीषण पर आक्रमण कर बैठा [६२] और गले में मोतियों का हार डालने के सदृश्य राज्यों को अपने अधीन कर लिया ।[६३] ऐसा लघु लोभ-लाभ न करना अज्ञानता समझा जाता है ।[६४] पृथ्वीराज ने शत्रुओं को बांध-बांध कर स्त्री के वेष में होने के लिए विवश कर दिया[६५], पकड़ पकड़ कर राजाओं से कर वसूला[६६], असमानता और असहिष्णुता इतनी अधिक व्याप्त है कि गोरी ने कविचन्द से पृथ्वीराज के अंधा करने के संदर्भ में बताया है, कि मैंने (गोरी) उस पर क्रोध किया, किंतु फिर भी वह अपनी भिन्न वक्र दृष्टि नहीं छोड़ रहा था, इसलिए उसकी दोनों आंखें फोड़वा दी ।[६७] समुद्र पर्यन्त समस्त राजे जयचंद की सेवा (धार्मिक सेवा नहीं, राजनैतिक सेवा = अधीनता) कर रहे हैं, जो काम आप (जयचंद) कहें वे करते रहें । शक्तिशाली राजा सोचता है कि यदि कोई उसकी सेवा करने में असमर्थ है, तो वह राजा भूमि को क्यों भोगे ।[६८] दुर्बल राजाओं को अपनी संप्रभुता रखने का अधिकार नहीं है । जिसकी लाठी उसकी भैंस दो राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध का निश्चित रूप से सूचक है । [१००]

कन्नौज के राजा जयचन्द को देखने के लिए दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) अपने सामंतों के सहित वेश बदल कर आता है ।[१०१] वहां पहिचान लिए जाने पर जयचन्द ने ललकारा कि " संगठनकर्के

---

(६३) चिलिया राउ सब सिंधु आर । मेलिया कंठ जिमि मुत्ति हार ।। २:३:३४-४

(६४) (जयचन्द का विचार) लहु लोह लब्ब जो लहु अयान । २:१:६८

(६५) अरि बंधि बंधि किय तीय भेस । १२:३३:१०(कवि चंद कथन पृथ्वीराज से)

(६६) जिहि कहं नहि छक्कियउ आर कहं अप्पह कर । ११:७:४

(६७) मै बंद अंध भज रिस ब कीन । वर बंक दीठ छंडइ न भी न ।। १३: १५ :६ +१०

(६८) (अमात्य कथन जयचन्द से) यै सा समुद्र नृप करहि सेव । उच्चरहु काजु सो करहु देव ।। २:३:४६+५०

इस पर आघात करो, घोड़ों और गजेन्द्रों को तैयार करो, पृथ्वीराज भाग न जावे ।"१०२ इतना कहते ही जयचन्द ने चढ़ाई कर दी। १०२ भयानक युद्ध हुआ ।जयचन्द की ८० लाख सेना नष्ट कर डाली गई । १०३ वेश बदल कर एक राजा का दूसरे राज्य में जाना और रहस्योद्घाटन होने पर भीषण रक्तपात होना ऐसे व्यवहार हैं जिन्होंने शक्तिशाली राजपूत राजाओं की शक्ति को अनावश्यक रूप से क्षीण कर दिया और वे बाह्य आक्रमण की कुचेष्टा का सामना, पृथ्वीराज की दुर्दशा देखने के बाद भी, संगठित होकर न कर सके तथा हिन्दू राज्य को सदैव के लिए समाप्त कर दिया ।

राज्यों की अस्थिरता

किसी राजा का महत्वाकांक्षी होना अन्य राज्यों के बिगड़ने के लिए पर्याप्त कारण है । जयचंद ने अपने काव्य-लाभ १०४ (काव्य में यश) के लिए क्षिति के अनबंध राजाओं को जीत कर १०५ गले में मोतियों का माल डालने के सदृश अपने अधीनस्थ किया ।१०६ इससे बचने के लिए तत्कालीन राजाओं ने कोई उपाय नहीं निकाला । उस समय अन्तर्राज्य सम्बन्धी कोई ऐसा मंच भी नहीं है कि राजे आपस में बहां विचार विमर्श करें । इस प्रवृत्ति ने भारतीय राज्यों को निर्बल और दूसरे के प्रति सशंकित बना दिया । दुर्भाग्य से यही महत्वाकांक्षा जब विदेशी उन्मुख जाति के शाहंशाह गोरी में

---

(९९) (जयचन्द विचार पृथ्वीराज के प्रति) अप्पमथ्य सेव किम भूमि लाह २:३:८

(१००) 'जलाहिर गांडे बाट', उक्तिव्यक्ति प्रकरण: दामोदर ४०:२१

(१०१) कनवज्जिय जयचंद चलउ ढिल्लिपुर पेषन । ४:१:१

(१०२) ५:४८ सप्त

(१०३) जब बज्जियं लच्छ दल गहि गहि भक्खड ।। १०:६:२

(१०४) जब करहि जग्गु वे लेहि कव्व । २:१:१०

(१०५) छिति अनबंध रावनि समान । जिज्जिया सकल सम बल प्रमान ।।

(१०६) वे० भ० रि० सं० ६३

प्रादुर्भूत हुई तथा जब उसने भारत धरा को लेने के लिए निश्चय किया तो उस संकट का कोई सामना न कर सका और ये हिन्दू राज्य सुदूर भविष्य के लिए मात्र ऐतिहासिक वस्तु रह गए ।

इस काव्य में कन्नौज, दिल्ली, गजनी, आबू और महाराष्ट्र इन पांच राज्यों की राजनीतिक गतिविधियों का विस्तार से उल्लेख है । इनमें कुछ इतिहास सम्मत हैं,[१०७] कुछ नहीं भी हैं ।[१०८]

---

(१०७) कन्नौज, इसका शासक जयचंद, इसके पिता का नाम विजयपाल (किन्तु इतिहासों में विजयचन्द है) टि०सं० ४:१:३४, जयचन्द-विजय (युवराज-काल की) प्रामाणिक है । (टि०सं० ४:१:३६), दिल्ली, इसका शासक पृथ्वीराज, इसके पिता का नाम सोमेश्वर (टि०सं० ४:१:४३), पृथ्वीराज- शहाबुद्दीन गोरी युद्ध (टि०सं०४:१:६२), महाराष्ट्र, उसका शासक कन्ह, पृथ्वीराज का मित्र राज्य होना (टि०सं० ६६-७१), गूर्जर, उसका अधिपति भीम चौलुक्य और उसका पृथ्वीराज से वैमनस्य (टि०सं० ७१ क से ह)

(१०८) छंद (५:१३) में उल्लिखित जयचंद द्वारा हिमालय के राज्यों को तहस नहस करना, आठ सुल्तानों को वश में करना, तिरहुत में थाना स्थापित करना, सोलंकी सिद्ध राज को ~~वश में न कर~~ खदेड़ना, तिलिंग और गोलकुंडा को तोड़ना, गुंड के वीरा को बांधना, लंका के विभीषण से भिड़ना, पृथ्वीराज द्वारा बलख के राजा को हराना (२:७), मुरधरा को विजित करना (२२६), मंडोवर को तहस-नहस करना (२:१७) कालिंजर को जलाना (२:१७) भीमपट्टी में पंगुर और यादवराज से रणथंभौर की रक्षा करना । ये सभी कार्य विवेच्य काव्य में किसी के द्वारा राजा के प्रशस्ति में कहे गए हैं, किए नहीं गए हैं । इसमें वर्णित पृथ्वीराज द्वारा गोरी को मारना (टि०सं०६,२क) और जयचन्द-पृथ्वीराज युद्ध इतिहास सम्मत नहीं है ।
(देखिए टि० सं० ३६)

यह युग राजतन्त्र का है । राज्य पारस्परिक संघर्षों में ग्रस्त हैं और उनके राज झूठे अहंवादिक नामों में जकड़े हुए निर्बल बन रहे हैं । जिसकी लाठी उसकी भैंस, का सिद्धान्त राज्यों के संप्रभुता निर्णय के लिए अमान्य नहीं है । सबल राजा द्वारा निर्बल राज्यों के हड़पने की प्रतिक्रिया में कोई सामूहिक प्रयास नहीं किया गया । फलस्वरूप भारतीय राज्य निर्बल और वे पारस्परिक रूप से सशंकित होकर विदेशी नवोन्मुख जाति के शहंशाह गोरी के भारत लेने की महत्वाकांक्षा का सामना न कर सके और अपने को सदा के लिए मिटा कर इतिहास के गर्भ में विलीन हो गए ।

(२) राजतन्त्र और शासन

(४० शब्द अपने ६० पर्याय सहित राजतंत्र और शासन के संदर्भ में प्रयुक्त हैं)

अनुच्छेद	संदर्भ
	१– शासन का सर्वोपरि व्यक्ति राजा
	२– प्रधान : (१) राजा का प्रतिनिधित्व करना (२) मंत्रणा देना
	३– पट्टराज्ञी
	४– सभा या दरबार
	५– सभ्य या दरबारी
	६– (१) भूप (२) सुर (३) सामन्त (४) गुणीजन
	७– मुस्लिम-दरबार में सल्वाये
	८– राजा बनाम सभा
	९– राजकुल
	१०– दूत
	११– दूती
	१२– भृत्य
	१३– सेवक — (कोतवाल)
	१४– शासन के कार्य (१) सुरक्षा
	१५– शासन के कार्य (२) धर्म-सेवन
	१६– शासन के कार्य दुष्ट-दमन
	१७– शासन के कार्य विजय करना
	१८– उत्तम शासन की बाधाएं (१) उद्यमहीन राजा, (२) भोग विलास
	१९– उप संहार

(२) राजतन्त्र और शासन

शासन का सर्वोपरि व्यक्ति राजा

राजतान्त्रिक शासन में सर्वोपरि व्यक्ति राजा है। वह अपनी स्वेच्छा[1] से राज्य का संचालन करता है। उसकी शक्ति मुख (आदेशों)[2] की शक्ति है जिसे फुरमान[3] भी कहते हैं।

प्रधान

(१) राजा का प्रतिनिधित्व करना

शासन-कार्य में राजा की प्रतिमा[4] (प्रतिनिधि) प्रधान मंत्री होता है जो राजा की अनुपस्थिति में राजकाज चलाता है।[5] जब पृथ्वीराज राजधानी में न रहकर आखेट में फिर रहा था, तो योगिनीपुर (दिल्ली) की रक्षा उसका प्रधान अमात्य प्रमाण रूप से कर रहा था।[5] महामंत्री का यह महत्व, महाजनपद युग से मौर्य काल तक, राजा के समान था[6] जैसे मगधराज अजातशत्रु के महामंत्री दीर्घ चारायण, वत्सराज उदयन के महामंत्री यौगन्धरायण, मगधाधिपति चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री आर्य चाणक्य, अशोक के राधगुप्त, अवन्तिराज पालक के महामंत्री आचार्य पिशुन[6] चंड प्रद्योत के भरत रोहक, अवन्तिराज अंशुमत के आचार्य घोरमुख[6] कोशलराज परन्तप के कणिंक भारद्वाज और पंचालराज ब्रह्मदत्त के आचार्य बाभ्रव्य[6] आदि हैं।

---

(१) (गोरी) तपई वह अपनी। १२:५:२ (चंद-कथन)

(२) जिहि सकति मुह सकति। ११:८८:२

(३) १२:१४:१

(४) राजं वा प्रतिमा (प्रधान अमात्य कयमास के लिए) स

वीन भर्ता रामा रमे सा सतीम्। ३:२:१

(५) जिहि रूप आषेटक भमइ फिर न रहइ चहुआन।

बर प्रधान जुग्गिनि पुरह धर रक्खइ परमान।। ३:२:१+२

(६) अर्थशास्त्र टीका (प्रा०भारत० पृ० ३६४)

(७) भगवद्दत्त, भारतवर्ष का इतिहास, पृ० २५८

(२) मंत्रणा देना

जब जयचंद ने क्षिति के समस्त छत्रपति राजाओं को जीतकर[१०] काव्य लाभ[११] के लिए पवित्र राजसूय यज्ञ करने की परिस्थापना[१२] की तो प्रधान को बुलाकर इसके सम्बन्ध में परामर्श किया[१३]। इस संदर्भ में अष्टाध्यायी का असहक्षीणा मन्त्र[१४] उल्लेखनीय है। अषडक्षा[र्षिका] अर्थ मात्र दो के साथ किया जानेवाला परामर्श, वह वस्तु जिसे छः आंखों ने न देखा हो। राजा को उचित है कि गुह्य मंत्र के सम्बन्ध में एक के साथ ही (मात्र प्रधान के साथ, और मंत्रियों के साथ नहीं) विचार करे। भारद्वाज इसका कारण देते हैं कि अधिक मंत्रियों के बीच में गया हुआ गुह्य मंत्र फिर गुह्य नहीं रह सकता।[१५] जयचंद के यहां अनेक[१६] मंत्री थे। उन लोगों ने राजसूय यज्ञ करने की जब राय दी तो तैयारियां होने लगीं।[१६]

पट्टराज्ञी

राजा की अनुपस्थिति में जब उसका प्रधान प्रतिनिधि कयमास स्वतः अपराध करते पकड़ा गया तो पट्टराज्ञी ने उसके विरुद्ध कुछ न कर सकने की असमर्थता में अपने पति पृथ्वीराज को बुलाकर उसे दंड दिलवाया[१७]। समाज विरोधी तत्वों को हटाने में, राजा की अनुपस्थिति में, पट्टराज्ञी अपना इतना उत्तरदायित्व समझती हैं। हर्म्य में संयोगिता का आदेश चलता था।[१८]

---

(८) अर्थशास्त्र टीका (पा०भारत० पृ० ३६४)

(९) मत्स्यपुराण २:३० (पा०भारत० पृ० ३६४)

(१०) २:१:७, (११) २:१:१० (१२) २:१:४

(१३) बुल्लक सुमंत परधान तव्व। २:१:६

(१४) ५:४:७

(१५) मंत्रिपरंपरा मंत्रं भिनत्ति। (अर्थ० १:१५)

(१६) मंत्रीसु राज परबोधिता जाम। २: ३: ५५

(१७) ३: ४ और ११ समस्तपद

(१८) जहां पंगानि प्रनाम किय पृथीराजकर। १०:१५:२

सभा या दरबार

राजा की सहायता के लिए सभा[१९] या दरबार था। पृथ्वीराज के आक्रमण की जयचंद के दरबार में इतनी पुकार हुई कि वेद पाठ में विप्र और गान में भामिनियां शिथिल हो गईं।[२०] जयचंद के दूत, उसके (जयचंद) के बंधु और सामंत समेत पृथ्वीराज के दरबार में अधीनता स्वीकार कराने का संदेश लेकर आए।[२१] कयमास-मृत्यु के बाद पृथ्वीराज ने समस्त शूरों को बुलाकर भावी कार्यक्रम निर्धारण हेतु एक सभा की।[२२] इस काव्य में राजा और राज्य सभा के पारस्परिक अधिकार सम्बन्धी किसी समस्या की ओर संकेत नहीं है। कवि चंद के स्वागतार्थ षोडशियों का चलना ऐसा प्रतीत होता है मानों सुरलोक से देवांगनाओं की सभा अप्सराओं के साथ चल पड़ी है।[२३] इस प्रसंग में सभा मण्डली का समानार्थक है। इसी तरह पृथ्वीराज के हर्म्य में उसका (पृथ्वीराज-संयोगिता और उसकी दासियों का) दरबार बिना भृत्यों के उसी प्रकार लगता है जैसे नग विहीन मुद्रिका हो।[२४] यहां भी सभा साधारण मण्डली का समानार्थक है। सुंदरियाँ सब की सब एक समयि[२५](समिति) के रूप में चलीं, वाक्य में `समयि` समूह का द्योतक है। उपमान में `गामिनी सभा`[२६] का भी उल्लेख है। सभा में राजा के बैठने के लिए तख्त[२७] या सिंहासन[२८] है।

---

(१९) यह पृथ्वीराज, जयचंद और गोरी तीनों के यहां है।
दरबार २:३:१०, २:१०;४, १०:१५:४, दरबारि ४:२५:३६
सभिय ३:३:१, ३:८:३, सभिय ५:३:४ सभ ३:१६:३
सभा ५:२३:२, सह ५:२६:१

(२०) दरबार भई इसी कह पुकार। थकि वेद विपुप भामनी स गान।
२:१०:४१५

(२१) उतरे आनि दरबार लगुप। २:३:१०

(२२) सकल सूर बोलिय सभ मंडिय। ३:१६:३

(२३) भुअ बिन त्रिप दरबार स नग बिनु मुंदरिय। १०:१५:४

सभा की सदस्यता के लिए जिनमें साधुता (योग्यता या अधिकार) थी वे सभ्य कहे जाते थे ।[२६] उसके लिए वैदिक शब्द सभेय[२६] था । इस काव्य में गरिठ्ठ[३०] (गरिष्ट=सभ्य) तथा गुरु[३०अ]जन का प्रयोग हुआ है ।

सभ्य या दरबारी

कवि चंद के जयचंद-दरबार में पहुंचने पर नृप (जयचंद) ने उसका आदर किया और कहा," मेरी सभा के सब भूप[३१] मुकुट-बंध हैं और वे सब लक्षणों से युक्त हैं । तू वर्णन कर कि चन्द्रबान पृथ्वीराज किसकी उनहार (अनुकृति) है ।[३१] शुक्र नीति के अनुसार जिसकी वार्षिक आय (भूमि से) ११ लाख से २० लाख चांदी के कार्षापण के बराबर होती थी, वह राजा या भूप कहलाता था ।[३२] दरबारियों में शूर बहुचर्चित हैं । अशोक के अभिलेखों में विज्ञप्ति है कि अत्यावश्यक कार्यों पर विचार करने के लिए परिषद् का अधिवेशन तुरन्त बुलाना चाहिए ।[३३] महामात्य कयमास की मृत्यु के उपरान्त पृथ्वीराज ने एक आवश्यक सभा की जिसमें केवल शूरों को बुलाया है ।[३४] कवि चंद ने अपने परीक्षण-काल में जयचंद के दरबारियों के अदृश्य वर्णन में भी मात्र शूरों का वर्णन किया है । उसने कहा कि "समस्त शूर मंगल, बृहस्पति, बुध, शुक्र तथा

(१)भूप

(२) शूर

---

(२३) मनहु सभा सुरलोक चल चली अछूरी समान । ५:२३:२

(२५) ते सुंदरि सब एक समयि चली । ५:२२:२

(२६) (अन आदर होने पर जयचंद के दूत पृथ्वीराज की सभा से वैसे ही उठ गए) जिम गामिनी सभा बुधजन उचिट्ठ । (२:३:४०)

(२७) तउ ढिल्लिय तख्त देहुं प्रथिराज । ६:२३:१२

(२८) प्रथीराज सिंघासन ठ्यउ । ५:३१:१

(२९) सभाया य: ४:४:१०५, सभायां साधु : , इत्यन्दसि, ४:४:१०६

(पा० भारत०पृ०३६५

(३०) चक्कि चित चिंति चिंति गरिठ्ठ । ५:३:५

(३०अ) संहरिउ सिंघ गुरुजन चाहि । २:३:१२

(३१) मुकुट बंध सवि भूप सब लच्छन सर्व संजुक्त ।

बरनहि किनि उनहारि रहि कहि चहुआन ब इक ।।

५:९८:१+२

शनि आदि के रूप में उदित दिखाई पड़ रहे हैं और उनके मध्य में चन्द्र नाम सार्थक करता हुआ शुभ जयचन्द्र बैठा है।[३५] ये शूर समृद्ध और सुव्यवस्थित हैं।[३६] कवि चंद ने कन्नौज में समस्त शूर और घने

(३) सामंत

सामंतों के मध्य अपनी कविता-पाठक्रिया,[३७] में सामंतों का उल्लेख शूर के बाद हुआ है। सामंत मध्यकालीन भारतीय राजनीति परिभाषा का अत्यंत महत्वपूर्ण शब्द है। अश्वघोष-कृत सौन्दरनन्द[३८] और कालिदास[३९] के रघुवंश में जन्म पाकर बाणा के हर्ष चरित में इसका अत्यंत विकसित रूप मिलता है। मध्यकालीन साहित्य सामंत शूर के बाद और उसकी समता में अत्यल्प रूप में उल्लिखित है। पृथ्वीराज के दरबार में भी एक बार कन्नौज के दूत के साथ सामंत दिखाई पड़े हैं।[४०] इसमें भी दूत, और जयचंद के बंधु के पीछे सबके अन्त में इनका नामोल्लेख हुआ है। इनकी संख्या राजा के वैभव का द्योतक है।[४१] संयोगिता ने सगर्व कहा है कि जिसके सोलह (या साठ?) सामंत हैं, वही कोई पृथ्वीराज मेरा वर है।[४१] सामन्तशाही में सामन्त निम्नतम श्रेणी का पद है। इसकी आय सब से कम १ लाख

---

(३२) तदूर्ध्वं तु भवेद्राजा यावद्विंशतिलक्षक: । १ : १८४

(३३) अवायिक = आव्ययिक (पा० भारत, पृ० ३६१)

(३४) सकल सूर औलिक सभ मंडिय । ३:१६:३

(३५) मंगल गुरु बुध, शुक्र, शनि सकल सूर उदै दिट्ठ ।
     आतपत्र ध्रुव तिम तपत्र सुभ जयचंद बयिट्ठ ।। ५:१२:१-२

(३६) आसने सूर बढ़े समाये । ५:१३:१

(३७) सकल सूर सामंत घन मधि कविता किय चंद । ५:३१:१

(३८) (२४५), पा० भारत० पृ० २२१

(३९) रघुवंश ५:२८, ६:३३

(४०) बंधु समेत सामंत सधूत । २:३:६

(४१) षट दह जिहि सामंत सोइ प्रथीराज कोई । २:१५:३

से तीन लाख चाँदी के कार्षापण तक है। अपराजितपृच्छा ग्रन्थ के अनुसार, मुद्राओं की दर सस्ती हो जाने से यह स्तर १० सहस्र कार्षापण तक पहुंच गया था।[४३] शुक्रनीति के अनुसार महाराज रुष्ट होकर सामंतों की पदवी छीनकर उन्हें पद भ्रष्ट कर देते थे, उनका दरबार में आना बन्द कर दिया जाता था और जनता पर उनका जो कुछ शासन था वह भी छीन लिया जाता था। पश्चिमी भारत से मिले हुए सम्राट विष्णुषेण के ५९२ ई० के लेख में स्थानीय देशाचार (दस्तूरुल अमल) के ब्यौरे में लिखा है कि कोई सामंत यदि गांव में जाता था तो गांव वालों के लिए यह आवश्यक न था कि उसके लिए पलंग-डेरा या भोजन-पानी का प्रबन्ध करें।[४४]

(४) गुणीजन

कवि चंद का आगमन सुनकर जयचंद ने दरबार में अपने गुणीजन की ओर देखा और कहा, " देखो, चंद " डिंभ कवि " है या प्रमाणी कवि ? सरस्वती की इस काव्योच्चार से ज्ञात होता है। " ११ वीं सदी के कश्मीरी कवि विद्यापति बिल्हण के विक्रमांक देवचरित से ज्ञात होता है कि कुछ राजा बड़े दानी और उदार होते थे। उनके दरबार में विद्या और साहित्य के प्रोत्साहन के लिए गुणियों को आश्रय मिलता था। गुणियों ने कवि चंद की परीक्षा ली। सफलता की सूचना पर ही जयचंद से मिलना संभव हो सका। चंद स्वतं पृथ्वीराज का दरबारी कवि है।

मुस्लिम दरबार में अखाड़े

छंद १२ : ११ में शहाबुद्दीन गोरी के दरबार में विभिन्न जातियों के अखाड़े दिखाए गए हैं। तब मियां, मलिक और खानो ने शहाबुद्दीन से कहा कि, " हे सुल्तान, अब हम दौड़कर चंद को

---

(४४) सामन्तामात्यदूता नामन्येषां चाभ्युपगमे शय्यासनसिद्धान्नं न दापयेयुः। (प्रा० भारत० पृ० २२३)

(४५) आयउ भट्ट गुनिजन सन पाखइ।
किमइं डिंभ कवि कवि परवानौ
सरस वदन उच्चारहु वानी ॥ ५:४:१-२+३+४

बुलाने जा रहे हैं ।" ४६

कयमास-कांड के बाद पृथ्वीराज ने सभा बुलाई । राजा ने सभा के समक्ष समस्या रक्खी कि महामात्य कयमास कहां है ? जब कि उसने (पृथ्वीराज) स्वत: उसकी (कयमासको) मार कर जमीन में रातोंरात गाड़ दिया है । राजा ने हठ पकड़ लिया कि कयमास का पता बताना ही पड़ेगा । ४७ न बता सकने पर मृत्युदण्ड का भागी होना पड़ेगा । ४८ कवि चंद ने रहस्योद्घाटन किया और कहा कि ऐसे भयानक कामों से राजा का क्या बनेगा ? भट्ट चंद के वचन सुनकर सभासदगण पलायन कर अपने अपने घर गए ।४९ यह तत्कालीन विचारणीय राज्य-समस्या और सभा की अधिकार सम्बन्धी स्थिति ।

राजा बनाम सभा

कौटिल्य के अनुसार मुख्य मंत्री के बाद पुरोहित के पद का महत्व होता है, और उसके बाद सेनापति का, तदुपरान्त युवराज का ।५० वेद और दण्डनीति दोनों का पाण्डित्य पुरोहित के लिए आवश्यक था ।५१ संयोगिता केलि में पृथ्वीराज ने ६ मास तक राज-काज भुलाकर हर्म्य में ही व्यतीत कर दिया । समस्त लोक ने राज-गुरु से इसका कारण पूछा । जानने पर राजगुरु ने निश्चय किया कि या तो बांधवों को देखेगा या संयोगिता को ही ।५२ उसने अपनी रचना द्वारा राजा को उद्बोधन प्रदान कर उसे कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ कराया ।

राजगुरु

---

(४६) तब बजाब सम उच्चर्यड मियां मलिक्क सु षानं ।
धाइ चंद संमुहि चले वे बोलन सुरतान ।। १२:२२:१+२

(४७) ३:२५, (४८) ३:२६

(४९) भट्ट वयन सुनि सुनि सोष कानहु । अप्पु अप्पु नर ग्रेह परानहु ।।
३:२८:१+२

(५०) अर्थ ५:३ (५१) पा०भा०रा०पृ० ३६६

(५२) कब कंचन खंड मनसिज्ज कब भव निरष्षिपति राज ।। ६१:१६:२

इस काव्य में ललितादित्य के पंच महा शब्द (महाप्रतिपीह, महासंधिविग्रह, महाश्वशाल, महाभांडारगार और महासाधनभाग)[५३] संयुक्त बड़े अधिकारी तथा पाल संज्ञक (नदीपाल,[५४], द्रव्यपाल,[५४] वनपाल,[५४] अन्तपाल,[५४] दुर्गपाल,[५४] गोपाल,[५५] सेतुपाल,[५६]) छोटे अधिकारियों सदृश सास्पद नामोल्लेख नहीं हैं ।

दूत

राज्यशासन में दूत[५७] का पद आवश्यक और महत्वपूर्ण है । ये विभिन्न राज्यों के संयोजक हैं । राजा से मिलने का इन्हें अधिकार है । योगी वेशधारी चंद से शहाबुद्दीन गोरी ने बताया कि राजा से दूत, दरिद्री या लोभी मिलते हैं । योगियों का मिलना अशोभनीय है ।[५८] राजसूय यज्ञ में सहायता-हेतु जयचंद ने पृथ्वीराज के पास दूत भेजा ।[५९] वहां दरबार में मन्द आदर[६०] पाने और ऐच्छिक उत्तर के अभाव में प्रत्यागत दूतों ने अपने राजा को समाचार से अवगत कराया ।[६१] समाचार लेकर जाने वाले धावन को जंघारिक[६२] कहते थे । पाणिनि के समकालीन प्राचीन ईरान के हखामनि साम्राज्य में स्यायार्ष आदि सम्राटों ने इसी प्रकार की दीर्घाध्वग और कार्यगाम धावन संस्था का संगठन किया था ।[६३] लिखित शासन ले जाने वाले को शासन हर और मौखिक संदेश वाहक को परिम्मितार्थ दूत कहा गया है ।[६४] परिम्मितार्थ शासनहर से ऊंचे अधिकारी थे ।

---

(५३) हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनीप्रसाद, पृ०५१६

(५४) (पाले, ६२:७८) पाणिनि । पा० भारत०, पृ०४०१

(५५) महाभारत में आदिपर्व , २२२:१६

(५६) जातक, ३:५४

(५७) पर, १२:२४:१, वर्णिठु, २:३:३६, दूत २:३:७, २:३:४३

(५८) इमहि मिलन नि चंद सुनि करत दरिद्री लोभ ।
अरु जि दुनी महि संचरह इम सउं मिलन न सोभ ।।
१२:२४:१+२

(५९) २:३:६ (६०) २:३:३६ (६१) २:३:४३ (६२) अर्थ०,२:१

(६३) पा०भारत०पृ० ४०२, (६४) अर्थशास्त्र-कौटिल्य, १:१२

दूती

दूती—दूत की अर्द्धांगिनी नहीं है, अपितु यह राजा के लिए एक कार्य साधिका रूपा है जिसके माध्यम से वह अपने विरोधी को अपने अनुकूल या अधीन बनाता है। संयोगिता के पृथ्वीराज-वरण का दुराग्रह छुड़ाने के लिए जयचन्द ने दूतियां नियुक्त कीं, जो साम, दाम, दंड तथा भेद में समान रूप से विचक्षणी थीं, जो ग्रीवा, ताली (ड्योढ़ी) तथा नेत्रों से संकेत मंडित करती थीं और अपनी वचन-रचना की निधि से सज्ञानों (ज्ञानियों) के भी धैर्य को डंडित करती थीं और चार प्रहर काम की उत्तेजना करके विरोधी को वशीभूत करती थीं।[९५]

भृत्य

आजकल की भांति पाणिनि और कात्यायन ने भी भृत्य का अर्थ मजदूर किया है।[९६] यह भी सच है कि शिष्टाचार में आजकल उच्चाधिकारी भी जैसे अपने को सरकार का नौकर कहते हैं, उसी ढंग से सौ चुने हुए सामंतों ने भी कन्नौज में अपने को पृथ्वीराज का भृत्य सम्बोधित किया है।[९७] किन्तु शहाबुद्दीन गोरी का अपने सेनापतियों के प्रति यह आदेश, कि मार्ग में भी अगम्य भृत्यों का संग्रह करो,[९८] पृथ्वीराज के विरुद्ध आक्रमण में युद्ध करने के लिए, द्रष्टव्य है।

---

(९५) पठ्ठिठ पंगराइ दुति दूतीय आलि मुक्कने।
साम दाम दंड भेद सारवं विचष्षने ।।
जे ग्रीव ग्रीव तार तार नैन सैन मंडिनी। जे वचन्न रिचिच्य निध्धि धीर ही सज्ञानं डंडिनी। अनेक बुध्धि सुध्धि सध्य मुच्छि काम जग्गवइ।
ते प्रहारि काम च्यारि जाम अंग समुझवइ ।।२:१३ समस्तपद

(९६) पा०भा०लपृ०२२६, पाणि०५:१:५६, कात्यायन ५:४:११६,
सूत्र ५:१:५६ के साथ इनमें भृति मजदूरी अथवा वेतन का बोधक है।

(९७) (कन्ह वचन) सु सउ भृत्त मभित्य रुक भूत होइ।
सो नृप सुवति न मुक्क कोइ। ६:२३:७५८

(९८) मग्गहु अगम्म भृत संग। ११:७:६

हेजम

दरबार पूछतेपूछते चंद वहां गया जहां पर हेजम रघुवंश कुमार था । हेजम नवगंतुक का नाम और अभिप्राय जानकर शीघ्रता से जयचंद के दरबार में गया और तत्सम्बन्धी सूचना दी । हेजम का अर्थ टीकाकार ने कोतवाल लिखा है । इसका स्थान और कार्य दरबान अथवा द्वारपाल के स्थान और कार्य से तुलनीय है । चंद गजनी में आगे बढ़ा तो उसने दरबान को देखा । उसने कहा, " हे यवन पहरेदार, तू जाकर सुल्तान से निवेदन कर ।[७०] यवन पहरेदार उसके रूप को देखकर हंसा और कहा कि क्षणाभर विलम्ब कर, हतोत्साह न हो ।[७१] दूसरे स्थल पर दिल्ली में कयमास-कांड का रहस्योद्घाटन सुनकर सब सभासद् पलायित होकर अपने अपने घर गए । वहां राज सभा में होकर पट्ट दरबान परिस्थित हुआ ।[७२] प्रधान ने जयचंद को मन्त्रणा दी कि आप यज्ञ करें । पृथ्वीराज के आकार-प्रकार की सुवर्ण की प्रतिमा प्रतोली द्वार पर स्थापित कर दें- मानों वह दरबान (द्वारपाल) हो ।[७३] इससे मालूम पड़ता है कि हेजम, द्वारपाल और दरबान पर्यायवाची हैं । इसे वैदिक काल में दौवारिक कहा जाता था । कौटिल्य ने दौवारिक का वार्षिक वेतन २४,००० पण बताया है (अर्थात् महिषी का आधा और प्रजावती रानियों से दुगुना) जिससे इस पद का महत्व सूचित होता है ।[७४] राजकुल में द्वारका यह सर्वोच्च अधिकारी था ।[७५] राजकुल की ड्योढ़ी से सम्बन्धित सब प्रकार का दायित्व इस अधिकारी के ऊपर होता था ।[७६]

---

(७०) १२:८:१+६, (७१) १२: ६: १+२

(७२) राज मध्रिम संभग्ग पट्ट दरवान परिट्ठिय । ३:२६:१

(७३) थाप्प नु पेलि जिम दरब्बान । २:३:५२

(७४) दौवारिक ..... सन्निधातार : चतुर्विंशति साहस्रा:,अर्थ०५:३

(७५) द्वारादीनां च, ७:३:४, द्वारे नियुक्त:

(७६) प्रा० भारत० पृ० ३६७

शासन के कार्य

(१) सुरक्षा

मनु और नारद के शास्त्रों पर आधारित समकालीन लक्ष्मीधर (११००ई०) का विचार [७७] है कि राजा का सर्व प्रधान कर्तव्य सुरक्षा बनाए रखना है। राजा की 'दैवी उत्पत्ति' के समर्थक भी प्रजा-रक्षा को प्रधानता देते हैं।[७७] संभव है बार बार विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप ऐसा हुआ हो। इस काव्य में भी शासन का प्रमुख उत्तर-दायित्व सुरक्षा की व्यवस्था करना है। पृथ्वीराज जब स्पर्द्धा अथवा विरह-ताप से आखेट में घूम रहा था तो राज्य की रक्षा की व्यवस्था प्रमाणित रूप से प्रधान को दी गई।[७८] जयचंद ने सुरक्षा के लिए भूलों से परिवेष्ठित अगणित हय और गज की व्यवस्था की।[७९] कन्नौज के युद्ध में सामंतों ने स्वामिभक्ति की गंभीर भावुकता में अपने राजा की रक्षा-हेतु बतलाया कि यदि राजा प्रजा की रक्षा करता है तो आपत्ति में प्रजा को भी कर्तव्य है कि अपने राजा को बचाए।[८०] इसलिए आप संयोगिता को लेकर घर चलें। हम लोग दुश्मन को रोकने का कार्य करेंगे।[८०] लेकिन स्मृति और शुक्रनीति के अनुसार कर्तव्यच्युत राजा के विरुद्ध प्रजा के आंदोलन को प्रोत्साहन मिला है।[८१] ब्राह्मण यदि ऐसे राजा को हथियारों से मार भी डाले तो अनुचित नहीं है।[८२] ऐसी स्थिति में शुक्रनीति में पुरोहितों का यह कर्तव्य निर्देशित किया गया है कि वह बुरे शासक को हटाकर किसी अच्छे राजा को सिंहासनारूढ़ करे।[८३] इन विचारों से ग्रन्थकार प्रभावित है। पृथ्वीराज को केलि-विलास में फंसा हुआ और शहाबुद्दीन गोरी द्वारा सीमा पर

---

(७७) कृत्यकल्पतरु (राजनीति कांड) स्टूगल फार इम्पायर: यू०एन० घोषाल, पृ० २७७

(७८) तिहि तप आखेटक भमइ थिर न रहइ बहु थान।
वर प्रधान बुग्गिनि धुरह धर रक्खइ परवान ॥
३:१ समस्त पद ।

(७९) वारण्ण भूमि हय गय अगण्णु। २:१:३.

(८०) राखत अब स रथ रक्खा राउत रक्खइ राय कहं। ८:३:६

(८१) स्टूगल फार इम्पायर : यू०एन० घोषाल, पृ० २७३

जनमत

आक्रमण की तैयारी देखकर प्रजा के आंदोलन का वर्णन हुआ है ।[८४] आंदोलन का नेतृत्व राजकवि और राजगुरु के हाथों में रखा है ।[८५] उन्होंने उत्तम राजा के अभाव में अपने प्रिय और वीर राजा का ही उद्बोधन कर उसे कर्तव्योचित मार्ग पर सन्नद्ध कराया है ।[८६] मुसलमानों में भी शहाबुद्दीन गोरी ने विधान और उसके अदब पर बल दिया है ।[८७]

भारतीय जनपदों के युग में धर्म, धार्मिक राजा और धार्मिक प्रजा इन तीनों के सह अस्तित्व में आदर्श शासन था ।[८८] इन्हीं के समान यूनान के पुर राज्यों में भी उन्नति की पूर्णतम अवस्था को प्राप्त हुआ राज्य, उच्चतम नीतिधर्म और उत्कृष्टतम नागरिक इन आदर्शों के समन्वय की कल्पना की गई थी ।[८९] उत्तम शासन के लिए राज की धार्मिकता की अपेक्षा थी । ग्रन्थकार के ऊपर इस मान्यता

धर्म-सेवन

का प्रभाव है । राजसूय यज्ञ न कराके ज्ञानी मन्त्री के द्वारा जयचन्द को धार्मिकता की ओर बढ़ाने का प्रयास किया गया है । जयचन्द के लिए यह मन्त्रणा थी कि, " हे देव, अनेक देवालय निर्मित कराकर षोडश प्रकार के दान प्रतिदिन दें । हे नृप पंगजीव, मेरी सीख मानें । यह कलियुग है । अब अर्जुन और भीम नहीं हैं कि राजसूय यज्ञ हो ।"[९०]

---

(८४) सकल लोह पुहुअन गुरु इच्छहि ।
गुरु भट मास राज नहि दिच्छहि ।।
जब परजानु प्रपंच उपाअउ ।
तब गुरु पुहुअन वंदहि आयउ ।। १०:१:१-४

(८५) उहि:उहि उभय बुह उप्पअउ मिले चंद गुरुराज ।
(८६) अब बंधउ कउं मनसिजउ अब धन निरक्खिपति राज।।
१०:१४ समस्तपद

(८६) १० :२३ से २६ तक

(८७) विधान थान रक्खि व अदब्बु । १२:१५:११

(८८) सर्व वैयनिक कृत्वा विनयज्ञो बृहस्पते: । दक्षिणानन्तरो भूत्वा प्रजास्य विधिपूर्वकम् ।।
विधि पप्रच्छ राज्यस्य सर्वभूत हिते रत: । प्रजानां हित मन्विच्छन् धर्ममूलं विशांपते ।। पा० भार०पृ० ४०४

राजा जयचंद सप्त क्षेत्र (जैन धर्म के अनुसार जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) का सेवन करता है और धरा पर धर्म में रुचि रखता है।[६१] पृथ्वीराज भी स्वभाव से देवता और गुरु का अहर्निश सेवक है।[६२] राजागण षोडशदान करते हैं।[६३]

(३) दुष्ट-दमन

शुक्र ने दुष्टों का दमन करना भी शासन का धर्म बताया है।[६४] काव्य नायक की प्रशस्ति में कवि ने बताया है कि पृथ्वीराज दुर्जनों को इस प्रकार बंदी बनाता है जैसे राहु चन्द्रमा तथा सूर्य को पकड़ता है।[६५] दुर्जन को दंडित करता है।[६६] जयचंद ने समस्त खलगण को भगा दिया है।[६७] कयमास को समाज-विरोधी अपराध करते पकड़े जाने पर, पृथ्वीराज ने प्राणदण्ड दिया है।[६८]

(४) विजय करना

उपर्युक्त शासन-कार्य परम्परागत एवं शास्त्र सम्मत है। किन्तु अन्य राज्यों को विजित करने की महत्वाकांक्षा प्रबल एवं व्यापक है। दिग्विजय के इस युग ने मान्यता प्रदा की है। अनेक राजाओं ने दिग्विजय कर ऐतिहासिक महत्व पाया। इसी काव्य-लाभ के हेतु जयचंद ने भी राजसूय यज्ञ करने की ठानी।[६९] पृथ्वीराज ने भी अपने सामंतों से अपनी विजिगीषा घोषित की है।[१००]

---

(८९) पा०भारत० पृ० ४०४

(९०) उतरु त बीअ मंत्रिय सुजान।

करि धम्म देव देवर अनेय। षोडसा दान दिनु देहु देय।।

मुंहु सिष्ष मानि नृप पंगवीय। कलि अपिय नहीं अर्जुन सु भीय।

२:१:११-१६

(९१) अनवज्जराउ। सत खित्त सेव धरि धम्म चाउ।। २:१:११-२

(९२) जिहि अहनिसि सेव देव गुरु बानी। १०:३:३

(९३) करौं षोडसा राय अप्पति दान। ४:१०:१३

(९४) स्टूगल फार इम्पायर : पृ०एन०घोषाल, पृ० २७२

(९५) इम दुज्जन संग्रह राउ जिम चंद सूर गह। ५:१६:२

(९६) दुजन ह्रुह वि डंड दिवि। ५:१६:३

(९७) विद्रु प्रचारी खलं। ५:१०:३

(९८) कयमास-वध, अध्याय ३

चंद ने बताया है कि उद्यमहीन राजा प्रात:कालीन चन्द्रमा की भांति मलिन हो जाता है। उसमें प्रकाश विकीर्णित करने की क्षमता नहीं रह जाती।[१०१] इसी प्रकार भोग विलास भी राजा को उत्तम शासन करने में अक्षम बना देता है। संयोगिता के साथ केलि-विलास के फलस्वरूप शासन सदैव के लिए पृथ्वीराज के हाथ से जाता रहा।

उत्तम शासन की बाधाएं :—
(१) उद्यमहीनता
(२) भोग-विलास

उपसंहार

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि राजतन्त्रीय शासन प्रणाली में राजा[१०२], प्रधान[१०३], मन्त्रीगण,[१०४] राजसभा,[१०५] राजकुल,[१०६] और दूत[१०७] मुख्य अधिकारीगण हैं। प्रधान मन्त्रणा देता है।[१०८] और राज की अनुपस्थिति में मुख्य शासनाधिकारी का भी कार्य सम्पन्न करता है।[१०९] सभा में प्रधान के अतिरिक्त भूप,[११०] शूर,[१११] सामंत[११२]

---

(९९) पुहु पंगु राउ राजसू जग्गु। २:३:१

(१००) मोहि चंद छल विजय पन। ३:२१:२

(१०१) दिक्खियतु चंदु किरण अनु मंदु।
उद्दिम्महीन जिम नृपति चंदु।। ४:७:११+१२

(१०२)	दे० अ० टि० स०		१ से ३
(१०३)	,,	,,	४ से १६
(१०४)	,,	,,	१७
(१०५)	,,	,,	१९ से २८
(१०६)	,,	,,	५० से ५६
(१०७)	,,	,,	५७ से ६४
(१०८)	,,	,,	१० से १३
(१०९)	,,	,,	४, ५
(११०)	,,	,,	३१,३२
(१११)	,,	,,	३३से ३७
(११२)	,,	,,	३७ से ४१

और गुणीजन[११३] प्रमुख सभासद हैं। इनके राजनीतिक अधिकार नगण्य हैं।[११४] जन समुदाय में राजनीतिक चेतना के प्रमाण मिलते हैं।[११५] आवश्यकता पड़ने पर वे अपने राजा के विरुद्ध आंदोलन ब्राह्मण राजगुरु के नेतृत्व में करते हैं।[११५] शासन का मुख्य काम सुरक्षा,[११६] धर्म-सेवन,[११७] दुष्ट-दमन[११८] और विजय[११९] करना है।

---

(११३) दे० अ० टि० स० ४५
(११४) ,, ,, ४७ से ४९
(११५) ,, ,, ८४ से ८६
(११६) ,, ,, ७७ से ८०
(११७) ,, ,, ८४ से ८७
(११८) ,, ,, ८७ से ९१
(११९) ,, ,, ९२ से ९३

(३) युद्ध

(१९८ शब्द अपने २४० पर्याय सहित युद्ध के संदर्भ में प्रयुक्त हैं ।)

अनुच्छेद संदर्भ

१— युद्ध

२— रण-शूरता

३— शूरों के युद्ध की भयंकरता

४— रण-शूरों की विशेषताएं

(१) भुजबल

(२) रण में मृत्यु का स्वागत करना और जीवन को निस्सार समझना

५— (३) स्वामिभक्ति

६— रण-शूरों की नामावली

७— सेना

८— सेना का प्रकार

९— रथ

१०— १२—गजसेना, प्रकार, फुटकर

१३— अश्वसेना

१४-१५ — पैदल सैनिक, संख्या, सेनाधिकारी

१६ — सैन्य-व्यवस्था

१७— व्यवहृत आयुध

१८— आयुधों की परम्परा में

१९— रणवाद्य

२०— युद्ध के कारण

२१— फुटकर

२२— उपसंहार

युद्ध[१]

युद्ध के लिए प्रतिपाद्य काव्य का नायक पृथ्वीराज पागल बना रहता है ।[२] सद्य: परिणीता मुग्धा को छोड़कर उसे युद्ध सुहाता है ।[३] युद्ध के प्रति औत्सुक्य राजाओं[४] के लिए अत्यंत प्राचीन परंपरा है । ईशेन्द्र महेश भी युद्ध वीरता में मदोन्मत्त हो गए हैं । प्रकृति में पलाश का रक्तिम पुष्प शिशिर-वसन्त के पारस्परिक रणरंग का मानो सूचक है ।[५]

----

(१) अहारे ६:५:१, कांदल ७:४:१६, जंग ७:१७:१६, ११:१२:७, जुध्ध ६:७:१, ६:२३:१, ११:१२:१७, दंग १:६:३, धरा (रणधरा) ६:५:२३, रण २:५:४६, रणे १:३:६, रन ५:१६:२, विग्रह २:६:४, ७:७:२, षेत (रणक्षेत्र) ६:१:२, ८:२७:१, संग्रामि ६:५:३

(२) सोमेसुर नर नंद दंग गहिला । १:६:३

(३) तजि मुग्धहि नव जुध्ध सहाइ । ६:२३:३

(४) हमारी सभी स्मृतियों में युद्ध धर्म समझा गया है । मनु, याज्ञवल्क, विष्णु स्मृति, महाभारत, कौटिल्य तथा अनेक पुराण राजधर्म के रूप में युद्ध का वर्णन किया है ।

> नैष शूरै: स्मृतो धर्म: क्षत्रियस्य पलायनम्
> श्रेयोहि मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम् ।।
> देश कालेन संयुक्तं युद्ध विजयदं भवेत् ।
> हीनकालं तथैवेह ज्यायोपफलदो ।। महाभा०,विराट०४६

शुक्राचार्य की दृष्टि में युद्ध धर्म है । प्रा०भारतवष्याग्रामिका: रा० दी०पा० पृ०१४० । आर्यों को भारत में बसने के लिए अत्यधिक युद्ध का सहारा लेना पड़ा है ।

रण-शूरता

सैनिक-संस्थाओं में रण शूरता, बारहवीं सदी के व्यावहारिक जीवन की, एक उच्चतम उपलब्धि है। तत्कालीन युग की यह प्रवृत्ति यूरप,[७] जापान,[८] और मिस्र[९] आदि देशों में भी समानरूप से पायी गयी है। भारत की रणशूरता धार्मिकता से आवृत्त है। इस काव्य में रण एक जप समझा गया है। रुधिर-मधु, जीव-जौ, हाथीतन-तिल, कटे हुए बाल सहित सिर-कुश कांस, अलभ्य भुजदान प्रहार—अलभ्य—दान के रूप में हैं।[१०] रणभूमि एक तीर्थ स्थान है जिसमें युद्ध करना स्नान-लाभ के सदृश है।[११] शुक्रनीति ने बताया है कि संसार में दो ही मनुष्य सूर्य लोक को पार करके स्वर्ग पहुंचते हैं। ये हैं योगी तथा रण प्रवृत्त योद्धा गण।[१२] इस काव्य में वर्णित है कि आकाश में देवगण शूरात्मा की जय जयकार किया करते हैं।[१३] विमान में अप्सरायें अमृत-कलश लेकर स्वागतार्थ प्रतीक्षा में निरत रहती हैं।[१४] वे 'अरिक्त' 'अरिक्त' (अब स्वर्ग की रिक्तता शूरों से शेष नहीं रहेगी) कहती हुई प्रत्यक्ष होती हैं। उनके सूर्यलोक में

---

(५) हंस हदं। रणी बीर मदं। १:३:२१-+- ६

(६) फुल्लिंग पलास तजि पत्त रत्त। रण रंग सिसिर जिहद बसंत ।।
२:५:४५+४६

(७) द हिस्ट्री आव यूरप : हेनरी पिरेनी (१६३६) पृ० १५६

(८) जापान : बी०बी० सैंसम (१६४६) पृ० १६२

(६) द हिस्ट्री आव इजिप्ट : जेम्स हेनरी ब्रीस्टेड (१६०६)पृ० १५८

(१०) रुधिरतमधु:अजीव कर तनु तिल मिलि पिंड उचि।
कुस सीस अरि अक्षि पानि (सो) दीनी केलि रुचि ।।
८:३०:३+४

(११) धार तिथ्थ हरि बानि फिरह संसार न्हान तहं। ८:३०:२

(१२) शुक्र नीति ४:३१७

(१३)जय जय कहि सहु देव। ८:२०:१

(१४) अमिय कलस आयास लिमह अच्छरी उछंग। ८:२४:३

पहुंचने पर सूर्य का तेज और सौन्दर्य मन्द पड़ जाता है, पवन एक प्रचण्ड निनाद करने लगता है। उस निनाद को सुनकर शिव माथा पीट लेते हैं, उनके मस्तक के चन्द्र उल्लसित होकर अमृत-विंदु गिराते हैं, धवल बैल भड़क जाता है, गौरी शंकित होती हैं, गंगा छूट जाती है, और शंकर हंस पड़ते हैं।[१६] इन रण-शूरों के युद्ध से तीनों पुर (आकाश, पाताल, मर्त्यलोक) कदली-पत्र की भांति कंपित हो जाते[१७] हैं, शेष और उच्चैःश्रवा का पृथ्वी एवं सूर्य के वहन करने का उत्तर-दायित्व भय से छूट जाता है,[१८] हरि, हर तथा ब्रह्मा की समाधि छूट जाती है,[१९] ब्रह्मा क्षीर सागर में कमल नहीं पाते और शंकित होकर ब्रह्माण्ड पकड़ लेते हैं,[२०] इन्द्र मलिन हो जाते हैं,[२१] शिव का प्रलयंकारी डमरु डह डह करने लगता है क्योंकि शिव जान गए हैं कि योग-योगादि का अब अन्त हो गया है,[२२] इंदु भी डर कर

शूरों के युद्ध की भयंकरता

---

(१५) तब सु भई परतक्खि सरीत सरीत अकत कह। ८:२४:१

(१६) तरणि तेज रस वसिग पवन पवनह घन वज्जिय।
हरि नादि ईस मथ्थउ धुनउ अमिय विंदु ससि उल्लसउ।
विहुडरउ धवर संकिय गवरि गंग संकर हसउ ॥
८: ३२: ४ से ६ तक

(१७) कंपिय तीनपुर केलि पत्तं। ७:६:२
कु कंपि। ७:१२:१२

(१८) किम किने सेस सिर भार रख्खिं।
किमे उच्चासु रवि रथ्य नख्खिं॥ ७:६:५+६

(१९) हरी हर ब्रह्म तन तिहि समाधि तिहि पिन टरिग। ७:६:६

(२०) कमल सुत कमल नहि मंडु लहियं।
सकियं ब्रह्म ब्रह्मांड गहियं॥ ७:६:७+८

(२१) दिग्विजय दीन हुवं। ७:६:२०

(२२) डमरु डह डह किमं गवरि कंतं।
जानियं जोग जोगादि अंतं॥ ७:६:३+४

आकाश गंगा छोड़ कर भाग निकलता है, २३ निष्ठुर कमठ-पीठ प्रसरण-भार से विस्थूल हो जाती है,[२४] शेष नाग प्राणों की याचना करने लगते हैं,[२५] महादेव समाधि-आधि से जाग कर अपूर्व रूप से जटा बांध कर काल को लुब्ध करने लगते हैं,[२६] पृथ्वी, घोड़ों के खुरों के धार से फूटने लगती है, [२७] सैनिक अर्क के भुवों की तरह उड़ते हैं,[२८] सम्प्राप्त सार (शस्त्रास्त्र) आतपत्र हो जाते हैं,[२९] धूल का डंबर आकाश में जा लगता है,[३०] उससे आकाश आच्छादित हो जाता है।[३१] रणधरा में रुधिर का द्रह पुरित होकर भर गया है।[३२] इस द्रह में मत्स्य श्रेष्ठ अश्व,[३३] कच्छप गज-कुंभ,[३३] शूरों के कटे हुए मुख कमल,[३३] मीरों के सिर पंकुर[३४], झिलती हुई डालें द्रुम, [३५] पाणि, कंध, धड़ कच्छ-मच्छ,[३६] कच सैवाल [३७] और कंठहीके सहित गिद्धिनी मराली[३८] के सदृश दिखाई पड़ते हैं। युद्ध की भयंकरता को देख कर हरि ने हर का हाथ पकड़ा और कहा," हे वामदेव, इस बार तुम्ही रक्षा करो[३९]।

---

(२३) हरप्पि हंदु हंहने। ७:१२:१८

(२४) कमठ्ठ पिठ्ठ निठ्ठुरे। प्रसलम्न भार भिख्खरे।। ६:१२:१९+२०

(२५) साप हंस मग्गये। ७:१२:२१

(२६) समाधि आध जग्गये।। अपूव्वं ति बंधये।
   जटाहु कालु लुम्भये। ७:१२:२२ से २४

(२७) धर फुट्ट खुरधार। ८:१६:१

(२८) जिसे अर्क फल फूटते ही अनन्ता। ८:१०:२०

(२९) सार संपत्त आतप्प रज्जं। ८:१०:११

(३०) लगि अंबर अंबर डंबरियं। ७:४:१३

(३१) उछिछ्यं रेन आयास मुक्कं। ७:६:२२

(३२) पूरि धर महल रुधिर धर । ८:२६:२

(३३) मछ्छ ति हैवर कुरहि रुहुक गय कुंभ विधारहि।
   मुख कमल विराजहि ।। ८:२६:३+४

(३४) परे पंकुरे केस से मीरन सीसं। ७:१७:२२

(३५) द्रुमं डाल झोलंति हालंति देषं। ७:१७:२६

यह परंपरागत अतिरंजित युद्ध की योद्धाओं की रण-शूरता का घोतक है ।

रण-शूरों की विशेषताएं—

(१) भुजबल[४०]

जयचंद के समक्ष चंद के पहुंचने पर कन्नौजपति ने सर्व प्रथम उसके (चंद) स्वामी पृथ्वीराज के सम्बन्ध में पूछा और हंस कर कहा कि वह(पृथ्वीराज) रण में हाथ चलाने में कितना जाने है, बताओ।[४०क] चंद ने उत्तर दिया कि जितनी देर में शत्रु हाथ उठाता है, उतनी देर में वह (पृथ्वीराज) पचास हाथ दे देता है।[४१] पृथ्वीराज का जब कन्नौज जाना निश्चित हो गया, उसने चंद की सौगंध खाकर वचन दिया था कि वहां कुछ नहीं बोलेगा, किंतु जयचंद यदि युद्ध करेगा तो वह (पृथ्वीराज) दोनों भुजाओं पर युद्ध ओढ़ेगा।[४२] पृथ्वीराज के शूर और सामंत दोनों हाथों में अस्त्र धारण करते हैं।[४३] योद्धाओं के हाथ रणभूमि में पीछे नहीं हटे, उठे हुए हाथ गगन से जा लगे और समान रूप से शस्त्रास्त्र चलाते रहे।[४४] ये शूर पृथ्वी और मेरु को ठेल सकते हैं।[४५] गोरी से युद्ध हेतु प्रयाण करते समय पृथ्वीराज ने संयोगिता से कहा, " तुमने, हे श्रेष्ठस्त्री ! मेरे बाहुओं की पूजा की है, और वही मुग्धा, इस समय रतिनाथ की बातें कह रही हो।[४६] -

---

(३६) परेपानि अंसं धरंगं निनारे ।
मनउ मझ्झ-कझ्झ तरे तीर भारे । ७:१७:२६

(३७) कवे सा सिचाली । ७:१७:३३

(३८) गहे अंत गृध्धी सु सोहै मराली । ७:१७:३४

(३९) हर लभ्भहि हरि गहहि बाम रभ्भहि हति वारहि ।८:३४:३

(४०) रण शूरता के कारण युद्ध का ढंग अधिकांशत: भुज-बल पर आधारित था । उदाहरण के लिए दे० वैजनाथ सिंह यादव की थीसिस` १२वीं सदी में उत्तर भारत में समाज के कुछ रूप, पृ० २१९

(४०क) किन्तु इक रन लभ्भग्गरन सु कहि नृप कुअ्भउ चंद । ५:१९:३

(४१) जब लगि अरि कर उभ्भवइ तब लगि देइ पचास ।। ५:१७:२

(४२) चलउं भट्ट सेवग होइ सघ्घरं । कउ बोलउं त लभ्भु दुह मघ्घरं ।।
जबक राइ जानह संमुह हुअ, तब अंगमउं समर दुहिनि भुअ ।।५:३९

(२) रण में मृत्यु का स्वागत करना और जीवन को निस्सार समझना[४७]

पृथ्वीराज के इस कथन--" हे कवि, एक सच्चा उपाय सूझ गया है। मृत्यु अटल है। रण-तीर्थ हमें बुला रहा है। इस अवसर पर हम कन्नौज में रण कौशल दिखाएं[४७क] पर चंद ने समझ लिया कि इस समय पृथ्वीराज के संकल्प से उसका जीवन भारस्वहीन पड़ रहा है -- उसको सिर उतार फेंकने की उत्कंठा हो रही है।[४८] कन्नौज में पृथ्वीराज ने अपनी धारणा व्यक्त की कि नगर प्रदिक्षणा करके हमें रणक्षेत्र में सम्मुख मरना है।[४९] जब सामंतों ने आत्म-रक्षा हेतु रण क्षेत्र से भाग कर दिल्ली जाने के लिए पृथ्वीराज से याचना की तो उसने (पृथ्वीराज) उत्तर दिया कि," हे सामंतो, तुम्हारी मति घट गई है जो रणभूमि में मरने का हउवा मुझे दिखा रहे हो।[५०] पृथ्वीराज ने शाह शहाबुद्दीन से समस्त युद्ध साहस के साथ और इच्छा-पूर्वक किए थे।[५१] ये शूर इतने युद्ध-प्रेमी होते हैं कि चकी-चक्रवाक की भाँति निशा के गत होने और भानु के आगमन की वांछा करते हैं कि जिससे दिन में पुन: युद्ध कर सकें।[५२] निसान के शब्द सुन कर ये उत्साहित होते हैं।[५३]

---

(४३) उट्ठिय सूर सामंत रवं। कप्पिय किय हप्पिय प्रीराज सयुथ ।।
८:१०:१४+१६

(४४) मिले योध वत्थे न हत्थे हकारे।
उठे गयन लग्गे समं सार भारे। ७:१७:६+१०

(४५) जि भर भूमिह ठिल्लन कब्ब त मेल धरहिं मनु वथ्थ। ५:३०:२
= इहि सथ्थहि सामंत सुभट ब बब ठिल्लहिं मय दंत। ६:३१:२

(४६) चाहं कुम्भठ वरह तुह कहि स मुख्य रति नाथ। १०:२६:२

(४७) प्राचीन भारतीय योद्धा रण में मृत्यु का आलिंगन करना धर्म समझते थे। मरना- मारना उनके जीवन का व्रत था :--
अधर्मविजितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
धर्षणामर्षिणां भीरु मरणादतिरिच्यते ।। वाल्मीकि
रामायण, किष्कि०,अ०१६
बिभेमि न तथा मृत्योर्यथा बिभ्ये नृतावहम् ।। महाभार०,
वन०, ३०

(३) स्वामिभक्ति[५४] पृथ्वीराज क्षण भर रणक्षेत्र में अपने सामंतों को रोक कर नगर प्रदक्षिणा में गए हैं। इधर शत्रुओं की ओर से युद्ध की रण-भेरी बजी, आक्रमण हुआ, सन्नाह से सुसज्जित अश्वसेना ऐसी प्रतीत

अप्य विश्वजितं विष्णुं मातुलं प्राप्य सूतज। कितरं चार्जुनं युद्धे भीमर्मृत्युपयास्यति ॥

एतच्च सर्ववीराणां कांक्षितं भरतर्षभ। संग्रामे भिमुखोमृत्युं प्राप्नुयामिति मानद ॥ अभिमन्यु वाच:

किंतु यह संतुलित और अनुशासित था। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में वीरता, कूटनीति का सहायक है (अनु० स० शास्त्री (१९१५) पृ०४१२) दो गुप्ता शिलालेखों (सं० १३, प्लेट ७, पृ०५५ और सं०१७, प्लेट१०, पृ०७८) में भी वीरता नियन्त्रित है। हर्ष चरित में भी यही स्थिति है —शौर्यप्रज्ञो पर्यूढितपराक्रमस्य। कणो सं० ५:१३ वैजनाथ सिंह यादव: १२ वीं सदी में उत्तरी भारत में समाज के कुछ रूप पृष्ठ ५२-५६। हर्ष के बाद ही, यूरोप की भाँति भारत में भी, स्वच्छन्द रण-शूरता का उद्भव हुआ। यादव जी के अनुसार यह बाण के कादम्बरी, दंडी के दशकुमार चरित और माघ के शिशुपालवध में पाया जाता है। इसके आविर्भाव का कारण (१) सामंतवादी प्रथा (२) राजपूतों का उदय और (३) चारण-भाटों का प्रचार हैं। यह प्रवृत्ति योरप में भी थी। (ऊपर की पुस्तक और पृष्ठ वही) मालवा के एक शिलालेख (वा०श०११६१) के अनुसार यह उत्तर भारत में बहुत प्रचलित था। उत्तर भारत के राजे अपने को तलवारों पर न्यौछावर कर देते थे। उनके लिए रण-मरण सर्वोत्तम सौभाग्य था, अन्यथा कुछ नहीं। (इं० आइ० भाग २, पृ० १९२)

(४७अ) जब उपाउ कुरुभाउ एक संचउ। सुनि कवि मरनु टरन नवि रंच्यउ॥
समर तिहुअ नंगह बल भच्चउ। कबहिं कब स मन भर नंच्चउ॥ ३:४१

(४८) मन मल्लभर चिर हरन कज जीवन धरन सिरभार। ३:४२:२

(४९) चक्कित करि कनकच्छउ सुनि संजुह मरणाच्च। ६:३:२

(५०) मति चढ़ि सामंत मरण कज मोहि दिखावहु। ८:२:१

(५१) सं साक्षिय सदा अवहि सब्बं इच्छामि युद्धाहने। ३:६:२

होती थी मानों अकाल प्रस्तुत करने वाली सघन टिड्डियों का प्रवाह पर्वत से छूट पड़ा हो ।[५४क] पृथ्वीराज के शब्द सुनकर ये उत्साहित होते हैं और इसके (पृथ्वीराज) रणशूर इस समय भी अनुशासित हैं । वे परस्परकह रहे हैं, कि स्वामी के वचन को भंग किसी दशा में न करो, हम सभी राजा (पृथ्वीराज) की बाट देखें ।[५५] राजा आए । भयंकर युद्ध हुआ । तब कनक बड़े गुजर ~~बड़े गुजर~~ ने कहा, " हे पृथ्वीराज सारी परिस्थिति देखकर सुनो । हमारा और तुम्हारा पुन: मिलना कठिन है, इसलिए हे स्वामी तुम स्वयं तो अपने घर पहुंचवाओ और मैं रवि-मंडल का भेदन करूं, प्राणों के लिए सत्य नहीं छोड़ूंगा, मेरा रुंड खंड खंड हो जाएगा, तो मैं अपने मुंड से हर-हार को तो मंडित करूंगा । मैं तो स्वामी के लाज-पंक में आरूढ़ हुआ हूं ।" और वह रण में जूझ गया ।[५६] यही बात सारे सामंतों ने पृथ्वीराज से कहा कि आप संयोगिता को लेकर घर जाय, हम लोग स्वामी को पार स्थिति करेंगे ।[५७] म्लेच्छों के चित्त में भी अपने स्वामी जयचंद के प्रति स्वामिभक्ति है ।[५८]

---

(५२) निसि गत वंदीय भानं चक्की चक्काय सुर सा चित्त । ६८:१८:१

(५३) बल भरहि सुर सुनि सुनि निसानं । ४:७:६

(५४) पहले न्याय अथवा राज्य के लिए लड़ाई होती थी । किंतु अब इस सामंतवादी प्रथा में सैनिकों में व्यक्तिगत स्वामिभक्ति अधिक पायी जाती है । उदाहरण के लिए देखिए डा० बृजनाथ सिंह यादव की थीसिस १२ वीं सदी में, उत्तरी भारत में समाज के कुछ रूप, पृ० २२०

(५४क) ६:१ और ४

(५५) भगाहु बंध ति अज्ज भर देति न बान ति चढ्ढु ।
बचन सामि भंजु मन करहु सब जोवहु नृप बट्टु ।। ६:१६

(५६) दिक्खि सुनहु प्रथिराज कनक नायो बड़ गुज्जर ।
हम तुम दुल्लह मिलनु स्वामि जुझ्झ हु जापु घर ।।
हउं रविमंडल भेदि जीव लगि सच न छंडहुं ।
खंड खंड हुअ रुंड मुंड हर हार सु मंडहुं ।।

संदिप्त

कवि ने रण-शूरों की समस्त विशेषताएं एक ही स्थल पर विंभ के माध्यम से बताया है कि उसने (विंभ ने) रण में बैन नहीं किया, शत्रुओं से नहीं मिला, भयभीत होकर युद्ध-स्थल से भागा नहीं, अयश नहीं कमाया, अमार्ग गामी नहीं हुआ, स्वामी को लज्जित नहीं किया, जीते जी रणक्षेत्र से नहीं गया, अपयश नहीं, सुना, दबैल नहीं बना, पकड़ा जाते हुए पकड़ा नहीं गया, युद्धक्षेत्र में बना रहा और मरना जानकर युद्ध में जूझा । उसको दाग लगा तो केवल तिलक के रूप में वह धन्य है, धन्य है, धन्य है । [५६]

---

(५७) हए बोल रख्ख कालि अंतरि देहि स्वामि पारथ्थिय अ ।८:१:५

(५८) स्वामिता विरुधी । ७:१५:१५

(५६) काल न कलउ अरियन नुं मिलउ भरहरि न भग्गउ ।

अजस न लिअउ असहीन न भयउ अभग्ग न लग्गउ ।।

पहु न लज्यउ जीवत न भयउ अपजस नहि सुनयउ ।

हयर जिम दव्वरणि रहउ गाहंत नं गहयउ ।।

वलि गयउ न मंदिर थिरि रहउ मरणउ जाणिउ जुज्झउ धनी ।

विंभ लगि दाग तिलक मिसि बहु बहु बहु धन्नुल धनी ।।

विंभ कैम्ब्रिज मेडिएवल हिस्ट्री, चोप्रान, `शिवलरी` तथा डा० बृजनाथ सिंह यादव के १२ वीं उ० के समाज के कुछ रूप में रण-शूरता के निम्नस्थ विशेषताएं गिनाए गए हैं:— (१) रणशूरों के लिए युद्ध एक क्रीड़ा के रूप में था । उनको रण-खुजली रहती थी । (२) यह अनियंत्रित और अति रूप में था । (३) सच्ची रणशूरता में धोखा और कूटनीति का स्पर्श नहीं है । इनका प्रयोग मर्यादा और यश के विरुद्ध था । (४) विश्वास के विरुद्ध अपने शत्रु का भी हनन निषेध था । (विगर्हित धर्म धर्मेर्निवर्हिणां, विश्विष्य विश्वास कुर्याम् छिया॑मपि : नैषधचरित्र १, १३१) क्षात्रधर्म मूर्छित शत्रु के मारने के विरुद्ध था— क्षात्रधर्म इदानीमस्त्यथानां कथा कथा: । यत्तथा मूर्च्छितं अत्रौ परोधवि कृपां व्यथा: । द्वेयाश्रय, हेमचंद, भाग २, पृ० ४६२ । इसी प्रकार की बहुत-सी मान्यताएं और विश्वास थे जिनके विरुद्ध आचरण शूरता के प्रतिकूल था ।

रण शूरों की नामावली

विवेच्य काव्य में पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध के प्रसंगों में पृथ्वीराज पक्ष के अनेक योद्धाओं के नाम आते हैं, ये हैं :-कन्ह,[६०] नागौर-निवासी नरसिंह दाहिमा,[६१] चन्द्र पुंडीर,[६२] सारंग सोलंकी,[६३] पाल्हन-देव कूरंभ,[६४] गुर्जर का माल चंदेल,[६५] पट्टा का भूपाल भान भट्टी,[६६] सामला सूर,[६७] अच्छ परमार,[६८] धार का निरवान वीर,[६९] जंगली-राय,[७०] मंडली राय माल्हन रूंस,[७१] जावली,[७२] जाल्ह ७३, बाघ बागरी,[७४] बलीराम यादव,[७५] गाजी,[७६] पाघरी राय,[७७] परिहार राणा,[७८] सांखुला,[७९] सींह,[८०] सिंहली राय,[८१] भोज,[८२] मल्ल,[८३]

---

(५) रणशूर मृत्यु की परवाह नहीं करता था । (विगत मरण शंकस्य युध्यमाने । रूपक शतकम्, पृ० १०६

इसका विचार साधारण मनुष्य के समझ के बाहर था । इस रण-शूरता की अति-प्रियता ने भारत के राजनैतिक वातावरण में द्वेष, तनातनी, अविश्वास, अस्थिरिता और लगातार युद्ध के सम्बन्ध में सोचने की स्थिति ला दी थी । हमीर-मद-मर्दन के अनु-सार इसी के फल स्वरूप मुस्लिम आक्रमणकारियों से ये लोग पतझड़ की तरह गिरे । सर्वोऽस्मिन्तृणामिव पतायते राजवंश:(स्कूट२,पृ०१४) । कहा जाता है कि कन्नौज का जयचंद, पृथ्वीराज के अमानुषीय मृत्यु को सुनकर उत्सव मनाने के लिए आदेश देता है, और यह कार्य असामान्य नहीं प्रतीत हुआ । डा० बृजनाथ सिंह यादव: १२ वीं सदी में उत्तरी भारत में समाज के कुछ रूप, पृ०६४

(६०) ८:१८:२२, (६१) ७:२० (६२) ७:२०, (६३) ७:२०, ७:३१
(६४) ७:२०,(६५) ७:२० , (६६) ७:२०, (६७) ७:२०, (६८) ७:२०,
(६९) ७:२०, (७०) ७:२८, (७१) ७:३१, (७२) ७:३१, (७३) ७:३१,
(७४) ७:३१, (७५) ७:३१, (७६) ७:३१, (७७) ७:३१, (७८) ७:३१,
(७९) ७:३१, (८०) ७:३१, (८१) ७:३१, (८२) ७:३१, (८३) ७:३१,

भोआलराय,[८४] हरसिंह चोहान,[८५] कनक बड़ गुजर,[८६] निढर राठौर,[८७] आल्हन,[८८] बाहर सुल अचलेस,[८९] मग्गुल पति विंभ चालुक्य,[९०] लखन-बघेल,[९१] और पाहार तोमर,[९२] इन नामों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक साक्ष्य अप्राप्य हैं। [९३] इन रण-शूरों को भट,[९४] सामन्त[९५] और राजपूत[९६] नामों से भी सम्बोधित किया है।

---

(८४) ७:३१, (८५) ८:११, (८६) ८:१४, (८७) ८:१६
(८८) ८:२३+२४, (८९) ८:२५, (९०) ८:२७:२६, (९१) ८:३१
(९२) ८:३३

(९३) डा० माताप्रसाद गुप्त की राय है कि युद्ध-विषयक ऐतिहासिक काव्यों में इस प्रकार की नामावली प्रायः कल्पित होती और वैसे ही कदाचित यह भी है। पृथ्वीराज रासउ, पृ० ११३(भूमिका)

(९४) ६:१९:१, ८:१:२। इनको सहस्र भट (स्कंधावारं जगादैवं सहस्रभट नायकः। कथाकोष : सिंघी-जैन-ग्रन्थमाला, पृ० ३८४), भीमभट (कथा मंजरी ६:७६९-८८२), सहस्रानीक (कथा मंजरी २:९८), सहस्रायोधि (बोधि सत्वा वदन कल्पलता, भाग २, पृ० ७६१, बंगाल के एसियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित (१९१८), भीम पराक्रम (जयचन्द का ९:७७, ७९, ९२, १०:१०१) और सत योधा से भी सम्बोधित किया गया है। (दे० बृजनाथ सिंह यादव का शोध प्रबन्ध, "१२ वीं सदी में उत्तरी भारत में समाज के कुछ रूप, पृ० ६३-६५)

(९५) ६:१:१, ८:१:१, ८:२:१, ८:२:६। मध्यकाल की परम्परा में रण-बाकुरे वीरों को सहस्रभट सामन्त या साहसवीर कहते थे। वह अकेला ही हजार आदमियों से युद्ध करने की शक्ति रखता था। पद्मावत : वृ०वकी०व्या०ज०कृ०, पृ० ८१६, प्राणों से ऊपर उठ कर, जी का मोह छोड़कर, जानकी बाजी से लड़ने वाले रण बाकुरे भट, सामन्त कहलाते थे। (सामन्तो स्य महाबल : सहस्रभट नायकः। हरिषेण कृत बृहत्कथा कोष, ३५:२, ३५:५)। हेमचन्द्र ने उन्हें साहस्र और सहस्री (= हजारी) कहा है (ये सहस्रेण योद्धारस्ते साहस्राः सहस्रिणः। अभिधान चिन्तामणि, ३५:२)। ऐसे वीरों

सेना [९७]

रण-शूरों का विचार है कि पृथ्वीराज अपने शूरता से राजा है और जयचन्द अपनी पारसीक सेना[९७क] के बल पर राजेश है।[९७क] उसकी कटक[९८] से भूकम्प होता है।[९८] उसको अपने दल[९९] का गर्व है।[९९] वसन्त में कोयल के जोड़े का झुंड, झुंड कामदेव के कोट में मानों सेना[१००] का मिलना है।[१००]

की राजदरबार में बड़ी मांग और कदर थी। पद्मावत: यू०सं०बी० वा०श०अग्र०, पृ० ८३६

(९६) ४:१:६, ५:४८:६। रण-शूरता अक्षात्रिय अथवा सम्मान्य क्षात्रिय के क्षमता से परे है। यह मात्र उच्च क्षात्रिय अथवा राजपूतों का ही गुण है। (किरातार्जुनीय, वत्सराज, पृ० १५) बृजनाथ सिंह यादव= १२वीं०उ०भा० के कुछ रूप, पृ० ५२-६५

(९७) अनी ७:२१:५, कटक ३:६:१, कटक्क ८:६:१, चट्ट ३:४३:३, दल २:३:२३, २:५:३०, ६:६:१, पिंड ५:१३:१०, फवज्ज ७:४:२३ फौज ७:१४:४, १२:१३:२, भिच्च ८:१:४, रच्त ६:३३:५, सपन्न ३:८:१, सयनु ११:१३:२, सेन ८:१०:१

प्राचीन भारतीय वांगमय में सेना सम्बन्धी सामग्रियां निम्न-लिखित ग्रन्थों में हैं:—१. ऋग्वेद, २. अथर्ववेद, ३. रामायण, ४. महाभारत, ५. मनुसंहिता (स्मृति), ६. इनसाइक्लोपीडिया - ब्रिटेनिका, सैनिक खंड, ७. बराह- मुद्राएं, ८. सिकंदर की भारत पर चढ़ाई-प्लिनी, डायडोरस, जस्टीन प्रभृति, ९. इंडियन ऐंटीक्वेरी, १०. राजतरंगिणी, ११०. खारोस्ती, शिलालेख संख्या ३६ .

(९७क) जोगिनिपुर पति सूरो पारस मिसि पंगु रायेस ।।८:८:२

(९८) भूकम्प जयचन्द राय कटके। ३:६:१

(९९) दल दब्ब गब्ब। २:३:२३

(१००) झुड झुड करंत कलंठि जोटि।
  दल मिलत मनहु मन मंथ कोटि ।। २:५:२९-३०

सेना का प्रकार

परम्परानुसार इस काव्य में भी चतुरंगिणी सेना[१०१] का उल्लेख हुआ है। पृथ्वीराज के दिल्ली की ओर मुड़ते ही जयचंद के हय, गज, वाहन, राथादि[१०२] और जयचंद गत चिंता हो गए।[१०२] रणक्षेत्र में हय, गज, नर और भट बादल की तरह छा गए।[१०३] युद्ध में भारी हय, गज, नर तथा सार के खंड-खंड होने से जयचंद उत्साह युक्त रोष से भर गया और वह वीर बम्ब के साथ निकल पड़ा।[१०४] चंद ने बताया कि जयचंद का हय गज और दल अवर्णनीय है।[१०५]

रथ

चतुरंगिणी सेना में रथ, इस काव्य में, क्रिया शील नहीं दिखाई पड़े हैं। परम्परागत रूप से सेनाओं[१०५क] के वर्णन में, सूर्य-रथ[१०६] तथा सरस्वती के कर्णफूल के उपमान[१०७] रूप में, यथा वह (कर्णफूल) कामदेव के रथ के चक्के के समान है,[१०७] इसका उल्लेख हुआ है। मुस्लिम साधनों से भी इस काल में रथ का विशेष उल्लेख नहीं मिलता है।[१०८]

---

(१०१) चमके चवरंग सनाह घनं। ७:४:१७

प्राचीन भारत में सेना, परम्परा से, चतुरंगिणी थी।

हस्त्यारोहा रथिनःसादिनश्च पदातयंच, उद्योग पर्व - ३०:२५, अर्थशास्त्र पृ० १४०, कमंदकाय १९२३ और २५। किंतु मेगस्थनीज सेना के ६ भागों में जल सेना का भी उल्लेख किया है। कौटिल्य ने भी युद्ध पोत का जिक्र किया है। नालन्दा और गया के शिलालेख भी गुप्तकाल के जल शक्ति पर प्रकाश डालते हैं (महानौहस्त्यश्व)। और उदाहरण दे० बृजनाद सिंह यादव :१२वीं० उ० समाज के कुछ रूप, पृ० १९३

(१०२) प्राची हय गय वहणाों रहणाो गत चिन्ता नरेन्द्र तई।८:७:२

(१०३) हयग्गयं नरम्भरं। उनव्वि नय जलधुधर।। ७:१२:१+२ —

(१०४) विपहर पहट्ट परिय हय गय नर भार सार कहेन।

रहरोस पंभ भरियं उब्बरियं वीर बिवैन।। ७:२६

(१०५) हय गई दलु -(अवर्णनीय हैं।) ४:२१

(१०५क) प्राची हय गय वहणाो रहणाो गत चिंत नरेन्द्र तह। ८:७:२

गज सेना

वर्णनों में, यद्यपि हय, गय, के आगे है किन्तु सेना के आगे[११०] और मुख[१११] भाग में हिन्दुओं में, हाथी हैं। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण में, पद ११:११ और ११:१२ में गज सेना का आगे रहना स्पष्ट नहीं है। इस काल में मुस्लिम सेना में घोड़े अधिक होते थे और हिन्दुओं में हाथी का बाहुल्य था तथा उस पर बल भी अधिक देते थे।[११२] हाथियों की और अधिक ध्यानाकर्षण का ऐतिहासिक कारण यह जान पड़ता है कि गुप्तकाल में सेना का संगठन मुख्यत: घुड़सवारों पर आश्रित था, जैसा कालिदास के वर्णनों में भी आया है। गुप्तों ने यह पाठ संभवत: पूर्ववर्ती शकों से ग्रहण किया होगा। शकों का अश्व प्रेम संसार प्रसिद्ध है। गुप्तकाल में अश्व बल की वृद्धि पराकाष्ठा

---

(१०६) किमे उच्चासु रवि रथ्य नहियं। ७:६:६

(१०७) (सरस्वती का कर्णफूल मानो) अनंग रथ्य चक्क्यो।

ख: १७: १२

(१०८) पु०ना० सिंह यादव : १२ वी० ३० समाज के कुछ रूप, पृ०२०३

(१०९) दे०भ०टि०ह० १०२-१०५

(११०) हय दल गय दल अग्गह सुढारे

(१११) दल संमुह दंतिय सघन। ७:६:१

७:२७:३, ८:६:२४, ८:१०:१२, ८:१६:३ , ८:२१:३

८:२३१२, ८:२४:१ और ११:१०:७ भी इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं।

(११२) वैध: हिस्ट्री आव मेडिएवल हिन्दू इंडिया, भाग ३, पृ० ३६१ और परिशिष्ट ब।

तुर्कों में घोड़ों के प्रति लगाव स्पष्ट रूप से अन्य काव्यों में भी व्यक्त है। कीर्तिलता के तुर्क अश्वप्रेमी हैं। वहां इन अश्वों की विशिष्टता का उल्लेख कर अच्छी नस्ल के घोड़ों को तुर्कों के साथ सम्बद्ध बतलाया गया है। कीर्ति सिंह सुल्तान इब्राहिम शाह से दो श्रेष्ठ घोड़ों की याचना करते हैं।

को पहुंच गई थी, उसकी प्रतिक्रियाहोना आवश्यक था । घुड़ सवार सेना की मार को सामने से तोड़ने के लिए हाथियों का प्रयोग सफल ज्ञात हुआ । दूसरा कारण यह भी हो सकता है गुप्त साम्राज्य के बिखरने पर देश में सामन्त, महासामन्त और मांडलिक राजाओं की संख्या बहुत बढ़ गई और प्रत्येक ने अपने अपने लिए दुर्गों का निर्माण किया । दुर्गों के तोड़ने में घोड़े उतने कारगर नहीं हो सकते जितने हाथी । हाथियों के इस द्विविध प्रयोग का संकेत स्वयं बाण ने भी किया है । उसने हाथियों को फौलादी दिवार कहा है, जो दुश्मन की फौज से होने वाली बाण वृष्टि को झेल सकती थीं : कृतानेक बाणविवरसहस्रं लोहप्राकारम् (६८) । तात्कालीन सेनापतियों के ध्यान में यह बात आई कि घुड़सवारों के बाणों की मार का कारगर जवाब हाथियों से बना लोहे का प्राचीर ही हो सकता है । हाथियों का दूसरा उपयोग था कोट या गढ़ तोड़ना । हाथी मानो चलते फिरते गिरि दुर्ग थे । जैसे दुर्ग के अट्टाल या बुर्ज में सिपाही भरे रहते हैं, जो वहां से बाण चलाते हैं, वैसे ही हाथियों पर भी लकड़ी के ऊंचे ऊंचे अट्टाल या बुर्ज रखे जाते थे, जिनमें सैनिक बैठ कर पहाड़ी किलों को तोड़ते थे । बाण ने इस प्रकार के बुर्जों को कूटाट्टालक कहा है : उच्चकूटाट्टालविकटं संचारिगिरिदुर्गम् । गुप्तकालीन युद्धनीति में भी हाथियों का प्रयोग लगभग इसी प्रकार से होता था और भारतीय हाथी ईरान तक ले जाए जाते थे । संचारी अट्टालकों से कमंद फेंक कर हमला करने वाले शत्रुओं के बुर्जों या सिपाहियों को खींच कर गिरा लेना सासानी युद्धकला की विशेषता थी । ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में भी इस कला का या तो स्वतंत्र विकास हुआ या अन्य बातों की तरह सासानी ईरान के सम्पर्क से यहां भी ली गई ।"[११३] जयचंद की सेना में अगणित[११४] और शाह शहाबुद्दीन

---

(११३) दे० हर्ष० एक अध्ययन : वा०श०अग्र०, पृ० ३६, ४०

(११४) दल समुंह दंतिय सघन गणि को.कहह अगणित । ७:६:१

की सेना में दस हजार[११५] हाथी हैं। इतनी अधिक संख्या में हाथियों के पाने की सम्भावना इससे व्यक्त हो सकती है कि विवेच्य काल में गजों से प्रकीर्ण जंगल भी हुआ करते थे। [११६]

प्रकार

पद ७:१० में हाथियों के भेद और उनके कार्यों को बताया गया है। उनमें सिंघली और सिंध देश का नाम गिनाया है और शेष दो प्रकार के हाथियों के स्वभाव का उल्लेख किया है, किन्तु भेद परक संज्ञा नहीं दी है।[११७] ~~११७~~ सिंहली हाथी के मिंठ (महावत) चारों ओर बाके मंगोल थे। [११८]

---

(११५) दस हजार वारुणि। १०:२३:३

बाण के अनुसार हर्ष की सेना में तीस हजार से ऊपर और ह्युआन चुआंङ० के अनुसार उसकी सेना में साठ हजार से ऊपर हाथी थे। हर्ष का अपने गजबल पर सबसे अधिक ध्यान था। हर्ष० एक अध्य० : वा०श०अग्र०, पृ० ३८-३६

(११६) पल गयण प्रयाण वनि संचरिय नयन सयन प्रथिराज अंक।

३:४:६ इतनी बड़ी संख्या में हाथियों के पकड़ने और प्राप्त करने के संभव उपायों पर बाण ने प्रकाश डाला है। हाथियों के भरती के स्रोत ये थे — १. नए पकड़ कर लाए हुए (अभिनव बद्ध) २. कर रूप में प्राप्त (विषयोपायनित), ३. भेंट में प्राप्त (कौशिलिकागत), ४. नागवीथी या नागवन के अधिपतियों द्वारा भेजे गए (नागवीथीपालप्रेषित), ५. पहली बार की भेंट के लिए आने वाले लोगों द्वारा दिए गए (प्रथम दर्शन कुतूहलोपनीत), ६. दूत मंडलों के साथ भेजे हुए, ७. शबर बस्तियों के सरदारों द्वारा भेजे हुए (पल्लीपरवृढढौकित), ८. गजयुद्ध की क्रीड़ाओं और खेल तमाशों के लिए बुलाए गए या स्वेच्छा से दिए गए, ६. बलपूर्वक छीने गए (आच्छिद्यमान)

(११७) पद ७:१० में पहलीप्रकार की पंक्ति १-४, दूसरी सिंघली का ५-१०, तीसरी की ११ से १८ और चौथी सिंधु देश के हाथियों का वर्णन १६-२३ में किया गया है।

फुटकर

हाथी णारी[११९] (नालिके) और भल्ली[११९] (भाला= बर्छी) से नियंत्रित किए जाते हैं।[११९] गजझंप [१२०] इसका पहनावा है। पृथ्वीराज ने एक शर से सात हाथियों को बेध डाला है। [१२१] सेना में हाथियों के दल का बिछुड़ने अथवा निकल भागने का भी उल्लेख हुआ है। [१२२] हाथियों पर वइरख [१२२क] (वैरख=झण्डा) चलते थे।

अश्व सेना

अश्व का वर्णन भूगोल अध्याय के `जीव जगत` और सामाजिक परिस्थिति में वाहन संदर्भों में हो गया है। घोड़े का कितना महत्व, इस काल में है, इसके प्रसंग में यह द्रष्टव्य है कि जय-चंद[१२३], पृथ्वीराज[१२४], तथा शाह शहाबुद्दीन[१२५] आदि सभी महत्व-पूर्ण व्यक्तित्व घोड़े पर ही आसीन मिले हैं।

पैदल सैनिक

कन्नौज में पदातिक बाने बांधते हुए दिखाई पड़े हैं। [१२६] शाह शहाबुद्दीन ने अपने सरदारों को पृथ्वीराज के ऊपर आक्रमण करते समय आदेश दिया है कि मार्ग में अत्यधिक भृत्यों [१२७] का

---

(११८) मिंठ मंगुल बहु और बके। ७:१०:६

(११९) रैस रैसम्मिय णारी ति भल्ली। ७:१०:१३

(१२०) ७:१०:२१

(१२१) सर इक्क ति विध्धति सत्त करी। ८:६:२५

(१२२) बब दंतिन बिछुरहि। ७:२५:३

(१२२क) ७:१०:१५, ८:६:७

(१२३) भुल्लउ रंग नृपति [illegible] पंग चढ़ी हय पुट्ठि। ६:८:१

(जयचन्द) नृप जग्गति सव्व तुरंग चढ़े। ८:६:१६

(१२४)(पृथ्वीराज)नामिय असिव ढिल्ली दिवानं। ८:१०:२५

(१२५) (गोरी) गउ लग्गइ तुरिय तहि अलिय रंग। १२:१३:१२

(१२६) कहीं पिक्खिय पायक्क बानैत बांधइ। ४:१०:६

(१२७) मग्गहु अगम्म भृत्य संग रहु। ११:७:६

संग्रह करो । कौटिल्य अर्थशास्त्र[१२८] के अनुसार प्राचीन भारत में भृत्य बल था । मध्ययुग में भी इसकी परम्परा है । राजतरंगिणी[१२९] में काश्मीर में एक समय किसान, शिल्पकार और यहाँ तक कि गाड़ीवानों की भी सेना में भर्ती हुई है । शाह शहाबुद्दीन की सेना में भी ओलग्गि[१३०] (अवलागिन्-सेवक, भृत्य) आगे बढ़े और धार से धार बजने लगी ।[१३०]

संख्या

जयचन्द की सेना में ८० लाख[१३१] पृथ्वीराज के ७० सहस्र[१३२] तथा शाह शहाबुद्दीन की सेना में पृथ्वीराज के ऊपर आक्रमण के समय दस हजार हाथी, १० लाख घोड़े और अनेक सुभट-योद्धा अमीर का उल्लेख है । अली अतवी के अनुसार १००१ ई० में भटिंड के राजा जैपाल के महमूद के विरुद्ध आक्रमण में ३०,००० पैदल, १२,००० घोड़े और ३०० हाथी थे ।[१३४] ईश्वरीप्रसाद के अनुसार प्रथम तराई युद्ध में (११९१ ई०) २,००,००० घोड़ा, ३,००० हाथी और अगणित पैदल थे ।[१३५] ब्रिग के अनुसार द्वितीय तराई युद्ध में (११९२ ई० में) ३,००,००० घोड़ा, ३००० हाथी और अगणित पैदल सैनिक थे ।[१३६]

---

(१२८) अर्थशास्त्र पुस्तक १०,११, वृजनाथ सिंह यादव: १२ बी० उ० समाज० रूप, प्राचीन भारत के सेना संगठन संदर्भ में ।

(१२९) ८, ७२७ (२८१२), ऊपर का

(१३०) बढ़े सो ओलग्गी बजी धार धारं । ११:१२:५

(१३१) असी लष्ष सउ सम भिरिग । ७:८:२

(१३२) सब्ब सेनं सत्तरि सहस धरि बधि-बरनत बार । ११:१:१

(१३३) दस हजार बारुणि बिलास दस लष्ष तुरंगं ।
तहि अनेय भर सुभर भीर गंभीर अभंगम ।। १०:२३:३+४

(१३४) ई०डी० २, २५

(१३५) हिस्ट्री आव मेडिएवल इंडिया, (१९२८), पृ० ९८,९९

(१३६) फिरिश्ता भाग १ पृ० १७५

महाभारत की १८ अक्षौहिणी सेना प्रसिद्ध है । इस प्रकार विवेच्य-काल में भी सैन्य संग्रह की प्रवृत्ति प्रबल प्रतीत होती है और वह राजाओं की शक्तिमत्ता की पृष्ठभूमि में ही विस्तार पाती है । प्राचीन भारत में ही दृढ़ सैनिक संगठन और उसके क्रमिक अधिकारिगणों का विकास हो चुका है, जैसे महासेनापति , सेनापति, महाबलाध्यक्ष अथवा महाबलाधिकृत, बलाध्यक्ष, भटाश्वपाल आदि ।[१३७] किन्तु इस काल में हिंदुओं की ओर सामन्त अथवा भट और मुसलमानों की ओर मुर्ध [१३८] अथवा सरदार मात्र, सैन्य-अधिकारियों का ही उल्लेख हुआ है । इसका मूल कारण सामंतवादी प्रथा है ।[१३९] सुलेमान सौदागर[१४०] (८५०ई०) ने भी लिखा है कि इस काल में राजा के पास स्थिर सेना नहीं होती थी । उनको नियमित मासिक वेतन देने की प्रथा नहीं थी । युद्ध के समय राजा अपने अधीनस्थ सामन्तों के द्वारा इन सेनाओं की सेवा लिया करता था । यह व्यवस्था परवर्ती मनसबदारी प्रथा की भांति थी । ब्रिग [१४१] के अनुसार पृथ्वीराज के दूसरी तराई युद्ध में इस ढंग की १५० सहायक सेनाएं उपस्थित थीं । विक्रमांकदेव चरित्र [१४२](सोमं रणे नर्तयिता कबन्धान्मदान्ध भूपाल सहस्रसेव्य:), नैषधचरित[१४३]

सैन्य-अधिकारी

---

(१३७) बेनीप्रसाद : स्टेट इन एंशियण्ट इंडिया, पृ० २६४

(१३८) म्लेच्छं मुर्ध हस्ते साहन ढिल्लीश्वरं । ११:१७:२

(१३९) वाचस्पति मिश्र (६वीं सदी)—यथा स्वसैन्येन सह ग्रामाध्यक्षादि, सैन्यों सर्वाध्यक्षास्य भवति । सांख्य तत्त्व निर्णय- सं०म०म०गंगानाथ झा, पृ० ५४,११, १६-१८ ।

(१४०) अनु० महेशप्रसाद, सं०,जी०एच० झा, का०न०प्र०स०,वा०शु०अनु०, १९७८, पृ० ८४ । लेख पद्धति पृ० ७ में इसके उदाहरण है ।

(१४१) तारीख-इ-फिरिस्ता, भाग १, पृ० १७५

(१४२) ऊपर की सं० जार्ज बिह्लर, सर्ग १, पृ० ८, पद ६५

(१४३) १६, १२

(१४४) रासमाला : ए०के०फार्बस, भाग १, पृ० १८५

(१४५) दीक्षित: वार इन एंशियंट इंडिया, मैक० १९४८, पृ०१६५

(१४६) हय दल पय दल अग्गह सुंढारे ।

द्वयाश्रय,[१४४] में भी राजा की सेना अपने आश्रितों और सामंतों के सेनाओं से बनती थी, ऐसा लिखा है। शुक्रनीति में[१४५] भी इस तरह के श्रेणी बल का उल्लेख नहीं है। ज्ञात होता है कि श्रेणी बल की प्रथा इस युग से छूट गयी है।

सैन्य-व्यवस्था

अश्वदल और पद-दल के आगे हाथी होते हैं। मध्य में शूर, सामंत तथा राजा रहते हैं, जैसे परकोटे के मध्य में वेष्टित मीनार हो।[१४६] पृथ्वीराज को पकड़ने के लिए कन्नौज की दस कोस की दूरी तक जयचंद ने कोस कोस के अन्तर पर सेना लगा दी और वाराह को जिस प्रकार शिकारी रुद्ध करता है, इसी प्रकार कन्नौजपति ने सांभरधनी को रुद्ध किया।[१४७] सेना में व्यूह बना के लड़ना भारत की प्राचीन परिपाटी है। अमर टीका भारत में ४[१४८] मनु ने ८,[१४९], नीति मयूख में ६[१५०] और अग्नि पुराण में १०[१५१] प्रकार के व्यूहों का उल्लेख किया है। इस काल में यद्यपि धर्म विजय अथवा धर्मयुद्ध का प्रचार था तो भी कूटनीति अथवा व्यूह बना के

---

(१४४) रासमाला : ए०के० फार्बस, भाग १, पृ० ९८५

(१४५) दिक्षित : वार इन एंशियंट इंडिया, मैक० १९४८, पृ०१९५

(१४६) हय दल पय दल अग्गह सुंहारे।
नृपतिन छत्रिन लभ्भे न पारे।।
सर सामंत मझ्झे हजारे।
मनउ विटिप कोट मझ्झे मनारे। ७:१६

(१४७) दस कोस कोस कनवज्ज तह कोस कोस अंतरि अनी।
बाराह रोह जिमि पारधी इम रोक्यो संभरि धनी।।
७:२१:५+६

(१४८) दण्ड, भोग, मंडल और असंहत और अनेक भेदाप्रभेद

(१४९) दण्ड, शकट, वराह, सूची, गरुड़, पद्म, वज्र और मकर

(१५०) मकर श्येन, सूची, शकट, वज्र और सर्वतोभद्र

(१५१) गरुड़, मकर, श्येन, अर्द्धचन्द्र, वज्र, मंडल, सर्वतोभद्र।

लड़ने का कार्य यदाकदा प्रचलित है।[१५२] मुसलमान लोग चाल बांध कर लड़ते हैं।[१५३]

व्यवहृत आयुध[१५४]

कन्नौज युद्ध में ३६ शस्त्रों से[१५५] सैनिकों के सजने का उल्लेख है,[१५६] किंतु कार्य-रूप में धनुष-वाण (कमान,[१५७] कम्मान,[१५८] चाप,[१५९] तोने,[१६०] धनु,[१६१] धनुष,[१६२] सारंग,[१६३] सिंगनी,[१६४]

---

(१५२) बृजनाथ सिंह यादव : १२ वीं०उ०समाज०रूप :कूटनीति संदर्भ में

(१५३) (मुस्लिम सरदारों का शाह शहाबुद्दीन से शपथ खाकर कहना कि कल हम हिन्दुओं से) सुरतान आन चहुआन सह जंउ न चाल बंधिवि भिरहि। ११:८:५

(१५४) अवधि ४:१४:३१, आवभ्रभ ८:१०:१२, आवध ५:३८:१०, सस्य ७:६:३७

(१५५) ३६ शस्त्र, परम्परागत हैं। प्रबन्ध चिन्तामणि(अनु०पृ०३२,१२०) में दो बार ३६,३६ का जिक्र आया है। देवाश्रय महाकाव्य (ऊपर का ११, सर्ग,११, पद१२, पृ०२७-२८), त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित (भाग १, पृ०४८) भी द्रष्टव्य हैं। डा० हेलेन एम० जान्सन (ऊपर का) ने ३६ शस्त्रों के नाम, इस ढंग से गिनाए हैं :—(१. चक्र, २. धनुष, ३. वज्र, ४. खड्ग, ५. छुरिका, ६. तोमर, ७. कुंत, ८. त्रिशूल, ९. शक्ति, १०. परशु, ११. मक्षिक, १२. भल्ली, १३. भिंडीमाल, (१४. मुष्टि, १५. लुंठी, १६. शंकु, १७. पाश (नूज), १८. पट्टिश, (नोकीला भाला), १९. रुस्ती (स्पियर), २०. कन्य(धनुष विशेष) २१. कम्पन, २२. हल, २३. मूसल, २४. गुलिका, २५. करतारि, २६. करपत्र, २७. तरवारि, २८. कुद्दाल, २९. दसफोट, ३०. गोफिनी ३१. डह , ३२. दण्डा, ३३. मुद्गर, ३४. गदा, ३५ घन, ३६. करवालिका(रेखांकित के वर्तनी की शुद्धता संदिग्ध है) देखिए बृजनाथसिंह यादव: १२ वीं०उ० समाज० रूप, मध्य युग के सैनिक शास्त्र के संदर्भ में ।

(१५६) सस्त्र छत्तीस करि कोइ सज्जह । ७:६:३७

(१५७) ८:९:२१, ११:१०:६, (१५८) ७:१७:२३, (१५९) ४:२०:८

बान,[१६५] सर,[१६६]) तलवार (असि,[१६८] खड्ग,[१६६] कृप्पान,[१७०] तेग,[१७१] दुधारा,[१७२] लोह,[१७३] समसेर,[१७४]) भला,[१७५] और कटार भी व्यवहृत हैं। वज्र,[१७७] करवत,[१७८] (आरा) और काती[१७६] (छुरी,कैंची) का भी उपमान में प्रयोग हुआ है। कहावत में देहाती लाठी[१८०] भी उल्लिखित है। रक्षात्मक युद्ध सामग्री में ढाल,[१८१] कबन्ध,[१८२] और सिरि टट्टर (सिरस्त्राण)[१८३] मिलते हैं। `फंद`[१८४] मात्र उपमान में, कामदेव के मार में प्रयुक्त हैं। संयोगिता की अलकावली मानो मदन अपने फंदों का पाश काम-केलि के लिए डाल रहा हो।[१८४]

आयुधों की परम्परा में

भारत के प्राचीन आयुधों में मुक्ति परक दिव्यास्त्र वहिष्कृत हैं। मात्र भुजबल पर आधारित शस्त्र- धनुषथबाण, तलवार, कटार भाला-- इस काल के रण-शूरों द्वारा व्यवहृत हैं। परवर्ती साहित्य के जायसी द्वारा उल्लिखित गोला,[१८६] बान[१८७] (वे गोले जो तोपों में फेंके जाते थे। सेले,[१८८] गुर्ज,[१८६] दास,[१६०] तोप (तुपक) जैसा

---

(१६०) १०:२४:२, (१६१) ३:६:१, (१६२) २:५:३३, १२:४७:१,
(१६३) ३:१२:१, (१६४) ११:१४:२, (१६५) ३:१०:२,
(१६६) ३:११:१ (१६७) सुवान २:५:३५ (१६८) ७:३०:२,
(१६६) ७:१७:४, ८:१६:३, ११:१२:१, (१७०) २:१७:४,
(१७१) ६:२३:१०, ११:१०:६, (१७२) १:६:२, ६:५:३, ७:१७:१७
(१७३) ६:५:१०, (१७४) ७:४:१५,(१७५) ७:४:१५, (१७६)८:२४:१
(१७७) ५:४७:२, ११:१२:१०, (१७८) २:५:३६, (१७६) (वसंत का)—
करवत केत केतकी सुकवि,२:५:३६,
(१८०) ३:३६:२ कयमास-काण्ड का चंद द्वारा रहस्योद्घाटन करने पर सब दरबारी सामंत लोट पड़े हैं, मानो उनके सिर पर लाठी लगी हो। (मनउ लग्गिय सिर लट्ठिय)।
(१८१)६:२०:१, ७:१७:२६, (१८२) ८:१५:२, (१८३) ८:३४:६,
(१८४) सुधा सरोज भोंह मंत अलंग (अलक) रंक हल्लयै।
मनउ मयन्न फंद पासि काम केलि घल्लयै।। ६:१५:१६+२०
(१८५) ऋग्वेद (८:२६:२५) में इन्द्र का वज्र-धारण, (१०:६६) में लोहे का वज्र, अथर्ववेद (सु०४,की २, ऋ०मंडल६, सु०७५ आयुध

खोल, पहुंची (दस्ताना), सूरदास के तुक्का, म्यान, सेल्ह, नेजा, दारु, पलीता तथा गोली[१६०] आदि शस्त्रास्त्रों की छाया इस काव्य पर नहीं पड़ी है।

प्रकरण) में लौह कवच, धनुषज्या, धनुषकोटि, बाण, लगाम, चाबुक, हस्तघ्न (हस्त-रक्षा-चर्म), १५ वें मन्त्र में विषाक्त बाण, वाल्मीकि रामायण (बालकाण्ड, सर्ग २१) में आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, शैलास्त्र, विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को दिव्यास्त्र देना, रामा० सर्ग ३४ में मारीच का परमास्त्रके प्रयोग से ४०० कोसों की दूरी पर जा गिरना, रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग ६३ में दशरथ का शब्दभेदी बाण से श्रवणकुमार को मारना, महाभारत, वन पर्व, १६५-१६६ में आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य, याम्य और कौबेर महास्त्र, अर्जुन का पाशुपतास्त्र (शिव का प्यारा आयुध), महा भारत का विषैला गैस, सम्मोहन नाम अस्त्र जिससे विराट नगर में कौरवों को निश्चेष्ट किया गया है (विराट पर्व), अनेक दिव्यास्त्र जिनके द्वारा आग, पानी, हवा की सृष्टि होती थी, देवी भागवत के १६ वें, मारकण्डे पुराण में दूसरे, विष्णु धर्मोत्तर पुराण के ५० वें अध्याय में अनेक शस्त्रास्त्र, मोहनजोदड़ो और हरप्पा में प्राप्त परशु, परिध, कटार, धनुष-बाण, गदा, ढिकवांस, तलवार (प्राचीन भारत की सांग्रामिकता : रामदीन पाण्डेय, पृ० १०८-११७में) वर्णित हैं।

(१८६) पद्मावत : यू०सं०जी०वा०श०अग्र०, पृ० ६७३

(१८७) ऊपर का, पृ० ६८२

(१८८) ऊपर का, पृष्ठ ८२७

(१८९) ऊपर का, पृष्ठ ८५७

(१९०) सूर सागर शब्दावली (एक सां०अध्य०) निर्मला सक्सेना, पृ० १६८-२०१.

रण-वाद्य

युद्ध के संदर्भ में आवझ,[१६०क] उपंग,[१६०ख] काहल,[१६०ग] घनघंट,[१६०घ] डमरु,[१६०ङ] तंदूर,[१६०च] तबल,[१६०छ] नफेरी,[१६०ज] निशान,[१६०झ] भेरी,[१६०यं] सहनाइ,[१६०ट] सारंग,[१६०ठ] सावझ[१६०ड] और सिंधु[१६०ढ] (नरसिंहा) या सिंग,[१६०ण] आदि बजे[१६०त] प्रयुक्त हुए हैं। निसान[१६०थ] के घोष से समुद्र का शब्द भी लज्जित हो जाता है।[१६०थ] शुभ अवसरों[१६०न] और गजनी में शहाबुद्दीन गोरी के द्वार पर प्रभाती[१६०प] में भी बजता है।

(१६०क) ६:५:६, ७:६:५२ (ढोल जाति का एक बाजा विशेष) आवझ [प्रा० आओज्ज, आउज्ज [सं० आतोद्य । अमर कोश (१:६:४-५) वाद्य, वादित्र, आतोद्य को पर्याय माना है। नाट्यशास्त्र में भी आतोद्य शब्द से सब बाजों को ग्रहण किया है। अथातोद्य विधिस्त्वेष मया प्रोक्त- समासत: । ३३:१, २०) संगीत रत्नाकर में लिखा है कि बाजों के स्थानीय नाम जानने वाले कुछ लोग आवज को हुडुक्का का पर्याय मानते हैं (लदयज्ञास्त्वा वजं प्राहुरिमां स्कन्धावजं तथा । ६:१०७५) । गढ़वालों में औजी और हुडुक्का दोनों शब्द भिन्न अर्थों में प्रचलित हैं। ढोल दमामा बजाने वाले औजी कहलाते हैं (धुंयाल, गढ़वाली लोकगीत संग्रह, पृ०ड०ज, २) । जायसी और चित्रावली दोनों में आउझ या आउज और हुडुक का पृथक उल्लेख किया गया है। बाजे मात्र के लिए इस शब्द का प्रयोग जायसी ने नहीं किया है। आइने अकबरी (पृ०२७१) के अनुसार आवज तथा हुडुक एक ही है। प०सं०टी०, पृ० ६६०.

(१६०ख) ७:६:४० उपंग (सं० उपांग) । मुकर्जी के अनुसार यह नस तरंग नामक बाजा था । यह तुरही के आकार का होता था और गले पर लगा कर नसों को फुलाकर बजाया जाता था । भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य किसी देश में इस प्रकार का वाद्य नहीं होता । मथुरा, वृन्दावन की ओर इसका विशेष प्रचार था । सूर ने भी इसका उल्लेख किया है। यह वाद्य डमरू के सदृश होता है जो एक ओर खाल से मढ़ा रहता है। इस खाल के मध्य से एक तांत जाती है जो दूसरी ओर के खुले भाग से निकल कर एक लकड़ी पर लिपटी रहती है। यह यंत्र बाईं बगल में दबाकर बजाया जाता है। राजस्थान में इसे अपंग कहते हैं और कभी

युद्ध के कारण

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में हुए युद्धों के कारणों में आठ बार महत्वाकांक्षा की पूर्ति और शौर्य प्रदर्शन में,[१६१] तीन

तक चालू बाजा है ।

(१६०ग) ७:४ (डा० निर्मला सक्सेना के सूरसागर शब्दावली (एक सांस्कृतिक अध्ययन) पृ० २७२ में कहली ` तूर या तुरही का पर्याय सा लिखा है ।

(१६०घ) ७:६:५३

(१६०ङ०) ७:६:३६ । शिवजी इसे तांडव नृत्य के समय बजाते हैं ।

(१६०च) ७:६:४१

(१६०छ) ७:७:४१

(१६०ज) ७:६:४६ इसका छोटा रूप ` शहनाई ` (क्रा०) है । यह इस्लाम की देन है ।

(१६०झ) ७:६:३६

(१६०ञ) ७:६:४६,५२

(१६०ट) सहनाइ ७:४:६, ७:६:४७ डा० निर्मला सक्सेना (सूरसागर शब्दावली : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २७०) ने इसे मुस्लिम संस्कृति का देन माना है ।

(१६०ठ) सारंग—७:६:४६

(१६०ड) सावभा—७:६:५१

(१६०ढ) सिंधु (नरसिंघ) ७:६:५१

(१६०ण) सिंग—१:३:५ (संशृंगिन्) इसे `रणसिंगा` भी कहते हैं । इसको शैव तथा गोरखपंथी साधु प्राय: प्रयोग में लाते हैं, इसलिए उनको `सींगिया बाबा` भी कह दिया जाता है ।

(१६०त) बज्जना—५:११:१, ६:८:२, ७:७:१

(१६०थ) दिसा निसान बज्जये । समुद्द सद्द लज्जये । ७:१२:३+४

(१६०द) कल भरहि सूर सुनि निसानं । ४:७:६

(१६०ध) सुनि सुननम चहुआनं कड भयउ निसानहि बाउ । ७:३:१

(१६०न) (अश्वमेध यज्ञ करना निश्चित हो जाने पर) धुम्मिया बार बार नीसान तामं । २:३:५६

बार रक्षार्थ, और दुष्ट राजाओं के दमन में[१६२] तथा एक बार धन के लिए[१६३] हुआ है। प्रत्यक्ष हुए युद्धों (१. कन्नौज का पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध, २. अंतिम पृथ्वीराज-गोरी युद्ध) का कारण शौर्य प्रदर्शन और उसकी प्रतिक्रिया है।[१६४] विवेच्य काव्य में बहु-चर्चित युद्ध-कारणों में कन्या-अपहरण और विवाह नहीं है।[१६५]

(१६०प) भयु विहान सुरितान दर वज्जि निसांन निसानं।
१२ : १८ : १

(१६१) (क) अब करहि जग्गु जे लेहि कव्व। २:१:१०
(ख) पर उच्छह देखन भवु मिलान।
विग्रहन देस चढ़ि चहुआन।। २:६:३+४
(ग) चंप रिपु सीस विठ्ठउ नरिंद। २:७:१
(घ) जिनिग्ग जगत जय पत्त लिय। २:६:१
(च) दक्खिनी देस अप्पउ विचारे। ५:१३:११
(छ) कन्नौज में पृथ्वीराज के पहिचाने जाने पर। ५: ४८
(ज) ते राषउ जालोर चंपि चालुक चाहंतंह। ८:४:२
(झ) जिहि ढ्ढ गहि छंडियउ वार सत ढ्ढ अप्पउ कर
तिहिं गहन हडं छक्कहु सुमन सव्व करतार कम।
११:७:४+५

(१६२) (क) ते राषउ पंगुरउ भीम भट्टी दह मथ्थह। ८:४:३
(ख) ते राषउ हिंदुआन गंजि गोरी साहंतउ। ८:४:१
(ग) हुज्जने राउ वन वाहर दाहु। चालुक्क राय पर पहज पारी।।
१२:३३:६+७

(१६३) लिये बदरागरे सव्व हीरा। ५:१३:१८

(१६४) दे०अ०टि०सं० १६१ क,ख,छ और झ

(१६५) संयोगिता-हरण के पहले ही कन्नौज में युद्ध का प्रारंभ हो चुका है। पृथ्वीराजकोकन्नौज-गमन का मुख्यकारण जयचंद

जयचंद द्वारा ` विनु भान प्रयाग नुं लोह कढे ।` (८:६:२०) में रात के तीसरे पहर ही विना सूर्योदय के सेना-संचालन का कार्य) अनीति युद्ध होने पर भी भारत की प्राचीन युद्ध-नीति में यह प्रति-वाद स्वरूप मान्य है कि नगर के शत्रु द्वारा घेरने पर विना सूचना के और रात में आक्रमण हो सकता है।[१९६] गोरी के आक्रमण के समय बाग-बगीचे मर्दित होकर झुलस गए हैं।[१९७] दुर्ग के सम्बन्ध में मात्र इतना उल्लिखित है कि पृथ्वीराज शत्रुओं के दुर्ग[१९८] को दग्ध करने वाला है।

फुटकर

इस समय राजनीति के खेलाड़ी युद्ध के लिए पागल हैं।[१९९] रण-शौर्य जीवन से भी अधिक प्यारा है।[२००] इसे यश और मोक्ष का एक मात्र साधन बना रक्खा है।[२००] शूर बाहुबली और स्वामि-भक्त हैं।[२००] व्यक्तिगत शारीरिक शक्ति पर आधारित आयुधों की साधना है। युक्तिपरक दिव्यास्त्र और व्यूहात्मक सैन्य संचालन के

उपसंहार

का गर्व पूर्ण कार्य है जो उसने (जयचंद), पृथ्वीराज को अधीनता स्वीकार कराने के लिए अपने चारों द्वारा उसके (पृथ्वीराज) दरबार में संदेश भेजवाने और न मानने पर द्वार पर मूर्ति बनवा कर रखने की धृष्ठता करता है। जयचंद से अधिक रण-शूर के लिए यह असह्य हो गया। इस संदर्भ में देखिए माताप्रसाद गुप्त : पृथ्वीराज रासउ, भूमिका, पृ० १८६-१६१

(१९६) झुंभालीय भाम महि माल मद । ११:१०:१०

(१९७) प्राचीन भारत की सांग्रामिकता : रामदीन पाण्डेय, पृ०७६

(१९८) (पृथ्वीराज) दहनौ दुरग्गो अरि । १:६:२

(१९९) दे०अ०टि०सं० २ ।

(२००) ,, ,, १० से ५६

प्रति दृष्टिकोण हेय है।[२०१] सेना में गज सेना, अश्वसेना और पैदल सैनिक अत्यधिक हैं। हिन्दुओं का गज और मुसलमानों का अश्व के प्रति अधिक आकर्षण है।[२०२] प्राचीन विभिन्न सैन्याधिकारी के पदों के स्थान पर, इस काल में, केवल सामन्तों अथवा सरदारों के माध्यम से सैन्य-संगठन है।[२०३] राजा के पास कोई स्थायी सेना संभवत: नहीं है।[२०४]

---

(२०१) दे० अ० टि० स० १५५ से १६०

(२०२) ,, ,, १३७ से १४५ (६७ से १३६)

(२०३) ,, ,, १३७ से १४५

(२०४) ,, ,, १४० से १४५

(४) राजनीति और राजसी शिष्टाचार

(प्रयुक्त शब्द संख्या ३६)

अनुच्छेद — संदर्भ

१— भूमिका
२— दिग्विजयी लक्ष्य
३— राजसी-शिष्टाचार
४— उपसंहार

= राजनैतिक परिस्थिति का उपसंहार

(४) राजनीति और राजसी शिष्टाचार

कई सदियों पूर्व वीर गोठियों के कुल पुरोहित, राजा के मित्र सेनापति सिंहनाद ने हर्षवर्द्धन को मन्त्रणा दी थी कि " आप को तो अब ऐसा करना चाहिए, जिससे किसी दूसरे की हिम्मत गौड़ाधिपति की तरह (आप के राज्य को कुदृष्टि से देखे) आचरण करने को न हो । जिस मार्ग पर पितामह-प्रपितामह चले हैं,त्रिभुवन में श्लाघनीय उस मार्ग का परित्याग मत करो । जो झूठे विजिगीषु सारी पृथ्वी को जीतने की लालसा से उठ खड़े हुए हैं, उन्हें ऐसा कर दो कि उनके अन्त:पुर की स्त्रियां गहरी सांस छोड़ने लगें । इस समय तुम शेषनाग की भांति पृथ्वी को धारण करने में समर्थ हो । शरणहीन प्रजा को धैर्य बंधाओ और उद्धत राजाओं के मस्तक दाग कर पैरों के निशान अंकित कर दो । अकेले परशुराम ने,दृढ़ निश्चय से इक्कीस बार समस्त राजवंशों का उन्मूलन किया था । देव भी अपने शरीर की कठोरता और वज्रतुल्य मन में मूर्धन्य हैं, तो आज ही ऐसा करने की प्रतिज्ञा करें और नीच शत्रुओं के नाश के लिए अचानक सैनिक कूच की सूचक भांडों के साथ धनुष उठा लीजिए ।[१] " हर्ष ने उत्तर दिया, " आप ने जो कहा है, वह अवश्य ही करणीय है ।" और महासन्धिविग्रहाकृत अवन्ति को आज्ञा दी ।," लिखो, सब राजा कर दान के लिए, सेवा-चामर अर्पित करने के लिए, प्रणाम के लिए, आज्ञा करण के लिए, पाद पीठ पर मस्तक टेकने के लिए, अंजलिबद्ध प्रणाम के लिए, भूमि त्यागने के लिए, वेत्रयष्टि लेकर प्रतिहार का कार्य करने के लिए

---

(१) (१९१-१९३) हर्ष० एक अध्य० : वा०श०अग्र०, पृ० १२७

तैयार हो जायें अथवा युद्ध के लिए कटिबद्ध रहें।[२]

उपर्युक्त कर-दान, आज्ञाकरण, प्रणामागमन, प्रसमोद्धरण, परिचारिकीकरण आदि जिन नीतियों का वर्णन किया गया है, येही विवेच्य युग में पृथ्वी के ज्यार्थ विजिगीषु राजाओं की भी नीति ज्ञात होती है।

जयचंद ने लिखित भूगोल को हेलापूर्वक[३] देखा। क्षिति के क्षत्रबंध राजाओं को जीतकर[४] अपने प्रधान से काव्य (यश) लाभार्थ[५] राजसूय यज्ञ[५] करने के सम्बन्ध में परामर्श करने लगा। ज्ञानी मंत्री के इस मन्त्रणापर कि यह कलियुग है, राजसूय यज्ञ न कीजिए, उसके स्थान पर देवालय निर्मित कर षोडश दान प्रतिदिन दें, पंगराज बहुत क्रोधित हुआ[६] और सोचा कि यदि मैं लघु लोभ-लाभ करता हूं तथा उसके लिए यज्ञ नहीं करता हूं तो यह मेरा अज्ञान होगा।[७] शत्रुओं का सिर दबाकर उसका गर्व मिटाना,[८] किसी राजा को दंडित करना,[९] राजा को आघात कर नष्ट करना,[१०] शत्रु देश में विक्षोभ जुटाना,[११]

---

(२) ऊपर का, पृष्ठ १२८

(३) भूगोल लिखित दक्खिप सहीर। २:१:६

(४) छिति क्षत्रबंध राजन समान। जित्तिया सयल हय बल प्रमान।।
२:१:७+८

(५) अब करहि जग्गु जे लेहि कव्व। २:१:१०

(६) कलिजुग्ग नहीं अर जुग प्रमान। करि धम्म देव देवर अनेय।।
षोडसा दान दिन देहु देव। २:१:१२-१४

(७) धुकि पंगु राय मंत्रिय समान। लहु लोह अव्व जो लहुं अयान।।
२:१:१७+१८

(८) चंपि रिपु सीस विहुद्ध नरिंद। २:७:१

(९) अरिराज षंडे षूषदं। २:७:२

(१०) गंजिया एक घटि बहुआनं। १:७:४

(११) गज्जने देसि विच्छोहि चोरी। २:७:५

रिपु-रमणियों को भय से कंपाना,[१२] जग को जीतना और जय-पत्र प्राप्त करना,[१३] राजा का अपनी इच्छा से तपना,[१४] और इच्छापूर्वक युद्ध करना,[१५] किसी राजा का नाश करना,[१६] हिन्दुओं तथा अपने मित्र-देश के रक्षार्थ शत्रु को विनष्ट करना[१७] और शत्रु को जलाना[१८] आदि इस युग की प्रशंसनीय राजनीति है। जयचंद साम-दान-दंड-भेद का पक्षपाती है।[१९] किंतु शूरता के युग में कवि द्वारा धूर्तताई का प्रतिष्ठापन करना उल्लेखनीय है। पृथ्वीराज की प्रशस्ति में उसके गुरु गोविन्दराज द्वारा 'धूर्तावतार'[२१] और अन्यत्र अपने को 'धूर्तों[२२] का धूर्त' कहलाया है। अनेक बार कृपा प्राप्त किए हुए शाह शहाबुद्दीन का एक बार ही पृथ्वीराज को कैद करने का अवसर पाते ही उसे (पृथ्वीराज को) नेत्रहीन बना देना मुस्लिम राजनीतिक दुर्बलता का द्योतक है। किंतु गोरी का अपने समस्त एकत्रित सेना को चारु आदर देना[२४] राजनीतिक कुशलता प्रगट करता है।

राजसी-शिष्टाचार

दरबार में शत्रु के दूत से राजा का अपने गुरुजनों के समक्ष संकोच में न बोलना,[२५] अमीरों का खड़ा होकर अपने शाह को सलाम

---

(१२) ऐम रिपु रवनि प्रथीराज। २:७:२०

(१३) जिनिअ जगत जय पत्त लिय। २:६:१

(१४) तपइ मेछु इछ अपनी। १२:५:२

(१५) सकलं इच्छामि युद्धाइने। ३:६:२

(१६) तुम गंजउ भरभीम। ८:२:३

(१७) तै राषउ हिन्दुआन गंजि गौरी गाहंतउं। ८:४:१

(१८) तै राषउ जालोर चपि चालुक चाहंतउ। ८:४:२

तै राषउ पंगुरउ भीम भट्टी वल मथ्थउ। ८:४:३-४

असियं लष्ष दल गहि गहि भष्षउ। १०:६:२

(१८) जिहि करवर जरि बरहिं। ११: १८ : १

(१९) साम,दान, दंड, भेद चारयं विचक्षने। २:१३:२

(२०) २:३:३४

(२१) (पृथीराज के लिए) अवतार धुव। २:३:३४

देना,[२६] मसन्दों का धरती पर उंगलियां रख कर नजरमंदी के समय सिर नवाना,[२७] हेजम (कोतवाल) का दोनों हाथ जोड़ कर अपने राजा जयचंद को दस बार सिर झुकाना,[२८] हिन्दुओं का अपने राजा को देव,[२९] नरिंद,[२९क] राजा,[२९ख] तथा मुसलमानों को अमीर[३०] तथा सुल्तान[३१] कह के सम्बोधित करना, चंद का गोरी को आशीष देते समय सिर न झुकाना[३२] तथा बायें हाथ से आशीष देना,[३३] चंद का गोरी के लिए सुल्तान,[३४] बादशाह,[३५] से सम्बोधित करना, कवि चंद का अपने राजा पृथ्वीराज को भी आशीष[३६] देना, किसी अन्य

---

(२२) धुत धुत । १२:७:६

(२३) किन्हउ नयन्न विन्नु । १२:१:३

(२४) असंभु सह सेन सकल्लिअ । दियो चारु आदर । १०:२३:१+२

(२५) बोलउ न बचण प्रथिराज ताहि । २:३:१०

(२६) सह सलाम भग्गह त मीर । १२:१३:१

(२७) अंगुलिय धरणी धरि करि मसंद ।
सिर नाइ भयी जब नजर मंद ।। १२:१३:३+४

(२८) तब सु हेजम युगम कर जोरि । सीस नामइ दस बार ।।
५:३:१+२

(२९) ३:२०:४, ३:३३:६, (२९क) १२:३८:१, २:७:१ (२९ख) १२:३१

(३०) ११:१८:३

(३१) १२:२२:२

(३२) देअत असीस न सिर नायउ । १२:१४:१

(३३) कर अन्यन दीधी असीष । १२:१३:२४

(३४) १२:३१:१

(३५) १२:२६:१

(३६) ३:१६:४

देश के कवि को पहिले परीक्षा लेकर तब दरबार में बुलवाना;[३६क] आने पर सम्मान करके उसके राजा का समाचार पूछना;[३७] शाह के नजदीक १५ हाथ के अन्दर आने पर उत्तंत्रस्त का विधान;[३८] कैदी ४ शत्रु (पृथ्वीराज) और उसके मित्र (चंद) की भेंट १० हाथ की दूरी से कराना और बाईं ओर १०० हाथ पर शाह ऊंचे बैठकर उन लोगों के बातचीत और क्रिया-कलाप पर ध्यान रखना[३६]। हिन्दू राजा (पृथ्वीराज) के पकड़े जाने पर मुसलमान सैनिकों द्वारा 'रैकाफिरों के पुत्र,[४०] इसको गहन रूप से पकड़ो[४१] आदि कथन राजनैतिक शिष्टाचार के कुछ नमूने हैं।

(३६क) ५:४

(३७) ५:१५ और १६

(३८) १२:१३:८

(३६) १०:३५

(४०) कुफार फरजंद (११:१४:१)

(४१) गहु गहन (११:१८:५)

उपसंहार
राजनैतिक—स्थिति

विवेच्य ग्रन्थ में राज्य-स्तर पर कार्यान्वित राजनैतिक घटनाओं में पृथ्वीराज-शहबुद्दीन गोरी युद्ध[१] और कन्ह का पृथ्वीराज के मित्र राज्यों में होना[२] इतिहास- सम्मत है । बहु-चर्चित पृथ्वीराज-संयोगिता-वरण,[३] पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध[४] और पृथ्वीराज द्वारा शब्द-भेदी बाण से गोरी को मारना[५] प्रमाण-अभाव-ग्रस्त है । आबू नरेशों—सलष और जैत परमार— का पृथ्वीराज के मित्र राज्यों में होना इतिहास-विरुद्ध है ।[६] इन राजनैतिक क्रिया-कलापों के स्थल कन्नौज, दिल्ली गजनी, महाराष्ट्र और आबू आदि ऐतिहासिक महत्व के हैं, इनके शासक क्रमश: जयचन्द,[७] पृथ्वीराज,[८] शाह शहाबुद्दीन,[९] कन्ह,[१०] (सलष और जैत परमार को छोड़ कर), और पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर[८] तथा जयचन्द के पिता विजयपाल[७] (इतिहासों में विजयचन्द) आदि सभी ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं । टिप्पणी संख्या ४:१:१०८ की अनेक घटनाएं अनैतिहासिक हैं, किन्तु वे क्रियाये किसी न किसी के द्वारा अपने राजा के प्रशस्ति-गीत के रूप में वर्णित की गई हैं । उनमें काव्य-गत सम्पन्न कोई क्रिया नहीं है । टिप्पणी संख्या४:१:१०७ और १०८ में वर्णित घटना क्रमों में भी कुछ ऐतिहासिकता प्राप्त होती है ।

---

(१) टि० सं० ४:१:६२
(२) ,, ४:१:६६-७१
(३) ,, ४:१:३६-४०
(४) ,, ऊपर का
(५) ,, ४:१:६२क
(६) ,, ४:१:६३-६८
(७) ,, ४:१:३४
(८) ,, ४:१:४३
(९) ,, ४:१:६२
(१०) ,, ४:१:६६-७१

उपर्युक्त सभी राज्यों में राजतान्त्रिक[११] शासन है। उनके अधिपतियों में स्वेच्छाचारिता[१२] अत्यधिक प्रतीत होती है। राज्य संचालन में योगदान देने वाले प्रधान,[१३] मन्त्री,[१३] सभा,[१३] दूत[१३] तथा हेजम[१३] (कोतवाल) आदि प्रतिपाद्य प्रशासकीय सेवक हैं। सुरक्षा[१४] प्रमुख राजधर्म है। सामन्ती-शक्ति इसकी पूर्ति-हेतु साधन स्वरूपा है।[१५] राज्यान्तर्गत सामंतों की संख्या नृपति के वैभव स्तर का मापक है।[१६] स्वामी-हेतु रण में प्राणोत्सर्ग करना सामंतों के लिए एक मात्र मोक्ष-मार्ग के रूप में अवशिष्ट है।[१७] रण-शूरता इनका व्यवसाय है। इसने यश-लोभी[१८] भूपति के दिग्विजयी[१९] होने की आकांक्षा में अनिवार्य सहायता[२०] दी है। परिणामस्वरूप इस युग के नरेन्द्र युद्धोन्मत्त[२१] हैं। युग प्रभाव से आक्रमण,[२२] नष्ट-भ्रष्ट[२२] करना, उत्पीड़न तथा छीनना[२२] राज्यों के सामान्य एवं अनिंदनीय[२३] कार्य हो गये हैं। अन्तर्राज्यस्थ सम्बन्ध अविश्वास और संघर्षमय है।[२४] उनमें अस्थिरता और दुर्बलता का प्रश्रय है।[२५] गोरी के आक्रमण से आशंकित जनमत, भोग-विलास में

---

(११) टि० स० ४:२:१

(१२) ,, ४:२:१, ४:२:४७-४९

(१३) ,, ४:२:४ से ७६

(१४) ,, ४:२:७७-८७, ४:३:१९२

(१५) ,, ४:३:७०-५९

(१६) ,, ४:२:४१

(१७) ,, ४:३:४०-५९

(१८) ,,,, ४:४:५-७

(१९) ,, ४:४:३-७, ४:३:१९१

(२०) ,, ४:३:५४-९६

(२१) ,, ४:३:२, ४:४:३-९८

(२२) ,, ४:१:२२-३२

(२३) ,, ४:१:१०४-१०६

(२४) ,, ४:१:९२-१०६

रत राजा के पास राजपुरोहित तथा राजकवि के माध्यम से अपना आन्दोलित उद्‌गार प्रेषित करता है, पर युद्ध-विरोधी तत्व कहीं परि-लक्षित नहीं है ।

---

(२५) टि० स०   ४:१:३२ के बाद

अध्याय ५ —— धर्म और दर्शन

(२३० शब्द ३६६ पर्याय सहित धर्म और दर्शन के संदर्भ में प्रयुक्त हैं ।)

परिच्छेद —— संदर्भ

धर्म – १ – (१) धार्मिक सम्प्रदाय और उपास्य देव

(२) उपासना-पद्धति

(३) धार्मिक आचार-विचार

दर्शन – २

उपसंहार

अध्याय ५

धर्म (१) धार्मिक सम्प्रदाय और उपास्यदेव

(१२३ शब्द २४६ पर्याय सहित धार्मिक सम्प्रदाय और उपास्यदेव के संदर्भ में प्रयुक्त हैं

अनुच्छेद —— संदर्भ

१— धार्मिक सम्प्रदाय
२— उपास्यदेव
३— प्राचीन देवगण :—
(१) शक्ति सम्पन्न व्यक्ति ही देवता
४— (२) वैदिक देव परिवार में पद-परिवर्तन
५— नए देवता
६— देवियां
७— दानव-राक्षस
८— उपसंहार

धार्मिक सम्प्रदाय[क१]

विवेच्य काव्य में सम सामयिक बहु-प्रचलित बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त और इस्लाम धर्म में किसी का भी स्पष्ट नामोल्लेख नहीं है। कवि-रुचि भी धार्मिक विवेचनोन्मुख नहीं नहीं प्रतीत होती है। व्यवहार से पता चलता है, कि हिन्दू[क२] और तुरक[क३] या म्लेच्छ[क४] 'दुहु दीन'[क५] हैं। शाह शहाबुद्दीन के द्वार पर जवन[क६] (यवन) परदार भी है। हिन्दुओं के सनातन धर्मियों में भक्तजन,[क७] अनीश्वरवादी[क८] बौद्ध और जैन में क्रमश: सिद्ध[क९] — योगी[क१०] और नंगा[क११] — लंगरी[क१२] दृष्टिगत हैं। सामान्यत: ध्यान मग्न,[क१३] तपस्वी तथा उपमान रूप में गोरखपंथ[क१४] का भी उल्लेख हुआ है। इन सब में धार्मिक असहिष्णुता कहीं नहीं उपलब्ध है। केवल कन्नौज में ही सदेह देवी का मंदिर है,[क१५] तपस्वी तप

(क१) धरम्म ५:३५:१, दीन ११:६:१, ११:८:१, धम्म २:१:२, २:१:१३, ३:३१:१, ५:१३:३

(क२) हींदू ८:२:५

(क३) ८:२:५

(क४) ११:६:१

(क५) ११:६:१

(क६) १२:८:१। सिकंदर से पहले यूनान देश के लोगों ने वाह्लीक में अपने उपनिवेश बना लिए थे। पा०भारत०,वा०श०अग्र०, पृ० ३०७

(क७) क- जन पुन गंजरि। ४:११:१४

ख- पुनरपि पुहुपि पुआ वदवि रति विप्पराव। ४:१२:२

(क८) अदेव कंभु मानुए। ३:१७:३४

(क९) वष कंचल तनु सुध्ध व सिध्धनु मनु हरइ। ४:१३:३

(क१०) जोगी १२:७:७, १२, २४:२

(क११) दिष्षये कोटि कोटिन्न नंगा। ४:२३:२, नगे जैन साधु

कर रहे हैं,[क१६] नंगा[क१७] और लुंगरी[क१७] अत्यधिक संख्या में हाट-बाजार में घूम रहे हैं,[१७क] राजा जयचन्द जैन धर्म के सप्तक्षेत्र[क१८] का सेवन करता है, उसका प्रधान उसे अनेक देवालय[क१६] निर्मित करा कर प्रतिदिन षोडस दान[क२०] देने की मंत्रणा देता है, जयचंद की सेना में मंगोल,[क२१] पारसीक [क२२] तथा म्लेच्छ सैनिक पर्याप्त संख्या में हैं। पृथ्वीराज के शरण में हिन्दू [क२४] और तुर्क [क२४] दोनो हैं।

उपास्य देव

हिन्दुओं का अधिकांश धार्मिक कृत्य देव[१]-भक्ति परक है। मात्र सुर ही सच्चे हैं[२] इनकी मानव से भिन्न योनि[३]

(शेष क११) यां दिगम्बर को नग्नाटक भी कहते थे। हर्ष० सा० अध्य०,वासु०श०अग्र०, पृ०६०, लुंचित नग्नाटक जैन साधु ही संभवत: लंगरी हैं।

(क१२) लंगरी जूथ तिनके प्रसंगा ।। ४:२३:१

(क१३) कहों तापसा तप्प ते ध्यान लग्गे। ४:१०:११

(क१४) (मजबूत जिरह अंगों से कसा हुआ) मनहु कंठ कंथीन गोरष्ष पाई। ७:६:३२

(क१५) ४:२२:१

(क१६) ४:२३:२

(क१७) ४:२३:१

(क१८) सत-षित सेव करि धम्म चाउ। २:१:२

(क१६) करि धम्म देव देवर अनेय। २:१:१३

(क२०) षोडसा दान दिन देहु देव। २:१:१४

(क२१) ७:१०:६

(क२२) ८:८:२

(क२३) ७:१५

(क२४) मुहि सरणाहि हींदू तुरक। ८:२:५

और लोक[४] है। ये अब देहधारी हैं।[५] इनका अधिपति इन्द्र है। पृथ्वीपर उपासना हेतु भक्त जनों ने सौंह [७] (मंदिर) में इनकी

---

(१) अमर ४:११:१२, दैय ३:६:४, देव २:१:१३, २:१२:२, ३:११:१ ३:१७:३२, ४:१८:१०, ४:२३:१२, ६:६:१, ६:१५:२३, ७:३०:५, ८:९:१८, देवता १:४:३, ४:१०:८, ६:९:२, देवन २:३:२४, देवर ११:१३:१, सुर २:३:५९, ५:५:१४

(२) (कवि चंद कथन पृथ्वीराज से) अरे नरिंद वा बंध पिंड कच्चउ सुर सच्चउ। १२:३८:१

(३) (पृथ्वीराज कथन) कहा भुजंग कहा उदे सुर। ३:२३:१, क्या क्यमास भुजंग (नाग) अथवा क्या सुर (देव) (योनि में) उदय हुआ है —जन्मा है।(टीका में)

(४) सुरपुर ३:२२:१, सुरलोक ४:२३:१२, ५:२३:२, ६:३३:४, ७:१०:२२, ७:५:१५, देवपुर ७:४:१२, अम्मरपुर १२:४६:४, त्रैलोक २:३:१६, ३:२५:२, ७:६:२

(५) देवी-देवताओं के तन का वर्णन देखिए:— १:१, १:२, १:३ ३:१७, ४:११, ४:२२, ११:१३:१

(६) सुरपति ५:२०:३८, सर्गपति ६:१५:८

(७) दिष्षिय जाइ सदेह सोहं। ४:२२:१

(८) देषउ देवर सम दयतु। ११:१३:१

(९) ४:१०:१०, ४:२२:१

(१०) देवी विचित्रा गति। ३:२:४

(१०क) नृप वर अनि उर अंगभइ दैवहि अवर स भाउ। २:१२: २ , को मेटइ विधि पत्त। ५:१४: २ , तथा १०:२८:६ भी

देवर [८] (देवमूर्ति) प्रति-स्थापित कर ली है। [९] इनकी चाह मानव समझ के परे [१०] और नर-इच्छा से सशक्त है। [१०क] ये शुभ [११] संग्रही होते हैं। मनुष्यों के शुभ कार्यों के प्रति प्रेरणा [१२] और प्रोत्साहन [१३] प्रदान करते हैं। देवों का भक्त रक्षक [१४] और भक्त जन के कार्यों को सफल बनाने वाला रूप ही [१५] पूज्य है। अतिरंजित वर्णन में कवि को उपमान के लिए इन्ही देवों, का अंतिम सहारा है। [१६] कवियों और गुणियों की वार्ताओं [१७] तथा भक्तों की सेवा [१८] से देव गण आकर्षित होते हैं। ` देव ` सम्बोधन उच्चता बोधक है। [१९]

देवता

प्रस्तुत काव्य में प्रभुता के लिए इन्द्र, [२१] निर्माण के लिए ब्रह्मा, [२२] विनाश के लिए शंकर, [२३] बुद्धि और वाणी के लिए सरस्वती, [२४] शक्ति के लिए देवी, [२५] काव्य पूरा करने के लिए गणेश [२६]

(८, ९ तथा १०) देखिए पिछले पृष्ठ पर।

(११) सुह त देव संचही। ३:१७:३२

(१२) क- बोलहु त बोल देवन समान। २:३:२४

ख- सुर समि आचार। २:३:५९

(१३) क- आचारु चारु देव सव्व दोइ पक्ष जंपही। ६:१५:२३

ख- (पृथ्वीराज के घर लौटते समय) जयज्जय देव अयास करी। ८:६:१८

ग- (कन्ह के घोड़े पर चढ़ते समय) जय जय कहि सहु देव। ८:२०:१

घ- (अल्हन के युद्ध पर) अमिय कलस आयास लिअउ अच्छरी उछंगह।

तब सु भई परतच्छिअरीत अरीत कहत कह।। ८:२४:३-४

(१४) क- सोयं पातु। १:१:४

ख- देवौ घि रक्षा करे। ३:६:४

ग- जीवतेसं विस्व राष्यौ बलं मंत सेस। १:४:३

(१५) सेस सफलं प्रिथिराज काव्ये हितं। ११:१:४

(१६) क- भरिग थान चहुआन जानि दुरि देव नाग नर। ३:११:१

यमराज के भृत्यों से बचने के लिए गंगा,[२७] धन के लिए कुबेर[२८] आदि विभिन्न देवताओं की भिन्न भिन्न कार्यों के लिए आवश्यकता पड़ी है। प्रस्तुत कृति में समाहित देवगण वैदिक परम्परा से आगे बढ़ कर पौराणिक परम्परा के निकटवर्ती प्रतीत होते हैं। पृथ्वी के

---

(२६) ख- समाधि आध जग्गये। अमुखं ति बंधये। ७:१२:२२+२३

ग- मनउ जोगिनी जोग लागति रीष। ७:१७:२२

घ- जय जय सु घंट जोगिनी करहि। ७:२५:५

ङ०- अमिय कलस आयास लिअउ अच्छरी उछंगह।
तब सु भई परतक्खि अरीत अरीत कहत कह
अल्हन कुमार विभ्रम भयउ रणा किहि वानकि मनि भन्यउ।
तिम तिम तियोलन गंगधर तिम तिम संकर सिर धुन्यउ।।
८:२४:३-६

च- चउसट्ठि सह्व जय जय करहि। ८:२६:५

छ- धुनि सीस ईस सर अल्हनउ धनि धनि कह प्रथिराज।।
८:२५:१

ज- इहि नादि ईश मथ्थउ धुनउ अमिय विंदु ससि उल्लसउ।
विछुरउ धवर संकिय गवरि टरिग गंग संकर हंसउ।
८:३२:५+६

इसीप्रकार देखिए ८:३४:३+४, ११:१२:१३+१४, ६:६:२

(२७) थकि प्रवाह बचन मुख मत्ती। सुर नर श्रवन मंडि रहि वत्ती।।
५:५:३+४

(२८) मनु देवता सेव ता मर्ग मुल्ले। ४:१०:८

(२६) २:१:१३, ६:६:१

(२१) २:३:६०, ५:३१:२, ५:४५:२

(२२) क- निमनिं विधिना त जान। १:६:४

ख- मनु सज्जिआ बंभ केलास बीय। २:३:६४

ग- पिय प्रथीराज रिपु किअ तह विपरीत की बिरंचि। २:८:२

घ- मनु पव्वय विधि चरण किय सहि दिक्षिय मयामत। ८:६:२

ङ- सुह कारणि विहि निम्मयी सु दुह कत्तरि करतार। ६:१८:२

शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों, विशेषत: शूरों, का भी महत्व बढ़ा और अमृत कलश लेकर अप्सराएं[२९] उनके स्वागत-हेतु एवं स्वर्ग के रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए ईशेन्द्र[३०] आदि उत्कंठित रहने लगे। पौराणिक साहित्य में देवलोक और मानव लोक से सम्बद्ध (यथा दशरथ, पुरुरुआ एवं दुष्यंत) अनेक महान् पुरुषों को यह सम्मान प्राप्त हुआ है।

---

(२३) क- करे काल षद्दं। १:३:१०

(२३) ख- चष्षे अग्गि दद्दं। पुलें यदि जद्दं। १:३:१२+१३

ग- जुरे काम तद्दं। १:३:१६

घ- डमरु ड्ह डह कियं गवरि कंतं।

जानियं जोगि जोगादि अंतं। ७:६:३+४

ड०-उठे प्रौन छिक्के जुरे जान दगं।

चढ़े वीर नंदीस सूली अनंदी।

नंचइ भूत भइरव अक्कइं जानवंदी।। ११:१२:१२+ १४

(२४) क- सार सबुधा अबुधा बुधा गोपिनी। १:२:१

ख- गिरं जोगिनी। १:२:२

(२५) तउ समरी महामाय देवि दीनउ हुंकारउ। ८:२४:२

(२६) गणेस सेस सफल प्रिथिराज काव्ये हितं। १:१:४

(२७) बपु अपु विलसदे, जम भूत जदे, कह गटे। ४:११:७

(२८) कुव्वेर कोट वरिषउ सुभाइ। २:३:१८

(२९) क- सह अक्कुरी अकुकहि विमान सुरलोक नाग तह। ७:५:४

ख- अमिय कलस आयास लिअउ अच्छरी उछंगह। ८:२४:३

(३०) तब सु भई परतक्खि अरीत अरीत कहत कह।

तिम तिम विलोयन गंगधर तिम तिम संकर सिर धुन्यउ।।

८:२४:४+६

(३०क) २:३:१८

वैदिक देव परिवार में पद परिवर्तन

बौद्ध और जैन धर्मों के प्रभाव क्षीण होने के उपरान्त देवों के इस पुनरुत्थान काल में वैदिक देव परिवार के इन्द्र, विष्णु, रुद्र, कुबेर और[३०क] और यम पुन: प्रतिष्ठापित हुए किंतु उनके कीर्तिमान में अन्तर आ गया। वेदों में इन्द्र के सम्बन्ध में जितने मंत्र हैं उतने अन्य सब देवों के लिए मिलाकर भी नहीं है, इसका उल्लेख किया गया हैं। अधिकांश मत्रों में इन्द्र की अकेले ही प्रार्थना की गई है।[३१] वैदिक परम्परा में इन्द्र ही सर्वाधिक सशक्त देव हैं किन्तु इस काव्य में ईश इंद[३२] (शिव) की प्रधानता परिलक्षित होती है।[३३] इनको देव देवे[३४] कहा गया है। पुराणों के प्रभाव से, इस काव्य में भी इन्द्र की पदावनति अवश्य प्रतीत होती है, किन्तु पुराणों की भांति इनके चरित्र को कलुषित नहीं चित्रित किया गया है। इसका शौर्य पूर्ण राजसी व्यक्तित्व पहले की भांति ही सर्वोपरि दृष्टिगोचर होता है।[३५] हरि[३६] के

---

(३१) हिन्दू देव परिवार का विकास : सम्पूर्णानन्द , पृ० ६५

(३२)·१:३:२१

(३३)इन्द्र, विष्णु तथा यम की तो प्रार्थना भी नहीं की गई है।

शिव की पूजा तो प्राचीन तम काल से चली आ रही है। सर जान मार्शल के ग्रन्थ मोहिनजोदड़ो (जिल्द १, पृ० ५२-५३ एवं चित्र १२, संख्या १६) से पता चलता है कि सिंधु घाटी के सभ्यता के समय संभवत: शिव पूजा प्रचलित थी। अनु०पर्व (१६) एवं शांति पर्व (२८५-७४) में शिव के भी १००० नाम दिए गए हैं। धर्म शास्त्र का इतिहास, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ० ३६८, श्री आर०जी० भंडारकर ने अपनी पुस्तक 'वैष्णाविज्म और शैविज्म' में दर्शाया है कि ऋग्वेद में रुद्र एक महत्वपूर्ण देवता है। तैत्तिरीय संहिता (४:५:१-११) में एक उच्च स्तुति की गयी है। आश्वलायन गृह (४:६:१६) में रुद्र के १२ नाम गिनाए गए हैं। पतंजलि (जिल्द २, पृ०३८६-[३८]) ने शिव के भक्त का उल्लेख किया है। शंकराचार्य ने वेदान्त सूत्र (२:२:३७) शैवों के पाशुपत के विरोध में है। शांतिपर्व (२८४:१२१-२

चरणों से आद्र गंगा तथा सेनाओं के भार से हरि की[३७] समाधि टूटने की घटना के अतिरिक्त विष्णु सम्बन्धी किसी अन्य प्रसंग ने विवेच्य काव्य का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं किया है। पृथ्वीराज रासो के अन्य संस्करण में हिन्दू त्रिमूर्ति के विष्णु रूप से सम्बद्ध (दूसरा समय अथ दसम के ५८६ छंद) दशावतार का वर्णन कर हरि की महिमा को प्रतिष्ठापित करते हैं।[३८] इनके अवतारों में बाराह,[३९] राम[४०] और कृष्ण[४१] का उपमान रूप में उल्लेख हुआ है।

में पाशुपत लोग वर्णाश्रम धर्म के विरोधी कहे गए हैं। कूर्म पुराण (पूर्वार्द्ध अध्यायी६) में शिव के असुर भक्त बाण ने विभिन्न स्थानों पर १४ करोड़ लिंगो की स्थापना की है, बताया गया है, जिन्हें बाण-लिंग कहते हैं। (नित्याचार पद्धति पृ०५५६)। पूजा प्रकाश (पृ०१६४), तैत्तिरीया० १०:४७) तैत्तिरीय संहिता(४:५:१-११) में शिव की चर्चा है।

(३४) २:२५:१, ४:१०:१०

(३५) क- (जयचन्द ने) आनंद इंद सम किय् विचार। २:३६०

ख- एक कहइ लिखहि पर इंद राज। ४:७:३

ग- मोहड अथिथ पुरंदर इंद जु इहि रहइ। ४:१३:२

घ- प्रथिराज सिंघासन ठयउ जनु पर पुर उग्यउ इंद। ५:३१:२

ङ०- प्रवीण बाणी अध्धरी मुनिंद्र मुद्र कुंडली।
प्रतिष्य भेष उध्धरउ सु भोमि लो अषंडली।।५:३८:२१,२२

च- देषि सिंहासन ठयउ इह त बिठ्ठइ इंद जन। ५:४५:२

छ- मनहु वज्जपति वज्ज धरि सह अप्पिअ तिहि जोर।
५:४७:२

ज- अर्पंति अंगुलीय दान जान सोम लग्गये।
मनउ अनंग रंग वस्य रंभ इंद पुज्जये।। ६:१५:१+२

झ- सार संपत्त आतप्प रच्छं। मनउ आवर्भ इंद्र रुद्र निकसं।
८:१०:११+१२

यं- जिम सु देव इंदहि परसि रहें बिंटि अरि जूह।। ८:२६:२

~~(३६) भर सेस हरी हर ब्रत तन तिहि समाधि तिहि दिन टरिय ।०:५४~~

किंतु इनका वह महत्वपूर्ण स्थान इस काव्य में नहीं है जो समसामयिक जयदेव अथवा दक्षिण के राम एवं कृष्ण भक्तों के काव्यों में उपलब्ध है। पुराणों की पृष्ठभूमि में 'दशावतार चरित' तथा 'गीत गोविन्द' में वर्णित दशावतार को परम्परागत रूप में रासो के कुछ संस्करणों में स्थान मिला है, किन्तु प्रस्तुत काव्य में इसका कोई प्रभाव नहीं परि-

---

(३६) (गंगा) हरि चरणालं। ४:११:१०

(३७) भर सेस हरी हर ब्रह्म तन तिहि समाधि तिहि दिन टरिग।
७:५:६

कालिदास के मालविकाग्नि मित्र (प्रथम पद्य), कुमार संभव (७:२८) तैत्तिरीयारण्यक (१०:४३:४७), विष्णुधर्मोत्तर (३:४८:१), महाभारत (वन पर्व ३६:७६, १८६:५-६, शांति पर्व ३४३:१३२) मत्स्य-पुराण ५२:२३ में विष्णु का वर्णन है। अनुशासन पर्व (१४६:१४-१२०) में विष्णु के १००० नामों की चर्चा है। धर्मशास्त्र का इतिहास: अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ० ३६८)

(३८) पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा) वि०वि०त्रिवेदी, पृ०२६,२८

(३९) बाराह रूपी न कधे धरंता। ७:६:२६

(४०) क- मनहु लंक विग्रह करन चलउ रघुपपतिराउ। ७:७:२
ख- (राजसूय यज्ञ) त्रेताज कीन्ह रघुनन्द सोइ। २:३:१७

(४१) (संयोगिता के) मणिबंध पुष्प सुदीसये।
जानु कन्ह कालीय सीसये।१०:११:४५,४६

(४२) ईश ४:२०:२०, ईस ७:६:४५, ईश इंद १:३:२१, गंगाधर ८:२४:६, चक्की २:२०:१, देवदेवा ४:१०:१०, देव देवेन २:२५:१, भुजंगी सुधारी १:४:१, रुद्र ८:१०:१२, शूली ११:१२:१३, संकर८:२४:६, सिंभ ४:१२:१, हर ३:२४:१, ५:१:३, ६:६:२, ७:५:६, ८:१४:४, हरे १:३:१७, त्रिनेत्र ७:६:२८, त्रिलोयन ८:२४:६

लक्षित होता है । शिव,[४२] इन्द्र[४३] ब्रह्मा[४४] और यम[४५] का बहुनामी और बहु चर्चित होना भी उनका महत्व प्रकट करता है । यम, शील

---

(४२) देखिए पिछले पृष्ठ पर ।

(४३) अखंडली ५:३८:२२, इदं २:३:६०, ४:७:३, ५:३१:२, ५:४५:२, ६:१५:२, ~~८:१०:१२~~; ८:३६:२, इंदु ३:८:३, पुरंदर ४:१३:२, ~~८:१०:१२~~, ८:३६:२, ~~इंदु ३:८:३~~, बज्रपति ५:४७:२, सक्कि ४:२०:२७, सर्गपति ६:१५:८, सुरपत्ति ४:२०:३८

(४४) कमलसुत ७:६:७, बंभ २:३:६४, बंभु ३:१७:३४, बिरंचि २:८:२, ब्रह्म ७:५:६, बिधि ४:११:१०, विधि ५:१४:२, ७:६:२, विधिना १:६:३,१९६:४, विहि ४:१८:२

(४५) अतंकु ३:३३:८, ५:१०:४, कारा ६:५:७, काल १:३:११, जम ३:१७:३६, ४:११:७, ८:३:५, ११:४:१, जमु १२:८:२, जीवतेस १:४:३, यम ८:२:२, भृत ४:११:७

जिन देवों की मूर्तियों की पूजा होती है, उनमें मुख्य विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश और सूर्य हैं । ये पंचायतन कहे जाते हैं । आज भी नीचे लिखे क्रम से इनकी पूजा होती है :—

पूर्व

	शंकर २ गणेश ३	विष्णु २ सूर्य ३	शंकर २ गणेश ३	विष्णु २ शंकर ३	विष्णु २ शंकर ३	
उत्तर	विष्णु १	शंकर १	सूर्य १	देवी १	गणेश १	दक्षिण
	देवी ५ सूर्य ४	देवी ५ गणेश ४	देवी ५ विष्णु ४	सूर्य ५ गणेश ४	देवी ५ सूर्य ४	

पश्चिम

धर्मशास्त्र का इतिहास, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ० ३६४

यक्ष

और सत्य का उपमान है।[४६] अति प्राचीन काल में राजा का एक अर्थ यक्ष[४६क] था। यक्षों के राजा कुबेर थे और वे महाराज कहलाए। इन्हें ही कालिदास ने राजराज कहा है। यक्ष, गन्धर्व, कुभांड और नाग ये चार प्राचीन लोक देवता थे जिनकी व्यापक मान्यता थी। इन चारों ~~के अधिपति~~ के अधिपति क्रमश: कुवेर, धृतराष्ट्र, विरुढक और विरुपाक्ष देवता महाराज नाम से प्रसिद्ध थे।[४७] विवेच्य काव्य

---

(४६) तिन महि सौं जे भय हरणा सील सत्त जम जित्त। ११:४:१

(४६क) महाभारत में राजा शब्द के यक्ष अर्थ का बहुत ही सटीक उदाहरण निम्नलिखित श्लोक में है :—

आत्मना सप्तमं काम हत्वा शत्रुमिवोत्तमम्।
प्राप्यावध्यं ब्रह्मपुरं राजेव स्यामहं सुखी।।

शांति पर्व, मोक्ष धर्म, पूना १७१:५२

यहां ब्रह्म और राजा दोनों शब्दों का अर्थ यक्ष है। रामायण में भी ब्रह्म शब्द यक्ष अर्थ में आया है। ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्य कवचावृत:, लंका, ७१:६७)। पा० भारत० : वा०श० अग्रवाल, पृ० ३५५

(४७) वही

(४८) त्रेता ज कीन्ह रघुनंद साइ। कुव्वेर कोट वरिषउ सुभाइ।

२:३:१७।१८

(४९) गन गंध्रव छंदे, जय जय बंदे, मुख चंदे। ४:११:७

महाभारत में गंधर्व अरिष्टा और कश्यप की संतति है। विष्णुपुराण में इनकी सुंदरता का जिक्र है। भागवत में इन्द्र ने इन्हें मार्कण्डेय की तपस्या भंग करने के लिए भेजा है। ब्रह्माण्ड पुराण में इनका एक एक गण बारी बारी से स्तुति करता हुआ सूर्य के साथ परिक्रमा करता है। महाभारत में चित्ररथ इनका स्वामी है, भू को दोहन कर उसकी गंध ग्रहण करने वाले गंधर्व बर्हिषद पितरों के उपासक और अर्जुनकार्तवीर्य के यज्ञ में अप्सराओं द्वारा सेवित बताए गए हैं। ब्रह्माण्ड पुराण में वृक्षों के निवासी और गायक ही कहे गए हैं।

में कुबेर ने त्रेता में राम के यज्ञ में सहर्ष अपने कोष की वर्षा की है[४८]।
कुबेर गंधर्व नाग
गन्धर्व,[४६] छंदों में प्रशस्ति गान और वंदना करने के संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं।[४६]
नाग पृथ्वी की प्राचीनता के साथ साथ अति प्राचीन हैं। इनकी अपनी देवताओं की भांति योनि[५०] है। इनकी वीरता,[५१] गोष्ठी,[५२] योग[५३] और अधिपतित्व[५४] का उल्लेख देवताओं के समानान्तर किया गया है। काव्य में परम्परागत रूप से भूत-भैरव[५५] का भी उल्लेख युद्ध में भयानक-रस की निष्पत्ति के प्रसंग में किया गया है।

नये देवता

नए देवताओं में गणेश[५६] की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ी है। वन्दना में सर्व प्रथम स्थान इनको प्राप्त हुआ है।[५७] यज्ञ करते के संबंध में

(४६का शेष) वायु पुराण में भद्र के पुत्र वर्णित हैं। ऋग्वेद (१०,८५, २१-२२ तथा ४०-४१) में गंधर्व, स्त्रियों पर रहस्यपूर्ण शक्ति और अधिकार रखने वाला बताया गया है। अथर्ववेद (१४,२,३५-३६) में इसका आवाहन किया गया है। गृहसूत्र संग्रह भाग २, पंचतंत्र और सुश्रुत में लिखा है कि विवाह योग्य होती ही कन्या सोम, गन्धर्व और अग्नि की हो जाती है। पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा) वि०वि०त्रिवेदी, पृ०४४,४६

(५०) कहा भुजंग कहा उदे सुर निकम्म कव्व कवि षंहि। ३:२३:१

(५१) मरिग बान चहुआन जानि दुरि देव नाग नर। ३:११:१

(५२) इंदु फणोन्दु नरयंद न अथ्यि स भानयउ। ३:८:३

(५३) (सेना के भार से) भर सेस हरी हर ब्रह्म तन तिहि समाधि तिहि दिन टरिग। ७:५:६

(५४) (दासी का पृथ्वीराज को जगाना) मनहु नागपति पतिनि अप्प जगावियउ। ३:७:४

(५५) नचइं भूत भइख वंकइं जान वंदी। ११:१२:१४

(५६) शुक्ल यजुर्वेद के अश्वमेधाध्याय में पूजा के समय "गणानां त्वा गणपति हवामहे" सर्व प्रथम उल्लेख इनके सम्बन्ध में मिलता है। इनमे अन्य नामों- विघ्नेश्वर (विघ्नबाधाओं के अधिष्ठाता) विघ्नविनायक (विघ्नों के सेनानी), तथा गणेश (दुष्टात्माओं के स्वामी) से ये अनार्य देवता प्रतीत होते हैं। पहले मंगल कार्यों

बलि,[५८] पांडव[५६] और जनमेजय[६०] का उल्लेख हुआ है। प्रद्युम्न[६१] प्रभुता-संपन्न के रूप में दिखाए गए हैं। धनुर्धर युद्ध-वीर के उपमान के रूप में द्रोण[६२] और अर्जुन[६३] का प्रयोग हुआ है।

देवियां
सरस्वती

सरस्वती[६४] का वाणी रूप से उल्लेख ब्राह्मण साहित्य से हुआ है।[६५] यह बुद्धिमानों के कल्पना विहार का सार और उनकी अज्ञता का गोपन करने वाली है।[६६] महाभारत ग्रन्थारम्भ में इसकी वंदना है किन्तु विवेच्य काव्य में गणेश के बाद इसकी स्तुति हुई है।[६७] कविचंद को इसने बरदान[६८] दिया है और प्रत्यक्ष होकर उससे कयमास-बध का रहस्योद्घाटन किया है।[६६] सरस्वती मानो दधिजा (लक्ष्मी)[७०] है सरस्वती भक्त कवि चंद द्वारा उसके प्रसंग में लक्ष्मी के महत्व का आश्रय उल्लेखनीय है।[७०] मंदिर में पूजा हेतु प्रतिष्ठापित केवल कन्नौज की संदेह देवी है।[७१] इसने महाभारत में पांडवों को सजाया था।[७२]

संदेह देवी

(५६का शेष)कार्यारम्भ करने से पूर्व विनायक की शांति कर दी जाती थी, ताकि कोई उपद्रव खड़ा न करें। क्रमश: अमंगल कारण के स्थान पर इनकी पूजा मंगल सिद्ध होने के लिए होने लगी। गणेश मंगलकारी बने। तन्त्र के द्वारा बौद्ध धर्म में प्रविष्ट हुए और तिब्बत, चीन, दक्षिण पूर्व एशिया तथा जापान तक बढ़े। तुर्किस्तान में इनकी मूर्ति मिलती है। पृथ्वी पर स्यात ही किसी देवी-देवता का प्रभाव इतने व्यापक रूप से फैला हो। महाराष्ट्र में गणपत उत्सव बड़े धूम धाम से मनाया जाता है। हिन्दू देव परिवार का विकास : सम्पूर्णानन्द, पृ० १४७, पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा) : वि०वि० त्रिवेदी, पृ० ४२, ४३

याज्ञवल्क स्मृति में गणेश और उनकी माता अम्बिका की पूजा का वर्णन मिलता है। चौथी शताब्दी के पूर्व इनकी मूर्ति नहीं मिलती। शिलालेखों में कोई उल्लेख भी नहीं मिलता। इलौरा की गुफाओं में कतिपय देवियों की मूर्ति के साथ गणपति की मूर्ति बनी हुई है। ८६२ ई० के घटियाला के स्तंभ में श्री गणेश की चार मूर्तियां बनी हैं। गणेश के मुख में सूंड की बनावट इलौरा तथा घटि-

महामाया

और इस बार कन्नौज युद्ध के पूर्व पृथ्वीराज के विजयी होने का आशिर्वाद दिया है।[७३] युद्ध क्षेत्र में अल्हन द्वारा स्मरण होने ही महामाया ने हुंकार देकर उसको प्रोत्साहित किया।[७४] लषन बघेल के सूर्य लोक में पहुंचने पर गौरी[७५] शंकित हो गई, लक्ष्मी [७६] प्रभुता

गौरी-लक्ष्मी

याला की मूर्तियों में है। `मालती माधव` में भी गणेश के सूंड का वर्णन है।

जैनों ने भी गणेश की पूजा की है। (दे० आचार्य दिनकर, सं० १४६८, जर्नल आव इंडियन हिस्ट्री, जिल्द १८, १६३६, पृ० १५८, धर्म शास्त्र का इतिहास, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ० ३६८

(५७) १:१

(५८) सतजुग्ग कहइ बलराइ किन। २:३:१५

(५६) धनि धम्मपुत्त द्वापर सुणाइ।

तिहि पथ्थ वीर अरु हरि सहाइ।। २:३:१६+२०

क- (यज्ञ के लिए) कलि अथ्थि नहीं अर्जुन सु भीव। २:१:१६

(६०) (सुंदरियों की वेणियां) पुनर जन्मेजय ते जानि जग्गे।

रहे संकि ते सेस ते पुठि लग्गे।। ४:२०:१+२

(६१) पुर जवन प्रभुता। भ्रामिया जेन भय लच्छि सुरता। ७:६:११+१२

(६२) १२:१३:१६

(६३) सरसइ ३:११:५१, ३:१६:५, बंभ पुत्ति ५:३८:१६, हंसा १:२

(६३) ७:१७:३, १२:१३:१८, १२:३३:६

(६५) पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा),वि०वि० त्रिवेदी,पृ० ३६

(६६) बिहार सार रसबुधा अबुधा बुधा ओपनी १:२:१

(६७) देखिए १:१, १:२

(६८) जिहि प्रसन्न सरसइ कहहि सु इत्त चंद दरबारि। ५:३:७

(६६) ३:१४ से १६

(७०) वीना पानि सुबानि जानि दधिजा... । १:२:३

(७१) दच्छिय जाइ सदेह सोहं। प्रति पुब्बलि नर नेम अबी ।।४:२२:१+६

(७२) चंड भारथ्थ उहि वार सज्जी। ४:२२:७

(७३) होय जय पत्ता प्रथीराज राजं। ४:२२:७०

(७४) तउ समरी महामाय देवि दीनउ हुंकारउ। ८:२४:२

की प्रतीक हैं। शक्ति देवी[७६क] भी उपमान में उल्लिखित हैं।

लोक धर्म में अनेक देवी देवता के हो जाने से उनसे सम्बन्धित स्थान, वृक्ष, नदी और गिरि आदि को भी देवता मान कर पूजने की परंपरा लोक में चली।[७७] किंतु इसका प्रभाव विवेच्य काव्य पर नहीं परिलक्षित होता है। केवल हरि के चरणों की आद्रता[७८], विधि की बालिका[७९] शिव के अर्द्धंग में प्रतिष्ठित और गन्धर्वों से वंदित[८१] गंगा की स्तुति कई पदों में की गयी है।[८२] यह पाप को नष्ट[८३] कर मंगलदात्री हैं।[८४] उक्त व्यक्ति-प्रकरण से भी

गंगा

---

(७५) संकिअ गवरि। ८:३२:६

(७६) कंस सिसुपाल पुरजन प्रभुता। भ्रामिया जेन भय लक्ष्मि सुरता।।
७:६:११+१२

(७६क) ७:६:१०

(७७) पा०भारत०, वा०श०अग्र०, पृ० ३५१

(७८) हरि चरणालं। ४:११:१०

(७९) बिधि बालं। वही

(८०) हर सिर परसगे, जटा विलगे, अरधंगे। ४:११:३

(८१) गन गंध्रव छंदे, जय जय वंदे, मुख चंदे। ४:११:५

(८२) ४:११:१२

(८३) अघ कृत भगे। ४:११:२

क- बपु अपु विलसंदे, जम भृत जंदे, कह गंदे। ४:११:७

ख- कलिमल हर मंजन। ४:११:१५

(८४) कृत चगे। ४:११:२

क- मति उरु गति मंदे, दरसत नंदे, गत दंदे। ४:११:६

ख- सद सालं। ४:११:८

ग- दरसन रसराजं, जय जुग काजं, भय भाजं। ४:११:११

घ- सुभ साजं। ४:११:१२

ङ०- अमल तन मंजरि। ४:११:१३

च- करुणा रस रंजरि, जन पुनि गंजरि। ४:११:१४

छ- जन हित सज्जन। ४:११:१५

गंगा के प्रति तत्कालीन श्रद्धा और प्रेम प्रकट होता है।[८५] गंगा-स्नान से पापमोचन का विचार सर्वमान्य था।[८५] काव्य-रूढ़ि वस सुंदरता के उपमान[८६] में तथा रणशूरों के स्वागतार्थ अप्सराओं[८७] का तथा युद्ध की भयंकरता को अतिरंजित करने के प्रसंग में योगिनियों[८८] का प्रयोग हुआ है। योगिनियों की ६४ संख्या[८९] तथा नर्तकी के उपमान में मेनका[९०] का उल्लेख हुआ है।

दानव

विवेच्य काव्य में पृथ्वीराज के दरबारी और गुरु गोविंद सिंह ने प्रशस्ति में उसको (पृथ्वीराज को) रूप में दानव[९२] कहा है। काव्य-नायक और नायिका के प्रथम साक्षातकार में सखियां संयोगिता से पृथ्वीराज के लिए पूछती है कि यह देव[९२] अथवा दानव[९३] या कोई इन्द्र अथवा मुनीन्द्र है। शाह शहाबुद्दीन

---

(८५) ` गांग न्हाए धर्मु हो, पापु जा ` — गंगायां स्नाते धर्मो भवति, पापं याति। ५:२३:२५

(८६) क- किहि वर वर उतकंठ त पुच्छइ अच्छरिय। २:१४:४

ख- मनहु सभा सुरलोक थइ चली अच्छरी समान। ५:२३:२
उछंग गंग मझ्झि झुक्कि सर्गपति अच्छरी। ६:१५:८

(८७) क- निरखे तिनके तन अच्छरी। ७:४:२२

ख- सह अच्छरी अच्छहि विमान सुरलोक नाग तह। ७:५:४

ग- अमिय कलस आयास लिअउ अच्छरी उछंगह। ८:२४:३

(८८) जय जय जु घंट जोगिनि करहि करि कनवज्ज ढिल्ली वयर। ७:२५:५, ७:१७:२२

दिल्ली का नाम योगिनी पुर भी था। वहां पर योगिनी का प्रसिद्ध मंदिर था जहां चंद ने निरंतन के जप में चित्त समाधिस्थ करके अजपा-जाप धारण किया था तथा अपना पृथ्वीराज रासो (एक-समीक्षा) काव्य प्रणीत किया था। पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा) वि०वि०त्रिवेदी, पृ०५५.

के सिर पर ताज ऐसे ही शोभित है जैसे दानव[९४] के सिरपर दानव-गुरु (शुक्राचार्य) हों। पृथ्वीराज गोरी युद्ध के लिए `भिरे देव दानव जिम वैर चीतउ`[९५] उल्लेख प्रकट करता है कि हिन्दू देव हैं और मुसलमान(जिसका नया नामकरण `म्लेच्छ` हुआ है।) दानव हैं। मूल में दोनों एक थे,[९६] किन्तु इन दोनों में प्राचीन शत्रुता चली आ रही है। इन दोनों का युद्ध उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। यथा पृथ्वीराज जयचंद युद्ध को मानो` देव दानव भित्त लिखा है। इसी ढंग से उपमान में राम के विरोधी दल रष्षस[९८] (राक्षस) का भी उल्लेख हुआ है। दानव और राक्षसों के पतियों में बलि[९९]

---

(८९) चउसठ्ठि सहु जय जय करहि छत्रपतिवरि संचरिग। ८:२६:५

(९०) मनउ मेनका नृत्त तह तार चुक्की। ४:२३:२२

(९१) हिन्दू देव परिवार का विकास : सम्पूर्णानन्द, पृ० ४७

(९२) दानवति रूप। २:३:३४

(९३) एक कहइ दानव देव हुइ एक कहइ इंद मुनिंद। ६:१०:१

(९४) सिर ताज साहि सोभिय सदीस।
गुरु दनुज उदइ किअउ दनुज सीस।।
१२:१३:१३+१४

(९५) ११:१२:१६

(९६) महर्षि कश्यप के अपत्य पत्नी दनु से दानव, दिति से दैत्य और अदिति से आदित्य (देव) सन्तानें हुई। आरम्भ से ही इनकी शत्रुता प्रसिद्ध है।

(९७) ७:३०:५

(९८) रामदृदल बंनर सयल उहि रष्षस बहु-बंधु। ७:८:१

(९९) सत जुग्ग कह्ह बलिराइ किन्न। तिनि किति काज त्रैलोक दिन्न।।
२:३:१५+१६

और मधु[१००] राक्षस, प्रस्तुत काव्य में, उच्च दृष्टिकोण से उल्लिखित हैं। गुरु गोविन्द राज ने पृथ्वीराज के दरबार में बताया कि सतयुग में राजा बलि[९९] ने यज्ञ किया था जो अपने कीर्ति के लिए वामन को तीनों लोक दे दिया था।[९९] यज्ञारंभ के सजावट में जयचंद की कन्नौज नगरी ऐसी सुशोभित हो गई जैसे मधु[१००] राक्षस का निवास-स्थान हो।[१००] देवों के प्रमुख उपासक सूर्य-चन्द्र के शत्रु राहु[१०१] को बुरा माना है। राहु[१०१] के कलंक से बचने के लिए प्रयास किया है। जयचंद राहु रूप[१०२] होकर जब रवि रूप पृथ्वीराज को ग्रसना चाहा, तो आबू-नरेश सलष ने अलक्ष्य भुजदान (प्रहार) देकर पृथ्वीराज-रवि को उस ग्रहण से मुक्त किया।[१०२] शक्ति और शंकर का क्रमश: सुर महिष[१०३] और त्रिपुर के[१०४] मारने का भी उपमान रूप में उल्लेख हुआ है। निशाचर[१०५] युद्ध से आनंदित होते हैं।[१०५]

उपसंहार

देवता मानवों से भिन्न योनि और लोक के हो गए हैं।[१०६] शक्ति[१०७] उसका मूल आधार है।[१०७] देवों की इच्छा मनुष्यों की शक्ति और ज्ञान से परे है।[१०८] शक्ति सम्पन्न व्यक्ति भी देवलोक में समादृत

---

(१००) धज बंधन सोम जनु मधु बक्षीय। २:३:६३

(१०१) ..... कलंक राहु बचाये। ३:१७:१०

(१०२) राह रूप कमधुज्ज गज्जि लग्गउ आयास कहु।
उग्रहउ ग्रह्न प्रथिराज रबि सलष अलष भुव दान दिए।
८:३०:११६

(१०३) सकति सुर महिष बलिदान लहिता। ७:६:१०

(१०४) एक बान चहुआन त्रिपुर सिर संकर बध्धी। १२:४५:३

(१०५) अनंद ते निसाचरे। ७:१२:११

(१०६) दे०टि०सं० ५:१:१:३+४

(१०७) ,, ५:१:२:२०

(१०८) ,, ५:१:२:१०,१०क

(१०९) ,, ५:१:१:२९+३०

हैं।[१०९] देवों में कार्य-विभाजन[११०] और श्रेणी बद्धता[१११] पाई जाती है। रुद्र और इन्द्र को सर्वोपरितथा दानव और राक्षस को निम्नतम श्रेणी उपलब्ध है।[१११] यह श्रेणी-निर्धारण देव विशेष की अभिरुचि और कार्यों पर आधारित[११२] है, न कि उसकी समृद्धि पर[११३]। पुराणों के सदृश्य देव-दानवों में किसी की अवमानना नहीं की गई है। देव प्रतिकूल होने पर भी दानवों के पौरुष को पहचानने की दृष्टि विकसित है।[११४] पृथ्वीराज को दानव कहने में संभवत: यही दृष्टि सक्रिय है।

---

(१०९) पिछले पृष्ठ पर देखिए।

(११०) दे०टि०सं० ५:१:१:२१-२७

(१११) ,, ५:१:१:३०क-६३,६२-१०५

(११२) ,, ५:१:१:६६-१००

(११३) ,, ५:१:१:११-१५,१०५

(११४) ,, ५:१:१:६६-१००

(११५) ,, ५:१:१:६२-६३

अध्याय ५— धर्म और दर्शन ~~और नैतिकता~~

धर्म — (२) उपासना पद्धति

(४४ शब्द ५६ संदर्भों में प्रयुक्त हुए हैं।)

अनुच्छेद	—	संदर्भ
१	—	तप
२	—	यज्ञ, जप, मंत्र
३	—	भक्ति, मंदिर, मूर्ति
४	—	तीर्थ, दान, जैनियों का सप्तक्षेत्र
५	—	उपसंहार

तप

विवेच्य काव्य की उपासना-पद्धति मूलत: वैदिक परम्परा की हैं। तप,[1] यज्ञ,[2] और भक्ति[3] इसकी मुख्य आधार-शिलाएं हैं।[4] कन्नौज में गंगा तट पर तप में ध्यानावस्थित तपस्वी हैं जिन्हें देखते ही

---

(१) क- सु ज्योतिष तप गति उपाय विनु नहि देष्षउ सुनि अष्षि। ३:१५:१

ख- कहों तापसा तप्प ते ध्यान लग्गे। ४:१०:११

ग- मय तक्यउ तप्प वदरीय थान। १२:१५:७

शांति पाने के प्रयोजन से आर्यों ने संसार के,नश्वर सुखों को लात मार कर तप करना प्रारंभ किया। इस प्रकार तप की परिपाटी चली जो हिन्दुओं में आज तक प्रचलित रही है और जो समय समय पर हिन्दू सभ्यता के साथ और देशों में भी फैली। ऋग्वेद के नौ मंडलों में कहीं तप का नाम नहीं है पर दसवें मंडल के काल में इसका उल्लेख बराबर मिलता है। एक बार सात ऋषियों का जिक्र है जो तपस्या करने बैठे हैं (ऋग्० १०:१०६:३)। तप की महिमा बढ़ती ही गयी। ऋग्वेद का दसवां मंडल और अथर्व वेद दोनों ही कहते हैं कि ऋत तप से उत्पन्न हुआ है, सत्य तप से उत्पन्न हुआ है (ऋग् १०:१६१:१, अथर्व० १७:७) परलोक में जीव की क्या दशा होगी ? यह बहुत कुछ तप पर निर्भर है (ऋग् १०:१५४:२, तप की महिमा के लिए अथर्ववेद १७:१ भी देखिए।) तप से मुनियों को अलौकिक शक्तियां हो जाती हैं (अथर्व० ७:४४:१), मनुष्य क्या, समस्त देवता तप करते हैं (अथर्व ११:५:६,१६) तप और यज्ञ के द्वारा देवताओं ने स्वर्ग जीता था (ऐतरेय ब्राह्मण २६:१३)। और तो और, स्वयं प्रजापति ने सृष्टि पैदा करने के लिए तप किया था (ऐतरेय ब्राह्मण २:३३)। अथर्ववेद में कहा है कि तप, यज्ञ, ऋत और ब्रह्म आदि के आधार पर ही विश्व स्थिर है (अथर्ववेद १२:१:१)। हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता: बेनीप्रसाद, पृ० ८३-८५ तप भारतीय संस्कृति की एक मुख्य विशेषता है। विश्व में ऐसा अन्यत्र नहीं पाया जाता। तुलसीदास ने तप की बड़ी प्रशंसा ~~तप की~~ की है।

पाप नष्ट हो जाते हैं।[४क] कवि चंद ने भी अपने अंतिम काल में बदरिकाश्रम में तप करने का निश्चय किया है।[४ख] शेष, हरि, हर और ब्रह्म

आज का प्रसिद्ध तपस्वी संत विनोबा हैं।

(२) क- परठिया पूनि राजसु जग्गु। २:१:४

ख- अब करहि जग्गु जे लेहि कव्व। २:१:१०

ग- कलि मझ्झ जग्गु को करइ आज। २:३:१४

पारसियों के प्राचीन धार्मिक पुस्तकों और वैदिक साहित्य में प्रयुक्त यज्ञ सम्बन्धी शब्दों (यथा अथर्वन्, आहुति, उक्थ, बर्हिस, मन्त्र, यज्ञ, सोम, सवन, स्टोम, होतृ) के सादृश्य से ज्ञात होता है कि यज्ञ सम्बन्धी परम्परा बहुत प्राचीन है। इस सम्बन्ध में विदेशी भाषा की दृष्टव्य पुस्तकें :- हाग द्वारा ऐतरेय ब्राह्मण की टिप्पणी सहित अनुवाद (अंग्रेजी में) प्रो० कीथ लिखित `वेद और उपनिषदों की धर्म एवं दर्शन ( अंग्रेजी ) कृष्ण यजुर्वेद और ऋग्वेद-ब्राह्मण का अनुवाद, श्री कुंते कृत `विसिसिट्यूड्स आव आर्यन सिविलिजेशन इन इंडिया` (१८८०) विशेषत: पृ० १६७-२३२, वेबर एवं हिल्लेब्राट का जर्मन भाषा में, कैलण्ड एवं हेनरी का अग्निष्टोम (१९०६) फ्रांसीसी भाषा में, चेप्रो० डुमाण्ड कृत `ले` अग्निहोम (१९३९) जर्मन भाषा में। धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ०२६ वेद काल में यज्ञ बहुत बड़े पैमाने पर होने लगे थे और इसका विधान इतना बढ़ गया था कि अकेले सोमदत्त के लिए ही कई पुरोहितों की आवश्यकता थी। ऋग्वेद से जान पड़ता है कि ऐसे यज्ञों में बहुधा सात पुरोहित लगते थे। एक ऋचा में इनकी गिनती इस प्रकार है :— होतृ, पोतृ, नेष्टृ, अग्नीध, प्रशास्तृ, अध्वर्यु और ब्रह्म। अस्तु पुरोहित वर्ग बनना प्रारंभ हो गया था। हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता: बेनीप्रसाद, पृ०४२, ४३

(३) क- जन पुन गंजरि। ४:११:१४

ख- पुनरपि पुहुप पूजा वदति रति विप्पराज। ४:१२:२

हिन्दू भक्ति सम्प्रदाय का आदि स्रोत ऋग्वेद है। यहां कुछ

सदैव समाधि[५] में लीन रहते हैं। इशेन्द्र योग[६] के शब्द अनाहत नाद के विजेता हैं।[६] शिव जी योग[७] योगादि का अंत प्रलय में समझते हैं,

---

मंत्रों में आदमी और देवता के बीच में गाढ़े प्रेम की मित्रता की कल्पना की गई है। देवताओं को प्रसन्न रखने की बड़ी आवश्यक्ता है, उनकी कृपा पर पानी का बरसना, धन-धान्य का बढ़ना, सब का आनन्द - मय रहना, जीवन का सुखमय होना निर्भर है। हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता : बेनीप्रसाद, पृ० ४२.

(४) प्राचीन भारत में सदैव से कई विचारधाराएं बहीं - यज्ञ द्वारा देवताओं का आवाहन करना, तप से ज्ञान प्राप्त करना और भक्ति भावना का समावेश है। भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य : बैजनाथ पुरी, पृ० ५७.

(४क) कहों तापसा तप ते ध्यान लग्गे। ४:१०:११

सोयं देषते पाप नठ्ठे सरीरे। ४:१०:१६

(४ख) मइ वक्यउ तप्प बदरीय थान। १२:१५:७

(५) भर सेस हरी हर ब्रह्म सन तिहि समाधि तिहि दिन टारग।

७:५:६

(६) ज्यो जोग सद्दं। १:३:१४

उपनिषदों में सबसे पहले योग का जिक्र आया है। योग की क्रियाओं से चित्त की वृत्तियों का विरोध होता है, मन स्थिर और हृदय पवित्र होता है। आत्मा भौतिक जीवन से ऊपर उठ जाती तथा ब्रह्म को समझने में सुगमता होती है। कौषीतकि उपनिषद कहता है कि प्रतर्दन ने संयमन का एक नया मार्ग चलाया था जो अन्तर अग्निहोत्र अर्थात् आभ्यान्तरिक यज्ञ है। इसमें राग-द्वेष, भावना, वृत्ति का पूरी तरह दमन, प्राणवायु को रोककर चित्त को ओउम् तद्वनम्, तज्जलान आदि शब्दों पर एकाग्र किया जाता है। मुंडक उपनिषद में एक स्थल पर न्याय का उल्लेख है, किंतु न्याय की पूरी पद्धति अभी नहीं बनी थी। हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, पृ० १२५, १२६

अन्यथा वे सदा अर्पंति योजने[८] (आत्मयोग) में लगे रहते हैं। मुनीन्द्रों की मुद्रा[९] और कुंडली[९] इतनी जनप्रिय हैं कि इन्हें नृत्य में प्रदर्शित किया जाता है।[९] योगी[१०] कछूछ[११] (कछौटा) पहिने जटा[१२] बाधे और बहुत ही विभूति[१२] (राख) लपेटे रहते हैं। बौद्ध धर्म से सम्बद्ध नाथ सम्प्रदाय के गोरखपंथी कंथी[१३] भी पहिनते थे जो कसे हुए मजबूत जिरह के उपमान में यहां व्यवहृत हैं।[१३]

यज्ञ

यज्ञ से काव्य-यश की प्राप्ति होती है।[१४] यशस्वी बलि,[१५] रघुनन्दन और धर्मपुत्र[१७] प्रमाण स्वरूप हैं। कलियुग में जयचंद ने पवित्र राजसूय[१८] यज्ञ की परिस्थापना की। कन्नौज में

---

(७) डमरू डह डह किय गवरि कंत। जानियं जो जोगादि अंत।
७:६:३+४

(८) अपा अपा भणांति मे अर्पंति जानि योजने। ५:३८:२४

(९) प्रवीण वाणि अध्धरी मुनिन्द्र मुद्र कुंडली।
प्रतिष्ष भेष उध्धरउ सु भोमि लों अषंडली। ५:३८:२१+२२

(१०) १२:८:१, अवधुत १२:३:२

(११) देषिअ जानु जोगिन्द्र कछूके। ७:६:३६

(१२) वपु विभूति बहु बिठ्ठयउ जट बंधी जमजूट। १२:३:१
शिव और यम सबसे बड़े योगियों में हैं। इनकी जटा प्रसिद्ध है। शिव की जटा में गंगा जी भुला गई। शंकर का विभूति लगाना भी प्रसिद्ध है।

(१३) मनहु कंठ कंथीन गोरष्ष पाई। ७:६:३२

(१४) अब करहि जग्गु जे लेहि कव्व। २:१:१० । यज्ञ (यज्+नङ्०)
साहित्य अथवा शिलालेखों में उल्लिखित यशस्वी यज्ञकर्ता (बौद्ध के बाद) हरिवंश (३:२:३६-४०) मालविकाग्निमित्र (अंक५) अयोध्या के शुंगाभिलेख(एपिग्रेफिया इंडिका, जिल्द २०, पृ० ५४) में सेनापति पुष्यमित्र, हाथी गुम्फा अभिलेख (वही पृ० ७९) में राजा खारवेल, समुद्र गुप्त (कुमार गुप्त के बिलसद अभिलेख, गुप्त इंस्क्रिप्शन, सं० ५५, ~~पृ० २३६~~) छम्मक दानपत्र में प्रवर सेन

गंगा तट पर कहीं कहीं राजागण यग्य[१९] यजन[२०] कर रहे हैं।
उपमान रूप में यज्ञ-स्तंभ[२१], वलिदान[२२] और निर्माली[२३] का भी

(१४शेष) प्रथम (वही) । प्राचीनकाल में किए जाने वाले यज्ञों का वर्णन श्रौत सूत्रों में विशद रूप से पाया जाता है । धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, अनु० अर्जुन चौबे कश्यप, पृ० ५०६
(१५) सत जुग्ग कहइ बलिराइ किंन । २:३:१५
(१६) त्रेता ज कीन्ह रघुनंद साइ । २:३:१७
(१७) धनि धम्मपुत द्वापर सुणाइ । २:३:१६
(१८) पराठिया पूनि राजसु जग्गु । २:१:४

राजसूय यज्ञ जटिल है । इसमें बहुत सी पृथक पृथक इष्टियां सम्पादित होती हैं । इसकी अवधि दो वर्षों से भी अधिक है । इसे केवल क्षत्रिय करते हैं । शतपथ ब्राह्मण (६:३:४:८) के अनुसार राजसूय यज्ञ करने से व्यक्ति राजा और बाजपेय करने से सम्राट होता है । राजसूय यज्ञ की विस्तृत जानकारी के लिए देखिए:— लाट्या ० ६:१:३, ६:१:८ , कण्यायन १५:१:४, १५:१:६ , तैत्रिरीय संहिता १:८:१-१७, तैत्तिरीय ब्राह्मण १:४:६-१०, शत० ५:२:३-५, ऐत० ७:१८ और ८ ८, ताण्ड्य० १८:८:११, आप० १८:८:२२, कात्या०, १५:१६, आश्व० ६:३:४, शांखा १५:१२ और बौद्धा १२ । धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग१, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ० ५६१-५६३ । पा०भारत० , वा०श०अग्र०, पृ० ३६१ के अनुसार राजसूय यज्ञ चार दिन का है ।
(१६) कहीं यग्य याज्यंति ते राज राजा । ४:१०:६
(२०) यजन: यज्ञ करना (हिन्दी-रत्न-कोष : सं० दामोदरस्वरूप गुप्त)

ऋग्वेद से चुने हुए मंत्र जिनसे देवों का आवाहन किया जाता है याज्या कहलाते हैं । पा०भारत०, वा०श०अग्र०, पृ० ३६६
(२१) क- अनेक संग रंग रूप जूप जानि सुंदरी । ६:१५:७
ख- बढ़े वीर सामंत सा वीर रूपं । जिसे सयल सद्दूर सदेस जूपं ।।
८:१०:१७।१८
(२२) सकति सुर महिष बलिदान लहिता । ७:६:१०

जप

उल्लेख हुआ है । यज्ञ समाप्त होने के उपलक्ष्य में द्विज को दक्षिणा[२३क] दी जाती है ।

जयचंद ने राहु रूप होकर जब रवि रूप पृथ्वीराज को ग्रसना चाहा तो सलष पमार रण क्षेत्र को तीर्थ[२४] समझ कर उसमें स्नान[२४] करने के लिए मुड़ा । रुधिर का मधु[२४], जीवों का यव,[२४] हाथियों के शरीर का तिल[२४] सब मिलाकर प्राण का पिंड[२४] बनाया गया। शत्रुओं के पकड़े हुए रक्त सिर कुश[२४] - कांस है । शस्त्रस्त्र से शत्रुओं को तृप्त[२४] कर जप[२४] किया । तत्पश्चात् अलक्ष्य प्रहार[२४] देकर पृथ्वीराज रवि को ग्रहण से मुक्त किया । पृथ्वीराज को मुक्ति दिलाने के लिए चंद ने उसको (पृथ्वीराज को) अजया[२५] जाप करने की मन्त्रणा दी । मध्य काल में जब वेदाभ्यास कम हो गया और पुराणों पर अधिक बल दिया जाने लगा तो निबंधों ने घोषित किया कि जो सम्पूर्ण वेद जानते हों, उन्हें प्रतिदिन जितना संभव हो सके वेद का पाठ करना चाहिए । जिन्होंने वेद का अल्प अंश

---

(२३) निर्माली इथमेव मालव धर मेवाड मुंडोवर । २:१८:३

निर्माली=निर्माल्य=देवता को समर्पित की हुई वस्तु ।

(२३क) मनउ दुज दक्खिन लग्गइ थोर । ४:२५:१२

यज्ञ में कर्म करने वाले ऋत्विजों को दक्षिणा दी जाती थी । उसके विभाग के विषय में कुछ नियम धर्मशास्त्र ग्रन्थों में दिए हैं । जिसे यज्ञ की दक्षिणा होती थी उसी के नाम से दक्षिणा का नाम पड़ता था (तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्य: ५:१:९५) , जैसे राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम यज्ञों की दक्षिणा राजसूयिकी, वाजपेयिकी, आग्निष्टोमिकी कहलाती थी । ज्ञात होता है कि प्रत्येक की न्यूनतम मात्रा लोक व्यवहार में निर्धारित थी । जो ब्राह्मण योग्यता के कारण दक्षिणा का पात्र होता था वह दक्षिण्य कहलाता था (दक्षिणामर्हति दक्षिण्यो ब्राह्मण:, ५:१:६९) पा० भा०, वा०श०अग्र०, पृ० ३७४

पढ़ा हो, उन्हें पुरुष[२६] सूक्त का जाप करना चाहिए और जो ब्राह्मण केवल गायत्री जानता है उसे पुराणों की उक्तियों का जप करना चाहिए।[२६क] मनु,[२७] वसिष्ठ,[२८] शंखस्मृति[२६] और विष्णुधर्म-सू[३०]

---

(२४) राह रूप कमधुज्ज गज्जि लग्गउ आभास कहुं ।
धार तित्थ उरि जांनि फिरउ पंमार न्हान तंह ।।
रुधिर मधु जवजीव करि तनु तिल मिलिपिंड उसि ।
जु रत्त सीस अरि गहिग पांनि गहे केसि कुसि ।
करि त्रिपति सार नृप पंगु दल अव्वु पति जप सव्व किय ।
उग्रहउ ग्रहन प्रथीराज रबि सलष अलष ध्रुव दान दियु ।।
८:३०

(२५) हं तुह तुं तुह अजप जप्पि सरु वरु करि मिल्लह । १२:३८:४
वसिष्ट धर्म० (२२:६, २८:१०-१५) के अनुसार कुछ अन्य विशिष्ट मंत्र ये हैं :- अधमर्षण (ऋग्वेद १०:१६०:१:३), पावमानी (ऋ० ६) , शतरुद्रिय (तैत्तिरीय संहिता ४:५:१:११), त्रिसुपर्ण (तैत्तिरीयारण्यक १०:४८:५०) आदि । वृद्धहारित (:३३, ४५, १६३, २१३) के मत से ६ अक्षरों (ओं नमो विष्णवे), या ८ अक्षरों (ओं नमो वासेदेवाय) या १२ अक्षरों (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) का जप १००८ वार या १०८ वार करना चाहिए

(२६) ऋग्वेद १०:६०

(२६क) गृहस्थ रत्नाकर , २४६

(२७) २:८७,

(२८) २६:११

(२६) १२:२८

(३०) ५५:२१

(३१) धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग १, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ० ३७७-३७८

मंत्र

का कहना है कि यदि ब्राह्मण और कुछ न करे, किंतु जप अवश्य करे तो वह पूर्णता को प्राप्त कर सकता है ।[३१] यम ने मंत्र बल से विश्व को बचा रक्खा है । (अथवा यम ने विश्व में मंत्र बल को बचा रखा है) कवि चंद ने हर से सिद्ध[३३] का वर लिया है ।

भक्ति

भक्तिभावना की दृष्टि से ई० प्रथमम शताव्दी में एक नई विचार धारा का उन्मेष हुआ है जिसने मध्यकालीन-जीवन दर्शन में प्रमुखता प्राप्त की है । इस भाव भूमि में मात्र एक देव के प्रति भक्तों की श्रद्धा एवं भक्ति अनन्य दृष्टि से केन्द्रित थी । उसके अन्तर्गत तप और यज्ञादि को अपेक्षित महत्व प्रदान नहीं किया था[३४]। किन्तु इसका प्रभाव इस विवेच्य काव्य पर नहीं है । इसमें सभी देवताओं के प्रति श्रद्धा और प्रेम व्यक्त है ।[३५] तप और यज्ञादि भी बहुमान्य हैं । पूजा हेतु मंदिर[३६] और मूर्तियां [३७] स्थापित हैं ।

मंदिर, मूर्ति

धार्मिक और आध्यात्मिक कार्यों का पूरक मंदिर है । इसमें इतिहास और पुराण आदि का पाठ होता है ।[३८] नृत्य और वाद्य[४०] आदि

---

(३१) देखिए पिछले पृष्ठ पर

(३२) जिने विश्व राष्यौ बलं मंत सेस । १:४:४

(३३) कह कयमास बताहि मोहि कह हर सिद्धी बर कंहि ।३:२३:२

(३४) भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य, बैजनाथ पुरी, पृ० ५८

(३५) दे०टि०सं० ५:१:क१५-क२४, ५:२:३-३३

(३६) क- करि धम्म देव देवरं अनेय । २:१:१३

ख- धवलेहु धाम देवर सुचीय । २:३:६१

ग- कहों देवदेवा व नित्यान साजा । ४:१०:१०

घ- दिग्विजय जाइ सदेह सोहं । ४:२२:१

लौगाक्षि गृह्य (१८:३), गौतम (६:१३:१४, ६:६६), शांखायन गृह्य सूत्र (४:१२:१५), आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१:११:३०:२८), वसिष्ठ(११:३१), विष्णु धर्मसूत्र (६६:७,३०:१५, ७०:१३, ६१:१०), महाभारत आदि ७०:४६, अनु० १०:२०:२१, आश्वमेधिक(७०:१६, भीष्म ११२:११) में देवायतन(देवालय अथवा मंदिर) के उल्लेखों से

आकर्षक कार्य-क्रमों से उपास्यदेव को प्रसन्न किया जाता है।[३६]

(३६का शेष) से प्रभावित होता है कि चौथी या पांचवीं ईसा पूर्व में देवालय थे। धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग १, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप पृ० ३८६-३६१

(३७) क- दिष्षय जाइ सदेह सों। अर्क सा कोटि संपन्न देह।-
४:२२:११२

ख- सोवन्न प्रतिमा प्रथीराज वानं। २:३:५१

ऋग्वेद में कई स्थानों पर देव लोक भौतिक (शारीरिक) युयाधियों से मुक्त लिखे गए हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वे०(८:१७:३) में इन्द्र को `तुविग्रीव` (शक्तिशाली या मोटी गर्दन वाला), वषोदर (बड़े उदर वाला) एवं सुवाहु कहा गया है। ऋ० (८:१७:५) में इन्द्र के अंगों एवं पार्श्वों का वर्णन है और उसे अपनी जिह्वा से मधु पीने को कहा गया है। इसी प्रकार ऋ० (१:२५:१३, १:१५५:६, २:२३:५, ३:५३:६, ४:२४:१०, ४:५३:३, ८:१:५, १०:२६:६, १०:६७:८, १०:१०५:७,) में देवी देवताओं के अंगों का वर्णन है यत्र तत्र ऐसे वर्णन मिलते हैं जिनसे मूर्तिपूजा का निर्देश मिलता है। यथा :— तैत्तिरीय ब्राह्मण (२:६:१७) `होता याजक उन तीनों देवियों की पूजा करे जो सुवर्णमयी हैं, सुंदर हैं और बृहत् हैं`, से लगता है कि तीनों देवियों की सोने की मूर्तियां थीं। मोहन - जोदड़ो (दे० सर जान मार्शल, जिल्द १, पृ०५८-६३) में लिंग पूजा के चिह्न मिलते हैं। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (२०:१:३) की टीका में लिखित हरदत्त के मत से ईशान, उसकी पत्नी एवं पुत्र जयंत की मूर्तियों की पूजा होती थी। मानवगृह्य (२:१५:६), बौधायन गृह्य सूत्र २:२:१३, मनु (२:१७६, ४:३६, ४:१३०, ८:८७, ३:११७, ६:२८५) विष्णुधर्मसूत्र (२३:३४, २३:२७), पाणिनि (५:३:६६) पतंजलि (महाभाष्य, जिल्द २, पृ० २२२,३१४,४२६) में मूर्तियों की चर्चा है। धर्म शास्त्र का इतिहास, भाग १, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप, पृ० ३८६-३६१

तीर्थ

अपने मित्र और राजा पृथ्वीराज की दुर्दशा से कवि चंद अनाथ हो गया। उसने समस्त भोगों को छोड़ कर तीर्थ [४१] का मार्ग लिया। आबू नरेश सलष रणा को तीर्थ [४२] समझ कर उसमें स्नान[४२] करने के लिए उतरा[४२]। उपमान में कैलाश[४३] और तीर्थराज [४४] त्रिवेणी का नामोल्लेख हुआ है।

दान

शूर गण स्नान[४५] और दान [४५] करते हैं। प्रधान ने जयचन्द को प्रति दिन षोडस दान[४६] करने की मंत्रणा दी है। जयचंद दानी[४७] है। कवि चंद ने उसकी प्रशस्ति में दानपति[४८] कहा है। पूर्ववर्ती धार्मिक ग्रन्थों (यथा-ऋग्वेद,[४९] तैत्तिरीय संहिता[५०] काठ संहिता,[५१] तैत्तिरीय ब्राह्मण,[५२]

---

(३८) वाण ने लिखा है कि उज्जैयिनी के महाकाल मंदिर में महाभारत का नियमित पाठ हुआ करता था। राज तरंगिणी (५:२९) में लिखा है कि काश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा ने रामट उपाध्याय की नियुक्ति मंदिर में व्याकरण के व्याख्याता (वाख्यातृ) पद पर की। अग्नि-पुराण (२११;५७) मंदिर में ग्रन्थों का अध्ययन होना एक पुण्य कार्य कहा है। धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग१, अर्जुन चौबे काश्यप, पृ०४७६

(३९) दे० टि० सं० ५:२:३६ग.

(४०) क- वज्जियं देव दरि संष तुरं। ३:२०:२

ख- उरसि मुत्तिहार मध्धि घंटीप सबद। ४:१२:३

(४१) तजि भोग जोग भव तित्थ लीन। १२:१५:६

(४२) धार तित्थ उर जानि फिरउ पंमार न्हान तहं। ८:३०:२

(४३) मनु सज्जिया बंभ केलास बीय। २:३:६४

(४४)(क्ख) मनहु तित्थ राज त्रिवल्ली अलुभभं। ४:२०:२२

(४५) करि करहि सुर असनान दानं। ४:७:५

(४६) षोडसा दान दिनु देव देहु। २:१:१४

(४७)(जयचंद) भुष्षण सुदान सुर समि आचार। २३३:५६

(४८) दान कव्वि पति। ५:४३:१

(४९) ऋग्वेद १:१२५, १२६, ५:६१, ६:४७:२२-२५, ७:८:२२-२५, ८:५:३७-३९, ८:६:४६-४८, ८:४६:२१-२४, ८:६८:१४-१९

(५०) २:२:६:३, २:३:१२:१, ६:१:६:३

(५१) काठ संहिता १२-६

मनु [५३] शाख्यायन ब्राह्मण,[५४] ऐतरेय ब्राह्मण,[५५] शतपथ ब्राह्मण,[५६] बृहदारण्यकोपनिषद,[५७] छान्दोग्योपनिषद,[५८] महाभारत,[५९] अग्निपुराण,[६०] मत्स्य-पुराण,[६१] वाराह०[६२] में दान का अपूर्व महत्व बतलाया गया है। इससे प्रस्तुत काव्य प्रभावित है। जयचन्द के अतिरिक्त अन्य, राजागण कहीं पर षोडस दान[६३] दे रहे हैं, कहीं पर स्वर्ण दान से विप्रादि का सम्मान कर रहे हैं[६४] और कहीं पर वे पृथ्वी का दान प्रमाणित कर रहे हैं। प्राचीन काल से ही भूमिदान सर्वोच्च पुण्यकारी कृत्य माना गया है।[६५] यही-दान से सूर्य-चन्द्र भी राहु से मुक्ति पाते हैं।[६६] आबू नरेश ने भुजदान[६७] देकर

---

(५२) तैत्तिरीय ब्राह्मण २:२:५

(५३) मनु १०:८६

(५४) शाखायन ब्राह्मण २५:१४

(५५) ऐतरेय ब्राह्मण ३०:६, ३६:६-७

(५६) शतपथ ब्राह्मण २:२:१०:६

(५७) बृहदारण्यकोपनिषद ५:२:३

(५८) छान्दोग्योपनिषद ४:२:४-५

(५९) महाभारत के करीब करीब सभी पर्व, अनुशासन पर्व विशेष रूप से।

(६०) अग्नि पुराण अध्याय २०८-२१५,२१६

(६१) मत्स्यपुराण, अ० ८२-६१, २७४-२८६

(६२) वराह०, अ० ६६-१११

(६३) कहीं षोडसा राय अप्पंति दानं। ४:१०:१३

(६४) कहीं हेम सामान प्रथमी प्रमानं। ४:१०:१४

(६५) दे० वशिष्ट धर्म सूत्र २६:१६, बृहस्पति० ७, विष्णुधर्मोत्तर, मत्स्य-पुराण (अपरार्क,पृ० ३६६-३७०), महाभारत, अनुशासन पर्व,६२-१६)

(६६) चंद सूर गह। बय छुट्ट महिदान। ५:१६:२१३

(६७) उग्रह्ह ग्रहन प्रथीराज रबि सलष अलष भुव दान दियु। ८:३०:६

जैनियों का सतक्षित्त (सप्तक्षेत्र)

अपने स्वामी को मुक्त किया है।[६७] बलिदान[६८] (प्राण देने के अर्थ में) और अघ्यदान[६९] (अर्घ्यदान, उपमान में, देने के अर्थ में) का भी उल्लेख हुआ है। सुल्तान शहाबुद्दीन ने निसुरत खां से कहलाया कि विरागियों[७०] को राजा चंद बन जाने के पूर्व अपनी इच्छानुसार संसार के द्वन्द की दो बातें मुझसे कह ले। जयचंद सत क्षित्त[७१] (सप्त क्षेत्र) का सेवन करता है।

---

(६८) दिअउ दान जव्व पंमार बलि अरि पंगह सम खेल।
८:३१:१
बलि के सम्बन्ध में देखिए :— आश्वलायन गृहसूत्र (१:२:३-११) गोत्रिल गृहसूत्र (१:४:५-११) पारस्कर गृहसूत्र (२:६), आपस्तम्ब धर्म सूत्र (२:२:३-१५ और २:२:४:६), गौतम (५:१०:१५) मनु (३:८७:६३ और ३:१२१), याज्ञवल्क्य (१:१०३), शांखायन गृह्यसूत्र (२:१४), बन पर्व (२:५६) और अपरार्क (पृ० १४५)

(६९) (दासी का पृथ्वीराज को मोती देना ऐसा लग रहा था)
मनहु अघ्ध दुज दान सु अप्पति अंजुलिय। ६:१४:४
अर्घ्य में निम्नलिखित ८ या जितनी संभव हो सकें सामग्रियां डालनी चाहिए :—दही, धान, कुश के ऊपरी भाग, दूर्वा, मधु, यव और सफेद सरसों (मत्स्यपुराण २६७:२, पूजा प्रकाश, पृ० ३४) यह भी कहा गया है कि विष्णु को अर्घ्य देने के लिए शंख में जल के साथ चंदन, पुष्प और अक्षत होने चाहिए।

(७०) वइराग राज वनि थाइ चंदु। दोइ कहहि गल्ह दुनियां सु दंदु।।
१२:१६:३१४

(७१) सत क्षित्त सेव। २:१:२
( ) जैन धर्म के अनुसार जिन मंदिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का सेवन सप्त क्षेत्र कहलाता है।

उपसंहार

उपासना पद्धति में तप,[७२] योग,[७३] यज्ञ,[७४] मंत्र,[७५] दान[७६] और बहु-देव परक भक्ति[७७] प्राचीन परम्परागत पृष्ठभूमि की ही है। सम सामयिक बहु-प्रचलित तन्त्र और देव विशेष परक नवीन भक्ति-धारा का प्रभाव यहां परिलक्षित नहीं होता है। जैन धर्म का सप्तक्षेत्र[७८] मान्य है। किन्तु जैन और बौद्ध परम्परा से प्रभावित मध्यकालीन जीवनदृष्टि को स्पष्ट करने वाली कोई विशेष सामग्री प्रस्तुत ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। ब्राह्मण-धर्म अथवा वैदिक परम्परा का उपबृंहण ही प्रस्तुत रचना से प्राप्त है, अस्तु इस परम्परा से रचनाकार उपोद्वलित है इसकी संभावना व्यक्त की जा सकती है। मुसलमानों के दीन रोजा,[७९] रमजान[७९] और पांच नमाजों[७९] का उल्लेख हुआ है।

---

(७२) दे० टि० सं० ५:१:२:२ से ५

(७३) ,, ५:१:२:६ से १३

(७४) ,, ५:१:२:१४ से ३१

(७५) ,, ५:१:२:३२

(७६) ,, ५:१:२:४५से६६

(७७) ,, ५:१:२:३,३४-४०

(७८) ,, ५:१:२:७१

(७९) दीन रोजा रमजानहि। पंच निवाज ।। ११:२:३१४

अध्याय ५-धर्म और दर्शन

परिच्छेद -१- धर्म (३) धार्मिक आचार विचार

(४२ शब्द ६३ पर्याय सहित धार्मि आचार-विचार के संदर्भ में प्रयुक्त हैं.।)

अनुच्छेद	संदर्भ
१ -	परलोक
२ -	धर्म
३ -	नैतिक गुण
४ -	कुछ साधारण धार्मिक आस्थाएं :— शकुन, स्वप्न, देवी को दक्षिण अंगों से नमस्कार करना, मंगल और मनोरथ करना
५ -	उपसंहार

परलोक

प्रस्तुत काव्य में मनुष्य का लक्ष्य मानव जीवन धारण करना ही नहीं, अपितु इसको कर्म भूमि समझते हुए धर्म [२] से अपने को ऊपर उठा कर मोक्ष[३] की प्राप्ति करना है।

सांसारिक जीवन, समस्त जीवन का गर्भावस्था-काल है। वास्तविक एवं महत्वपूर्ण जीवन का प्रारंभ तो मृत्यु के उपरान्त होता है जिसमें आत्मा का[४] ब्रह्म से मिलन सम्भव है।[४] देवलोक,[५] स्वर्ग,[६] बैकुण्ठ [७] आदि पारलौकिक जीवन पर इस काव्य में अधिक बल प्रदान किया गया है।

धर्म

धर्म का तात्पर्य दिग्पालों की भांति पृथ्वी को[८] धारण कर उसका वहन करना है[८] जिसमें दूसरों के कल्याण[६] की भावना भी सन्निहित है। धर्म का दूसरा अर्थ सत्कर्मों का करना है, क्योंकि जल, तेज, समीर, धरा और आकाश से बना यह शरीर कच्चा है।[१०]

---

(१) मातु गम्भ वास करिवि जंम वासर वसि लहगउ। ३:३२:१

(२) जा जीवन कारगह धर्म पालहि। ३:३१:१

(३) अछिछर वर हर हार। ७:२५:४

(४) मुराति विशालं। ४:११:८

क— अरे नरिंद वा बंध पिंड कच्चउ सुर सच्चउ।
अप्पु तेज समीर धरा आयास ज पंचउ।।
जरा जाल बंधियउ काल आनन महि षिल्लह।
हं तुह तुं तुह अजय जप्पि सरू बरू करि मिल्लह।।
१२:३८:१-४

(५) ८:१४:३, ८:२१:६, ८:२४, ८:३२, ८:३४

(६) ८:१५:१

(७) ८:२४:४

(८) धम्म दिगपाल धर धरनि षंढ। ५:१३:३ (टीका भी)

(१०) ६:३:३२

(६)

मात्र इसमें निवास करने वाला सुर (चेतन जीव) सच्चा है।[१०] मनुष्य के प्राणान्त होने पर इन दोनों का साथ छूट जाता है और इसी देह से किए हुए कर्मों की गठरी लाद कर जीव दूसरे लोक में जाता है[११]। जहां इसे उसका फल मिलता है,[११] और इन्हीं के आधार पर पुनः शरीर धारण करता है।[१२] मनुष्य के कर्म ही जीव को मोक्ष दिला सकते हैं।[१३] इसलिए बुद्धिमान लोग इस नाशवान् शरीर पर ध्यान कम[१४] और मंदिर बनवाना,[१५] प्रतिदिन षोडस दान[१६] देना अथवा स्वामिभक्ति में प्राणोत्सर्ग[१७] करना आदि सत्कर्मों पर अधिक ध्यान देते हैं। यह सत्कर्म पुण्य[१८] का

---

(१०) अप्पु तेज सम्मीर धरा आयास ज पंचह। पिंड कच्चउ सुर सच्चउ।
१२:३८:२-१

(११) १२:३८, ८:१४:३, ८:२१:६, ८:२४, ८:३२, ८:३४, ८:१५:१, ८:२४:४

(१२) क- (कयमास) कहा भुजंग कहा उदे सुर। ३:२३:१
ख- अवतारह जब लगि जीवनउ। ८:३:५
ग- नीअ तनु जंजरि। ४:११:१३

(१३) टि०सं० ५:३:११

(१४) कच तुचा दंत ज रार धीर किम किम उब्बरयउ। ३:३२:४

(१५) करि धम्म देव देवर अनेय। २:१:१३

(१६) षोडसा दान दिनु देहु देव। २:१:१४

(१७) क- एक एक जुझंति। ८:१:३
ख- मंगलवार छह मरन की ते पति सथ्थह तन षंडिअह। ८:५:५
ग- हंह पति पंक अलुभ्भयउ। ८:१४:५
घ- सिर अप्पउं स्वामी कजह। ८:२३:२
ङ०- बौहिथ्थ वीर बाहर तनउ दिल्लिअ पति चढ़ि उचरिग। ८:२६:६
च- पहु न लज्जउ जीवत न गयउ- अपजस न सुनयउ। ८:२८:६
छ- ८:३०, दिअउ दान जब्ब पमार बलि। ८:३१:१
ज- सहहिं भीर न्रिप पीर जिहिं जिन सिर झरहि दुधार।
११:२:१

पर्याय है जिसके बल पर मनुष्य ऊपर उठ कर देवताओं का स्थान भी प्राप्त कर सकता है।[१६] करतार[२०] (ईश्वर) कर्माध्यक्ष है।[२०] यह अच्छे और बुरे कर्मों का निर्णायक और फलदाता है। बुरे कामों (पापों)[२२] के फल का उत्तरदायित्व लोग विधाता को देते हैं।[२२] ईश्वर को यही भाता था` समझकर उस पापी[२२] अभागे के लिए लोग सन्तोष करलेते हैं।[२२] यहां लोग प्रारब्ध वादी हो गए हैं।[२३] लेकिन देवताओं की कृपा से पाप[२४] के कटने का विश्वास है।[२४] पाप के दंड दोजक[२५] से लोग बहुत

---

(१८) पुन ४:११:१४, पुन्य २:१०:६

(१६) दे०टि०सं० ५:३:५-७

(२०) क- सुमन सच्च करतार करु । ११:७:५

ख- बिधना विधान मेटइ कौन ।। १२:४६:५

(२१) क- विधात्रा लिषितं यस्य न तं मुंचंति मानवा: ।

म्लेच्छं मूर्ध हस्ते साहनं ढिल्लीश्वरं ।। ११:१७

ख- (कयमास के लिए) थर छंडि न जाइ अभागरउ गारइ

गहउज्जु गुन षरउ । ३:२७:५

(२३) क- मरनु टरइ नवि रंच्यउ । ३:४१:२

ख- मरन लग्ग विधि हथ्थु । ३:४३:२

ग- पूजिय घरी । ११:१५:२

(२४) क-(गंगा) अघ कृत भगे । ४:११:१५

ख-(गंगा) कलि मल हर भंजन । ४:११:१५

ग- तुम तन सुमन निरष्षि गए पति पाष हम । १०:१७:४

(२५) नहि दोजक परहि । ११:८:६

(२६) नहि दुरोग । ११:८:६

(२७) अमीर २:२०:१, अमृत ५:७:४, ६:२८:२, ६:४:२,

सुधा ५:२४:५, ५:३३:१

अमिय कलस आयास लिअउ अच्छरी उछंगह । ८:२४:३

डरते हैं।[२५] यह भूठ[२६] से उनको दूर करता है। दूसरी ओर पुण्य अमृत[२७] प्रदान कर अमरपुर में पद दिलाता है।[२८] मोक्ष-दायक[२६] पुण्य सभी का अभिलषित है।

नैतिक-गुण

मांगलिक[३०] आचार में नैतिक गुणों की प्रतिष्ठा है जो मोक्ष प्राप्ति में सहायक है। उपनिषद युग में इस प्रकार के संयम प्रधान जीवन व्यतीत करने का आदर्श सुपूजित हो चुका था।[३१] वेद मंत्र में भी इस प्रकार के भाव हैं।[३२] विवेच्य काव्य में यज्ञारंभ के समय जयचंद ने `सुर समि आचार` [३३] (देव तुल्य आचरण) प्रारंभ किया है। पूर्ववर्ती शास्त्रकार मनु ने भी इस तथ्य का समर्थन ` आचार: परमो धर्म:`[३४] कह कर की है नैतिक गुणों में सातुक्क वट्ट [३५] (सत् मार्ग) आता है जो युद्ध में प्राय: लुप्त हो जाता है।

कुछ साधारण धार्मिक आस्थाएं :—

शुभमुहूर्त

शकुन[३७]

जयचंद के राजसूय यज्ञ के लिए शुभ मुहूर्त देव पंचमी[३६] का दिन प्रमाणित किया गया जबकि सूर्य पुष्य[३६] नक्षत्र के योग में और चन्द्र तीसरे[३६] स्थान पर रहेंगे। सामंतों सहित पृथ्वीराज के कन्नौज-प्रयाण-काल में ध्रुव[३८] (उत्तर) की ओर मुख करके सिंह दहाड़ रहा था, मृग[३८] दक्षिण[३८](दाहिनी ओर) भूमि को क्षण-क्षण खुर से खंडित कर रहा था।[३८] और चर[३८] नहीं रहा था

(२५,२६ तथा२७) देखिए पिछले पृष्ठ पर

(२८) दे० टि०सं० ५:१:३-५-७

(२६) अक्खिर वर हर हार धीर धारा ध्याननंद। ७:२५:४

(३०) सह अचार मुख मंगलहि मनहु फिरि करि करइ गउन।
६:४२:२

(३१) तप:श्रद्धे ये उपवसन्त्यरण्ये। पा०भार०, वा०श०अ०, पृ०३७६

(३२) व्रतेन दीक्षा माप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते (अथर्व०) अथवा सत्यं बृहदृत मुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ: पृथिवीं धारयन्ति (अथर्व० १२:१:१

सिर के ऊपर सारस[३८] बोल रहा था और बादलों[३८] के साथ सूर्योदय काल[३८] में तीतर[३८] उड़ रहा था। ये कल[३८] और कराल[३८] दोनों प्रकार के शकुन[३८] हैं। चंद ने इसका फल[३८] बताया है कि एक प्रकार का शकुन योद्धाओं को रण में वीर-गति दिलाकर रवि-मंडल भेदन उपस्थित कराने में समर्थ होगा और दूसरा द्वन्द (सुख-दुख) उपस्थित करेगा।[३८]

स्वप्न

पृथ्वीराज ने स्वप्न में देखा कि एक सुंदरी उनसे (पृथ्वीराज से) आरंभ-परिरंभ करने लगी, उस समय उसका स्वकीय (पति) भी वहां संग में था, जिसका तेज ग्रीष्म के रवि का-सा था। उस पुरुष ने पृथ्वीराज से झगड़ा किया और हाथ पकड़ कर बड़बड़ाने लगा। इस प्रकार वहां एक अदृष्ट अरिष्ट उपस्थित हो गया और दिखाई पड़ा कि वह रोष पूर्वक दांतों को कटकटा रहा है। तदुपरान्त सब कुछ लुप्त हो गया।

---

(३३) २:३:५६

(३४) मनु० १:१०८

(३५) मुक्यं सव्व सात्तुक्क वट्टं। ८:१०:१०

(३६) रवि जोग पुष्य ससि तीय थान।
दिन धरिगु देउ पंचमी प्रमान ।। २:६:११२

(३७) सगुन ४:२:१

(३८) राज सगुन संमुह हुअ ति धुर तन सिंघ दहार।
मृग दक्खिन षिन षिन खुरहि सु चरहि न संभरिवार ।।
सुनत सीस सारस सबद उदय सबद्दल भानं।
परन मंजि प्रतिहार जिह करिहि त कज्ज प्रमानं। ।

४:२:३

(३९) सपनंतरि सुंदरिय लग्गि आरंभ परिरंभह।
तांह तब संग सुकीय तेज अछरिय रवि गिमह।
तिन मिलि के करि झगुरं गहइ कर बर बर जंपहि।
तहां अदिष्ट अरिष्ट द्रिष्ट ता दंतनु चंपहि।

केवल ` हर हर ` का स्वर उत्पन्न होने लगा ।[३६] संयोगिता ने प्रियतम के वचनों को सुनकर राजगुरु और उसके कविगुरु चंद को बुलाकर सब स्वप्न सुनाया और उसके निराकरण के लिए कहा । उन लोगों ने पृथ्वीराज के श्रेष्ठ मस्तक पर हाथ रख कर अभय-पंजर[४०] मंत्र पढ़ कर दिया । सहस्र कलश खीर भर कर रवि-शशि को अर्घ्य दान दिया गया तथा दस हाथी, दस वृष, सदस महिष एवं अनन्त मोती का दान[४०] अपशकुन दूर करने के लिए किया गया ।

देवी को दक्षिण अंगों से नमस्कार करना

पृथ्वीराज ने कन्नौज में सदेह देवी को दक्षिण अंग से नमस्कार[४१] कर नगर का मध्य भाग से विचरण किया ।[४१] कन्नौज-युद्ध की रात्रि में नव विरही ने (पृथ्वीराज-संयोगिता) नव स्नेह के नव जल का रुदन करते हुए परस्पर मिल कर मृदु मंगल[४२] किया और मन में सभी प्रकार के मनोरथ किए ।[४२]

मंगल और मनोरथ करना

(३६ का शेष)

तेह न हुउं न तह अक्कुरिय हर हराह सुर उप्पयउ ।

१० : २८ : १ + ५

(४०) सुनि सुभग्ग प्रिय वचन राजगुरु गुरु कवि बोल्यउ ।

सोइ सपनंतर सुनवि तरुणि तिन अति मुख-खोल्यउ ।

सुवर मथ्थ तिन हथ्थ अभय पंजर पढि दिन्नउ ।

कलस सहस भर खीर अरघ रवि ससि कहुं दिन्नउ ।

दस बारण वृष दान दस महिष ति मोति अनंत दिअ ।

१० : २६ : १ + ५

(४१) दक्षिन अंग करि नमसकारं ।

मध्य ता नयर किंवइ बिचारं ।।

४:२२:११+ १२

(४२) नव विरही नव नैह नव जल नय रुदउह ।

मिलि मृदु मंगल कीन मनोरथ सब्ब मन ।

७:२३:२१४

उपसंहार जीवन को एक साधन मात्र मानकर धर्म-कर्म के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति पर बल दिया गया है। शुभ-मुहूर्त, शकुन और स्वप्नों में विश्वास है।

अध्याय ५

धर्म एवं दर्शन

परिच्छेद २ —— दर्शन

(२१ शब्द ३१ संदर्भों में प्रयुक्त हैं)

अनुच्छेद	संदर्भ
१—	सत्य
२—	भावनात्मक मोक्ष
३—	साधन
४—	माया
५—	उपसंहार

सत्य

जीवन का सत्य

भावात्मक मोक्ष

दर्शन का विवेच्य सत्य है। उसके लिए, इस काव्य में, `जीव लग्गि सत्त न छंडहु`[1] का विचार है। पहले, वेद में, यह सत्य (ऋत) विश्व में सुव्यवस्था, प्रतिष्ठा और नियमन का कारण भूत तत्व रूप है।[2] यहाँ `हं तुह`[3] (मैं तुम हूं।), `तुं तुह`[3] (तुम तुम हो) का सम भाव करके ब्रह्म में मिल जाने में ही सत्य है।[3] `एकमेवाद्वितीयं नेह नानाऽस्ति किंचन,` `वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्` भी इसका समर्थन करता है। यह जीवन का सत्य है। इसका इष्टारंभ[4] मरण से है। इस पर न्याय वैशेषिक और बौद्ध दर्शन के अभावात्मक निर्वाण का प्रभाव परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत काव्य का दर्शन मानसिक और कौतूहल का निराकरण मात्र नहीं है। यह जीन के दु:खों से द्रवीभूत होकर उसके कारण और निराकरण के शोध में अंकुरित है। संसार में जीव को[5] दुखपूर्ण देखा गया है। इसे आधि-व्याधि पूरित विषम दैनिक जीवन से जीव को उठाकर

---

(१) ८:१४:३

(२) ऋ० १:१०५:१५

(३) हं तुह तुं तुह अजप जप्पि सरु वरु करि भिल्लह।

(४) अजुल जुत आवध्य इष्ट आरंभ सत्त वर। ७:३०:३

(५) क- मातु गब्भ वास करिवि जंम वासर वसि लहगउ।

खिन लग्गइ खिन रुदइ मुदइ खिन हसइ अभग्गउ।

वपु विसेस वड्ढिअउ अंत हड्डइ हर हरयउ।

कच तुचा दंत ज रार धीर किम किम उब्बारउ। ३:३२:१-४

ख- जरा जाल बंधियउ काल आनन महि विल्लह। १२:३८:३

भावात्मकमोक्ष

नितांत आदरणीय और स्पृहणीय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा और प्रोत्साहन यह काव्य देता है जहां अमृत[६] है, देवगण[६] हैं और उल्लास[७], हंसना[८], स्वागत[९], धन्य धन्य[१०] जप-तप,[११] और मंगल[१२] है। इसमें केवल मानसिक कौतूहल की निवृति ध्येय नहीं है, वरन् दर्शन का उपयोग व्यावहारिक जगत के तापत्रय— आध्यात्मिक, आधि-भौतिक तथा आधिदैविक—से प्राणी मात्र को मुक्त कराकर मीमांसा,[१३]— वेदांत,[१३] जैन[१३] और महामान बौद्ध[१३] के आनन्द[१३] की भावात्मक अनुभूति से सम्पन्न करा देने मे है।

साधन

मोक्ष के निर्देशित साधनों में समाधि,[१४] न्याय,[१५] सांख्य[१६] दर्शन का योग[१७] और जैन का सम्यक चारित्र्य[१८] सभी मान्य हैं।

---

(६) दे०टि०सं० ५:१:३:४-६

(७) ८:३२:५, (८) ८:३२:६ (९) ८:२४:३-६, (१०) ८:२५,

(११) ८:११:५, (१२) ८:५:४

(१३) भारतीय दर्शन: बलदेव उपाध्याय, पृ० ४६

(१४) दे० टि० सं० ५:१:२:२-५

बौद्ध धर्म ने भी मोक्षोपयोगी त्रिविध साधनों में समाधि विशिष्ट साधन के रूप में स्वीकार किया है। दृष्टव्य दीघ निकाय (हिन्दी अनुवाद) पृ० २८।२६।

(१५) न्याय सूत्र अध्याय ४, आह्निक २, सूत्र ३८-४८

(१६) सांख्य दर्शन में यौगिक प्रक्रियाओं की स्वीकृति स्वत: सिद्ध है। भारतीय दर्शन = बलदेव उपाध्याय, पृ० ४६

(१७) दे० टि०सं० ५:१:२:६-१३

(१८) तत्वार्थ सूत्र ९:३६:४६

(१९) दे०टि०सं० ५:१:३:३३-३५

किंतु इनमें मांगलिक[२०] कर्म पर अधिक बल दिया गया है[२०]। इसमें असफलता और निराशा नहीं है। अगर कर्म-फल पूर्ण परमपद तक नहीं पहुंचा पाता तो पुनर्जन्म[२१] में पुनश्च सत्कर्म करके परम लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। जगत की नैतिक सुव्यवस्था का मूल कारण है कर्म का सिद्धान्त, जिसे प्रत्येक दर्शन स्वीकार करता है।[२२] जो कुछ काम हम अपने प्रयत्न से करते हैं, उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है, उसका नाश कथमपि नहीं होता (कृत प्रणाश) और जिस फल को हम इस समय भोग रहे हैं वह पूर्व जन्म में किए गए कर्मों का ही परिणाम है - बिना कारण उद्भूत होने वाला नहीं है (कृताभ्युपगम)। कर्म सिद्धान्त का यही तात्पर्य- कि विश्व में यदृच्छा के लिए कोई स्थान नहीं, सर्वत्र नैतिक सुव्यवस्था का साम्राज्य विराजमान है। कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करने से मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के विकास के लिए पर्याप्त अवसर मिलता है।[२२]उपनिषद के तत्व ज्ञान,योग,न्याय, वेद के कर्मकांड, मीमांसा और सुधारक जैन एवं बौद्ध धर्मों के आचार-मार्ग से भी सरल,सुबोध गम्य युद्ध-स्थल में वीरगति[२३]प्राप्ति से अविलम्ब मोक्ष पाने का ढंग इस काव्य द्वारा बतलाया गया है, जिसकी उपयोगिता नि:संदिग्ध है। इसे तात्कालीन रणशूरों के समझा और सहर्ष स्वीकार कर जीवन में इसे

---

(२०) दे०टि०सं० ५:१:३, ३०-३५

(२१) ,, ३:१:३-१२

(२२) ए हिस्ट्री ऑव इंडियन फिलासफी, भाग१, एस०एन०दास गुप्ता, पृ० ७१

(२२क) पुण्यो वै पुण्येन कर्मणाभवति पाप पापेनेति। बृह०उप० ३:२:१३

(२२ख) योनि मन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिन:
स्थाणुमन्ये नुसंयंति यथा कर्म यथा श्रुतम ।। कठ०उप० २:५:७

(२२ग) और वेद मूलक दर्शनों के समान जैन और बौद्ध दर्शनों ने इस सिद्धान्त को वहीं से ग्रहण किया। भारतीय दर्शन= बल-

व्यवहृत किया ।

माया

योग सूत्रों के अनुसार अनित्य, अशुचि, दु:ख और अनात्म को क्रमश: नित्य, शुचि, सुख और आत्मा मान बैठना माया[२४] और समस्तदुखों का कारण रूप है । समझदार लोग, इस काव्य में भी, पिंड [२५](शरीर) को कच्चा,[२५] धन[२६] को पाषंड[२६] और विश्व[२७] को प्रपंच[२७] मानते हैं । केवल सुर [२८](आत्मा) को सच्चा कहा है ।[२८] जो द्वन्द्वात्मक[२९] संसार, भ्रमपूर्ण जीवन[३०] और इस माया[३१] को मरण[३२] के सम्मुख तृनवत्[३२] जानकर[३२] उसका (मरणका) स्वागत[३३] करेगा, वही, मंगल[३४] के द्वार[३४] में प्रवेश कर ज्योति[३५] (जीव) द्वारा ज्योति (परमात्मा) को सम्प्रात होगा ।[३५] विज्ञान और राग का यही शासन सूत्र है ।[३६]

(२२शेष) देव उपाध्याय पृ०४४

(२३) अध्याय ७,८ और ११

(२४) अनित्याशुचिदु:खनात्मसु नित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या ।
योग सूत्र २:४

(२५) क—दे०टि०सं० ५:१:३:४क
ख— सपत धात धरिआर धन पंच धत्त द्रनि जांन । १२:४३:१
ग— जिहि गुन प्रकटत पिंड किय तिहि संघरि गए सूर ।८:३६:२
घ— जंतु जंतु (जंतु- जीव) एक दिन चला जाता है। जंतु (या से = जाता है या यो`जाने वाला`
ङ०—सुक्कि सरोवर हंस गउ सुकिलि उडउ अंधार भउ । ३:३१:६
च— अन्य प्राणी थवा प्राणी । २:२५:२
छ— भिदइ न तेह सुष दुष्ष मन मृतक वरांगना नेह । १२:१६:२

(२६)पाषंड धन । १२:७:६

(२७) पंच (पांच= विधाता) प्रपंच । ११:५:१

(२८) दे०टि०सं० ५:१:३-४क

(२९) दुनिया सु दंदु । १२:१६:४

(३०) भ्रम भवन जीवन । १०:११:३१

(३१) क- रचे मोह कह । १:३:१८

उपसंहार

विवेच्य काव्य के जीवन-दर्शन में नैराश्य की छाप नहीं है ।[३७] जीवन दुखों ने सत्य के प्रति घनिष्ट आस्था उत्पन्न कर दी है ।[३८] दुःख का मूल कारण मोह[३९] उपेक्षित है ।[३९] सत्य प्राप्ति के परम्परागत समस्त स्रोतों को अपनाते हुए सुकर्म विशेषतः रणस्थल में वीरगति पाने को सर्वोपरि मान्यता दी गई हैं ।[४०] कर्म बंधन के परम लक्ष्य मोक्ष का भावात्मक स्वरूप अधिक श्रेयस्कर है ।[४१] कोई भी दार्शनिक विचार-धारा उपेक्षणीय नहीं है ।

(३१ शेष) ख- तजि पुत्र मित्रत्र माया सकल । १२:१:६

ग- मोह अलुभ्यउ जानि के चित्त चरचउ रणधीर । १२:३६:२

घ- छंडहु सु लोभ जिम जंभु कहु । १२:४०:५

(३२) धन त्रिय मरण त्रिनि बरि जानइ । १०:५:३

(३३) मरण दीजइ — हसहि छत्र करि पइठ्ठउ ।

मीच लग्ग निम पायि कहइ आइ धरि बइठ्ठउ । ८:६

(३४) मंगल वार है मरण की । ८:५:५

(३५) तिनहि तिनहि संजोति जोति जोति जोतिहि संपत्तिग । १२:४६:४

(३६) विनान राग सासिका । ४:१४:२५

(३७) दे०टि०सं० ५:२:२ ०-२३

(३८) ,, ५:२:१, ५-१२

(३९) ,, ५:२:२४-३३

(४०) ,, ५:२:१४-२३

(४१) ,, ५:२:५-१३

प्रस्तुत काव्य में हिन्दू और इस्लाम दो धर्मों का वर्णन हुआ है। यवन[२] का भी नामोल्लेख है। इस्लाम का दीन रोजा,[३] रमजान,[३] पांच नमाज[३] और पीर[३] उल्लखित है। हिन्दू बहुदेवोपासक हैं। इन देवों की आकाश स्थिति भिन्न-योनियां[४] और लोक बन गए हैं। ये देहधारी[५] हैं। इनका अपना अधिपति[५], इन्द्र है। ये पृथ्वीर पर मंदिरों[५] में मूर्ति रूप में पूजित हैं। इनकी इच्छा मानव की समझ से परे[५] हैं और वे सर्व शक्तिमान हैं।[५] ये स्वयं शुभ संग्रही और मानव को मांगलिक कार्यों के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहते हैं। उनकी पूजा प्रधानत: रक्षा और कार्य सम्पन्नता हेतु भक्तों में प्रचलित है।[५] अतिरंजित वर्णन में उपमान के रूप में देवताओं का उल्लेख कवि का सहायक सम्भार है।[५] इनमें दानवों[६क] की भी एक कोटि है जिनके गुणों को अपनाने की प्रवृति स्पष्ट परिलक्षित है।[६] पारस्परिक अवमानना की भावना स्पष्ट नहीं है।[६] रणशूर मनुष्य के प्रति देवलोक में सम्मान की भावना व्याप्त है। उनके स्वागत हेतु देव गण बहु-प्रतीक्षित हैं।[७] रण में प्राणोत्सर्ग द्वारा अविलम्ब स्वर्ग जाने का सर्व सुलभ मार्ग, इस काव्य काल में मान्यता प्राप्त कर लिया है।[७] परम्परागत मोक्ष के साधनों में तप, यज्ञ, योग एवं सम्यक चारित्र्य सभी मान्य हैं,[८] किन्तु रण में प्राणोत्सर्ग को युग ने

---

(१) दे० टि० सं० ५:१:१:क२-क५

(२) ,, ५:१:१:क६

(३) ,, ५:१:२:७६, पृ०रा० १४:४:२

(४) ,, ५:१:१:१-६०

(५) ,, ५:१:१:१-६८

(६) ,, ५:१:१:६२-१००

(७) ,, दे० रणशूरता का अध्याय (राजनैतिक परिस्थिति में)

(८) ,, ५:२:१४:१६

प्राथमिकता दी है ।[७] स्वर्ग में रणशूरों के लिए रिक्त स्थान होने [७] तथा पाप-पुण्य[६], पुनर्जन्म[१०] तथा पुरुषार्थ[११] के द्वारा कर्म को अनिवार्यता और महानता मिली है । काव्य में यद्यपि सम सामयिक बहु-चर्चित बौद्ध , जैन, वैष्णाव, शैव , शाक्त,गोरखपंथी धार्मिक सम्प्रदाय तथा षड् दर्शनों का नामोल्लेख नहीं है, किन्तु उनके मूल्यों के प्रति आस्था और उन्हें अंगीकृत करने की भावना प्रतिबिंबित है ।[१२] अन्ध-विश्वासों [१३] से धर्म संकुचित नहीं हुआ है[१३]। धार्मिक क्षेत्र में दूसरों की अवमानना न कर उसके मूल्यों को ग्रहण करने की भावना,[१४] कर्म की प्रधानता[१५] तथा जीव लग्गि सत्य न छंडहु,[१६] की प्रवृत्ति ने धर्म को भावी संकट से बचा लिया है । परवर्ती कबीर और तुलसी में विकसित धार्मिक मान्यताओं की परिधि में इसका महत्व पृष्ट भूमि रूप में है ।

---

(६) दे० टि० सं०५:१:३:१८-२६
(१०) ,, ५:१:३:१२
(११) ,, ५:१:३:४३-४६
(१२) ,, ५:१:१:६६-१००, ५:१:२, ५:२
(१३) ,, ५:१:३:३६-४२
(१४) ,, ५:सिंहावलोकन:१२
(१५) ,, ५:१:३:८-३५
(१६) ,, ५:२:१

अध्याय ६ कला

(प्रयुक्त शब्द संख्या १०६)

अनुच्छेद	—	संदर्भ
१	—	कला
२	—	ललित कलाएं
३	—	काव्य, कवि
४	—	कवि परीक्षा, काव्यांग
५	—	भाषा
६	—	नृत्य-संगीत, पारस्परिक पूरक रूप में
७	—	उड़ीसा और दक्षिण के नृत्य
८	—	नृत्य परम्परा में शिव और नारद
९	—	नृत्य में भाव और रस, आभरण
१०	—	संगीत सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली
११	—	कलाओं का एकीकरण
१२	—	उपसंहार

कला[१]

भारतीय परम्परा के अनुसार कला का तात्पर्य कौशल अपेक्षित क्रिया से ग्रहण किया गया है।[२] कला में कौशल का महत्वपूर्ण स्थान यूरोपीय कला-शास्त्रियों ने भी दिया है।[३] काम के विभिन्न रूप एवं मान्यताओं का विशद विवेचन करने वाला प्राचीनतम ग्रन्थ संभवत: वात्स्यायन का `कामसूत्र` है। परवर्ती वांगमय पर कलात्मक मान्यताओं की दृष्टि से इस ग्रन्थ का अप्रतिम प्रभाव रहा है और कलात्मक सम्भारों के ग्रहण की दृष्टि से यह आकर ग्रन्थ तुल्य रहा है। कला के रूप प्रतिपादन में शास्त्रीय ग्रन्थों ने इसी की पृष्ठ भूमि को ग्रहण किया है। प्रस्तुत काव्य में `कामसूत्र` द्वारा वर्णित ६४ कलाओं में से (१) गायन[४] (२) वादन,[५] (३) नर्तन,[६] (४) नाट्य[७] (५) अंगरागदिलेपन,[८] (६) पच्चीकारी,[९] (७) शयन रचना,[१०] (८) रूप बनाना,[११] (९) माला गूंथना,[१२] (१०) मुकुट बनाना,[१३] (११) वेश बदलना,[१४] (१२) कर्णाभूषण बनाना,[१५] (१३) सुगंधित द्रव्य बनाना,[१६]

---

(१) कला के लिए `सिष्ष`(५:३८:१२) भी प्रयुक्त हुआ है।

(२) वही

(३) वही

(४) २:५:६, ४:२३:१६

(५) ५:३३:४०

(६) वही, ४:२३:२१,२२, ४:१०:१०

(७) नाटक। १:६:१

(८) १२:१६:१ (अगर धूप दिअ देह)

(९) मुचि जराव। जु कहुहहि कोर। ४:२५:१३+१४,४:२५:१६

(१०) ४:२५:१५:१६, उद्धत कबीर सेभ्या समाइव। ४:२३:१५

(११) हाटक पट धनु धातु सहि तुअ तुअ दिक्खयह संवार। ४:२४:२

(१२) बेलु रु सेवंतीय गूठिहि जाय। ४:२५:७

(१३) दे० आभूषण के संदर्भ में

(१४) पृथ्वीराज का थवाइत (अध्याय ५) चंद का योगी बनना ((अध्याय १२)

(१४) आभूषण धारण,[१७] (१५) नाटक प्रस्तुत करना[१८] (१६) रत्न परीक्षा,[२०] (१७) बाग़वानी,[२१] (१८) ~~बागबानी~~, (१९) मालिश करना,[२२] (२०) केश-मार्जन-कौशल,[२३] (२१) भविष्य कथन,[२४] (२२) आशु काव्य,[२५] (२३) धोबा धड़ी,[२६] (२४) द्यूत विद्या,[२७] और (२५) शिष्टाचार[२८] इत्यादि कला सम्बन्धी कार्य उपलब्ध हैं। `शुक्रनीति` में वात्सायन के `कामसूत्र` में वर्णित विविध कलाओं का समाहार है किंतु यह प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने `कामसूत्र` की परम्परागत पृष्ठभूमि में कुछ नवीन कलात्मक सम्भारों की ओर हमारी दृष्टि आकृष्ट करनी चाही है। `शुक्रनीति` में वर्णित कुछ अभिनव कला रूपों से उसकी सामयिक उपादेयता सिद्ध होती है और यह प्रतीत होता है कि युग के संदर्भ में महत्वप्राप्त सामग्री की लोकप्रियता को देखकर ही उन्होंने स्वत: इसकी शास्त्रीय मान्यता प्रतिष्ठित करनी चाही है।

---

(१५) जराउ जरंति कनक्क कसंति। ४:२५:१८

(१६) अगर धुप १२:१६:१, सुगंध रही लपटाइ। ४:२५:१६, ६:५:१

(१७) कसिक्कसि हेम:वि:कढ्ढ्इ तार। कंकण। ४:२५:२१-२६
देखिए आभूषण प्रसंग।

(१८) नाटक १२:६:१

(२०) दु अंगुलि नारि निरक्खहि हीर। नषन्नष चाह ति युत्तिअ अंस।
४:२५:३१+३१

(२१) ४:२५:५+६, ६:५:६

(२२) अंगना अंग संउं चंदनु लावइ। ६:२७:१, १२:७:६

(२३) ४:१५:१

(२४) एक रविमंडल भेदहि एतति करिसह दंदु। ४:४:२

(२५) ५:६:१३

(२६) पृथ्वीराज का थवागन और चंद का योगी बनना।.

(२७) ४:२३:४-८, दे० मनोरंजन के संदर्भ में

(२८) दे० शिष्टाचार के संदर्भ में

'शुक्रनीति' के अनुसार (१) वस्त्रसज्जा,[२६] (२) सासन रति ज्ञान,[३०] (३) शस्त्र-संचालन,[३१] (४) कुश्ती,[३२] (५) लक्ष्यभेद,[३३] (६)गजादि द्वारा युद्ध कर्म [३४](७) विविध मुद्राओं द्वारा देव पूजन,[३५] (८) रंगसाजी,[३६] (६) सेवा कार्य,[३७] (१०) तांबूल रक्षण,[३८] (११) कला मर्मज्ञता[३६] और (१२) नट कर्म [४०] (१३) साधने की क्रिया[४१] और ~~(१३) साधने की क्रिया~~ आदि कलाओं के काम मिल जाते हैं। अनुराग-पूर्ण वृत्त में परिरंभ[४१:४] के शासन रति ज्ञान कला पर इस काव्य ने अत्यधिक बल दिया है। सम्भवत: इसका कारण ऐहिक सुखोंपभोग की स्थिति-विशेष है। उल्लिखित है कि — यह अपूर्व सुंदरि-रस-रास-विलास,[४१:५] खनि-सेवन[४१:६] से होता है जो स्मर का स्वर्गीय भोग है,[४१:७] गंगा-सेवन,[४१:८] के सदृश्य है ।

---

(२६) फट तुछ तुछ दिष्षियइ संवार । ४:२४:२, ४:२५:१७,४:१४:१३

(३०) ५:४०

(३१) अध्याय ७,८? ११

(३२) कहों माल भूअदंड ते सरोह साधइ । ४:१०:५

(३३) हदफ साह षेलन चढउ । १२:१२:१, अध्याय १२ पृथ्वीराज का लक्ष्य भेद ।

(३४) अध्याय ७,८,११

(३५) ४:१०:६-१६

(३६) कुसंभी ४:२३:१७

(३७) सेव ४:१०:८, ३:३६:१

(३८) ५:२१, ५:४८

(३६) ५:४, सुन व्याकरन कहि रस बचे ५:५:२, ५:६-१३

(४०) १२:६:१

(४१) कहों माल भूअदंड ते सरोह साधइ । ४:१०:५

(४१:४) सपनंतरि सुंदरिय लग्गि आरंभ परिरंभह । १०:२८:१

(४१:५) तिह अपुव्व रस रास विलास ति सुंदरिय । १०:१५:३

(४१:६) (जयचंद) मिसि वज्जहि गंगह खनि दान कव्वि पति सेइ ।५:४३:१

सुंदर मुक्ति की वल्ली, गंगा की भांति, अनंग-रंग, [४१:९] (काम क्रीड़ा) की त्रिवल्ली है।

काम-कला संपादन - विधि

(रति-) सुख में (संगीत-) सुख का,(कामिनी के) जघनों (नितंबों) में मृदंग के ताल का, कोक कला में राग कला का, (कामिनी के) कंठ में (गायिकाओं के) कंठ का, (कामिनी के)सुभाषण में (गायिकाओं के)सुभाषण का, काम-कला में (संगीत-) कला का पोषण कर पुन: (कामिनी के) उर से (पीर-) रंभण करते हुए, हरि और हर के गुणों से, सुख पूर्वक काम-कुंभों (कुचों) को ग्रहण कर नि:श्वास-सुरभि को (देवार्पित सुरभि के समान) पवनार्पित कर रंभण होता है।[४१:१०]

काम-कला उन्मेष के साधन

अलक्ष्य और लक्ष्य लक्षणों तथा नयन, वचन और आभूषणों से नितंबिनी, काम सुख का (उन-) मेष पुरुषों में करती हैं।[४१:११] पाणि-स्पर्श और दृष्टि-लगने से भी कामाग्नि जाग उठती है।[४१:१२]

श्रेष्ठ और उपयुक्त पुरुष के देखने और बुलाने से निकट आने पर तड़पन[१३] और मूक स्वीकृति का चिह्न लज्जा[४१:१३] (न बोलने) का आविर्भाव रमणी में पाया जाता है। स्वेद, कंप[१४ ४१:१४]

(४१:७) समर सुरप्पुर भोग। १०:१२:१

(४१:८) दे० अ०टि० सं० ६

(४१:९) मुगति सुकल वल्ली नंग रंग त्रिवल्ली। ४:१२:४

(४१:१०) सुख्खं सुख्ख मृदंग तार जघनो राग कला कोकनं। (१)

(कंठी कंठ सुभासनं समझतं कामं कला पोषनं। (२)

उर भी रंभ किता गुणा हरि हरो सुरभीय पवनापिता।(३).

एवं सुष्ष सकाम कुंभ गहिता। ५:४०:१+२+३+४

(४१:११) अलक्ष लक्ष लक्षने नयन वयन्न भूषने।

नरे नरे नरिंद मां स मेस काम सुष्षने। ५:३८:२५+२६

(४१:१२) पानि परसि अरु दीठ विलग्गिय।

सा सुंदरि कामाग्नि जग्गिय। ६:२५:१+२

काम-कला की अवस्थायें और परिणाम

और स्वर-भंग होते हैं। कामाग्नि-प्रज्वलन-काल में मिष्ठवर्ग के अभाव में क्षण भर के लिए पलंग[४१:१५] पर जाना, मन को छोटा[४१:१५] कर लेना और शरीर[४१:१५] की वही गति हो जाना होता है।[१५] जो श्रेष्ठ जल के न शेष रहने पर मछली के शरीर की होती है।[:१५] सुमति[४१:१६] नष्ट हो जाती है।[:१६] शरीर मूर्च्छित[४१:१७] और अलक्ष्य हो जाता है।[:१७] सुसार (शक्ति),[४१:१८] रात दिन,[:१८] असार,[:१८] रात दिन,[:१८] विस्मृत[:१८] और स्वजन विपरीत हो जाते हैं।[:१८] फिर भी काम-क्रीड़ा[४१:१९] के खेलाड़ी एक दूसरे की पूजा करते हैं।[४१:१९]

काम-कला की प्रमुख क्रीड़ा-स्थली

कामिनी के जंघे,[४१:२०] कंठ, उर और काम-कुंभ[:२०] (कुच) परिरंभण के प्रमुख सहायक स्थान हैं।[४१:२०] एक पहर

समय

रात्रि समाप्त होने के बाद से प्रारंभ होकर रात के अंतिम प्रहर तक का समय परिरंभण के लिए उपयुक्त है।[४१:२१] अवैध काम-केलि[४१:२२]

(४१:१३) निरष्षि नयन हेरि वचन ता नृपति चाह्यिं।
तरप्पि दासि पासि पंक(पक्व)संकियं न वाह्यिं।
६:१५:५+६

(४१:१४) सुनि रव सुंदरि उम्भ तन स्वेद कंप सुर भंग। ६:११:१

(४१:१५) थिनु तनु तलप अलप मन किन्नउ।
जंउ बस्त बारि गए तनु मीनउ। ६:२५:३+४

(४१:१६) जुब जन जुवती गंजि सुमति अनंग भय। ७:२२:३

(४१:१७) रति पति मुच्छि अलुष्षि तन। ३:१०:१

(४१:१८) इहि विधि विलसि विलास असार सुसार किअ। (१)
अहनिसि सुध्धि न जानहि मानमि प्रौढ रति। (३)
सुरू बांधव भुत लोइ भई विपरीत गति (४)
६:८:१+३+४

(४१:१९) मनउ अनंग रंग बस्य रंभ इंदपुज्जयी। ६:१५:२

(४१:२०) दे०अ०टि०सं० १०

का समय उस वक्त है जब अंधकार के कारण आंखे और हाथ न संचरण कर पा रहे हों।[४१:२२] हरि और हर[४१:२३] पुरुष वर्ग में तथा षोडस वर्षीया[४१:२४] नितंबिनी, दीपक की लौ जैसी अंग-वाली सुंदरियां[४१:२५] काम-कला के आदर्श कलाकार हैं।

आदर्श काम-कलाकार

भवन में शालिकाएं[४१:२६] हों। उनमें पलगें[४१:२७] बिछी हों। दीपक[४१:२८] जलते हों। गवाक्षों के मुखों में अगुरु-धूम,[४१:२९] उन्नमित मेघ-सा हो।[:२९] दम्पत्ति के मन को विशोक करने के लिए मुकुरों में चन्द्रमा की मयूखों,[४१:३०] का अमृत झड़ता हो। वाद्य,[४१:३१] बजते हो, संभाषणा-[४१:३२] गान[४१:३३] नृत्य,[४१:३४] होते हों। मोर[४१:३५] और मराल[:३५] नृत्य करते और मत्त-ध्वनि

काम-कला की सहायक-सामग्री

(४१:२१) जाम एक क्षनदा घटित ससिहु सचि निवारि।
कहुं कामिनि सुख रति समर नृपतिहु नींद विसारि।
५:३६:१+२

(४१:२२) पानि न अंषि न संचरइ महलु कहल क्ष्यमास। ३:६:२

(४१:२३) दे०अ०टि०सं० १० की तीसरी पंक्ति

(४१:२४) षोडस वरष ५:२३:१

(४१:२५) दीपकांगी ५:३६:१

(४१:२६) सालक ६:६:३

(४१:२७) प्रजंक ६:६:३

(४१:२८) दिपति दीप दिब गउष उच्चयउ मेघ जनु। ६:५:१

(४१:२९) अगर धूम मुख गउष उच्चयउ मेघ जनु। ६:५:१

(४१:३०) मुकुल मउष अमृत झरहि करहि जु मनहि असोक। ६:४:२

(४१:३१) नवनूपुर नारि धन। ६:६:२

(४१:३१) तहं तहं अथिय सुवीन। ६:६:४
दे०अ०टि०सं० १०
के जुव जुथ जि वाद। ६:७:१

में शब्द करते हों।[४१:३५] सारंग[४१:३६] (चातक) और सारिका[:३६] क्रीड़ा करते तथा पक्षी गण,[:३६] आनन्द पूर्वक चहकते हों।[:३६] युवती-यूथ अपनी मंद गति से प्रमादित[४१:३७] करती, अपने हिलते हुए अंचल के वायु से शब्द-रति [४१:३८] (ध्वनि-प्रेम) का निरूपण करती, तथा मनोरंजन,[४१:३६] (?) करती हों।

कामकला की मान्यता

जयचंद ने बताया कि धर्म का तत्वपूर्ण मंत्र यही है कि चरित्र काम में रत हो, अत: उस काम के अविरोध के लिए मैंने नित्य निर्तबिनी नर्तकियों के नृत्य का विधान किया है।

पृथ्वीराज रासो में कतिपय ऐसी कला सम्बन्धी सामग्री का उल्लेख है जिसके द्वारा युग की विकसित कलात्मक रुचि का परिचय प्राप्त होता है और यह प्रतीत होता है कि सम्भारों ने लगभग तात्कालीन समाज में कुछ विशिष्ट उपयोगिता प्राप्त कर ली है जिसके प्रति अपनी गहरी आस्था को व्यक्त करते हुए ग्रन्थकार ने उसको व्यावहारिक रूप में अनायास ग्रहण कर लिया है। यह सम्भाव्य है कि तात्कालीन सक्रिय एवं विकसित कला सामग्री ने उसको प्रयोग की शास्त्रीय प्रेरणा दी है। ये हैं :—— प्रमादित करना, [४२]

(४१:३२) के वर माष पराकृति संकृति देव सुर। ६:७:३
दे० अ० टि० सं० १०

(४१:३३) दे० अ० टि० सं० १०

(४१:३४) ,, १०

(४१:३५) त मोर मराल निरत्तहि रम्नहि मच धुन। ६:५:२

(४१:३६) सारंग सारिम रंग पहक्क ति पंषि रसि। ६:५:३

(४१:३७) के जुव जूथ जि वाद प्रमादहि मंद गति। ६:७:१

(४१:३८) के चल अंचल वायु निरूपहि सद्द रति। ६:७:२

(४१:३८) शब्द रति का अर्थ है काम शक्ति से रिक्त, अतएव तत्संबंधी चर्चा से ही काम चलाने वाला। वर्णरत्नाकर: अनु० श्रीमोतीचन्द्र, पृ० २७४

(४१:३६) के जुव जूथ विराजहि। (टीका०) युवती यूथ मनोरंजन

शब्द रति करना,[४२] संभाषण करना,[४२] मनोरंजन करना,[४२] अप्रचलित शिष्ट भाषाओं का ज्ञान,[४२] अदृश्य वर्णन[४३] कविता करना,[४४] पुरुषों को कह कर उनका मर्म [४५] बता देना, और कथा कहना[४६] आदि।

आधुनिक कलाओं के अर्थ रूप में भी स्थापत्य,[४८] मूर्ति,[४६] नृत्य,[५०] संगीत[५१] तथा काव्य[५२] कला विवेच्य ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। काव्य-कला सर्वोच्च है। काव्य-वार्ता [५३] सुनने के लिए देवता गण भी श्रवण लगा कर उत्सुक हैं।[५२] इससे गंगा का प्रवाह शिथिल हो जाता है [५४] मनुष्य के लिए तो यह काव्य-वार्ता मानों भूखे को शक्कर और

(४१:४०) तत्त धर धरम्मह मंतु यह रत्तह काम सु वित्तु।
ता काम विरुद्ध न विधि किअउ नित्त निर्तंकिनी नृत्तु।
५:३५:१+२

(४२) के जुव जुथ जि बाद प्रमादहि मंद गति।
के चल अंचल बापु निरूपहिं संद बति।
के वर भाष पराकृति संक्रृति देवसुर।
के गुन ग्यान सुजान विराजहि राज वर।। ६७

(४३) अदिष्ठ बरनउ। ५:६:४, ५:१०-१३

(४४) कुल कवित्त जानउ। १२:८:४

(४५) पुरषिन कहि अंषिय। ५:२५:३

(४६) कथिक सथ्थ कथ्थहिं कथा। ५:३२:२

(४८) क- सुभ हरम्य मंडिग न्रिपति। ६:४:१
ख- तब भुकिल राव गंगह तट त रचि पचि उच्च आवास।
२:२७:१

(४६) सोवन्न प्रतिमा प्रथीराज बानं। थापउ जे पोलि जिमि बख्खान।।
२६३:५१+५२

(५०) दे०टि०सं० ६:६

(५१) ,, ६:५:४

(५२) ,, २:१:१०, ५:४३:१, १:६:४, १:५:१

दूध तुल्य है।[५५] कन्नौज राज जयचंद की सब से बड़ी महत्वाकांक्षा काव्य-यश[५६] की प्राप्ति थी। यह अपने काल में कव्वि पति[५७] के नाम से प्रसिद्ध भी था।[५७] ग्रन्थकार के अनुसार काव्य[५८] के द्वारा दिल्ली में भासित होने के लिए ही पृथ्वीराज का जन्म हुआ था।

काव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ में वेद,[५९] पुराण,[६०] भारथी (महाभारत) नैषध्ध,[६०क] सुकथ्य[६२] (पंचाख्यान), विजय[६३] (पृथ्वीराज विजय) और पृथ्वीराज काव्य[६४]

कवि

सुक्कदेव,[६८] नल,[६६] कालिदास,[७०] दंडमाली,[७१] (दंडी) पिंगल[७२] और भारत[७२] वंदनीय कवि हैं।

---

(५३) सुर नर श्रवन मंहि रहि वत्ती। ५:५:४

(५४) थकि प्रवाह बचन मुख मत्ती। ५:५:३

(५५) गुन उच्चार चारु तिनि किन्नउ। जानुं भुष्षइ साकर पय लिन्नउ।
५:६:३+४

(५६) अब करहि जग्गु जु लेहि कव्व। २:१:१०

(५७) कव्वि पति। ५:४३:१

(५८) जान कविना ढिल्लीपुरं भासिनं। १:६:४

(५९) (जयचंद के यहां पृथ्वीराज के भय से) थकि बंद विप्प। २:१०:५

(६०) (जयचंद ने) सुद्धिग पुराण वलि वंश वीर। २:१:५(६०क)
१:४:१०

(६१) त्रिती भारती ब्यास भारथ्थ भाख्यौ। १:४:५

(६२) पांच संख्या के लिए `सुकथ` का प्रयोग ८:३५:५

(६३) कहि कबि विजय साह जिह डंडिय। ३:१६:२

(६४) सोयं पातु गणेश सेस सफलं प्रिथिराज काव्ये हितं। १:१:४

(६५) प्रथम्मं भुजंगी सुधारी ग्रहन्नं। जिनै नाम एकं अनेकं कहन्नं। १:४:१+२

(६६) दुती लम्भयं देवता जीववं सं जिनै विस्व राख्यां बल मंत्र सेस।
१:४:३+४

(६७) दे ऊपर की टि० सं० ६१

(६८) चवं सुक्क देवं परिष्षत पायं। जिनै उद्धरे सव्व कुल कंरायं।
१:४:७+८

कवि-परीक्षा

काव्य निर्माण काल में सम्भवत: आज कल की भांति, कवियों के आश्रयदाता द्वारा कवि कर्म की अत्यधिक प्रतिष्ठा होने के कारण[७३] कवियों की बाढ़ सी आ गई होगी, इसलिए राजाओं ने कवियों की परीक्षा और उसकी श्रेणी-विभाजन की आयोजना की है। इस परम्परा में कवियों द्वारा अंगीकृत[७४] होने के लिए काव्योच्चारण[७५] एवं अदृश्य वर्णन[७६] के माध्यम से डिंभ[७७] (बाल कवि) अथवा परमानी[७७] कवि होने की परीक्षा कन्नौज में कवि चंद ने दी है। जिसको देव, धरा, जल, धन और वायु भी न जान सके[७८] उसको (कयमास-कांड का रहस्योद्घाटन) करके कवि चंद ने पृथ्वीराज के यहां सच्चे कवि होने का प्रमाण प्राप्त किया। [७९]

काव्यांग

इसी कारण से काव्य के भेद[८०], गुण,[८०] व्याकरण[८०] रस,[८०] छंद,[८०](गण,[८०] गुरु[८०] और यति[८०] आदि)तथा भावों[८०] का ज्ञान[८०] रखना अत्यावश्यक हो गया है।[८०] इस समय कवियों की उक्ति[८१] और

---

(६६) नले रुब पंचम्म श्री हर्ष सारं। नलै राय कंठं दिय नैषध्ध हारं
१:४:६+१०

(७०) छठं कालिदास छ भासा समुद्दं। नियं सेतु बंधं सु भोज प्रबंधं। १:४:१३+४

(७१) संत दंड माली सु लालीय कवित्तं। जिने बुद्धि तारंग सु गंगा सरित्तं।
१:४:१३:१४

(७२) (चंद की अभिलाषा कि पृथ्वीराज काव्य)
मंडित छंडिहउं पिंगल भरह भरथ्थ।। १:५:२

(७३) दे० ऊपर टि० सं० ५२-५८-७२

(७४) कवि अग्गहि अंगीक्रित हीनउ। हेम विना जिम भयउ नग दीनउ।।
५:८:३+४

(७५) सरसइ बरु उच्चारहु जानी। ५:४:३

(७६) तउ अदिट्ठ बरनउ नृप संवउ। ५:६:४

(७७) किधउं डिंभ कवि कवि परमानी। ५:४:३

(७८) देव धर ह्जल धन अनिल कहिय चंद कवि प्राति। ३:१३:२

(७९) कह कयमास बताहि मो कह कर सिद्धी धर छंडि।
निकम्मु कब्व कवि चंडि। ३:२३:२+१

कल्पना की बड़ी प्रतिष्ठा है ।

कन्नौज । कवि गोष्ठी में सरस्वती के प्रशस्ति-संदर्भ में कहा गया है कि उसने (सरस्वती ने) अमृत तुल्य छ: [८३] भाषाओं को अलग करके इस पृथ्वी तल पर प्राप्त कराया है। [८३] कालिदा-प्रशस्ति में उल्लिखित है कि उन्होंने षटभाषा [८४] समुद्र पर काव्य के रूप में सेतु-बांध दिया है । [८४] इनमें संक्रति (संस्कृत) और पराक्रति [८५] (प्राकृत) का प्रयोग पृथ्वीराज के हर्म्य में दासियों के संभाषण - रूप में हुआ है । इन प्रतिष्ठित ६: भाषाओं में शेष मागधी, शौरसेनी, पैशाची अथवा आवंतिक और अप्रभंश हो सकती है क्योंकि (अभिज्ञान शाकुंतल, प्रबोध चन्द्रोदय, वेणी संहार, ललित विग्रह राज, रत्नावली, मृच्छकटिक, प्रमुख जैन ग्रन्थ पवयनसार और कत्तिकेयानुपेक्खा आदि तात्कालीन प्रसिद्ध ग्रन्थों में मागधी और शौरसेनी के प्रयोग मिलते हैं। [८६] पैशाची में प्रसिद्ध ग्रन्थ गुणाढ्य की बृहत्कथा है । अपभ्रंश का प्रयोग, इस काल में, प्राय: भारत के दूर दूर के विद्वान करते थे । राजपूताना, मालवा, काठियावाड़ और कच्छ आदि के चारणों तथा भाटों के

---

(८०) क- ति कवि आवि कवि पह संपते । गुन व्याकरन कहि रस बचे ।।
५:५:११ २

(८१) ख- जतब मन गुरु यति सकल । कल कवित्त जानउ सब छंदर ।
रसन रसायन भायन पुनि गीय गाह गुन ग्यानं । १२:८:३:५

ग- रासउ असंभु नव रस सरस छंदु चंदु किअ अमिअ सम ।
श्रृंगार वीर करुणा बिभछ भय अदभुतह संत सम ।। १२:४६:५१६

घ- छंद प्रबंध कवित्त जति साटक गाह दुहत्थ । १:५:१

(८१) क- उगति उकंठ कंठ समुहाई । ३:१६:२

ख- दिष्षइ नयर सहाय ति कवियन इयुं कह्व । ४:१३:१

(८२) क- सरस सुध्धि बरणन करउं । ४:१६:२

ख- उप्पमा उच्च आवह धुरक्की । ६:५:२०

(८३) छंदो मध्य विषमान विहतो सरस्स भाषा छवों । ५:७:४

(८४) कालिदास छ भासा समुदं । निय सेतु बंधं । १:४:११

डिंगल भाषा के गीत इसी भाषा के पिछले विकृत रूप में निर्मित हैं।[८६]

नृत्य-संगीत पारस्परिक पूरक रूप में—

नृत्य और संगीत का स्वतंत्र रूप में उल्लेख नहीं हुआ है। कन्नौज राज द्वारा नित्य निर्तंभिनी नर्तकियों के नृत्य समारोह में संगीत पूरक रूप में वर्णित है, जिसका विस्तृत वर्णन मनोरंजन के संदर्भ में द्रष्टव्य है।

उड़ीसा और दक्षिण के नृत्य

ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में उड़ीसा[८८] और दक्षिण[८९] के नृत्यों ने विशेष प्रसिद्धि उपलब्ध कर ली है। केवल इन्हीं दोनों देशों के नृत्यों का उल्लेख हुआ है। किंतु उड़ीसा के छाउ माया शबरी, किरातार्जुन, गरुड़वाहन, तथा दक्षिण के भरत नाट्यम, कथाकली, कोलाट्टम, कुम्भी, कइकोट्टिकाला, मोहिनी अट्टम,

---

(८५) के वर भाष पराकृति संकृति देवसुर। ६:७:३

कुछ लोगों का यह कहना कि प्राचीन काल में दासियों द्वारा संस्कृति अथवा प्राकृत में संभाषणा वर्जित था, इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

(८६) दे० मध्यकालीन भारतीय संस्कृति : रा०ब०गौ०ही०ओझा, पृ० १३५:-१३६

(८८) उडु नहरी। ५:३८:१०

(८९) सुदेस दक्खिन दिस। ५:३८:१२

(९०) वीर गुंडीर सा सोम मुंगा। नचइ ईस सीसं धरो जासु गंगा। ७:६:४४+४५

(९१) मनउ नृत्य नारद कढ्ढे प्रसंगाइ। ७:६:४३

यक्षगान, ओथुनथुल्लाल, कुरुवंची, पुलयन और कचपुड़ी आदि प्रसिद्ध नृत्यों में किसी का नामोल्लेख नहीं है।

नृत्य परंपरा में शिव और नारद नृत्य में भाव और रस

नृत्य कला का जन्म भारत में धर्म की व्याख्या के माध्यम से अति प्राचीन है। कहा जाता है,कि इन्द्र की विनय से ब्रह्मा ने ऋग्वेद से विषय, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से भाव और अथर्ववेद से रस लेकर नृत्यशास्त्र कानिर्माण किया है। नृत्य जगत के आदि नृत्यकार नटराज शिव हैं। शिव के ताडव में सभी देवता सम्मिलित होते हैं। ब्रह्मा ताल देते हैं, विष्णु मृदंग और भारती वीणा बजाती हैं। अप्सराएं और किन्नरी श्रुतियों का ध्यान रखते हैं। नारद मुनि स्वर मिलाते हैं। प्रस्तुत काव्य में शिव [६०]और नारद[६१] नृत्यकार के रूप में चित्रित हैं। भारत में प्राचीन काल में ही, देवी देवता नृत्य कला में प्रवीण थे। इन्द्र उच्च श्रेणी के नृत्यकार, उनके सभासद किन्नर और गन्धर्व गायक और वादक थे। अप्सराएं नृत्य में दक्ष थीं। भारतीय नृत्य परम्परा में कृष्ण का स्थान महत्वपूर्ण है। उनकी रास लीला प्रसिद्ध है। अर्जुन उत्तरा के नृत्य-गुरु थे। वैदिक काल के बाद नृत्य में रुचि कुछ कम होने लगी। राजपूत काल में अवश्य ही नृत्य को प्रोत्साहन मिला। उत्तर भारत में मुसलमानों के धार्मिक कट्टरपन के कारण इसका विकास अवरुद्ध हो गया। हां, दक्षिण में नृत्यकला सुरक्षित रही। वहां की कथाकली आज भी अपने पूर्व रूप में है। आधुनिक काल में रवि बाबू ने इसको संस्कृत करके शांति निकेतन के नृत्यदीक्षा के माध्यम से लोगों की रुचि आकर्षित की है अन्यथा यह त्याज्य समझा जाता था। विदेशों में भारतीय नृत्य की प्रतिष्ठा बढ़ाने का श्रेय उदयशंकर को है।

विवेच्य काव्य का नृत्य भावात्मक है।[६२] कलाओं के प्राण रस,[६३] का उन्मेष इसमें हुआ है। अंग संचालन[६४] अथवा मुद्राओं

---

(६२) दे० ऊपर टि० सं० ८७ की पंक्ति, १४ तथा २६

(६३) नरे नरे नरिंद मास मैस काम सुष्पने। ५:३८:२६

(६४) दे० ऊपर टि०सं० ८७ की पंक्ति ६, १०, १६, १८, १६; २१

के अतिरिक्त अलक्ष्य[९५] और लक्ष्य[९५] लक्षणों तथा नयन,[९५] वचन,[९५] और आभूषणों से अभिनय का रसोद्रेक किया गया है।[९६] नूपुर[९७] (पैर में), थार (कांसे)[९८] की घंटियां (कटि में) और कल शेखर[९९] (शिर में) नृत्योपयोगी प्रयुक्त आभरण हैं।

संगीत सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली

नियमित और स्थिर आंदोलनों द्वारा उत्पन्न स्वर संगीत का फल मधुर धुन[१००] (ध्वनि) है। संगीत के आधार पर उसके सात मुख्य स्वर (स री ग म प ध नी)[१०१] जिन्हें[१०१क] ग्राम कहा जाता है तान[१०२] तन् (तानना) धातु से उत्पन्न इन्हीं चारों स्वरों का कलापूर्ण विस्तार है। गायन-वैचित्र्य-वृद्धि इसका ध्येय है। 'ख्याल' गीत में इसका प्रयोग अधिक है। अलाप[१०३] भी एक प्रकार का तान है जो स्वरों के विलंबित लय में है। शार्ंगदेव ने आलप्तिगान को अनिबद्ध गान की श्रेणी में रक्खा है जिसको अब आलाप कहते हैं। पहले इन दोनों में थोड़ा सा भेद मानते थे। रत्नाकर के अनुसार रागों के सम्बन्ध में ग्रह, अंश, मन्द्र, तार, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व षाडवत्व, औडवत्व आदि दस बातों का ध्यान रखने पर गायन 'रागालाप' कहलाता है।[१०४] संगीत और नृत्य में समय का परिमाण 'ताल'[१०५] से होता है। यह हाथ की ताली से भी किया जाता है।

---

(९५) दे० ऊपर की टि०सं० ८७ की पंक्ति २५

(९६) ,, ,, ,, २६

(९७) ,, ,, ,, ८

(९८) ,, ,, ,, ६

(९९) ,, ,, ,, १२

(१००) क- सरी म,प्प प्प ध न्नि धा धुनं धुनं ति रक्खियं। ५:३८:३

(१००) ख- मृदु मृदंग धुनि संचरिय। ५:३३:१

(१०१) ऊपर का (१००) क। (१०१ क) तार त्रिग्राम उपंग सुर ५:३३:२

(१०२) सिर धुनहि सरस सुनि जासु तान। ५:५:४२

संगीत -शास्त्रानुसार ६ राग और ३० अथवा ३२ रागनियां हैं। प्रस्तुत काव्य में ३६[१०६] राग का उल्लेख है। जायसी[१०७] और सूर[१०८] ने ५: राग और छत्तीस रागिनियों का जिक्र किया है। छत्तीस रागिनियों की गणना संभवत: इस काल में प्रारंभ हो चुकी है। विशेष देशों,[१०९] ध्रुव पद[१०९] तथा सिंधु[११०] रागों का नामोल्लेख भी हुआ है।

कलाओं का एकीकरण

जयचन्द के नर्तन समारोह में संगीत,[१११] गान,[१११] नृत्य,[१११] वेश,[१११] और संभोग सभी का सुंदर समन्वय हुआ है। युग की अभिरुचि और कलात्मक विकास का यह परिचायक है।

---

(१०३) अलि अलाप सुध विंदु। ५:३३:१

(१०४) सूरसागर शब्दावली (एक सांस्कृतिक अध्ययन) = निर्मला सक्सेना पृ० २७८

(१०५) भनउ मेनका नृत तह वार चुक्की। ४:२३:२२
ख- तरुनि तार सुर धरिय चित्त। ५:३७:२

(१०६) राग छवीउ कठे करंती। ४:२३:१६

(१०७) छवउ राग गाएनि भल गुनी। औ गाएनि छत्तीस रागिनी।
पद्मावत, सं० टीका, पृ० ६६४ , ५२८:५

(१०८) छहों राग, छत्तीसो रागिनी, इक इक नीकें गावै री। (१८५६)

(१०९) विसेष देस अप्पदं पदं वंदनं रागयो। ५:३८:१७

(११०) सिंधु सहनाइ अवने उतंगा। ७:६:४७

(१११) दे० टि० सं० ७:८७

(११२) सुक्खं सुक्ख मृदंग तार जवनो रागं कला कोकनं।
कंठी कंठ सुभासन समाइतं कामं कला चोषनं।
उर भी रंभ किता गुणं हरिहरो सुरभीय पवनंषिता।
एवं सुक्खसकाम कुंभ गहिता जयराजु रात्रिं गता ।। ५:४०

उपसंहार

प्राचीन भारतीय परम्परागत कलाओं में, विवेच्य काव्य में ३७ कला पूर्ण कृत उपलब्ध है।[११३] व्यावहारिक रूपों में ६ अभिनव कलात्मक सम्भार मिले हैं।[११४] आधुनिक ललित कला के अर्थ में भी स्थापत्य, मूर्ति, संगीत, नृत्य और काव्य आदि कलाएं अपने विकसित रूप में हैं। अनेक कलाओं का सुंदर समन्वित रूप भी प्राप्त है।[११६] काव्य कला को सर्वोपरि मान्यता मिली है।[११७]

---

(११३) दे०टि०सं० ६:१:४१

(११४) ,, ६:४२:४६

(११५) ,, ६:७८:८७

(११६) ,, ६:१११:११२

(११७) ,, ६:५३:५८

उपसंहार

(पृथ्वीराज रासो में १६४५ शब्द २६८३ पर्याय सहित सांस्कृतिक संदर्भ में प्रयुक्त हैं।)

गत पृष्ठों में पृथ्वीराज रासो की शब्दावली का सांस्कृतिक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इस अध्ययन के आधार पर प्राचीन भारतीय जीवन परम्परा की उत्तरकालीन चेतना को प्रतिबिम्बित करने वाला यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जा सकता है। रासो की शब्दावली के सांस्कृतिक आकलन से निःसंदिग्ध रूप से प्राचीन भारतीय जीवनदर्शन पर प्रकाश पड़ता है तथा तत्कालीन भौगोलिक सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक और कलात्मक सीमाओं के निर्धारण में अपेक्षित सहायता मिलती है। इस काव्य कृति के निर्माण काल में अपेक्षित सहायता मिलती है। इस काव्य कृति के निर्माण काल में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का एक नवीन सभ्यता एवं संस्कृति से साक्षात्कार हुआ। परिणामस्वरूप वैचारिक दृष्टि से जीवन मूल्यों के विविध पक्षों में नवोन्मेष की दिशा भी स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई। मान्यताओं ने पारस्परिक क्रियात्मकता अथवा प्रतिक्रियात्मकता के रूप में सामयिक गतिशीलता और युगबोध को स्पष्ट किया। कृति में प्रयुक्त शब्दावली के सांस्कृतिक विवेचन से तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति का सम्भार जुटाया जाना अधिक उपयोगी तथा लाभप्रद प्रतीत होता है। वस्तुतः इसी उद्देश्य से रासो की शब्दावली के माध्यम से तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति की महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गयी है।

आरम्भ में पृथ्वीराज रासो की सांस्कृतिक परंपरा की पृष्ठभूमि के रूप में रासो के इतर स्रोतों के आधार पर इसकी तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति का इस दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है, कि -

विवेच्य ग्रन्थ में जो सांस्कृतिक चित्रण उसकी शब्दावली के माध्यम से होता है, वह कहां तक अन्य ऐतिहासिक तथ्यों से मेल खाता है अथवा कहां तक ऐसी नई उद्भावनाओं का उद्घाटन करता है जिनसे इतिहास पर नया प्रकाश पड़ सके ।

वर्ण व्यवस्था[१]

रासो कालीन `धरणि खण्ड` (= भरतखण्ड) में वर्ण व्यवस्था अपने विकसित रूप में थी । चार मुख्य जातियां और अनेक मुख्य उपजातियां संगठित हो गई थीं । कुछ विद्वानों के अनुसार इनमें छुआछूत की भावना प्रबल थी, किन्तु गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार १२ वीं सदी तक भेद भाव की भावना नहीं पनप पाई थी ।

तत्कालीन समाज के सांसारिक सुखोपभोग को आध्यात्मिकता के साथ-साथ प्रमुखता प्रदान की है । ऐश्वर्य की सामग्री उच्चवर्गीय परिवारों में अपरम्पार थी । नृत्य, गान, नाटक, त्योहार एवं अनेक प्रकार के क्रीड़ा-विनोदों से वे मनोरंजन करते थे ।

स्त्रियां[१]

गार्हस्थ्य में स्त्रियों का स्थान सर्वोपरि था । इनमें शिक्षा का भी प्रचार था । परदा-प्रथा नहीं थी । युवतियां राजा के यहां सेवा-कार्य करती थीं । उनके द्वारा अतिथि-सत्कार की प्रथा प्रचलित थी । राज घराने में बहुविवाह और स्वयंवर की प्रथा विद्यमान थी । स्त्रियों का पातिव्रत धर्म और सती होना प्रशंसनीय है । दासी-प्रथा थी, अवश्य किन्तु कलुषित, घृणित और निंदनीय रूप में नहीं ।

धर्म[१]

बौद्ध और जैन धर्म उस समय अवनति पर थे । ब्राह्मण धर्म का पुनर्निर्माण हो चुका था । मूर्ति पूजा, मठ-मंदिर, तंत्र आदि का प्रचार प्रचुर मात्रा में ज्ञात होता है । ये धर्म अनेक उप-सम्प्रदायों में विभक्त थे । उनमें सहिष्णुता तथा धर्म दोनों का ह्रास पाया जाता है ।

---

(१) देखिए अध्याय १ पृथ्वीराज रासो सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (इतर स्रोतों के आधार पर) ।

राजनीतिक स्थिति

देश में अनेक छोटे छोटे राज्य थे। कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति न था जो सबको एकता के सूत्र में पिरो सकता। राजागण f विलास और युद्ध में रत थे। युद्ध की प्रणाली तथा तत्संबंधी अस्त्र-शस्त्र साधन आदि मुसलमानों की अपेक्षा हीनतर थे।

भुवगोल[२]

पृथ्वीराज रासो में २०३ शब्द ५६२ पर्याय सहित भूगोल के संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं। ग्रन्थ की शब्दावली में अभिव्यक्त संस्कृति की भौगोलिक सीमा इस प्रकार दी जा सकती है :- उत्तर में कैलाश, दक्षिण में सिंहल, पूर्व में तिरहुति और पश्चिम में खुरासान (ईरान) इस भू-वृत्त को ग्रन्थकार ने धरनिखण्ड और टीकाकार ने भरत खंड के नाम से अभिहित किया है, किन्तु आलोच्य काल के पूर्व ही, गुप्त काल के आस पास पृथ्वी के इतने भू-क्षेत्रफल का नाम कुमारिकाखण्ड पड़ चुका था। भरत खंड में तो अब तक नवों द्वीपों की गणना होने लगी थी। स्कन्दपुराण के महेश्वर खण्ड में इतने भू-भाग को कुमारिका खण्ड कहा गया है, क्योंकि तत्कालीन दैनिक मंत्र, " जम्बू द्वीपे भरत खण्डे भारत वर्षे कुमारिका खण्डे आर्यावर्तके देशे........ " इत्यादि में कुमारिका खण्ड जुड़ा हुआ है। " भूलकर (लंका जाकर) विभीषण पर आक्रमण कर बैठा। " इस कथन के अतिरिक्त वृहत्तर भारत के अन्य द्वीपों का नामोल्लेख न होने से यह संभावना की जा सकती है, कि प्रबंध में समुद्र यात्रा की निबंधना की भावना कवियों में विद्यमान थी। काव्य में प्रयुक्त " तिलिंग " देश ११ वीं सदी के पूर्व काल का ज्ञात होता है क्योंकि छठी सदी के `त्रिकलिंग` का ११ वीं सदी में `तिलिंग` रूप हो गया था। दिल्ली का ` किस्से कहानियों वाला प्राचीन `योगिनीपुर ` नाम काव्य में अपेक्षाकृत अधिक व्यवहृत हुआ है।

---

(२) देखिए अध्याय २ का उपसंहार।

नदी[२] तथा पहाड़[२]

नदियों में गंगा, यमुना और सिंधु तथा पहाड़ों में सुमेरु, कैलाश और हेम पर्वत का उल्लेख हुआ है। सुमेरु पामीर का पठार कहा जाता है किन्तु विवेच्य काव्य में, 'सुमेर गंग पत्तयौ (३:१७:२०) (मानो सुमेरु ने गंगा को प्राप्त किया हो) से यह पर्वत गंगा के उद्गम स्थल से सम्बन्धित ज्ञात होता है। परम्परागत षड्ऋतुवर्णन शैली में दिल्ली के समीपस्थ स्थानों की जलवायु का उल्लेख है। अनाजों में जौ, पेड़ों में आम, केला, चन्दन, फलों में अनार, अर्कफल, इमली, कंदलाकंद (१), नारंगी, बिंबाफल, फूलों में कमल, कुंद, कुमुदिनी, केतकी, चंपक, चम्पा, जूही, बेला, मालती, सेवन्ती और सरीफा का वर्णन है। आलोच्य काल में भी, कन्नौज में भीड़ के कारण अगम्य हाटों में शीतलता के लिए, दुर्बादल के मैदान का उल्लेख द्रष्टव्य है।

जलवायु, पेड़-पौधे

जीव-जन्तु[२]

जीवों में कच्छप, कुंजा, घड़ियाल, चींटी? टिड्डी, दादुर, शंख, सांप, सिंह और हाथी का उल्लेख है। नूपुर ध्वनि के उपमान रूप में दादुर- ध्वनि के उल्लेख से कवि की दृष्टि में उसकी श्रेयस्करता ज्ञात होती है। पक्षियों में चक्रवाक का वेश और वृत्ति, ताम्रचूड़ का सूर्य किरणों से कष्टित होना, और कूप के मध्य में बगुले का मछली पर वक्र दृष्टि रखना उल्लेखनीय है।

पक्षी[२]

खगोल[२]

खगोल में मुख्यत: ब्रह्माण्ड, आकाश गंगा, सूर्य, चन्द्र और ग्रह नक्षत्रों का वर्णन है। इनमें सूर्य को, एक ही स्थान कन्नौज से, सुमेरु के चारों ओर तथा महोदधि के मध्य अर्थात् दोनों स्थलों पर देना तथा नक्षत्र और ग्रहों की आकर्षण शक्ति का धरातल के जीव-जन्तुओं पर प्रभाव पड़ना उल्लेखनीय है। इस काल तक लोगों का विश्वास यह जान पड़ता है कि आकाश गंगा चन्द्र-स्तर पर और वैकुंठ रवि मंडल के ऊपर है।

भौगोलिक उपकरणों के प्रयोगों का संदर्भ

प्रस्तुत काव्य में समस्त भौगोलिक उपकरणों का उल्लेख उनके स्वाभाविक गुण, राजनीतिक दृष्टिकोण, धार्मिकता, किसी गुण

---

(२) देखिए अध्याय २ का उपसंहार।

के प्रतीक, आदर्श अंगों के उपमान, श्रृंगार प्रसाधन, शुभाशुभ विचार मनुष्य के नामकरण, क्रीड़ा विनोद और युद्ध की विशालता एवं भयंकरता के संदर्भ में हुआ है ।

सामाजिक रचना[3]

हिन्दू-मुसलमान और उनका सम्बन्ध[3]

सामाजिक स्थिति के संदर्भ में समूचे ग्रन्थ में ७३४ शब्द १५३६ पर्याय सहित प्रयुक्त हैं । पूर्व उल्लिखित ` धारणा खण्ड ` की सामाजिक रचना हिन्दू, यवन (संभवत: वाह्लीक निवासी), मंगोल और एक ऐसी जाति गठित हैं जिसे ` म्लेच्छ ` ` तुरक `, अथवा ` हमीर ` नामों से सूचित किया गया है । ` मुसलमान ` शब्द, इस काल तक, अपरिचित ज्ञात होता है । इन सभी जातियों के पारस्परिक आदान-प्रदान में असामंजस्यपूर्ण दुर्व्यवहार की कोई झलक दृष्टिगत नहीं होती, किन्तु उनके महत्वाकांक्षी राजनीतिक अग्रणी जनों के आपसी व्यवहार संघर्ष एवं घृणा द्वारा अनुप्राणित ज्ञात होते हैं । सभी इतिहासकारों की सम्मति है कि मुसलमान बहुधा हिन्दुओं पर आक्रमण कर लूट खसोट किया करते थे । किन्तु प्रस्तुत काव्य में इसकी सत्यता का प्रमाण नहीं मिलता । इसके विपरीत हिन्दुओं के ही राजनीतिक आचारण ऐसे हैं कि मुसलमानों में उनके कारण विक्षोभ उत्पन्न होता है । कवि के अनुसार पृथ्वीराज के भय से गजनी की गौरांगनाएं अपने प्रिय पतियों के कंठ वैसे ही छोड़ती थीं जैसे पत्ते वृक्ष से छूटते हैं । शहबुद्दीन गोरी को अनेक बार पकड़ कर पृथ्वीराज ने उससे कर (टैक्स) लिया था । जयचन्द ने एक दिन आठ मुसलमानों को मिलाकर खुरासान के अमीर बन्दा को बन्दी बनवा । हेमकूट-स्थित राज्यों को उसने सम्पूर्ण रूप से ढहा दिया और अपने रोष के शोषण द्वारा समुद्र को चंचल कर दिया हिन्दुओं के इस आक्रामक आचरण को इतिहासविरुद्ध रूप में

---

(३) देखिए अध्याय-२ सामाजिक दशा (क) समाज रचना

व्यक्त करने का एक कारण तत्कालीन युग में व्याप्त रणशूरता की भावना भी हो सकती है, जिसमें संभव है, आक्रान्त होना अपमानजनक और आक्रमणकारी होना श्रेयस्कर समझा गया हो । मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं के घृणित और हेय विचार थे, यह मुसलमानों के लिए प्रयुक्त 'म्लेच्छ' शब्द से से ही प्रकट होता है। 'म्लेच्छ' नामकरण उनके (मुसलमानों के) खानपान तथा रहन-सहन की प्रवृत्ति पर आधारित जान पड़ता है, क्योंकि केवल मांसभक्षी होने के कारण कोल को हिन्दू लोग सबसे निकृष्ट समझते हैं, मुसलमान तो सर्वभक्षी हैं।

हिन्दू[3]

हिन्दुओं में वर्ण व्यवस्था प्रतिष्ठित है । इसमें कुल और गोत्र के आधार पर भिन्न भिन्न जातियां संघटित हो गयी हैं। इस काव्य में मात्र क्षत्रियों की विभिन्न उपजातियों का उल्लेख हुआ है क्षत्रिय अपने को राजपूत कहने में गौरव का अनुभव करते हैं, जबकि टाड, क्रुक, भंडारकर और स्मिथ आदि इतिहासकार पृथ्वीराज रासो की अन्य प्रतियों में उल्लिखित 'अग्निकुल-कथा '(प्रस्तुत संस्करण में नहीं है) को आधार मानकर इन्हें (राजपूतों को) अनार्यों की सन्तान बताते हैं,किन्तु यह सर्वथा विवादग्रस्त है ।

जनजातियां[3]

हिन्दू समाज की अन्य जन जातियों में बजाज, सोनार, भट, बन्दी, दासी, नट-नर्तक, वेश्या, कोल, चांडाल और भिल्लनी का नामोल्लेख हुआ है ।. हिन्दुओं में (राजनीतिक अग्रणीजन को छोड़ कर जिनका वर्णन राजनीतिक अध्याय में द्रष्टव्य है ।) अन्तर्जातीय सम्बन्ध सद्व्यवहारपूर्ण है जो कि अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी की तुलना में विलक्षण प्रतीत होता है । अन्यत्र चाण्डाल और भृत्य अस्पृश्य बताये गए हैं और ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि चाण्डाल शहर में आते समय लोगों को अपने आगमन की सूचना देने के लिए बांस की लकड़ी जमीन पर पीटते थे । हिन्दू शास्त्रकारों ने

---

(३) देखिए पिछले पृष्ठ पर ।

खाने-पीने चलने फिरने, मिलने-जुलने और आने-जाने पर इतने अधिक प्रतिबन्ध लगा दिए हैं कि उनके अनुसार आदमी की जात बात की बात में चली जाती है । इस समय, सामान्यत: हिन्दू यही मानते हैं कि जिसके शरीर पर मुसलमान के छुए हुए पानी का छीटा पड़ जाय तो वह किसी प्रकार हिन्दू नहीं रह सकता । किन्तु विवेच्य ग्रन्थ में चाण्डाल और भृत्य के सम्बन्ध का यह अस्पृश्यता का भाव कहीं नहीं परिलक्षित होता । कवि चन्द ने मुसलमानों के घर में अपने शरीर पर अगरु-धूप का लेप करवाया था ।[४] (उस समय चंद योगी वेश में था और इस प्रकार के अतिथि सत्कार को सरलता से अस्वीकृत कर सकता था ।)

परिवार[५]

प्रस्तुत काव्य में वर्णित हिन्दू परिवार पुरुष सत्ताक है, वंश परंपरा की सूचना पिता के नाम द्वारा मिलती थी, बहू वर स्थानी होती थी पुरुष एकाधिक पत्नी रख सकते थे, किन्तु स्त्रियों के लिए एक-पतिप्रथा ही विहित थी ।

विवाह[६]

इस युग की विशेषताओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि राजदरबार में राजकन्याओं के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर राजागण आक्रमण कर उनका अपहरण करते थे । कन्या अपहरण एक सामान्य परम्परा-सी बन गयी थी । लोकदृष्टि में इसे अप्रतिष्ठित भी नहीं माना जाता था किन्तु प्रस्तुत काव्य में इस प्रकार की घटनाओं का नितांत अभाव है । संयोगिता-हरण की एक घटना अवश्य है, लेकिन पृथ्वीराज जयचन्द के युद्ध का कारण संयोगिता नहीं है, जैसा सामान्यत: समझा जाता है, पृथ्वीराज एक सुदीर्घ मानसिक संघर्ष के पश्चात् अपना कर्तव्य समझ कर कन्नौज गया था । वस्तुत: जयचन्द के राजनीतिक दुर्व्यवहार के कारण दोनों में युद्ध हुआ था । युद्ध विषम होने पर जब यह संभव नहीं हो सका कि कन्नौज में युद्ध किया

---

(४) १२:१६:१

जाय तो सामंतों के अत्यधिक अनुरोध पर, प्रतिष्ठा के लिए संयोगिता को लेकर पृथ्वीराज दिल्ली चला आया। संयोगिता के उदाहरण से ऐसा ज्ञात होता है, कि राजकन्याएं अपने योग्य पुरुष को वरण करने के अधिकारों के प्रति सजग थीं। स्त्री का कौमार्य पुरुष के रस और स्पर्श से वंचित होने में माना जाता था। उच्च कुलीन परिवार के लिए दासी एक अनिवार्य आवश्यकता थी। कयमास की पत्नी

सती[6]

के स्वेच्छापूर्वक सती होते समय कोई भी असामान्य घटना नहीं हुई है, किन्तु अन्यत्र इस बात का भी उल्लेख है कि दसवीं सदी से बारहवीं सदी के बीच में सती की प्रथा जोरों पर थी। यहां तक कि उनके साथ सगे संबंधियों, नौकरों और परिचारिकाओं आदि के जल मरने के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

जन-सामान्य[7]

जन सामान्य में दरिद्री, लोभी, कृपण, मंगन, भूखे, चेला, जुआरी, दानव, भूप, दुर्जन, ठग, सज्जन और काव्यानुरागी के उल्लेख मिलते हैं।

समाज व्यवस्था[8] में उपयोगी कुछ व्यावहारिक क्रियाएं :-

समाज में कुछ व्यावहारिक लघु क्रियाएं ऐसी हैं जिनकी उपयोगिता समाज को नियंत्रित रखने में है। वे ये हैं :- बड़ों के विपरीत आचरण न करना, विरोध में लोगों की उंगली न उठना, लज्जा, परामर्श, शपथ, वचन निभाना, हाथ में हाथ देना, सीख, साक्षी और शाप का भय।

रूप-सौन्दर्य का आदर्श[9]

प्रस्तुत काव्य में शरीर की उत्तमता उसके गौर वर्ण होने में है। नारी के शरीर, मुख और हाथों में कांति हो, मुख, हाथ,

---

(५) देखिए अध्याय ३ सामाजिक दशा (क) २ परिवार का उपसंहार
(६) ,, ,, ३ विवाह
(७) देखिए अध्याय ३ सामाजिक दशा (क) समाज रचना (ख) जन-सामान्य
(८) देखिए अध्याय ३ सामाजिक दशा (क) समाजरचना (५) सामाजिक नियंत्रण

अंगुली और नख कोमल हों, मुख, अधर, नख, एंडी और पावों में लालिमा हो, कुच, नितंब और जंघों में भारीपन और उभार हो। भौंह और कमर पतली हो आंख और जंघा चंचल तथा गतिशील हो, भाल और भौंवें टेढ़ी, कच लम्बे तथा काले, रोम में बहुलता, दांत लघु तथा चमकदार, नख़सटा हुआ और नाक कीर के टोंट की तरह हो, इसी में सौंदर्य की प्रतिष्ठा है। म्लेच्छ रोम, नख और दाढ़ी बढ़ा रखते थे। उनका मुख जनेवरों जैसा होता था। वे अपने शरीर के संधों (जोड़ों) को बाध कर रखते थे। सम्पन्न लोग शरीर में अगर-धूप आदि का लेप लगवाते थे। हिन्दुओं में जटाजूट बांधकर-तन में राख लगाना वैराग्य का सूचक था और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

वस्त्र[६]

स्त्रियों के पहिनावे में चीर, साड़ी, कछांटा, कंचुकी और पटोर का उल्लेख हुआ है। चीर, साड़ी और वस्त्र दोनों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। चीर साड़ी और कंचुकी के पहिनने के ढंग और आकार के सम्बन्ध में यह काव्य प्राय: मौन है। कछांटा, योगीन्द्र और सुन्दरियां दोनों पहनते थे। अंबर चित्र विचित्र प्रकार से चित्रित होते थे। प्राचीनकालीन पुरुषों के प्रचलित पहिनावे : धोती, चदर, पगड़ी, जूता अथवा पादुका - में से किसी का भी उल्लेख नहीं हुआ है पद्मावत, सूरसागर और रामचरित मानस आदि परवर्ती ग्रन्थों की तुलना में प्रस्तुत ग्रंथ में परिधान का वर्णन अपेक्षाकृत कम है।

आभूषण[६]

आभूषणों में छत्र, ताटंक, हार, कंकण, अंगूठी, मेखला और नूपुर बहुप्रचलित ज्ञात होते हैं। छत्र अमूल्य और चतिमान होते थे नूपुर-शब्द का उपमान दादुर-दादर ध्वनि उल्लेखनीय है। चादर

---

(६) देखिए अध्याय ३ (ख) रहन-सहन (१) का उपसंहार

मणि, ग्रथित, शीशफूल, कलंगी, शेखर और नासिका में मोती (नथ नहीं) का भी उल्लेख है। सैनिकों के आभूषण जिरह-बख्तर राग-जरजीन, टोप-दस्ताने और धनुष-बाण कहे जा सकते हैं। गहने जड़ाऊ और मोती से मढ़े हुए होते थे। उनमें रत्नादि के कोर होते थे तथा रेशम के पट्टे से गुहे होते थे। आभूषण, दान में अथवा कन्या के विवाह में दिए जाते थे। गहनों अथवा प्रसाधनों से शरीर को सजाने के प्रति गहरी अभिरुचि नहीं जान पड़ती है। सामाजिक मान्यता की परम्परा से प्रतिबद्ध लोग अवश्य अपने को आभूषणों से भूषित रखते थे। आभूषणों से अधिक ध्यान स्त्रियों के रूप, वर्ण, प्रभा और विलासकी ओर दिया जाता था।

नगर वर्णन [१०]

भारतीय साहित्य में नगर वर्णन की प्रथा ईसा की पहली दूसरी सदी से प्रारम्भ हुयी है। इस प्रवृत्ति का प्रभाव प्रस्तुत काव्य परभी है और कन्नौज नगर का उसमें विस्तृत वर्णन मिलता है। कन्नौज जनकीर्ण और हय-गजादि से पूरित रहता था। हाट-बाजार संभवत: राज-प्रासाद का स्कन्धावार था, क्योंकि इसके पश्चात राजद्वार का वर्णन मिलता है। प्राचीन भारतीय परम्परानुसार यहां भी राजसभा, धवलगृह, हर्म्य, गृहोद्यान और संगीत भवन आदि का वर्णन हुआ है। गृहस्थी के किसी अंग से सम्बद्ध वस्तुओं का वर्णन इस ग्रन्थकार को अभीष्ट नहीं है फिर भी प्रसंगवश कुछ उपकरणों के वर्णन आ ही गए हैं। उपमान रूप में प्रयुक्त वस्तुओं को छोड़ देने पर पलंग, दीप, शीशा, पान, थार, कलश, तराजू, भुजपत्र, कागद, भेंड और बाग का उल्लेख हुआ है। उस समय पान का अत्यधिक प्रचार ज्ञात होता है। कलश का प्रयोग बहुधा मांगलिककार्यों में होता था।

---

(१०) देखिए अध्याय ३ ख रहन-सहन (२) नगर प्रासाद एवं गार्हस्थोपयोगी उपकरण।

मनोरंजन[११]:— समस्त शूरों (८० सहस्र) और घने सामन्तों के मध्य कवि चन्द ने कविता की । इस कथन से ज्ञात होता है कि, मनोरंजनार्थ लोगों के बैठने के लिए उस समय बड़े बड़े मंडपों की व्यवस्था की परम्परा विद्यमान थी । सैन्य-क्रीड़ा में शर-सन्धान, हदफ (लक्ष्य-भेद) साहित्यिक-क्रीड़ा में कविता पाठ, जीव-जन्तु द्वारा मनोरंजनमें मृगवत्स और मत्स्य-चराना तथा सामान्य प्रचलित क्रीड़ा विनोद में जुआ, वेश्या गमननृत्य, सार (रंगशाला), नाटक, पतंग तथा फिरकी आदि का वर्णन हुआ है । जुआ और वेश्यागमन युग-दृष्टि में निषिद्ध नहीं ज्ञात होते हैं ।

क्रीड़ाविनोद

त्योहार[११]

त्योहारों प्रधान देश के इस काव्य में किसी भी त्योहार का वर्णन नहीं हुआ है, यह एक विलक्षण बात है । उपमान के रूप में फाग का उल्लेख मात्र हुआ है । जयचंद द्वारा व्यवस्थापित एक उच्चकोटि के नृत्य समारोह का आयोजन है । धौंसा, मृदंग, उपंग, आदि उत्सव — वाद्य, वीणा, वंशी, शंख आदि विलासिता एवं समय सूचक वाद्य, तथा धौंसा, उपंग, तबल, तंदूर, जंगी, मृदंग, वंशी, सिंगा, शहनाई, नफीरी, सारंग, भेरी, नरसिंघा, झाउभा, झांभा आवभा और घनघण्ट आदि युद्ध-वाद्य वर्णित हैं ।

नृत्य समारोह[११]

वाद्य[११]

वाहन[१२]

प्रस्तुत काव्य में परम्परागत चारों वाहनों— घोड़ा, हाथी, रथ और विमान का नामोल्लेख है । विमान सुरलोक की वस्तु बन गयी है । प्राय: अप्सराएं उन पर बैठ कर वीरात्माओं का स्वर्ग में स्वागत-करती हुई पाई गयीं हैं । इसी प्रकार रथ भी, सूर्य,चन्द्र, कामदेव के वाहन रूप में व्यवहृत हैं । धरनिखंड के किसी भी व्यक्ति के प्रसंग में इनका उल्लेख नहीं हुआ है । हां, घोड़े और हाथी तत्कालीन बहु-

---

(११) देखिए अध्याय ३ (ख) रहन-सहन (२) मनोरंजन —

(१२) ,, ,,, ,, (४) वाहन का उपसंहार.

प्रचलित सवारियां हैं। दासियों से लेकर सामंत, राजा और सैनिक सभी की सवारी घोड़ा है। अकेले जयचन्द के पास ८० लाख घोड़े थे। उनके नाम देशों के आधार पर हैं जबकि बाण भट्ट (सातवीं शताब्दी) के १०० वर्ष पश्चात् घोड़ों का नाम करण उनके रंगों के आधार पर प्रचलित हो गया था। हाथी भी जयचन्द के यहां अगणित हैं और शहाबुद्दीन के पास दस हजार की संख्या में हैं। इनकी अधिकता का कारण, सम्भवत: युद्ध में शक और गुप्त काल के बढ़ते हुए घोड़ों को हराने का एक अभिनव प्रयोग रहा, जबकि वे स्वत: भारत की हार का एक ऐतिहासिक कारण बन गए।

नामकरण[१३]

स्त्री-पुरुष[१३]

ऋग्वेदीय आभिप्रायकि नामों (यथा यज्ञदत्त, देवदत्त) का आलोच्य ग्रन्थ में सर्वथा अभाव है। जन्म-नक्षत्र परक नाम (यथा अश्विनी, स्वातिदत्त) भी नहीं प्रयुक्त है, आरण्यक और उपनिषद काल के गोत्र-परक नामों (यथा बुडिल शार्कराक्ष्य= गोत्र में उत्पन्न बुडिल) की परम्परा में जातीय नाम क्षत्रियों में १३ प्रतिशत मिलते हैं। बयालीस प्रतिशत तक यह रिवाज मुसलमानों में पाया गया है।

हिन्दुओं में नामकरण एक संस्कार है। उच्चकुलीन बालकों के नाम विशेष रूप से, ज्योतिषियों द्वारा सोचविचार कर रखे जाते हैं। प्रस्तुत काव्य में इस प्रकार के नामकरण के प्रति लोक रुचि का अभाव मिलता है जिसके कारण तत्सम नामों की कमी है और उनके घिसे पिटे ऐसे रूप मिलते हैं जो अपरिचित से लगते हैं। राजवंश और सामंतों में कुल एवं स्थानों से सम्बन्धित और महानता सूचक विशेषण सम्पन्न नाम अधिक लोकप्रिय ज्ञात होते हैं। मुसलमानों में जातीय नाम सर्वाधिक मिलते हैं।

समय सूचक नाम[१३]

समय सूचक मापदण्ड विकसित और व्यावहारिक है। पल पल की गणना पर भी अत्यधिक सावधानी बरती गई है। आजकल की तरह बोलचाल में क्षण का तात्पर्य एक काम के पूरा होने तक की

---

(१३) देखिए अध्याय ३ (ख) रहन-सहन (५) नाम

अवधि है। `आज` , तत्कालीन वर्तमान काल और आजकल दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। व्यवहार में, दिन का तात्पर्य विना दिन-रात का भेद किए हुए अनेक वर्षों तथा करीब नौमास तक के लिए है। दिन-रात सूर्योदय एवं सूर्यास्त से अलग अलग गणाना पाकर चार चार प्रहर वाले हैं। दिशाएं आठ ही मानी गई हैं। एक योजन में साढ़े चार कोस का उल्लेख है।

दिशाएं[१३]
स्थानों की दूरी

इस समय उच्चवर्गीय लोगों के समक्ष न तो कोई समाज कल्याणकारी संगठित कार्यक्रम है और न कोई इसकी आवश्यकता का अनुभव ही करता दीख पड़ता है। समाज के अधिनायक को अपनी शूरता पर अधिक आस्था है। वह विलासोन्मुख है। अस्तु देश की भावी सुरक्षा के लिए किया हुआ कोई भी दूरदर्शिता पूर्ण कार्य नहीं मिलता है। राजन्यवर्ग के सामाजिक कार्यों में केवल पृथ्वीराज द्वारा पर-पत्नी-गामी कयमास को प्राणदंड देना, पतिवरण में पिता की इच्छा के विपरीत सोचने वाली संयोगिता को जयचन्द द्वारा अलग आवास-व्यवस्था और नव विवाहित संयोगिता के लिए पृथ्वीराज द्वारा हर्म्य निर्माण करवाना है।

मध्यवर्गीय समाज में राज दरबारी होना सर्वोच्च प्रतिष्ठा का सूचक माना गया है। उनमें औपचारिकता अधिक है। सामान्यजन के दुर्व्यसनों में जुआ और वेश्याओं में अनुरक्ति प्रधान है। इन कार्यों को अथवा दूती द्वारा पति से सम्बन्ध-विच्छेद कराने, दासियों द्वारा पुरुषों का मनोरंजन किए जाने आदि को तत्कालीन समाज बुरी दृष्टि से नहीं देखता था।

लोक-दृष्टि[१५]

सहज प्रवृत्तियों के उभाड़ इच्छाओं की प्रबलता और मांग की घनिष्टता से प्रकट होता है, कि यह युग युद्ध का था।

---

(१४) देखिए अध्याय ३ सामाजिक दशा (च) सामाजिक आचरण
(१५) देखिए अध्याय ३ सामाजिक दशा (छ) लोकदृष्टि का उपसंहार
(१५) ,, ,, व ,,

जीवन में ऐश्वर्य प्राप्ति सर्वोपरि लक्ष्य था । कलाकार की कुशलता सभी को अभीष्ट है । लोक-सम्मत आचरण, यश, लज्जा, बुद्धि, सद् वचन, दृढ़ विचार, दान, स्नेह, मान आत्मबल, आत्मरक्षा, आदि की समाज में मान्यता ज्ञात होती है ।

राजनीतिक स्थिति[१६] के प्रसंग में ३६६ शब्द ४५६ पर्याय सहित प्रयुक्त हुए हैं । विवेच्य ग्रन्थ में राज्य-स्तर पर कार्यान्वित राजनीतिक घटनाओं में पृथ्वीराज-शहाबुद्दीन गोरी युद्ध और कन्ह का पृथ्वीराज के मित्र राजाओं में एक होना इतिहास-सम्मत है । पृथ्वीराज-संयोगिता विवाह, पृथ्वीराज जयचन्द युद्ध और पृथ्वीराज द्वारा शब्दभेदी बाण से गोरी की हत्या आदि बहुचर्चित प्रसंग बहि: साक्ष्यों से पूर्णतया प्रमाणित नहीं हैं । आबू नरेशों - सलष और जैत पमार - का पृथ्वीराज के मित्र राजाओं में होना इतिहास-विरुद्ध है । इन राजनीतिक क्रिया-कलापों के स्थल कन्नौज, दिल्ली, गजनी, महाराष्ट्र और आबू आदि ऐतिहासिक महत्व के हैं, जिनके शासक क्रमश: जयचन्द पृथ्वीराज, शाह शहाबुद्दीन, कन्ह, (सलष और जैत पमार को छोड़ कर) और पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर तथा जयचन्द के पिता विजयपाल (इतिहासों में विजयचन्द) आदि सभी ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं । टिप्पणी संख्या ४:१:१०८ की घटनाएं अनैतिहासिक हैं, किन्तु उनका वर्णन किसी न किसी के द्वारा अपने राजा के प्रशस्ति-गीत के रूप में हुआ है । उनमें से किसी के भी द्वारा काव्यगत कार्य सम्पन्नता नहीं दीख पड़ता । टिप्पणी संख्या ४:१:१०७ और १०८ में वर्णित घटनाएं भी आंशिक रूप से ऐतिहासिक कही जा सकती हैं ।

---

(१६) देखिए अध्याय ४ राजनीतिक स्थिति का उपसंहार

उपर्युक्त सभी राज्यों में राजतान्त्रिक शासन था। उनके अधिपतियों में स्वेच्छाचारिता अत्यधिक प्रतीत होती है। राज्य संचालन में योगदान देने वाले प्रधान, मंत्री, सभा, दूत तथा हेजम (कोतवाल) आदि प्रशासकीय कर्मचारी होते थे। सुरक्षा प्रमुख राजधर्म था। राज्यान्तर्गत सामन्तों की संख्या नृपति के वैभव स्तर की सूचक होती थी। स्वामी हेतु रण में प्राणोत्सर्ग करना सामंतों के लिए एक मात्र मोक्ष-मार्ग के रूप में मान्य था।

प्रशासकीय कर्मचारी

रण-शूरता तत्कालीन सामंतों का व्यवसाय था। यश-लोभी भूपति के दिग्विजयी होने की आकांक्षा में इस प्रवृत्ति से अनिवार्य सहायता मिलती थी। परिणामस्वरूप इस युग के नरेन्द्र युद्धोन्मत्त थे। युग-धर्म के अनुसार शत्रुओं पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट भ्रष्ट करना, उनकी सम्पत्ति छीनना उस समय के सामान्य एवं अनिंदनीय कार्य हो गये थे। राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध अस्थिर रहते थे। उनमें कभी भी संबद्ध विच्छेद हो सकता था। गोरी के आक्रमण से आशंकित जनमत, भोग विलास में रत राजा के पास राजपुरोहित तथा राजकवि के माध्यम से अपना अभिमत प्रेषित करता है, पर युद्ध विरोधी तत्व कहीं परिलक्षित नहीं होते।

धर्म एवं दर्शन [१७] के संदर्भ में २३० शब्द ३६६ पर्याय सहित प्रयुक्त हुए हैं। प्रस्तुत काव्य में हिन्दू और इस्लाम दो धर्मों का वर्णन हुआ है। यवन का भी नामोल्लेख है। इस्लाम में रोजा,

---

(१७) देखिए अध्याय ५— धर्म एवं दर्शन का उपसंहार

रमजान, पांच जमाज और पीर उल्लेखनीय हैं। हिन्दू बहुदेवोपासक के रूप में वर्णित हैं। इन देवों की भिन्न भिन्न योनियां हैं और आकाश में उनके लोक भी बन गए हैं। ये देव देहधारी हैं। इनका अपना अधिपति इन्द्र है। ये पृथ्वी पर मंदिरों में मूर्तिरूप में पूजित हैं। इनकी इच्छा मानव की समझ से परे है और ये स्वत: सर्व-शक्तिमान हैं। ये स्वयं शुभ-संग्रही हैं और मानव को मांगलिक कार्यों के लिए प्रेरणा देते रहते हैं। भक्तों में इनकी पूजा प्रधानत: रक्षा और कार्य सम्पन्नता हेतु प्रचलित है। अतिरंजित वर्णन में उपमान के रूप में देवताओं का उल्लेख कवि का सहायक सम्भार है। इनमें दानवों की भी एक कोटि है जिनके गुणों को अपनाने की प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित है। पारस्परिक अवमानना की भावना स्पष्ट नहीं है। रणशूरों के प्रति देवलोक में सम्मान की भावना व्याप्त है। उनके स्वागत हेतु देवगण अति उत्सुक रहते हैं। रण में प्राणोत्सर्ग द्वारा अविलम्ब स्वर्ग प्राप्त करने की निष्ठा को इस युग में तनिक भी आघात नहीं लगने पाया है। परम्परागत मोक्ष के साधनों में तप, यज्ञ, योग एवं सम्यक् चारित्र्य सभी मान्य हैं, सुख किन्तु रण में प्राणोत्सर्ग को युग ने प्राथमिकता दी है। कर्मवाद और पापपुण्य पर आधारित जन्मजन्मांतर वाद को अनिवार्य मान्यता प्रदान की गई है। काव्य में यद्यपि सम सामयिक बहुचर्चित बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त, और गोरखपंथी आदि धार्मिक सम्प्रदायों तथा षट् दर्शनों का नामोल्लेख नहीं है, किन्तु उनके मूल्यों के प्रति आस्था और उनके अंगीकार की भावना प्रतिबिम्बित है। अन्य अन्धविश्वासों से धर्म संकुचित नहीं हुआ है। धार्मिक क्षेत्र में दूसरों की अवमानना न कर उनके मूल्यों को ग्रहण करने की भावना, कर्म की प्रधानता या "जीव लग्गि सत्य न छंडहु" की प्रवृत्ति ने धर्म को भावी संकट से बचा लिया है। परवर्ती कबीर और तुलसी में

विकसित धार्मिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि में इन विचारों का महत्व अपार है ।

कला[१८] के संदर्भ में प्रयुक्त शब्दों की संख्या १६० है । प्राचीन भारतीय परम्परागत कलाओं में से विवेच्य काव्य में, ३७ कलाकृतियों का उल्लेख है । व्यावहारिक रूपों में ६ अभिनव कलात्मक सम्भार मिले हैं, । आधुनिक ललित कला के अर्थ में भी स्थापत्य, मूर्ति, संगीत, नृत्य और काव्य आदि कलाएं अपने विकसित रूप में हैं । अनेक कलाओं का सुंदर समन्वित रूप भी प्राप्त है । काव्य और काम कला को सर्वोपरि मान्यता मिली है ।

सामाजिक संगठन में परिवर्तन के तत्व

समाज गतिशील है । समाज में परिवर्तन लाने में निम्न-लिखित तत्वों का प्रमुख हाथ रहता है :—

युद्ध को अनावश्यक रूप से अधिक महत्व इस युग में मिल गया था । यह श्रेष्ठ सत्य का इष्टारंभ है ।[:१] हृदय से रणक्षेत्र को अच्छा तीर्थ जाना जाता है ।[:२] फलस्वरूप रजस् और तमस् उभड़े और सबों ने सात्विक मार्ग का त्याग कर दिया ।[:३]

---

(१८) देखिए अध्याय ६ — कला का उपसंहार

(१९:१) अतुल जुध भावध्य इष्ट आरंभ सत वर । ७:३०:३

(१९:२) धार तिथ्थ उरि जानि । ८:३०:२

(१९:३) राजसं तामसं मन प्रगटं । मुक्किं सातुक्क पेट्ट ।।
 ८ : १० : ६ — १०

कन्नौज में धवायत पृथ्वीराज को पहचानने पर जयचंद ने ललकारा कि संगठन कर इस पर आघात करो, घोड़ों और गजेन्द्रों को पाखरो, पृथ्वीराज भाग न जावे, यह सोच कर उस पर आक्रमण कर दिया।[:४] संप्रभुता की मर्यादा, सह-अस्तित्व, सहयोग और सद्-व्यवहार की आधार शिला पर इस घटना को उत्तमता की ओर मोड़ा जा सकता था। शत्रुता का कारण भी कितना उपहासास्पद है, कि यदि पृथ्वीराज जयचंद की सेवा करने में असमर्थ है, तो राजा क्यों है ?[:५] इधर पृथ्वीराज ने भी प्राणों के समान अपने दर्प को गिरता देख कर विपक्ष के असी लाख दल को पकड़ पकड़ कर खा डाला।[:६] इस प्रकार व्यक्तिगत सम्मान, सामोहिक अथवा राष्ट्रीय हित की अपेक्षा अनुचित रूप से अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। युद्ध करने वालों का विचार है कि शूर मरने में मंगली होता है;[:७] मंगल का द्वार मरण से है।[:८] इसलिए रण में तन को कटाइए और सम्मुख "मरण मांड़िए" यह निरुद्देश्य युद्धप्रियता नासमझ पतंगों के दीपक पर जल मरने के समान है।

विलासिता की अति

नि:सन्देह भारतीय पुरुषार्थ में काम की मान्यता है। किन्तु शास्त्रकारों की इसके संयमित रूप के प्रति आस्था

(१६:४) पहिचानउ जयचन्द इह त ढिल्लियसुर किध्धे। ८:१०
करि संचइ करिवार कहइ कनवज्ज मुकुट मनि।।
हय मयंद पख्खरउ भाजि प्रथिराज [illegible]जिनि।
इतनइ कहत भुअपति चढउ .... । ५:४८:१-५

(१६:५) असमथ्थ सेव जिम भूमि खाइ। २:३:८

(१६:६) प्रान समानं परत दप्प छोड्ड।
असियं लख्ख तल गहि गहि भख्खइ। १०:६:२-२

(१६:७) सूर मरण मंगली। ८:५:१

है ।" वही सुख सुख है,‡ जिसमें कामदेव का उत्कर्ष हो । काम विहीन जीवन संसार में मानो मरण है, :१० आदि काव्योक्तियाँ समाज के अदिष्ट अरिष्ट[११] की ओर संकेत करता है । राज्य के कर्णधार वृद्ध जयचंद का सुंदर नितंबिनी नर्तकियों और कामिनियों से नृत्य, वाद्य, संगीत, कोक और सुभाषण कला के साथ, सुखपूर्वक काम-कुंभों को ग्रहण कर, हरि और हर के गुणों से परिरंभण करते हुए नित्य जाग कर रात्रि व्यतीत करना शुभ का लक्षण नहीं है । :१२ लोक नायक पृथ्वीराज का छः छः मास तक संयोगिता के साथ केलि-विलास में रत रहना, हर्म्य से बाहर न निकलना कर्तव्यों के प्रति महान् उपेक्षा है । इसी में उसने अपनी शक्ति नष्ट कर दी । इस अवसर से लाभ उठाता हुआ गोरी ने भारत पर आक्रमण कर दिया । उसने पृथ्वीराज को पराजित किया, जिसने भारतीय समाज को एक अन्य दिशा में मुड़ने को बाध्य किया । पृथ्वीराज संयोगिता केलि विलास के प्रति राजगुरु ने भविष्यवाणी की थी कि " जब भावी नर भोगवइ तब विधि अप्पइ मत ।।" (१०:१३:२) ।

आत्म-हीनता और देव-परवशता

भारतीय राजागण मात्र " इह विधि विलसि विलास असार सुसार किय " ही नहीं, बल्कि भी अपनी दूरदर्शिता भी समाप्त कर दी । पृथ्वीराज, स्वप्न में, एक सुंदरी के साथ परिरंभण करने

(१६:८) मंगल बार इह मरन । ८:५:५

(१६:६) ते तन छंडि ... । ... संउ मरन संमुख मंडिअ । ८:५:५-६

(१६:१०) सुष सुष धार आरोह असर संसार मरण मन । १०:२५:२

(१६:११) सपनंतरि सुंदरिय लग्गि आरंभ परिरंभह ।
ताह तब संग सुकीय तेव कहरिय रवि गिंभह ।।
तिनि मिलि करि भंगुल गरुअ करु वर बल जंपहि ।
तहाँ अदिष्ट अरिष्ट दिष्ट,.... । १०:२८:१ से ४ तक

(१६:१२) ६:३५ और ५० समस्त पद

के परिणाम के लिए कहता है, " पता नहीं कि देवताओं की सभा का क्या अभिमत है, और किस निर्माण के लिए (उद्देश्य से) उन्होंने क्या निर्मित किया है, [१३] तो वे वास्तविक परिरंभण के परिणाम को कैसे समझ और उसके प्रति कैसे सजग रहसकते हैं। स्वप्न में सुन्दरी-परिरंभण के कुपरिणाम से सामना करने की शक्ति और साहस पृथ्वीराज में नहीं है। उसके लिए अभय-पंजर [१४] (यंत्र) का सहारा लिया है। सहस्र कलश भर कर क्षीर रवि-शशि को अर्घ्यदान किया। [१५] दस हाथी, दस वृष, दस महिष, तथा अनन्त मोती दान किए। [१५] आत्मशक्ति इतनी क्षीण हो गयी कि म्लेच्छ सरदार के हाथ में पृथ्वीराज पकड़ा गया और कहा गया कि " विधाता लिखितं यस्य न तं मुंचंति मानवा: " (११:१७:१); " विधनाविधान मेटइ कवन दीन मान दिन पलयइ " (१२:४६:५)।

बुद्धि-संकुचन

इस समय उत्तम गृहिणियां वे समझी जाती थीं जो नगर आवासों में रहती थीं, [१६] सूर्य को नहीं देख पाती थीं (दिनकर दुर्लभा), [१७] मात्र पति को सुख देने के लिए निर्मित थीं। [१७] जयचंद अपने जीवन को भार स्वरूप समझता है, यदि वह पृथ्वीराज को पकड़ नहीं लेता। पृथ्वीराज को पकड़ना अथवा मरण द्वारा अपना जन्म-भार उतारना यही उसके जीवन का उद्देश्य बन गया है। [१८] आदर्श, सामाजिक व्यवहार, और नियम को कम महत्व देकर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को अधिक प्रधानता दी गयी है। जब पृथ्वीराज-संयोगिता के पाणिग्रहण में ~~लौकिक आचार द्वारा~~ लोक मर्यादा का अतिक्रमण किया गया है [१९] तो यहां आदर्श और कार्य में वैषम्य मिलता

(१६:१३) जानिय न देव देवांन मतु किहि निम्मान कारन निम्मयउ।
१०:२८:६

(१६:१४) १०:२६:३

(१६:१५) दस वारण वृष दान दस महिषालि मोति अनंत दिय।
१०:२६:५

(१६:१६) नगर सि नागर नर घरणि रहहि ववासि आवासि।
८:१७:२

है । जयचन्द अपने महत्वाकांक्षा में इतना असहिष्णु हो गया है कि अमात्य के राजसूय यज्ञ सम्बन्धी सुमंत्रणा पर क्रुद्ध हो गया और कहा, "यदि मैं अब लघु लोभ-लाभ करता हूं (और उसके लिए यज्ञ नहीं करता हूं) तो यह मेरा अज्ञान होगा ।" :२०

जातीय चेतना-प्रधान मुसलमान

हिन्दू-राजा गोरी (सुंदरी) पर अनुरक्त है और मुसलमान शाह-ए-आलम गोरी भारत भूमि को अपनाने पर अनुरक्त है । :२१ इसके लिए गोरी ने अपने सरदारों से सच्ची राय मशविदा की। :२२ सरदारों ने हाथ जोड़कर कहा, " शाह (शहाबुद्दीन) की आन है, कल सुबह हम शत्रु पक्ष के योद्धाओं की आन छुड़ा देंगे । हे अमीर, हम हिन्दू नहीं हैं, हमारा दीन, रोजा और रमजान का है। हमारी पांच नमाजें बेकार हों, यदि इससे विपरीत हो । हम न दरोग (झूठ) कहेंगे और न दोजख में पड़ेंगे ।" :२३ ये बोलते कम हैं । :२४ दिल्ली को ढीला करने को ये झांक रहे हैं । :२५ इनमें हिन्दुओं की तरह काम-पिपासा नहीं है ।

हिंदू समाज के कर्णधार कलह-प्रिय और विलासी हैं । सामान्य जनता जुआ और वेश्याओं में अनुरक्त है । मध्यम वर्ग दरबारी बने रहने में ही सुखी और सन्तुष्ट है । लक्ष्य विहीन समाज की बुद्धि संकुचित होने लगी । ये नवोदित जातीय चेतना प्रधान

(१६:१७) दसन दिणिअर दुल्लही ।
सुह कारणि विहि नम्मयी । ८:१८:१-२

(१६:१८) कोपियं वीर विजपाल पुतं ।
मावियं कंम हा भार दुतं । ८:१०:५-६

(१६:१९) लोक लोक चंपहि । ६:१५:२४

(१६:२०) झुकि पंगुराय मंत्रिय समान ।
लहु लोह अब्ब वो लहुं अयान । २:१:१७-१८

(१६:२१) गोरी रत्तउ तुव धरा हूं गोरी अनुरत्त । १०:२०:१-२

(१६:२२) मसूरति बुधि की । ११:६:६

मुसलमानों के संपर्क में अपने को उत्तम नहीं प्रमाणित कर सके ।

समाज गतिशील है । सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए (१) अधिक युद्ध - प्रियता, (२) विलासिता की वृत्ति, (३) आत्म-हीनता और दैव-परवशता और (४) बुद्धि-संकुचन के शक्तिशाली तत्व विद्यमान हैं । इसी समय नवोदित एवं जातीय चेतना प्रधान मुसलमानों का आक्रमण होता है । शहाबुद्दीन गोरी ने अंतिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज को पराजित कर अफगानों के लिए भारत में राज्य-स्थापन के लिए मानों प्रवेश-द्वार खोल दिया है । इतिहास में यह काल, लगभग सन् ११९३ ई० के आस पास का, बहुत महत्वपूर्ण है । प्राचीन-कालीन हिन्दू सभ्यता और संस्कृति आक्रान्त होकर अपने मध्य-युगीन रूप (अफगान और मुगल सभ्यता तथा संस्कृति) में पदार्पण कर रही थी । एक सर्वथा भिन्न म्लेच्छ-जीवन-दर्शन का सफलता से आरोपण होरहा था । नई आपत्तियों, अपरिचित समस्याओं एवं उनकी प्रतिक्रियाओं की से उत्पन्न नव स्थिति के साथ अनुकूल एवं प्रतिकूल आदि दशाओं में से होकर समाज को गतिशील होना पड़ा । वस्तुत: सन् ११९३ ई० के पूर्व का भारतीय समाज सप: परिवर्तित-प्राय स्थिति में है और परवर्ती समाज एक सर्वथा भिन्न, नवीन संकटापन्न समस्याओं और प्रतिक्रियाओं से प्रताड़ित परिस्थिति में है । महाकाव्य को सम-कालीन समाज का दर्पण कहा जाता है । प्रस्तुत काव्य को सन् ११९३ ई०

(१६:२३) तब खान खुरासान ततार खान रुस्तम कर जोरह ।
आन साहि मरदान आन सु विहान बिहोरहि ।
हउं हमीर हिन्दू न दीन रोजा रम आनहि ।
पंच निवाज विकाज करि न नारी सुम्मानहि ।
दे दुश्व दुश्व दे अब्बु हम नहि सुरोग दोनक परहि ।।
११:८ समुस्त पद ।

(१६:२४) बोलतै न लग्गौ । ७:१५:१२

(१६:२५) डिल्लिय डिल्लहि कग्गी । ७:१५:१६

के आस पास की पूर्व परिस्थिति का प्रतिबिम्ब माना जा सकता है और इसे परवर्ती घटनाओं एवं स्थितियों से सर्वथा अछूता माना जा सकता है यथा :-तेरहवीं सदी में सदैव की स्वतंत्र हिन्दू जाति परतन्त्र हो गयी । आसानी से अपनी स्वतन्त्रता को भुला देना कठिन है|सर्वत्र मुसलमान विजेताओं के प्रति हिन्दुओं में आक्रोश व्याप्त है| उनको सदैवचिन्ता थी कि कैसे अपनी खोयी स्वतन्त्रता प्राप्त करें । इसी लिए अपने इस राजनीतिक पतन काल में हिन्दू लोग एक क्षण के लिए भी अपनी स्वतन्त्रता नहीं भूले और उसकी प्राप्ति के लिए लगातार प्रयास करते रहे । देश के भिन्न स्थानों में जहां कहीं किसी को तनिक-सा भी अवसर मिला , तुरंत उसने पराधीनता का-जुआ अपने कंधों से हटाने का यत्न किया ।[२०] मुसलिम विजेता केवल विजय से ही सन्तुष्ट नहीं होते थे, सुलेमान के कथनानुसार वे पूरी शक्ति इस्लामी राज्य बना देने में लगा देते थे ।[२१] वे बलात्कार हिन्दुओं को मुसलमान बनाते थे। इस्लाम धर्म स्वीकार करो या मरने को उद्यत हो ;[२२] यही उनकी नीति रहती थी । मंदिर और मूर्तियां तोड़ी जातीं और उनके स्थानों पर मस्जिदें बनती थीं । अपने धर्म और पवित्र स्थानों का अपमान देखकर हिन्दू लोग सुख-शान्ति से न रह सके । उनके मन में बड़ा क्षोभ होता था, परन्तु वे बराबर अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास में विफल होते थे ।[२३] विजेता मुसलमानों द्वारा बच्चे, बूढ़े और स्त्रियां आदि की हजारों की संख्या में जीते जी खालें खिंचवा ली जाती थीं, उन्हें सूली पर टंगवा दिया जाता था, उनके गांव के गांव जला दिए जाते थे । भीषण नर संहार होता और उनकी संपत्ति बेदर्दी से लूट ली जाती थी । इन सब प्रतिक्रियाओं का पृथ्वीराज रासो के इस संस्करण में कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता । इस दृष्टि से रासो के इस संस्करण की संस्कृति को पृथ्वीराज के समकालीन मानने में कोई असंगति नहीं प्रतीत होती है । काव्य की

निष्कर्ष
(१) विवेच्य संस्कृति, पृथ्वीराज के लगभग समकालीन है —

---

(२०) डा० पी० सरन : प्राचीन व मध्यकालीन भारत, पृ० ३३७
(२१) वासुदेव उपाध्याय : पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ०६७
(२२) पूर्व मध्यकालीन भारत: रघुवीर सिंह, पृ० ४५

शब्दावली के सांस्कृतिक अध्ययन से उपलब्ध तथ्य भी इस रचना को पृथ्वीराज के सम सामयिक होने में कोई व्यवधान नहीं उपस्थित करते, अपितु प्राप्त्त्य निष्कर्ष का अनुमोदन ही करते हैं।

२) रासो के प्रस्तुत संस्करण द्वारा प्रतिपादित संस्कृति में कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव—

विवेच्य काव्य द्वारा ऐतिहासिक तथ्य रूप में प्रतिपादित निम्नलिखित प्रसंग अप्रामाणिक सिद्ध होते हैं :—

(१) राजपूतों को अनार्यों की सन्तान प्रमाणित करने का आधार चन्द्र-कुल की उत्पत्ति कथा को मानना।

(२) "किसी राजा की कन्या के रूप का सम्बाद पाकर दलबल के साथ चढ़ाई करना और प्रतिपक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हर कर लाना वीरों के गौरव और अभिमान का काम माना जाता था।"[२३]

(३) इस समय धार्मिकता की अति ने देश का विनाश किया, इस अनुभव से भागा नहीं जा सकता। धार्मिकता भी गलत ढंग की है, जिसका उद्देश्य परमसत्ता की खोज नहीं, प्रत्युत्, यह विचार है, कि किसका छुआ पानी पीना चाहिए और किसका नहीं, किसका छुआ हुआ खाना खाना चाहिए और किसका नहीं, किसके स्पर्श से अशुद्ध होने पर आदमी स्नान से पवित्र हो जाता है और किसके स्पर्श से हड्डीतक अपवित्र हो जाती है। ब्राह्मण और बौद्धों का सम्बन्ध सांप-नेवले का-सा है।"[२४]

(४) बाह्य कर्मकाण्डों के कारण धर्म के वास्तविक अर्थ को लोग भूल रहे हैं। विशुद्धता और नैतिकता किसी भी धर्म में नहीं है। लोग अनेक अन्धविश्वासों निरर्थक कर्मकाण्डों और गर्हित साधनाओं में निमग्न हैं। धार्मिक असहिष्णुता है। धार्मिक जीवन दूषित है। सच्चे-धर्म-भाव का ह्रास है।"[२४]

---

(२३) डा० पी०सरन, प्राचीन और मध्यकालीन भारत, पृ० ३३७

(२४) देखिए प्रस्तुत प्रबन्ध का अध्याय १.

(५) "चांडाल और भृत्य अस्पृश्य हैं। चांडाल शहर में आते समय बांस की लकड़ी को जमीन पर पीटते रहते हैं।" २४

(६) " इस समय, सामान्यतः, हिन्दू यही मानते हैं कि जिसके शरीर पर मुसलमानों के छुए हुए पानी का छींटा पड़ जाय, वह किसी प्रकार हिन्दू नहीं रह सकता।" २४

(७) क्षत्रिय राजाओं के मुसलमानों से पराजित होने के अनेक कारण जो प्रथम अध्याय में बताए गए हैं विवेच्य काव्य के प्रस्तुत संस्करण में नहीं मिलते हैं। यथा:-

(क) हिन्दुओं में मुसलमानों की अपेक्षा कुशल तीरंदाज न थे, किन्तु प्रस्तुत संस्करण में उनसे पराजित पृथ्वीराज के, बिना अग्रभाग के एक बाण से सात घड़ियालों को एक साथ मारने की कुशलता पर मुसलमानों को विश्वास भी नहीं पड़ता था। यह एक व्यक्ति और एक समय के अभ्यास का फल नहीं है। दशरथ के लक्ष्यभेदी बाण से श्रवणकुमार की मृत्यु की कथा लम्बी परम्परा का द्योतक है।

(ख) हिन्दुओं में कुशल नेतृत्व का अभाव रहा। एक ही रण-नेता होता था, जिससे उसके मर जाने पर अथवा घायल होने पर सैन्य संचालन अस्त-व्यस्त हो जाता था। विवेच्य काव्य में पृथ्वीराज के कन्नौज लौटते समय दिल्ली तक अनेक वीरों ने एक दूसरे की मृत्यु के पश्चात् सैन्य संचालन कुशलतापूर्वक संपादित किया है।

(ग) मुसलमानों की जीत का कारण उनकी सेना में अच्छी नस्ल और प्रशिक्षित घोड़ों का आधिक्य बताया गया है। प्रस्तुत संस्करण में हिन्दुओं की अश्वसेना में कोई कमी नहीं है। केवल जयचन्द के यहां अस्सी लाख घोड़े थे। वे विदेशी नस्ल के तथा विदेशियों से प्रशिक्षित भी थे। सेना में हाथियों का आधिक्य घोड़ों के हराने का उपयोगी और अभिनव प्रयोग था (देखिए अध्याय वाहन)।

(घ) कुछ इतिहासकारों की राय में मुसलमानों की विजय का श्रेय अपने दासों के साथ हिन्दुओं से अधिक अच्छे व्यवहार की मनोवृत्ति को दिया जाता है। तुर्कों द्वारा उत्तरी भारत की विजय का बहुत बड़ा श्रेय कुतुबुद्दीन ऐबक और मुहम्मद बख्तियार आदि तुर्की गुलामों को दिया जाना चाहिए। किन्तु जहां तक सद्व्यवहार का प्रश्न है, प्रस्तुत संस्करण

में कहीं भी दासों के प्रति दुर्व्यवहार का आभास नहीं मिलता, बल्कि चंद को भ्रम हो जाने पर पृथ्वीराज ने बताया है कि जिन सुन्दरियों का कवि चंद ने वर्णन किया है, वे नागर घरों की गृहिणियां नहीं दासियां हैं। एक अन्य स्थल पर स्वतः पृथ्वीराज को भ्रम हो जाने पर दासी ने ही अपना परिचय दिया कि मैं जयचन्द की दासी हूं।

(८) इतिहासकारों द्वारा वर्णित हिन्दू राजाओं के पराजित होने के अन्य कारणों में से — यथा हिन्दुओं का ढंग पुराना होना तथा मुसलमानों के लड़ने का ढंग नया होना अथवा हिन्दुओं की सेना का विशाल होना तथा उसके उचित संचालन में बाधा पड़ना अथवा हाथियों का बिगड़ जाना आदि— किसी का भी प्रमाण प्रस्तुत संस्करण में नहीं मिलता है

(3) कर्म तथा समन्वय प्रधान धर्म की स्थापना

प्रस्तुत काव्य के अतिरिक्त अन्य स्रोतों के आधार पर निर्मित इतिहास का यह निष्कर्ष सत्य जान पड़ता है कि तत्कालीन राजनीतिक क्षेत्र में एकता का अभाव था। छोटे छोटे राज्यों के शासक विलासी और युद्धोन्मत्त हो गए थे, परिणामस्वरूप हिन्दू राज्य को उन्होंने सदैव के लिए खो दिया। किंतु इतिहास के इस निष्कर्ष को यह काव्य स्वीकार नहीं करता है कि तत्कालीन समाज में सहिष्णुता, विशुद्धता, नैतिकता अथवा सच्चे धर्म का अभाव है। 'पृथ्वीराज रासो' के प्रस्तुत संस्करण में वर्णित धर्म ने (१) दूसरों के धर्मों की अवमानना न कर उसकी विशेषताओं को ग्रहण करने की भावना, (२) कर्म की प्रधानता की ओर (३) सत्य के प्रति आस्था तथा दृढ़ता की भावना जाग्रत कर हिन्दू धर्म को भावी संकट से बचा लिया है। परवर्ती कबीर और तुलसी में विकसित धार्मिक विचारों की पृष्ठभूमि में इस कथन को परखने पर उसका वास्तविक महत्त्व दृष्टिगोचर होगा।

शब्दानुक्रमणिका

भौगोलिक पर्यावरण

तुंग	४:११:४	तट	२:२७:१
पव्वइ	६:४:२	तरंग	४:११:२
पव्वय	९:१४:२	तारंग	१:४:१४
सुमेर	३:१७:२०, ८:९:१	तित्थराज	४:२०:२२
		त्रिवल्ली	४:२०:२२
सेयल	८:१०:२८	दरिया	५:१३:२२,७:४:८
हेम परवत्त	५:१३:७	द्रह	८:२६:२
		धारा	३:२:३
(३) वन	८:३:१ ९:१४:१	प्रवाह	५:५:३
		सलिता	७:४:१, ९:११:३
द्रुमदाह	२:७:१२	सिंधु	२:३:३, ५:१३:५ ६:५:१५, ११:७:१
वन नलाहु	७:६:१४		
वहिला वन	१:६:३	हरिगंगा	४:११:१
अहुं वन	७:१७:४		

(४) समुद्र	८:९:६	(६) जलवायु	
दरिआइ	५:१३:२२ ७:४:८	अंभ	११:१०:१३
		अंबु	२:२३:२
महादधि	७:२२:१	अनिल	२:१३:२, ८:१०:२२
समुद्द	१:४:११, ७:१२:४	कुहर	८:२०:२
		गिमह	१०:२८:२
सिंधु	७:१०:१९	गिम्ह	३:२९:४
(		ग्रीष्म	९:१०:४
(५) सरित्त	१:४:१४	जल	३:२:३, ८:३:४ ८:६:६
कलिंदीव	४:२०:२७		
कालिंदी	२:३:२७	तप(गर्मी)	९:१०:३
गंग	१:३:८ २:११:२ ४:११ ८:६:६	नार (जल)	९:१४:१
		नीर	१:६:२, ७:४:१४, ७:२४:१
		पावस रति	६:२६:४
जांह्नवी	४:१७:१		

प्रावृट्ट (वर्षा ति)	६:११:४
फुंकार	६:१४:२
मलय	६:१०:४
मेह	७:१७:८
रित	४:११:१०
रितुराज	२:७:१०
वंसत	२:५:२०,४६ ६:६:४
वात	२:५:२७
वारि	३:१७:१३
शिशिर	६:१४;३
सम्मीर	२:७:६
सरद	४:१४:३४ ६:१२:४
सरद	४:२५:२४
सिसिर	२:५:४६
सीत	४:१०:२८ ४:२५:६
हिम (हेमंत)	४:११:१०, ४:२५:६
हिमवंत	६:१३:४
हेम	८:३:४

(७) उपज (अन्न)

कंदला कंद	७:१७:२०
जव	२:४:१, ८:३०:३

(८)तरु	४:७:१०
अब	२:५:२६
कदली	२:५:४१
कलीय	२:५:३७
केलि पत्त	७:६:२
चंदन	६:२७:१,६:१०:४
द्रुम	२:७:१०, ७:१७:१६
पत्त	२:७:६,१०, ४:७:१०, ८:१०:२२
पल्लव	२:५:१७, २:२०:३
मंजरी	२:५:१६, ४:११:१३
रंभ	४:१४:८, १०:११:१०
रंभ नारुहे	३:१७:३३
वनराइ	७:१०:१६
श्रीखंड	१०:११:४
सिखरा	६:६:१
(९) करे (फल)	२:२०:२
अनार	३:१७:१८
अर्कफल	८:१०:२०
बिंबीन	२:२०:२
दाडिम्म	५:७ :१
दालमी	४:१४:२४
नारंग	४:२०:२६
बिंब फल	२:७:१५, ३:१७:१६
बीअ	४:१४:२०
(१०) कुसुम	२:५:३३, ६:१२:३
अंबुजा	३:१७:४०
अंभोरुह	५:७:१२
अरविंद	४:२०:४०, २२:२:२
इंदीवर	४:२५:२

कंज	१०:११:१५
कुंद	२:५:२४,१०:११:५,२२
कमल	२:३:४२, ३:३३:६, ६:१४:३, ६:२८:२ ७:६:७, ८:२६:४
कमलाकरि	८:२०:२
कमलिनी	६:११:२
कलिकाकुल	६:१४:३
कुमुदिनी कली	७:१८:२
कुवलय	४:१६:१
केत	२:५:३६
केतकी	२:५:३६
कोकनद	४:२०:२१
चंपक	४:२५:५
जाय	४:२५:७
नलिणी	६:१३:३
नाल	६:१२:४
पलास	२:५:२५
पुहुप	४:१२:२
बेलु	४:२५:७
मधु	१०:११:२६
मालव	४:२५:५
सरीप	२:५:३७
सरोज	७:१२:१६, ७:१७:३३
सेवंती	४:२५:७

(११) फुटकर — घास-पतवार

कास	३:२१:१
भंकुलिय	२:५:४३
णार (नरकुल)	४:११:६
तिन	१२:४६:४
त्रिनि	१०:५:३
दुबेदल	४:२५:५
मंजरि-सिवार	११:१७:१४
वल्ली	४:१२:४
साल	४:११:६
सिवाली	७:१७:३३
सुर (सरकंडे)	४:११:६
सेवरी	४:१४:६

(१२) खनिज पदार्थ

कंचन	४:६:१
कच्च (कांच)	४:२०:३४
कनक	६:३:१
कनक्क	३:१७:२५, ४:७:१४ ६:१५:१७
कलधूत	६:६११
गार (पत्थर)	३:२७:५
चीनी	४:२०:४
धातु	४:२४:२
नग	२:७:११, ५:८:४ १०:११:७
पत(धातुकाचादर)	२:५
पोति	६:१५:४
मनि	२:७:८, ४:२४:१
रतन	४:६:१, ४:२४:१
सप्त धातु	१२:४३:१
सार	८:६:५

(१३) जीव-जन्तु

फुणिादु (शेषनाग)	६:२२:१	मृग	४:२:२
बंनर	७:८:१	मृगमद	१०:११:४१
बनैचर (बानर)	७:१५:६	मृगी	४:२१:२३
बाराह	७:२१:६	मोती	४:२४:१
भमरे(भौंरा)	२:२०:२	मोर	५:२४:१
भमर	२:५:२३	वच्छ	२:४:१
भमर	८:१३:२	संघ	५:११:२
भुअंग	८:३:२	सिंघ	२:३:१२
भुजंग	४:१५:२	सिंघ	२:३:३७
भुजंगी	१:३:४	सिंघ	८:१०:२८
भ्रिग	४:१२:१	सिंघ	६:१४:४
मच्छ	७:१७:३२	सिंधुर	११:८:३
मत्स्य	८:२६:३	सुंड	११:१८:४
मधुप	७:२२:४	सादुर	६:६:१
मधुलेहि	२:५:२१	सुक्तिनंदन	१०:११:२७
मयंद	४:२०:२६		
मयंद	५:२०:२	(१४)पंषी	६:५:१७
माधुर	६:६:२	तुंड	७:१२:१२
मिगी	५:७:३	तमबुरन	१२:१८:२
मीन	२:२८:३	पंषि	६:५:२
मीन	४:२३:१०	पप्पीहा	६:११:२
मीन	६:६:२	परों	४:२०:३२
मीन	६:७:२से४	बग	४:२३:१०
मीन	६:१५:१२	मयूर	५:३८:१६
मुक्ता	१:२:१	मराल	३:१७:१
मुक्ति	२:३:४	मराल	५:३८:२०
मुक्त्यि	२:४:३	मराल	६:५:२

मराली	७:१७:३४	उड्ड	५:३८:१०
मोर	५:२४:४	कङ्कक	६:५:२२
मोर	६:५:२	कन्नौज	२:८:३
शालि	१०:११:२६	करनाटी	२:७, ८:३
षंजन	१०:११:३८	कासमीर	१०:११:६
षंज्यो	३:१७:१३	गज्जने १२	१२:१:१
षंजरित्र	२:५:१८	गज्जने देसि	२:७-३३
सारस	४:३:१	गज्जनि	५:१३:१६
सारस	५:५:४	गुरजर	७:२७:१
साटिक	६:५:३	गोवल्लकुंडा	५:१३:१६
साप	७:१२:२१	जंगलि	२:३:२७
सारंग	६:५:३	जंगलीराय	(८:४:५) ७:२१:३
सुक शालि	१०:११:२६	जालोर	८:४:२
हंस	३:१६:३	जोगिनीपुर	२:३:५
हंस	३:३१:६	डाहल	५:१३:१३
हंस	४:२५:३४	ढिल्लय	७:१:१
हंस	१०:११:८	ढिल्लीपुर	१:६:४
हंस	१०:२५:६	तिरहुति	५:१३:१०
हंस	१२:३८:५	तिलिंग	५:१३:१६
हंसा	१:२:३	थट्टा	७:२७:२
हंसिनी	१०:२५:६	दिल्ली	५:१:४
हंसी	१२:३८:५	दिल्ली	८:६:३
		देस	५:१३:११

(१५) प्रसिद्ध स्थान

		देसावरी	६:५:२१
अजमेरि	२:८:३	देसि	२:७:५
अब्बु	११:२२:२३	धरनिकंड	५:१३:३
अरब	६:५:२१	धार	७:२७:५
अलि	१२:४७:१	नागौर	७:२०:२

(१६) खगोल

-

(१८) समाज संगठन

षीचिया	११:१९:२२	कलत	३:३०:३
समन्नी	१२:११:८	कुमारी	५:२१:१
सवज्जे	१२:११:७	कुल	८:३:३
साध	४:२३:५	कुलबधू	८:३:३
सुपन्ने	१२:११:६	गंठि	६:१८:२
सुरंमी	१२:११:१	गरिठ्ठ	५:३:५
सुमेले १२:११:३	१२:११:३	गुरु	६:१२:१
सुसुन्नी	१२:११:२	गुरजन	२:३:१२
सुसुन्नी	१२:११:८	गुरुजन	६:१२:१
सुहक्के	१२:११:८	गोरी	२:७:५
सुहन्ने	१२:११:५	ग्रह्नी	७:२४:२
सोनार	२:३:५८	धरणि	४:१७:२
सोलंकी	७:२०:४	धरनि	८:६:५
स्रवनी	१२:११:२	जुवती	३:३:३
हकम्मे	१२:११:५	तनय	१२:१:२
हवस्सी	१२:११:५	तरुणि	३:३३:६
हसल्ले	१२:११:२७	तात	२:११:१
हिंदुराइ	११:७:३	त्रिय	४:२५:१८
हींदू	११:१२:१७	त्रिय	१०:५:३
		थवायत	५:२०:१

(१८) परिवार

		दासि	५:२३:१
अंगनं	२:१३:६	दूती	६:१२:३
अंगनं	६:२७:१	दूती	६:१४
अरधंग	४:११:३	दूती	६:१५
अरधंग	१०:२५:५	धीय	२:१६:२
आचारु	६:१५:२३	नंद १:६:३	१:६:३
कंत	२:५:२२	नायिका	४:२३:१
कंत	३:४:४	पतिनि	३:७:४

पथिक बधू	७:२२:२
पनिहारि	४:१६:२
परधिं	७:१:६
परमारि	३:११:३
पानिबंध	६:१५:२१
पानिगहउं	२:११:२
पियनि	२:५:२२
पीय	२:५५:४४
पुत	२:३:१६
पुत	२:३३:३३
पुत्तिय	२:११:१
पुतीय	२:१६:२
पुरिषन	५:२५:१
प्रमद	६:१३:४
प्राणेश	२:२५:२
बंधव	६:८:४
बंधू	२:३:६
बांधव	६:८:४
बाल	६:२३:१
बाला	३:३४:१
भरतार	४:१८:१
भृत्त	६:२३:७
भृत्त	११:७:६
मात	२:२३:१
मातु	३:३२:१
मान रिस	४:२०:३५
मानिनि	२:४:२
मित्र	१२:१:६
मुग्ध	६:२३:३
राजनि-पुत्तिय	२:५:१
रमा	३:२:१
रवनि	२:७:२०
रष्षत	५:२६:१
ललनानि	६:३:१
लोक	६:१५:२४
वनित	४:१४:१०
वामंग	६:३३:१
वर	२:१०:११
वर	३:३०:४
विरहिनि	२:५:२७-२८
विरही	७:२३:२८
वल्लभ	२:२२:१
संजोग	२:४:४
सांमि	३:१८:२
सइंवरह	२:३:५३
सजन	१२:२:१
सहगवनि	३:३३:१
सहचरिति	२:[illegible]:३
सहि	२:४:३
सुकीयं	४:२०:३६
सुकीय	१०:२८:२
सुतउ	५:१३:२४
सुभग्ग	१०:२६:१
सुमुद्धा	३:५:२
सेषजादे	१२:११:६

समाज की आर्थिक स्थिति

अकाल	६:४:२
अकाल	८:२२:२
कृपणा	८:५:२
गम	४:७:१४
गोमग्ग	६:१०:२
जुआ	४:२३:३
तंबोर	४:२५:३
दव	४:२५:८
दव्व	२:२३:३
दव्व	४:२३:८
दलिद्र	५:१४:२
दलिद्र	६:१५:१६
धातु	४:२४:२
निघ्घनीय	२:५:१५
पंथ	२:५:४७
पथि	७२२:२
बजाज	४:२५:६
मंगन	८:५:३
मग्ग	४:२५:३
मग्ग	८:१:२
मग्ग	११:७:६
मग्ग	१२:१३:१
मनि	४:२४:१
मुत्ति	६:७:२
मोती	४:२४:१
रतन	४:२४:१
रह	१२:२:१
रिध्धि	६:१५:१६
रुप	४:२३:३
वह	८:१०:१०
वेसानि	४:२३:७
सेतु	१:४:१२
सोनार	२:३:५८
हट्ट	४:२५:१
हाटक	४:२४:२

(20) शरीर

अंजली	१०:११:१५
अंगुरियाइं	२:२३:२
अंगुलि	३:१०:२
अंगुरी	३:१७:३६
अंगुलि फिरइ	६:३०:२
अंगुली	६:१४:३
अंत	७:१७:३४
अंषि	३:७:७
अंस	३:१६:३
आंख	६:१५:१२
अचेत	८:२७:१
अच्छि	५:३६:२
अधरा	५:७:२
अोन	८:८:१
आरत्तता	४:२०:१५
आड्	४:१४:३३
आ ठ	५:७:२
उअंग	६:१५:८

उर	३:२७:२
उर	२:१२:२
एडिया	४:२०:३३
कंप	६:११:१
कुकंभ	४:२०:३०
करंक	७:१७:२८
कच	१०:१८:१
कच	१०:११:४३
कच्चू	४:२०:२१
केस	३:१७:५
कमर	३:७:७
कटि	२:८:१
कटिच	३:१७:३०
कर	५:३:१
कष्ष हतर	३:२७:२
कानि	२:१०:६
किसोर	२:५:६
कुच	६:१४:२
कुच	१०:११:१५
कुच्च	४:१४:१३
कोय	४:१४:२६
गंभ	३:३२:१
गलिंद	१:३:४
गात	२:२३:१
गातयो	३:१७:७
गिरा	१:२:२
गोभा	४:२३:१८
ग्रीव	२:७:११
ग्रीव	२:१३:३
ग्रीव	१०:११:२३
चक्षु	१०:११:३५
चच्क्षु	४:६:२
चम्भ	१:३:१०
चरण	४:११:१०
चरणातर	१०:११:३
चषन	२:५:८
चष्षो	१:३:१२
चषि	३:७:७
चित	४:७:१
चिहुरा	२:२४:१
चिहुरारि	१:२:४
चुटि	८:१६:२
छुतं	१:१:१
छत्रिय	३:७:१
जंघ	१०:१:१०
जंघया	४:१४:७
जंघा	२:८:१
जंघा	४:२०:२७
जघना	१:२:४
जटा	४:११:३
जटा-जूट	१:३:१
जरा	१२:३८:३
जिनके मुष मुच्छ	७:४:२१
जीह	२:१५:२
जुबजन	२:५:१३
जोबन	२:२२:१

श्रवन १०११:३३
श्रवन्न ३:१७:११
श्रोणि १०:११:६
अप्पर ८:१६:३
संकुरिह २:३:१२
संध ७:१५:८
सहया १०:११:२६
सराय ३:३६:५
सरीर १:२:२
साम-दान २:१३:२
सिर २:५:२६
सिक्ख २:१:१५
सीस २:३:३५
सुरे १:३:७
सोनिंत ८:१६:४
स्रवन ५:२४:११
स्वननि २:५:१४
सुति १:१:३
स्वाति ४:२०:१६
स्वेद ६:११:१
हंस ७:१२:२१
हत्थु ३:७:१
अपुथ ८:१०:२४
हथ्थिय ३:११:३
हदं १:३:८
हिर्दंड १२:४:१
हिय ३:३३:५
हिय १०:११:१७
हियई ३:१२:१

हृदय ६:१४:३

(२१) खानपान

आहार ४:२०:४
दुम्मीन ७:१४:२
पन्न ७:१५:१
पल ७:१७:२७
महिष ४:२२:५
रघ्धामु ३:३:४
वारुणी ११:१२:२
विषकंद ३:२४:१
साकरंपय ५:६:४

सुगन्धित वस्तु

अगर धुम ६:५:१
अब्बीर ४:२३:१५
उच्चिष्ट १:४:१६
गंध १:१:१
घनसार ५:३४:१
घ्राण १:१:१
तंबोर ४:२५:३
तम्बोल ५:४६:१
तम्बोल ६:१७:२
पान ५:२१:२
मद १:१:१

वाद्य

आवझ ६:५:६
उपंग ५:३:१
वाद्य ७:४:६

तुंभर	३:१७:३
नफेरिय	७:४:६
निसानं	४:७:६
निसानं	१२:१८:१
निसान	७:३:१
दिसा	७:१२:३
बंस	२:३:५६
बंस	५:११:१
वज्जन	५:११:१
मृदंग	५:३३:१
मृदंग	५:३८:२३
बंसी	५:७:३
वज्जन	६:८:२
वज्जन	७:७:१
वीन	६:६:४
वीना	१:२:३
वैनि	५:७:१
संष	५:१२:२
सहनाइ	७:४:१०
सिंग	१:३:७
सुराग	३:१७:४

वस्त्र

अंचल	६:२७:३
अंचले	४:१४:१७
अंबर	४:२०:३७
अंबर	१०:११:४६
अंमर	३:१७:२२
अमरु	१२:७:४
अलकइलता	४:१५:१
कंचुकी	१०:११:१६
कच्छ	४:१४:८
कंतानि	४:२५:१७
कपट	५:३४:२
काऊवासं	३:३४:१
कुंज	४:२५:११
कुसुंभ	४:२३:१७
कुसुंभसार	५:३८:१०
गंठि	१२:४०?२
चम्म	१० :३: १०
चीर	१:२:२
चीर	२:७:६
चीर	२:२४:१से४
चीर	७:१७:३५
जमनी	५:३४:२
तनसुष्ष	४:२५:१५
तानं	४:२५:१७
तार	४:२५:१०
पामं	४:२५:१७
पट	४:२४:२
पटोर	४:२५:११
बसमन	२:१७:१६
सार	४:२५:६
सार	४:२५:१०

(२४) आभूषण-

अंगोले	५:३६:३	नूंपुरे	३:१७:३७
अंगोलिता	५:१०:२	पोति.	६:१५:४
आतपत्त	५:१२:२	भूषण	२:३?५६
कंकन	४:२५:२३	भूषन	७:२:२
कंठ	६:१५:४	मंजीर	४:२०:१
कंथी	७:६:३२	मणिबंध	१०:११:४५
कनक	५:१३:४	माल	२:३:६
कलंगी	४:२०:१७	मुंदरिय	१०:१५:४
कुंडला	१:१:३	मुक्ताहार	१:२:१
कोर	४:२५:१४	मुत्तयो	३:१७:१६
गुंज	४:१४:२८	मुत्ति	५:३८:२०
गुंजाआर	१:१:२	मुत्तिहार	२:३:४
चमरेन	५:१०:१	रसाना	१०:११:११
चामर	४:११:१२	रुंजा	१:१:२
छत्र	२:१:७	शेखर	५:३८:११
छत्र	५:५:३	श्रृंगार	६:११:३
छत्र	५:१५:१८	सिरताब	१२:१३:१३
छत्र	६:१२:२	सिरोमाल	१:३:५
जड़ाव	४:२५:१३	सीस	३:१७:२६
ताट	३:१७:११	सुरचि	३:१७:२२
त्रटंकता	१०:११:३३	सोभ	४:२५:३०
त्राटंक	४:२०:११	हार	५:१०:४
थार घंटिका	५:३८:७	हेमतार	४:२५:२१
नाभु	१०:११:७		
नूपुर	३:५:२		
नूपुर	५:२४		
नूपुर	६:६		

(२४५) घर-नगर

अक्षिय	४:१३:२
अयन	१०:११:१७

आवास	५:२६:२
आवास	२:२७:१
कनक थंभ	४:१५:२
कपाट	१२:४८:५
कोट	२:३:१८
कोट	७:१६:४
गउष	६:५:१
गेह	६:१५:६
ग्रहि	२:३:५८
ग्रहे	११:१२:१६
गृह	४:६:२
ग्रेह	३:२८:२
घरि	१२:१:१
जनेतं	६:१३:१
डंग	६:१४:१
थंभ	२:१७:३
डंग	११:१२:१२
दर	१२:१०:२
दुआर	४:२१:२
धवलगृह	५:२१:२
धवलेहु	२:३:६१
धाम	२:३:६१
नयर	६:१:२
नयर	४:७:१६
पट्टन	४:२३:२४
पट्टन	११:१०:२३
पुर-पुरह	१२:३२:२
पुरि	५:२५:२
बन्दनवार	२:३:५७
वीह	७:५:२
मंदिर	२:२४:१-४
मंदिर	८:२८:५
मनारं	७:१६:४
हर्म्य	६:४:१

(२५) ग्राहस्थोपयोगी वस्तु

अगर रस	५:३४:१
अगिनि	२:१७:२
अप्पु	४:११:७
आतप्प	८:१०:११
आसन	३:१७:१
आसन	१०:१८:१
उरारि	१०:११:३७
कग्गरु	१०:२०:१
कनककुंडी	४:२०:३
कलस	४:१३:४
कूप	४:२३:१०
कूल	२:३:२७
चंदनु	६:२७:१
कीर	२:२०:२
तमोर	२:५:१०
तराजू	४:२५:२७
तिल	८:३०:३
थार	६:१३:१
तर्पणा	४:२०:३५
दासि	६:६:४
दीप	२:५:३८
दीप	५:३४:१

दीपक ३:४:३
दीपक्क ३:५:२
दुम्मीन ७:१४:२
दूध ४:२०:४
धवर ८:३२:६
धुंमर ३:१७:४
नीर ४:१४:१
पय ५:६:४
पावक्क २:५:२७
बंदन १०:११:२८
बग्ग २:५:२५
बारि ६:२५:४
भूज ३:४:४
मधू ८:३०:३
मधु १०:११:२६
माल ११:१०:१०
मुकलु ६:४:२
वच्छी २:२०:२
संकु २:५:७
संजर २:५:३५
संबर ६:१३:२
संदूक ७:१०:१४
समल १२:७:४
सर ७:१७:२७
सर ६:२:१
सर १०:२५:६
सरोवर ३:३१:६
साकर ५:६:४
सारंग ४:२०:१०

(२५क) सयनासन—

तल्य ६:२५:३
प्रजंक ६:६:३
सज्ज ६:१३:२
सयन ५:३२:२
सेज्या ४:२३:१५
सेभ्फि ४:१५:१५-१६
सेभ्फया ४:२३:१५-१६

(२६) मनोरंजन

अवसर ५:३२:२
आषेटक ३:१:१
उच्छह २:६:३
कहल ३:६:२
केलि १:६:१
जुआरी ४:२३:३
जुव ८:१०:२४
चंग ७:२२:२
तमास १२:३२:४
नन्द ५:११:१
नट-नाटक १२:६:१
नट्ट १०:२४:२
पारधी ७:२१:६
फिरक्कि ५:३८:१५
बासन्त ४:२३:१६
मल्ल ७:१६:१४
मीन ६:६:२
रंग ६:७:१
बच्छ २:४:१

सोमेसुर	३:६:३
सोलंकी	७:२०:४
सोलंकी सिद्ध	५:१३:१४
हरसिंह	८:१०:२७
हिंदुराय	११:७:३
हिंदुराइ	११:७:३

समय, स्थान, दिशा, रंग- सूचक नाम

अगे	१:१:३
अषाढ़	५:२४:४
अष्टमी तिथि	७:२१:८
आज	२:३:१४
आज	२:३:५४
आदि	१:३:३
आरंभ	२:३:२
सिंधु	२:३:३
आषाढ़	७:१७:८
उत्तर	४:७:१६
कबहूं	२:३:२६
कलि	२:३:१४
कलिजुग्ग	२:१:१२
कल्ह	१२:१५:१४
कविरं	१:६:१
कविर	१:६:१
कातिक	६:१२:३
कोस	८:६:३
विखन	१२:६:२
गहिरा	१:२:२
गौरी	१:२:२
घटिय	३:१८:३
घना	१:२:४
छन्दा	५:३६:१
छपर्या	६:१०:३
जंभ	१२:१:४
जामदाइ	११:१२:१७
जाम	२:१३:६
जाम	३:४:१
जाम	५:३१:१
जामिनी	३:१७:२६
जुग	२:१:१२
जुगं	३:२८:४
जोजन	५:५:२
तद	१:३:१६
तब	२:३:७
त्रतिय	१२:१२:१
त्रेता	२:३:१७
दक्खिन	४:२:२
दिन	२:३:५४
दिनअर	७:२५:१
दिनु	२:१:१४
दिवस	४१५:१
दिसि	७:४:१४
दीह	२:२:१
दीहा	६:१०:१
दीहाइ	२:२:१
दूर	२:३:४३
दूरि	१:३:१६

द्वापर २:३:१६
नयन सयन ३:४:६
नवमी ७:३०:१
निमिष्ष ३:३२:५
निसा ५:३२:१
निसि ३:६:१
निसि ३:१६:३
पल ३:४:६
पल ३:६१
पल ३:१८:३
पहर ३:१६:१
पीत ३:६:१७
पुव्व ४:७:१५
बुह फटिग ४:७:१३
प्रात ३:२०:४
प्रातयो १३:१७:८
प्राची ८:७:२
बरस १२:१:३
बरिस २:५:२
भद्द १:३:१५
भद्द ७:३:२
भरणी नक्षत्र ७:२१:१
मभ्क २:३:६
मभ्किम्भ २:३:१४
मध्याह्न ८:१०:२३
मध्याह्न १२:५:२
याम ४:५:१
यामिन्या ६:११:१
रजनी ३:३:१
रवे २:३:४४
रयणि ३:४:१
रैयनी २:७:१४
रैण ८:६:१०
वार १२:२७:१
वासन् ३:३२:१
वासर ६:११:४
विपहर ७:२६:१
विहान ४:७:८
लम्बी १:२:४
शुक्रवार ७:११:२
षरीय ३:४:५
षिन ३:३८:१
षिन ६:१:२
षिनुक ५:४५:१
संभ्क २:३:४२
सतजुग्ग २:३:१५
सबरिय ४:७:८
सर्ब ८:६:१३
सुरैणा ११:१०:१५
सुवानि १:२:३
सूर्यकिरण ८:६:६
सैतम १:२:२

(२८५) लोक दृष्टि

अंगीक्रित ५:८:३
अवरिद्ध २:१२:१
अविष्ट १०:२८:४
अहल २:१४:१

विभव	१०:७:३
विलसति	१०:४:२
विलास	३:१२:२
विलास	३:४३:४
विसासि	२:१०:८
वीर	१:३:६
श्रेह	२:३:५
संग्रान	२: १३:४
संवाद	२:२५:१
सच्छ	३:१७:२४
सफल	६१:४
सबुदा	१:२:१
समदिष्ट	१०:६:१
सरणि	३:३३:१
सरवग्गि	१०:१७:३
साज	२:१०:१०
साल	१२:२६:२
सिरनयौ	१२:३३:२०
सिरनायउ	३:२०:३
सीस	५:३:२
सुंदरि	३:२२:१
सुंदरि	१०:१५:३
सुख-योग	६:८:२
सुदान	२:३:५६
सुढिग	२:१:५
सुढि	२:१३:५
सुपनंतरि तथ्य	१०:२७:२
सुभ	६:४:१
सुमन	११:७:५
सुरपुर	१०:१२:१
सुलार	६:८:१
सुहं	३:१७:३२
सुह	४:१८:२
सेव	४:१०:८
हठ	३:२५:१
हनउ	३:२७:३
हम	१२:२१:१
हरषिय	८:१२:१
हसउ	७:२७:४
हसौ	१२:३०:१
हिर	१०:२२:२
होम	७:१७:३

(२८) राजनीतिक

अंग्पज	३:३६:४
अठ्ठ सुरतान	५:१३:८
अथिथआवास	३:३:१
अदब्ब	१२:१३:२१
अनग्ग	२:१:३
अरि	३:३८:१
अवाग्ध	४:१४:३१
असि	७:३०:२
आहारे	६:५:१
संग्राह	
आयसु	१०:२३:१
आर	१:६:२
आवभुक्	८:१०:१२
आसिष	३:१६:४

व्यापकता ७:६: सपद
व्योम पंक ७:१२ सपद
संग्राम ६:५:३
सारंगो ३:१२:१
सिंगनी ११:१४:२
सिंगिनी १२:१३:१७
सिंगिनी १२:४७:१
सिंहासन ५:३१:१
सथ्यि ५:३:४
सभ ३:१६:३
सभा ५:२३:२
समयि ५:२२:२
समर ३:४१:३
समसेर ७:४:१५
सयन ११:१३:२
सयन्न ३:८:१
सर ३:११:२
सरणा ८:२:५
सर सत्त १२:१३:१५
सह ५:२६:१
सहर ११:१२:७
साइबक ३:१२:१
सामन्त २:३:६
सामन्त २:१५:३
साहि २:३:३१
साहिस्स ३:६:२
सिरि टट्टर ८:३४:६
सुकवि २:५:३६
सुलतान ११:७:१

सूर ३:१६:३
सूर ५:१३:२
सेन ८:१०:१-२
सेव २:३:८
सेव २:३:४६
ष्टुंद ६:२२:१
षग्ग ७:१७:४
षग्ग ८:१६:३
षग्गे ११:१२:१
हमीर ११:८:३
हमीर ११:१२:१७
हार ७:२५:४
हेजम ५:१:२
हेजम ५:२:१-२

(२५) धर्म

अघ ४:११:१
अच्छरिय २:१४:५
अच्छरी ८:२४:३
अछूरी ६:१५:८
अच्छरिय २:१४:४
अघ ४:११:२
अच्छरिय- २:१४:४
अच्छर ७:२५:४
अजय १२:३५:४
अन्तक ५:१०:४
अतंकु ३:३३:१
अदेव १३:१७:३४
अध्वदान ६:१४:४

संगीत २:५:४१:४२

संगीत ५:३८:१७

संगीत ४:२३:१४

सरसइ वरु ५:४:४

सरसेत्ते ५:६:२

सफधसे कीि

सारन रीति ज्ञान ५:४०

सुकथ ८:३५:५

सुक्कदेव १:४:७

सुगंधित द्रव्यबनाना ६:५:१

सुंदरि रस-रास-विलास १०:१५:३

सेवाकार्य ४:१०:८, ३:३६:१

स्मर १०:१२:१

सुध्धि ४:१६:२

सेस ११:४

(३९) कहावतें तथा सूक्तियां

अंगमउ समर दुहिन भुम ३:३६:४

अंगुलि मुषह फणिंदु ३:२५:१

अबजीवन वंछिहि अधिक कहि कवि कौन सयानु ३:२०:१

आदर कियग्रिह आवत १०:२:१

आन साहि (शाह की शपथ है) ११:८:१

इंद सम क्यि विचार २:१:६०

उठि गहहु अब अकुल अनाथ १२:१५:४

उट्ठिय सूर सामंत तज्जे ७:१७:५

ऐसी सं वाले को दैत्य, दानव कहने क

कहणों सार मंत ८:७:१

को मेटइ विधिपत्त ५:१४:२

गत जांम ति जामं सुपीत परी ८:६:१७

सहायक-ग्रन्थों की सूची

अलबेरूनीज इंडिया, साच कृत अंग्रेजी अनुवाद
इंडिया, मेक्समूलर
इलियट हिस्ट्री आव इंडिया, भण्डारकार
इंस्क्रिप्शन्स आव नार्दर्न इंडिया, भांडारकर
उक्तिव्यक्ति प्रकरण, दामोदर
इंसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका
ए हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी एस०एन०दास
कला और संस्कृति, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेवशरण अग्रवाल
कीर्तिलता, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल
वतुर्माणि, संपा० मोतीचन्द्र
जीव-जगत, सुरेश सिंह
डाइनैस्टिक हिस्ट्री आव इंडिया, हेमचन्द्र रे
दी पोलिटिकल इन्स्टीट्यूशन एंड थ्यूरी आव दी हिन्दूज,विनयकुमार सरकार
धर्म शास्त्र का इतिहास , काणे , अनु० अर्जुन चौबे कस्यप
पद्मावत और मूल संजीवनी, व्याख्या० वासुदेवशरण अग्रवाल
पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल
पार्थ पराक्रम व्यायोग, गायकवाड़ ओरि०सीरीज
पृथ्वीराज रासो (एक समीक्षा) डा० विपिनविहारी त्रिवेदी
प्राकृत पैंगलम, संपा० डा० भोला शंकर व्यास
प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव,डा०रामसिंह तोमर
प्राचीन भारत का इतिहास, डा० भगवतशरण उपाध्याय
प्राचीन भारत की सांग्रामिकता, रामदीन पाण्डेय
भारत के पक्षी, राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह
भारतवर्ष का इतिहास , डा० भगवद्दत्त
भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास श्री नेत्र पाण्डेय
भारतीय दर्शन , बलदेव उपाध्याय

भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य, डा० बैजनाथ पुरी

मत्स्यपुराण

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

मध्यकालीन संस्कृति, रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

मार्को पोलो, संपा० मिस बुल

रासो साहित्य विमर्श, डा० माताप्रसाद गुप्त

शोध प्रबन्ध, १२ वीं सदी में उत्तरभारत में समाज के कुछ रूप, बृजनाथ सिंह

संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर

सूर सागर शब्दावली एक सांस्कृतिक अध्ययन, डा० निर्मला सक्सेना

स्टेट इन एंसियेन्ट इंडिया, बेनीप्रसाद

हर्ष चरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल

हिन्दू परिवार मीमांसा, हरिदत्त वेदालंकार

हिन्दी विश्वकोष, नगेन्द्र नाथ गुप्त

हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद

हिन्दू देव परिवार का विकास, डा० सम्पूर्णानन्द

हिस्ट्री आव मिडिवल इंडिया, चि०वि० वैद्य

कल्पना (पत्रिका), जून १९५५

नागरी प्रचारिणी (पत्रिका), नवीन संस्करण भण्डार कार ओरि०सिरी०

सम्मेलन, पत्रिका भाग ४८, संख्या ३, ४

हिन्दी अनुशीलन, अक्टू०, दिस०, १९५५